श्री गोवर्धन संस्थाके द्वारा प्रकाशित ।



॥ गावो विश्वस्य मातरः ॥

गो-ज्ञान-कोश

प्राचीन खण्ड

वैदिक विभाग

[प्रथम खण्ड]

ऋग्वेद से उपनिषद तक

संपादक

पं. श्रीपाद् दामोदर सातवलेकर

साहित्यवाचस्पति, गीतालङ्कार

अध्यक्ष—स्वाध्याय-मण्डल, आनन्दाश्रम,

पारडी (जि. सूरत)

विक्रम संवत् २००६, श्रीदासनवमी शके १८७१, ई. स. १९५०

मूल्य ५) रुपये

प्रकाशक : श्री गोवर्धन संस्था (रजिस्टर्ड)
धाई, पूना, बंबई
गोवर्धन निवास ६८९।५८ सदाशिव, पूना २

प्रथम बार

मुद्रक : व. श्री. सातवलेकर, बी. ए.
भारत मुद्रणालय, आनन्दाश्रम, पारडी (सूरत)

गोमेधका स्वरूप।

(१) आधुनिक मत।

बहुतसे लोगोंका मत ऐसा है कि " प्राचीन कालमें इस भारतभूमिमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी, वैदिक समयमें लोग यज्ञयागोंमें गोमांसका उपयोग करते थे, इतनाही नहीं प्रत्युत प्रात्यहिक क्षुधा शमनके लिये भी गोमांसका उपयोग होता था। "

अतिप्राचीन वैदिक कालकी प्रथा इस समय हमारे लिये घातक सिद्ध होती हो तो उसी प्रथाको स्वीकार करनेका आग्रह कोई नहीं करेगा, वेदने यदि " अग्नि शीत है " ऐसा कहा तो हम उस वेदाज्ञाको कदापि नहीं मानेंगे, ऐसा जो श्री शंकराचार्यजीने कहा है वह इस समय भी सत्य है। केवल किसी बातकी प्राचीनता उसकी उत्तमताको सिद्ध नहीं कर सकती, अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक समयमें लोग गोमांस-भक्षण करते थे ऐसा यदि सिद्ध हुआ, तो उससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि आज भी हमें गोमांस-भक्षण करना आवश्यक है। कई बातें ऐसी हैं कि जो वैदिक समयमें प्रचलित थीं, परन्तु इस समय उनका प्रचार नहीं है। इतना होनेपर भी चूंकि हमारा धार्मिक संबंध ऋषिकालके तथा वैदिक कालके आचारसे घनिष्ठ रूपमें है, इसलिये हमें देखना चाहिये कि, क्या सचमुच वैदिक कालके ऋषिमुनि गोमांसभक्षण करते थे या नहीं? इतिहासिक खोजकी दृष्टिसे इसका विचार हमें करना चाहिये, धार्मिक अंध विश्वासको एक ओर रखकर केवल इतिहासिक सत्य तथ्य देखनेके लिये ही यह खोज हमें करना चाहिये। क्योंकि गोमांसभक्षणकी प्रथाका प्राचीन कालमें अस्तित्व सिद्ध करेगा कि गौका पावित्र्य नवीन है, यदि अतिप्राचीन कालसे गौकी इतनी पवित्रता होती तो उसको काटकर खानेकी संभावना कष्टसे मानने योग्य बनेगी। अत हमें देखना चाहिये कि वैदिक समयमें गोमांसभक्षण-की प्रथा थी या नहीं।

आजकल कई विद्वान् ऐसा मानते हैं कि हिंदूजातिको मांसभोजन करके हृष्टपुष्ट होना चाहिये। जबसे हिंदू जातिने मांसभोजन छोड दिया और जैन बौद्धोंका अहिंसा-वाद अपनाया तबसे हिंदुजातिका अधःपात हुआ। इसलिये अतिप्राचीन कालके आर्यों जातिके समान उन्नत होना हो तो मांसभोजन करना आवश्यक है। आर्योंमें जबतक गोमांसभक्षण प्रचलित था, तबतक आर्य विजयशाली थे और जबसे अहिंसा मत प्रचलित हुआ तबसे उनका वैभव कम होने लगा। ऐसा भी कई विद्वान् मानते हैं।

ये मत जिस समय हम देखते हैं उस समय हठयोगप्रदीपिकाका एक श्लोक हमारे सन्मुख उपस्थित होता है, वह श्लोक यह है—

(२) योगमें गोमांसभक्षण।

गोमांसं भक्षयेन्नित्यं पिबेदमरवारुणीम्।
कुलीनं तमहं मन्ये इतरे कुलघातकाः॥

(हठयोगप्रदीपिका ३।४७)

" जो नित्य गोमांसभक्षण करता है और अमरवारुणी-मद्य-का पान करता है उसीको मैं कुलीन मानता हूं, इतर लोग कुलघातकी हैं। " अर्थात् गोमांसभक्षण और मद्यपान करनेवाले लोग कुलीन और अन्य लोग कुलघातक हैं। यदि यह श्लोक किसीके सन्मुख आया, तो वह मनुष्य यही समझेगा कि योगशास्त्र गोमांसभक्षणका प्रचार करता है और योगियोंके लिये गोमांसभक्षण और मद्यपान आवश्यक बताता है। ऐसा सभी समझते हैं और जिस कारण उसमें ऐसे श्लोक हैं इस कारण उस प्रकार यह मत है, ऐसा कहनेमें कोई हानि नहीं। परन्तु यहां विचारकी बात यह है कि, योगग्रन्थ यह योगका ग्रंथ है इसलिये योगके संकेतानुसार ही इसका अर्थ होना उचित है, लोगोंके अन्य अर्थ चाहे कुछ हों, परंतु वे अर्थ योगशास्त्रकी परिभाषाके अनुकूल न हों तो ग्रहण करनेयोग्य नहीं हो सकते। योगमें " गोमांसभक्षण " शब्दोंकी एक क्रिया है, इसका वर्णन निम्न श्लोकमें देखिये—

गोशब्देनोदिता जिह्वा तत्प्रवेशो हि तालुनि।
गोमांसभक्षणं तत्तु महापातकनाशनम्॥

(हठयोग प्रदीपिका ३।४८)

" गो शब्दका अर्थ है जिह्वा, उसका प्रवेश तालुस्थानमें करना, इसको योगप्रणालीके अनुसार गोमांसभक्षण कहते

है। " इसी प्रकार " अमरवारुणी " नाम मस्तिष्ककी एक पथीके रसका है।

प्रत्येक शास्त्रमें अपनी अपनी विशेष परिभाषाएं होती है। उनका अर्थ-निश्चय उनकी प्रणालीके अनुसारही करना चाहिये। उनकी प्रणाली न देखी जाय तो अर्थका अनर्थ होनेमें देरी नहीं लगेगी। उक्त स्थानमें जिस प्रकार ' गोमांस-भक्षण ' यह संज्ञा योगकी एक विशेष क्रियाके लिये है उसी प्रकार कई अन्य संज्ञाएं हैं कि जिनके न जाननेके कारण लोगोंको मांसभक्षण की प्रथा प्राचीन कालमें थी ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है।

(३) प्रकरणानुकूल अर्थविचार।

ऐसे स्थानोंपर विचार इस बातका करना चाहिये कि यह शास्त्र कौनसा है, इसके महा सिद्धान्त क्या है, उन महा सिद्धान्तोंके अनुकूल यह अर्थ है या नहीं, यदि अनुकूल हो तोही अर्थ सत्य होगा अन्यथा असत्य होगा। अब पूर्व लिखे गोमांसभक्षणवाले श्लोकके विषयमें देखिये।

(१) यह श्लोक योगशास्त्रका है,

(२) योगशास्त्र प्रारंभसही " अहिंसा, सत्य, अस्तेय " आदि यमनियमोंका उपदेश करता है।

(३) इसलिये इस शास्त्रमें आये " गोमांसभक्षण " का अर्थ अहिंसापरकही होना चाहिये, जो हमने ऊपर बताया ही है।

जो शास्त्र प्रारंभसे ही अहिंसाका उपदेश करता है उस शास्त्रमें आगे स्वमत याघात की अर्थात हिंसा करनेकी बात कभी नहीं आ सकती। चूंकि किसी भी योगशास्त्रमें हिंसा के अनुकूल आज्ञा नहीं है और संपूर्ण योगशास्त्रके ग्रंथ एक मतसे कायिक, वाचिक, मानसिक, शाब्दिक परिपूर्ण अहिंसा का उपदेश कर रहे है, इसलिये पूर्वोक्त " गोमांस-भक्षण " वाले श्लोकका अर्थ भी कायिक, वाचिक, मानसिक अहिंसा के साथ युक्ति युक्तही करना चाहिये। अन्यथा स्वकीय तन्त्र-सिद्धांतको हानि होगी।

इसको कहते हैं कि ' प्रकरणानुकूल अर्थ करना। ' ग्रंथ क्या है, प्रकरण क्या है, उसका सर्वतन्त्र महासिद्धांत क्या है यह देखकर ही हमें वाक्योंका अर्थ करना चाहिये। यदि ऐसा न कियां जाय तो संस्कृत ग्रंथोंके शब्दोंके अर्थोंको अनर्थ होना कोई असंभव बात नहीं है।

(४) ऋषिपंचमी।

क्या ऐसा विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि वेदके मन्त्रोंसे गोमांसभक्षणकी प्रथा सिद्ध होती है ? हमारे विचारसे नहीं, गोमांसभक्षण की तो क्या, परंतु मांसभक्षण की प्रथा भी अति प्राचीन नहीं है। ऋषिकालका या वैदिक कालका भोजन बतानेवाला एक पुण्यदिन हिंदुओंमें इस समयमें भी प्रचलित है, जिसको "ऋषिपंचमी" कहते हैं। भाद्रपद शुक्ल पंचमीके दिन यह त्योहार आता है। प्रायः संपूर्ण भारतवर्षमें यह मनाया जाता है। इस दिन कोई मांस भोजन नहीं करते, इतनाही नहीं, परंतु खेतमें तैयार हुआ अन्न भी नहीं खाते। जो अन्न " अकृष्टपच्य " होता है अर्थात् कृषिसे उत्पन्न नहीं होता, हाथसे भूमि खोदकर उसमें हाथसे बोये हुए कुछ विशेष किस्मके धान और कंद, मूल, पत्ते और फल, जो केवल हाथके यत्नसे उत्पन्न होते है, वेही खाये जाते हैं। अर्थात् यह पर्व उस समयके ऋषि-योंके अन्नके विषयमें हमें बताता है कि जिस समय ऋषि लोग हल भी नहीं चलाते थे, प्रत्युत किसी साधारण रीतिसे भूमि खोद खोदकर उसमें थोडासा अन्न उपजाते थे। बैलोंके द्वारा बडे हल चलाकर चावल, गेहू, मूंग आदि धान्योंकी उत्पत्ति होनेके भी पूर्व कालकी स्मृति हमें इस त्योहारसे मिलती है। चावल, गेहू, मूंग आदि धान्य आजकलके हमारे भोजनका प्रधान अंग है, इसका नाम " कृष्टपच्य अन्न " है। इस प्रकारकी कृषि प्रारंभ होनेके पूर्व और बडे हल उपयोगमें आनेके पूर्व लोग कंद, मूल, फल, पत्ते और कृषिसे उत्पन्न न हुआ तृणधान्य खाते थे, नमक भी उस समय उपयोगमें नहीं आया था।

इस दिनके भोजनके विषयमें निम्नलिखित श्लोक देखने योग्य है—

> शाकाहारस्तु कर्तव्यः श्यामाकाहार एव वा।
> नीवारैर्वाऽपि कर्तव्यः कृष्टपच्यं न भक्षयेत्॥

" इस दिन शाकाहार करना चाहिये, अथवा श्यामाक धान्य खावें, किंवा तृण धान्य नीवार आदि (जो घाससे उत्पन्न होता है) खाया जावे परंतु खेतीसे उत्पन्न अन्न न खाया जावे। "

जहां खेतीके धान्य खानेका निषेध होगा वहां मांसके खानेकी संभावना कहां होगी। अर्थात् तृणधान्य खानेकी प्रथा खेतीके धान्यकी प्रथाके पूर्व समयकी है इसमें कोई संदेह नहीं है। और यदि मांसाहार अति प्राचीन होता तो इस दिन अवश्य किया जाता, जिस कारण इस दिन मांसाहार नहीं किया जाता और न उसका प्रतिनिधि उपयोगमें आता है उस कारण हम कह सकते हैं कि मांसाहार आर्यवंशजोंमें जो घुसा है वह तीसरी अवस्थापर घुसा है।

(१) पहिली अवस्था = अकृष्टपच्य तृणधान्य, फलमूल, कंदमूल पत्ते आदिका भोजन,

(२) दूसरी अवस्था = कृष्टपच्य गेहूं, चावल आदि भोजन,

(३) तीसरी अवस्था = पूर्वोक्त भोजनमें मांसके घुसनेकी है।

इस दृष्टिसे ऋषि पंचमीका पर्व हमें अति प्राचीन ऋषि भोजनकी प्रथा शाकाहारके होनेकी सूचना देता है।

प्राचीन कालकी प्रथा हिंदुओंके शुभ दिवसोंमें आज भी आचारमें आती है। एकादशी, शिवरात्रि, आदि तिथियोंमें, सोम, मंगल, गुरु, रवि आदि वारोंके दिन जो लोग उपवास करते हैं तथा अन्यान्य पवित्र माने हुए दिनोंमें निरशनका माना हुआ जो आहार है, उसमें भी कंद, मूल, फल, पत्ते और अन्य अकृष्टपच्य अनाज ही होता है। चावल, गेहूं, मूंग आदि धान्य उपवासके दिन इसलिये नहीं खाते कि यह नवीन अन्न है। चावल, गेहूं आदि धान्य खानेकी प्रथा नवीन और अकृष्टपच्य कंद, मूल, पत्ते आदि खानेकी प्रथा प्राचीन ऋषि लोगोंकी थी इस विषयमें अब किसीको संदेह नहीं हो सकता। प्राचीन आचारकी खोज करनेके समयमें भारतीय हिंदुओंके शुभदिवसोंके आचार हमें बड़ा ज्ञान दे सकते हैं। जिस समय गेहूं, चावल आदि नवीन धान्य प्रचारमें आ गया, उस समय कंदमूलादि ऋषि भोजन पवित्र दिवसोंके लिये रखा गया। इस प्रकार पुरानी प्रथा और नवीन रीतिका मेल यहां दिखाई देता है। शतपथ ब्राह्मणमें भी इसका उल्लेख है जैसा देखिये—

यदेवाशितमनशितं तदश्नीयात् ॥ ९ ॥
..तस्मादारण्यमेवाश्नीयात् ॥ १० ॥
(शतपथ ब्रा. १।१।१)

" जो भोजन न खानेके समान होता है वह उपवासके व्रतके दिन खाया जाय, वन्य (कंदमूल फल आदि) खाया जाय। "

यह कंद मूल फलका भोजन निरशनका भोजन है, अर्थात् व्रत रखनेके दिन यदि कुछ खाना हो तो यह वन्य पदार्थ खाये जांय। शतपथ ब्राह्मणका समय इससे करीब पांच सहस्र वर्षोंका है। उस समय भी आज कलके समानही उपवासका व्रत होता था और उस दिन आजकलके समान निरशनका भोजन उक्त प्रकार किया जाता था। शतपथ ब्राह्मणके समय चावल, गेहूं, उड़द आदि खेतीसे उपजे धान्य विपुल होने लगे थे और अति प्राचीन ऋषिभोजन व्रतके दिनके लिये रखा गया था। इसका विचार करके पाठक जान सकते हैं कि जो ऋषि भोजन हम ऋषिपंचमीके दिन प्रयत्नसे करते हैं और जिस दिन अरुंधती देवीके साथ वसिष्ठादि सप्तऋषियोंका पुण्यस्मरण करते हैं और जो दिन ऋषियोंके समान आचार करनेमें व्यतीत करते हैं, उस दिनके व्रतका निरशनका फलाहार शतपथ ब्राह्मणसे इतना पुराना तो है ही, परंतु शतपथ ब्राह्मणके समयमें भी वह अति प्राचीन बन गया था, अर्थात् शतपथसे पूर्व कई सहस्र वर्षोंका यह ऋषिभोजन होना संभव है। इस प्राचीन ऋषि भोजनमें मांस भोजनकी बू भी नहीं, इतना ही नहीं खेतीसे उत्पन्न भोजन भी नहीं, परंतु वनमें स्वभावसे उत्पन्न कंदमूल फल पत्ते और कुछ जंगली धान्य ही है। यदि वैदिक कालके ऋषियोंके भोजनमें मांसका थोड़ा भी संबंध होता तो ऋषिपंचमीके समयके भोजनमें उसका थोड़ा अंश होता या उसका कोई प्रतिनिधि भी होता।

(५) मांसका प्रतिनिधि।

" मांस " का प्रतिनिधि " मास, माष या उड़द " माना है और जहां " मांसान्न " की आवश्यकता होती है वहां " माषान्न अर्थात् उड़द और चावल " का ग्रहण करनेकी स्मार्त पद्धति सबको ज्ञात ही होगी, परंतु उक्त ऋषिपंचमीके समयके आहारमें मांस प्रतिनिधि भी नहीं है। इसलिये हम कहते हैं कि ऋषिपंचमीका भोजन सच्चा ऋषि भोजन है और वह पूर्णरूपसे निर्मांस है।

यह ऋषिपंचमी व्रत सप्तऋषियोंके पूज्य स्मरणके लिये किया जाता है और प्रायः संपूर्ण भारतवर्षमें किया जाता है। इसलिये इसकी प्राचीनतामें यत्किंचित् भी संदेह नहीं।

[illegible] जो आतिथी कारा खाता है [illegible] और [illegible] निरामिष भोजनके हाते हैं और [illegible] एक मनसे मानते हैं कि निरामिष भोजन [illegible] सभी लोग शाकभक्षक होनेमें सुप्रति[illegible], परन्तु [illegible] भी आदिरोंके पुजारी आदि लोग निरामिषभोजी होते हैं और हिंदुस्थानके निरामिष भोजियोंकी प्रशंसा मुक्तकंठसे करते है। जगत्का कोई ऐसा धर्म नहीं है जो निरामिष भोजनको बुरा मानता हो और जो [illegible] दिनोंमें भी निरामिष भोजनका उपदेश न करता हो।

अन्य धर्मोंकी बात छोड दें, ऊपर शतपथ ब्राह्मणने पूर्वोक्त स्थानमें उपवासके समय वन्य कदमूलफलादी खानेको कहा है। [illegible] भी [illegible] ब्राह्मण [illegible]में मांस नहीं खाते, पुरोहिती [illegible] दिनोंमें नहीं खाते। परन्तु इन दिनोंमें ऋषि अन्न खाते हैं, कई लोग [illegible] खाते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भोजनमें धान्य गेहूं आदि आगये, आगे भी पुनः आया, तो ऐसे समय अति प्राचीन कालका ऋषिभोजन पवित्र दिनोंके लिये रखा गया है। इससे प्राचीन ऋषि [illegible] प्रायः निरामिष, वन्य तथा फलभोजीही था इसका स्पष्ट पता लगता है।

इस समयतक जो आचार-व्यवहार चला आया है उसका विचार करनेसे जिस ऋषि भोजनका पता हमें चलता है वह यही है कि ऋषि निरामिष भोजी थे और अति प्राचीन वैदिक समयमें निरामिष भोजन ही प्रचलित था। देखिये—

१ अति प्राचीन ऋषिभोजन= कंद, मूल, फल और वन्य सहज उत्पन्न आरण्यक अकृष्टपच्य तृणधान्य।

२ उसके पश्चात्का भोजन= गेहूं, चावल, उडद आदि धान्य, (इस द्वितीय समयमें प्राचीन वन्य भोजन व्रतके लियेही रखा गया था।

३ तीसरे समयका भोजन= इस समय पूर्वोक्त भोजनमें मांस घुस गया था, (तथापि अति प्राचीन कालके ऋष्यन्न की श्रेष्ठता सर्वमान्य होनेसे व्रतादिके पवित्र दिनोंमें द्वितीय और तृतीय समयके भोजन निषिद्ध माने गये।)

इससे यदि कुछ सिद्ध हो सकता है तो यही सिद्ध हो सकता है कि मांसभोजन उस समय शुरू हुआ जिस समय आर्य लोग तृतीय अवस्थामें पहुंच गये थे। अर्थात् प्राचीन ऋषि कालमें आर्य लोग निरामिष भोजी ही थे।

(६) उत्क्रांतिवाद।

यदि उत्क्रांतिका वाद सत्य है और यदि मनुष्यका शरीर वानर के शरीरसे उत्क्रांत हुआ है, तो यह बात निःसंदेह माननी पडेगी कि मनुष्य प्रारंभिक अवस्थामें निरामिष भोजी ही था। क्योंकि बंदर फलभोजी ही हैं। वे वृक्षोंके फल, पत्ते आदि खाते हैं। इसलिये मनुष्य स्वभावतः मांस-भोजी नहीं है। जब वह जीवन संघर्षमें आता है और फल भोजन असंभव हो जानेकी तृतीय अवस्था प्राप्त होती है तब वह दूसरे पशुओंको मारकर उनेका मांस खाता है। इस-लिये हम कैसे कह सकते है कि आदि वैदिक कालमें ऋषि-लोग मांस और विशेषकर गोमांस खाते थे। यदि वैदिक समय मानव जातिका प्रथम अवसर है तो उस समय मानना पडेगा कि मनुष्य फलभोजी ही थे। जैसा कि हम देख आये है कि ऋषिपत्नीके व्रतका अन्न केवल कंद मूल-फल ही है। वही ठीक प्रतीत होता है।

(७) सारस्वत ब्राह्मणोंकी प्रथा।

आजकल दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंमें सारस्वत नामके ब्राह्मण है। जिनके इतिहासमें लिखा है कि ये सरस्वती नदीके तीर पर रहते थ। अति प्राचीन समयमें बडा अकाल पडा और कई वर्ष बिलकुल वृष्टि नही हुई और फलफूल, कंदमूल, धान्य आदि कुछ भी मिलना असंभव हुआ। उस समय

सरस्वती नदीके तटपर रहनेवाले ब्राह्मणोंने नदीसे प्राप्त होनेवाली मछलियां खाकर अपने जीवनका धारण किया। बहुत दिन मछलियोंके भोजनके स्वादका अभ्यास होनेसे बादमें सारस्वत ब्राह्मणोंको वही जिह्वालौल्यका अभ्यास रखनेकी बुद्धि हो गई। इमसे ब्राह्मणोंमें सारस्वत ब्राह्मणही मछली खाते हैं, अन्य द्राविड ब्राह्मण नहीं खाते कई उत्तरीय सारस्वत भी नहीं खाते। यदि यह सारस्वतोंका इतिहास सत्य है तो मानना पडता है कि प्राचीन ऋषिकालमें ये भी शाक-भोजी थे, परंतु जीवनकलहमें पड जानेके कारण इनको मांसभोजन स्वीकारना पडा। उससे हमारा पूर्व लिखा सबही पुष्ट हुआ कि वैदिक कालके आदि आर्य शाकाहारीही थे, पश्चात् उनमेंसे कई जातियां बहुत समय व्यतीत होनेपर मासभोजी बनी। इसी कारण इस समयमें भी कई आर्य जातियां शुद्ध निरामिषभोजी हैं और कई आमिषभोजी हैं। थोडीसी ब्राह्मण जातियां सारस्वतोंके समान अशात मांसाहारी हुई, कुछ क्षत्रिय जातियां युद्धादि कारणसे मांस खाने लगी, परंतु बहुतसी ब्राह्मण जातियां और पूर्ण रीतिसे वैश्य जातियां इस समयतक निरामिषभोजी ही हैं। परंतु इस समयमें भी सब जातियां शाकभोजनको पवित्र भोजन मानती हैं।

इस रीतिसे सामान्यतया मांसभोजनका विचार करनेसे पता चलता है कि आदिकालमें अर्थात् वैदिक कालमें रहनेवाले ऋषिलोग फलभोजी थे, उसके पश्चात् धान्यभोजन शुरू हुआ; पश्चात् अकालादि तथा युद्धादि आपत्तियोंके वारंवार आनेके कारण कई आर्य जातियां-जो ऐसी आपत्तियोंमें फंसी-मांसाहारी बन गईं। अर्थात् वैदिक कालमें मांसभोजनकी शिष्टसंमत प्रथा नहीं थी, फिर गोमांसभक्षण की प्रथा तो दूर की बात है।

(८) वेदका महासिद्धांत।

वेदका महासिद्धांत संपूर्ण भूतोंको मित्रदृष्टिसे देखना है, इसलिए हम कह सकते हैं कि जो संपूर्ण प्राणियोंको मित्रकी प्रेमदृष्टिसे देखते हैं वे अपने पेटके लिये उनका घात कैसे कर सकते हैं? मित्रकी प्रेमदृष्टि तो अपना प्राण दूसरोंके लिये अर्पण करायेगी, कभी ऐसा नहीं हो सकता है कि जिसपर प्रेम करना है उसीको अपने पेटके लिए काटा जाय। देखिये वेदका महासिद्धांत—

(१) मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
(२) मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।
(३) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे॥ (वा य. ३६।१८)
(४) मित्रस्य चक्षुषा समीक्षध्वम्।
(मैत्रायणी सं ४।९।२७

(१) मित्रकी दृष्टिसे मुझे सब प्राणि देखें,
(२) मैं मित्रकी दृष्टिसे सब प्राणियोंको देखता हूं,
(३) हम सब परस्पर मित्रकी दृष्टिसे देखेंगे,
(४) मित्रकी समान दृष्टिसे सबको देखो।"

यह वेदाज्ञा है। यहां स्वल्प मनुष्योंको ही मित्रदृष्टिसे देखनेका उपदेश नहीं है प्रत्युत संपूर्ण प्राणिमात्रको मित्र-दृष्टिसे देखनेका उपदेश है। तो क्या अपने मित्रकोही अपने पेटके लिये मारना है? यदि मारना है तो मित्रदृष्टि किस काम की? अर्थात् इस वैदिक महासिद्धांतको माननेवाले वैदिक लोग सब भूतों अथवा सब प्राणियोंको मित्र दृष्टिसे देखेंगे और उनको काटकर खानेकी बातको स्वीकारेंगे नहीं। इसलिये मानना पडेगा कि किसी बाह्य कारणसे आर्यवंशजोंमें मांसभोजन घुसा है। आर्योंका स्वाभाविक अन्न शाकाहारही है।

(९) यज्ञकी साक्षी।

यज्ञमें मांस प्रयोग होना चाहिये था नहीं यह बात भिन्न है। हमारा मत है कि यज्ञ निर्मांस ही होते थे परंतु कुछ समयके लिये प्रचलित समांस यज्ञोंका ही विचार किया जाय, तो पता लगेगा कि आजकलकी यज्ञकी वेदीके दो भेद हैं—

(१) पूर्व- वेदी और
(२) उत्तर- वेदी,

पूर्व-वेदीमें कई वेदियां हैं जिनमें केवल धान्यका ही हवन होता है और कभी मांसका संबंध नहीं आता। केवल इस "उत्तर-वेदीमें मांसका हवन होता है। यदि ये वेदी शब्दके विशेषण रूप "पूर्व और उत्तर" ये दो शब्द "पूर्वकाल और उत्तरकाल" के वाचक मान लिये जांय, तो स्पष्ट सिद्ध होता है कि पूर्व (कालकी) वेदीमें केवल धान्यहवन ही किया जाता था, और उत्तर (कालकी) वेदीमें बादमें मांस हवन होने लगा।

जिसमें आजकल मांसका हवन किया जाता है उस वेदी का नाम " उत्तर-वेदी " ही है। उत्तरवेदीका अर्थ स्पष्ट रूपसे यही है कि " उत्तर समयमें प्रचलित हुई वेदी " अर्थात् पूर्वकालमें यज्ञमें यह वेदी ही नहीं थी। जो वेदियां पूर्वकालमें थी वह " पूर्व वेदियां " इस समयमें भी है। पूर्ववेदियोंमें शुद्ध धान्यका ही हवन होता है। और उत्तरवेदीपर मांसका हवन होता है। इतनाही नहीं परंतु पहिले वेदियोंका धान्यहवन पूर्णतासे समाप्त करनेके पश्चात् ही इस मांसवेदीके कार्यका प्रारंभ होता है। यज्ञके पहिले दिनोंमें कभी भी मांसहवन नहीं होता, केवल धान्यहवन होता है, यज्ञके पश्चात् के दिनोंमें उत्तरवेदीमें ही मांसहवन करते हैं।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि अति प्राचीन कालका यज्ञ पूर्ववेदियोंसे बताया जाता है जिसमें धान्यहवन ही है। और पश्चात्‌के समयका हवन उत्तरवेदीके मांसहवनसे बताया जाता है। यदि ब्राह्मण-ग्रंथोंके समय ये स-मांस यज्ञ प्रचलित थे, ऐसा किसीका मानना हो, तो उसको यह बात अवश्य माननी पडेगी कि इससे पूर्वकालमें यह प्रथा न थी और उस समय निर्मांस यज्ञ ही प्रचलित थे।

पाठक ऋषिपंचमीके दिनका पूर्वोक्त भोजन और इस यज्ञके पूर्व (समयमें प्रचलित) वेदीपर होनेवाला धान्य-हवन इन दोनो बातोंकी संगति लगाकर देखें, तो उनको वैदिक कालमें निर्मांस भोजन होनेका निःसंदेह निश्चय हो जायगा।

(१०) मधुपर्क।

कइयोंका कथन है कि मधुपर्क-विधि वैदिक है और उसमें "मांस" आवश्यक है। परतु ऋग्वेद, यजुर्वेद, साम-वेदमें " मधुपर्क " शब्दही नहीं है, ब्राह्मणों और उप-निषदोंमें भी यह शब्द नहीं है। केवल अथर्ववेद संहितामें एकबार मधुपर्क शब्द आया है। वह मंत्र यह है—

> यथा यशः सोमपीथे मधुपर्के यथा यशः ।
> (अथर्व० १०।३।२१)

'जैसा यश सोमपानमें और जैसा मधुपर्कमें है वैसा मुझे प्राप्त हो।' वेदकी चारों संहिताओंमें मधुपर्कविषयक इतनाही उल्लेख है, इसलिये मधुपर्कमें वैदिक रीतिसे क्या होना चाहिये और क्या नहीं इसका पता नहीं लग सकता। परंतु इतना सत्य है कि मधुपर्कमें मांस अवश्य है ऐसा जिनका पक्ष होगा उनके मतकी सिद्धि वैदिक मंत्रोंसे नहीं हो सकती। ब्राह्मण और उपनिषद् ग्रंथोंतक किसी भी ग्रंथमें मधुपर्कका इससे अधिक उल्लेख नहीं है। अतः "वेदके मधुपर्कमें मांसकी आवश्यकता है" यह बात वैदिक प्रमा णोंसे सिद्ध होना असंभव है।

यद्यपि वेदोंमें अन्यत्र कहीं भी मधुपर्क शब्द नहीं है तथापि " मधुपेय " शब्द है, यह भी इसके समानार्थक माना जा सकता है। यह एक उत्तम मधुर अर्थात् " मीठा पेय " है ऐसा निम्नलिखित मंत्रसे प्रतीत होता है–

> वृषाऽसि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभस्तियानाम्। वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥
> (ऋग्वेद ६।४४।२१)

इस मंत्रके अंतिम भागमें " स्वादू रसो मधुपेयः " ऐसे शब्द हैं इनका अर्थ " मीठा रस मधुपेय " है। परंतु यह कोई स्वतंत्र पेय नहीं है' यह सोमरसही है जिसका सूचक " इन्दु " शब्द इसी मंत्रमें है। इस मंत्रमें " वृषा, वृषभः " ये बैलवाचक शब्द हैं।

इनके देखनेसे कईयोंने मधुपेयमें बैलके मांसकी कल्पना की होगी। परंतु यह मंत्र ' इंद्र ' देवताकी प्रशंसापर है और इसका शब्दार्थ है– ' हे इन्द्र देव ! तू पृथिवी, द्युलोक, नदियां, स्थावर जंगम पदार्थ आदिको बल देनेवाला है, इसलिये इस मधुपानके समय यहां आ "। यद्यपि अंग्रेजी भाषांतरमें मि० ग्रिफिथने " Thou art the Bull of earth, the Bull of heaven " ऐसे शब्द लिखे हैं तथापि यहांका तात्पर्य बैल नहीं है परंतु "शक्ति देनेवाला" है यह अंग्रेजी शब्दोंके बीचका भाव समझनेवालोंको पुनः कहनेकी आवश्यकता नहीं है। यदि कोई मनुष्य इस मंत्रमें " वृषा और मधुपेय " ये दो शब्द आये हैं, इसलिये मधु-पेयसे बैलके मांसकी आवश्यकता है। " ऐसा कहेगा तो यह कथन विश्वास रखनेयोग्य नहीं होगा। क्योंकि जो बात मंत्रमें नहीं है वह मंत्रके सिरपर मढ देना कोई विद्याकी बात नहीं हो सकती।

इतने विवरणसे यह बात सिद्ध हुई कि वेदोंमें मधुपर्क शब्द केवल एक बार अथर्ववेदमें आया है और उस मन्त्रसे मधुपर्कमें मांसकी आवश्यकता सिद्ध नहीं होती। मधुपेयमें भी मांसकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि मधुपय यह सोम वल्लीके रससे बनाया हुआ मधुर पेयही है। और उसमें गायका, बैलका या किसी अन्य पशुका मारा डालनेका विधान किसी स्थान पर भी नहीं है। यज्ञोंमें जो सोमरस आजकल तैयार करते हैं उसमें भी मांस या मांसरस या रक्त कभी नहीं डाला जाता। इससे सिद्ध है कि "मधुपेय' में मांसकी आवश्यकता नहीं। तथापि क्षणभर इस "दुर्जन तोष-न्याय" से मधुपर्क में मांस होनेकी संभावना मान कर क्या आपत्ति आती है यह पाठकोंके सन्मुख रख देते हैं—

(११) अतिथिसत्कारमें मधुपर्क ।

प्राय जहां कहीं आधुनिक ग्रंथोंमें मधुपर्कका उल्लेख है वह अतिथिसत्कारके प्रसंगमे आया है। घरके दैनंदिनीय खाद्यपेयमें किसीने मधुपर्क किया, दिया या खाया ऐसा प्रसंग किसी भी ग्रंथमें नहीं है।

"कोई ऋषि महर्षि किसी राजाके घर आया, द्वारमे ही राजाने उसका आतिथ्य किया, आसनपर बिठाया, पूजा की, पूजाके बीचमें मधुपर्कके लिये गाय लायी गई, मधुपर्क किया और पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्न पूछे। प्रश्नोत्तर होतेही ऋषि वापस चले गये।" ६

"दूसरा प्रसंग विवाहके समय होता है, वर विवाह मंडपेमें आता है, उसकी पूजा की जाती है और उस समय मधुपर्क दिया जाता है।" यदि यह प्रथा ठीक है तो इसमें मांस भोजनके लिये स्थान ही नहीं है, क्योंकि इसमें जो विधि होती है, वे इस प्रकार है—

१ अतिथि (या वर का) द्वारपर आना,
२ यजमान (राजा या वरके श्वशुर) का द्वारपर आना और द्वार पर सत्कार करना,
३ सत्कारके पश्चात् उसका अंदर प्रवेश,
४ आसनपर बिठलाना,
५ पाव धोना, चंदन, इत्र तथा पुष्पमाला आदिका समर्पण करना,
६ गौ लाकर उसका समर्पण करना,
७ मधुपर्क देना, अपने मधुपर्क खाना और हाथ मुख आदि धोना, पश्चात्—
८ पूजा समाप्त करके कुशल प्रश्नादि करना या आगेका जो कार्य हो वह प्रारंभ करना।

पाठक क्षणभरके लिये मान लें कि यहां गोवध करके उसके मांसके साथ मधुपर्क देना अभीष्ट हो तो पशुके देहसे मांस निकालकर उसको पकाकर खाने योग्य बनानेके लिये एक घंटेकी अवधि की कमसे कम आवश्यकता होगी, घरमें पहिले बनाया हुआ तो अर्पण करना नहीं है, इसलिये कमसे कम एक घंटेका समय इस विधिमें नहीं होता है, क्योंकि यह सब विधि एक दूसरेके पीछेही करनेकी है, इस कारण मानना पड़ता है कि दो चार मिनटोंमें गौ से मधुपर्क बनानेकी कोई विधि अवश्य होगी।

आतिथ्यपूजामें गौ समर्पण आवश्यक है इसमें संदेह नहीं परंतु वह काटकर खानेके लिये नहीं है, प्रत्युत ताजा ताजा दूध दुहकर उस अतिथिको देनेके लिये ही है। यदि पाठक पूर्वोक्त मधुपर्क विधिका विचार करेंगे तो उनको पता लग जायगा कि पूजामें ही गौ लाकर उसका दूध निकाल कर गर्म गर्म ही अतिथिको पिलाना पांच मिनिटोंमें भी संभवनीय है। वैदिक कालमें "वशा गौ" प्रसिद्ध थी। ये गौवें दिनमें जितनी वार चाहे दूध देती थीं, और जो चाहे उनका दूध निकाल सकता था। इसीलिये इसको "माता" कहा जाता था। जिस प्रकार बच्चा माताके पास जाता है उसी प्रकार लोग "वशा गो" के पास जाते थे। यहां यह वैदिक समयकी रीति ध्यानसे देखनी चाहिये।

अब मधुपर्कके विषयमें देखिये। पूजाके बीचमें गौ लाई जाती है, वहींका वहीं उससे दूध निकाला जाता है। गर्म गर्म अतिथिके सन्मुख प्रेमसे रखा जाता है, साथ साथ दही, घी, मधु, मिश्री ये चार पदार्थ भी दिये जाते हैं- मधुपर्क के लिये इन पांच पदार्थोंकी आवश्यकता है। दूध, दही, घी, मधु, (शहद) मिश्री इन पांच पदार्थोंका मिलकर नाम मधुपर्क है। दही-घी-मधु-मिश्री ये चार पदार्थ गृहस्थोंके घरमें सदा रहते ही हैं, (आजकलके बीसवी सदीको यूरोपीय सभ्यतासे रंगे हुए, घरमें चाय रखनेवाले पाठक क्षमा करें, उनके घरोंमें येही चीजें दुष्प्राप्य होंगी यह हमें पता है) वैदिक कालमें उक्त पदार्थ गृहस्थीके

घरमें सदा रहते ही थे। अतिथि आतेही ताजा दूध दुहकर उसके साथ उक्त पदार्थ एक-कटोरीमें सुवर्णकी कटोरीमें-मिलाकर रखे जाते थे। अतिथि सुवर्ण चमससे या अपनी अंगुलियोंसे मधुपर्क खाता था और उसपर ताजा दूध पीता था। आजकल इस धार्मिक मधुपर्कके स्थानपर चाय आ बैठी है यह भारतीयोंको दूध पीनेकी आज्ञा नहीं देती है!!! अस्तु।

> दधिसर्पिः पयः क्षौद्रं सिता चैतैश्च पञ्चभि
> प्रोच्यते मधुपर्कः।

" दही, घी, दूध, मधु, (शहद) मिश्री इन पांचोंका मधुपर्क होता है।" दूधके स्थानपर दूधके अभावमें पानी भी आजकल वर्ता जाता है। पाठक विचार करें कि ऐसे पवित्र मधुपर्क में मांसकी संभावना कैसे हो सकती है।

(१२) और आपत्ति।

हमें स्वयं इस बातका पूरा पता नहीं है क्योंकि हमारे घरानेमें किसीने भी कभी मांसका स्वाद लिया नहीं है, केवल शाकभोज ही हम करते है। तथापि हमने अपने मांसाहारी परिचितोंसे मालूम किया जिससे हमें पता लगा कि मांसका कोई पदार्थ मधु (शहद) या मिश्रीसे बनता नहीं। जो भी पदार्थ मांससे बनते हैं सबके सब नमकीन तथा मिरच वाले बनते हैं। यदि यह सत्य बात है तो मधुपर्क मांसके साथ कैसे बन सकता है? क्योंकि यह " मधु-पर्क " है अर्थात् (मधु) शहदसे (पर्क) मिश्रित मीठा खाद्य है।" शहद या मिश्रीसे मिश्रित करके मांसका कोई पदार्थ बनता नहीं है, मांसका मिश्रण नमकीन मिर्चे मसालोंके साथ बनता है।

पाठक विचार कर सकते है और निश्चय कर सकते है कि मधुर मीठा पेय- जिसमें मधु और मिश्री मिलाई हो- मांससे बन सकते है या नहीं। इस विषयमें हमारा यह कथन यदि असत्य भी सिद्ध हुआ तब भी हमारी कोई हानि नहीं है, क्योंकि मधुपर्कमें गोमांस या साधारण मांसका होना वेद मंत्रोंसे सिद्ध नहीं होता, यह हमने इससे पूर्व बताया ही है। इसलिये यह बात सिद्ध होने या न होने पर हमारे सिद्धांतकी स्थिति या अस्थिति निर्भर नहीं है। परंतु इस बातका बोझ उनपर है कि जो कहते हैं कि मधु-पर्कमें मांस आवश्यक है। अपना मत वेद मन्त्रोंसे सिद्ध करें अन्यथा निर्मांस मधुपर्क वैदिक समयमें होनेका स्वीकार करें।

कइयोंका कथन है कि चूंकि उत्तर रामचरित नाटकमें आतिथ्य सत्कारमें वशिष्ठके गोमांस खानेका उल्लेख है इस लिये आतिथ्यके समय किये जानेवाले मधुपर्कमें गोमांस अवश्य पडता था। उत्तररामचरितका उल्लेख हम भी जानते है, उत्तररामचरित नाटकका काल अति आधुनिक है, उस समयके नाटक लेखकोंका ख्याल होगा कि मधुपर्कमें गोमांस आवश्यक है, परंतु क्या नाटकके उल्लेख के लिये वैदिक समयको उत्तरदायी समझा जा सकता है? नाटकका काल और वैदिक समयमें कितना बडा अंतर है? क्या यह अंतर कभी भूला जा सकता है? और नाटककी बातें वेदपर मढनेका प्रयत्न यदि विद्वान लोग करने लगे तो वैसा और दूसरा अनर्थ कौनसा हो सकता है। ऐसे भयंकर अनुमान करनेवालोंसे वेदकी रक्षा परमात्माही करे। हमारे ख्याल में यहां बडा भारी काल विपर्ययदोष (anachronism) है और बडे विद्वानोंको ऐसे दोषयुक्त मत प्रकाशित करनेसे पूर्व बडा विचार करना चाहिये। सारांश यह है कि नाटक का वचन वैदिक पद्धतिके सिद्ध करनेके लिये प्रमाण मानना अशक्य है।

नाऽमांसो मधुपर्को भवति

ऐसे सूत्रग्रंथोंके वचन भी तत्कालीन आचार पद्धतिके द्योतक हैं। जिस समय ये सूत्रग्रंथ लिखे गये और ये नाटक रचे गये उस समय मांसका प्रचार होनेसे, या उससे पूर्व कालमें मांसका प्रयोग होनेसे इन ग्रंथोंमें ऐसे वचन आते हैं। इन वचनोंसे अधिकसे अधिक यह सिद्ध हो सकता है कि इन ग्रंथोंके समय या इनके पूर्व कालमें इस प्रकारकी प्रथा थी, परंतु इससे यह कदापि सिद्ध नहीं होगा कि अति प्राचीन वैदिक कालमें भी मांसमय मधुपर्क की प्रथा थी अथवा गोमांसभक्षण भी प्रचलित था। यह बात सिद्ध करनेके लिये वेदके छंदोबद्ध मंत्रभागसेही प्रमाण वचन मिलने चाहिये। किसी दूसरे प्रकारसे यह बात कभी सिद्ध नहीं हो सकती।

(१३) कलिवर्ज्य प्रकरण।

इनका कथन है कि " कलिवर्ज्य प्रकरण " में " अश्व-मेध, गोमेध " आदिका निषेध किया है इसलिये इस

निषेधके पूर्व अश्वमेध और गोमेध होता था। और अश्वमेधमें घोडेका मांस और गोमेधमें गायका मांस खाया जाता था।

यहां प्रश्न होता है कि यह कलिवर्ज्य प्रकरण किसने लिखा? और किस ग्रंथमें लिखा है? क्या माननीय प्रमाण ग्रंथमें इस वचनका अस्तित्व है? जो माननीय प्रमाणभूत स्मृतिग्रंथ हैं उनमें यह वचन नहीं है, इसलिये ऐसे कपोल-कल्पित प्रकरणसे कोई विशेष प्रबल अनुमान नहीं हो सकता है।

दूसरी बात यह है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरणका समय निश्चित हो जानेसे सब बात स्पष्ट हो जाती है। हमारे विचारसे कलिवर्ज्य प्रकरण सात आठसौ वर्षके अन्दर अन्दर का है। इसलिये इसके बलसे उसके पूर्वके समयके आचारका नियमन नहीं हो सकता है। यहां भी पूर्वकथित काल-विपर्यय दोष आ सकता है।

इसके अतिरिक्त यदि माना भी जाय कि कलिवर्ज्य प्रकरणमें अश्वमेध और गोमेधका निषेध है इससे अश्वमेध या गोमेधकी वैदिक रीतिका पता नहीं लग सकता है इससे इतनाही सिद्ध हो सकता है कि इस कलिवर्ज्य प्रकरणके लिखे जानेके पूर्व ये दो मांस यज्ञ प्रचलित थे।

यज्ञोंमें वेदमंत्रों के समय के यज्ञों की अपेक्षा ब्राह्मण और सूत्रग्रंथोंके यज्ञोंमें बहुत बातें बढ गई हैं। जो बातें मंत्रसंहिताओंके यज्ञोंमें न थीं वे बातें उनमें आके घुस गई हैं, कारण यह है कि पूर्वकालमें पशुओंका मांस नहीं बर्ता जाता और उत्तर वेदीके हवनमें अर्थात् पीछे घुसे हुए यज्ञकर्ममें मांसका हवन किया जाता है। यह आजकलको या यज्ञप्रयोगके पुस्तक जिस समय लिखे गये उस समयकी प्रथा है। वैदिक प्रथा वो नहीं है कि जो इस्तेमाल ब्राह्मणभागमें बताई है। इसलिये हम यहां प्रश्न पूछते हैं कि कौनसे वेदमन्त्रसे यह बात सिद्ध होती है कि वैदिक गोमेधमें गौकी हिंसा की जाती थी? यदि वेद का एक भी मंत्र हो तो उसे सामने करें। प्रमाणके बिना माननेके दिन अब बीत चुके हैं। हमें पता है कि बहुतसे विद्वान् इस समय मानते हैं, कि गोमेधमें गौकी हिंसा की जाती थी। परंतु यहां विद्वान् मानते हैं, या अविद्वान् मानते हैं यह प्रश्न नहीं है। वेदमन्त्रोंमें किस बातके प्रमाण-वचन मिलते हैं, और किस बातके प्रमाण वचन नहीं मिलते, यही प्रश्न यहां है और इसीका विचार हमें करना है।

(१४) बृहदारण्यकका वचन।

बृहदारण्यकमें सुप्रजा जननके प्रकरणमें निम्नलिखित वचन है, कहा जाता है कि इसमें बैल या गौके मांस खानेका उल्लेख है। हम पाठकोंके विचारार्थ वह वचन यहां धर देते हैं—

अथ य इच्छेत्पुत्रो मे पण्डितो विगीतः समिति-
गमः शुश्रूषितां वाचं भाषिता जायेत सर्वा-
न्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति मांसौदनं
पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जन-
यितवा औक्षेण वार्षभेण वा ॥

(श० ब्रा० १४।७।५।१८, बृ० उ० ६।४।१८)

"जिसको इच्छा हो कि अपना पुत्र बडा पंडित, सभामें जानेवाला, बडा उत्तम वक्ता, सब वेदोंका प्रवचन करनेवाला पूर्णायु हो, तो वह मांस चावल पकाकर घीके साथ खावे, उक्षाके या ऋषभके मांसके साथ पकावे॥"

यहां "मांसौदन" शब्द है और "उक्षा और ऋषभ" ये शब्द भी हैं। इससे ये लोग अनुमान करते हैं कि मांस खानेसे चार वेदोंका वक्ता पुत्र उत्पन्न हो सकता है।

यदि यह बात सच होती तो सब गोमांस खानेवाले वेदवेत्ता ही लोग निर्माण होते। परन्तु ऐसा दिखाई नहीं देता, इसलिये इसके अर्थका विचार करना चाहिये। इसका विचार प्रकरणसेही हो सकता है, इसलिये यह प्रकरण देखिये—

य इच्छेत्पुत्रो मे शुक्लो जायेत वेदमनुब्रुवीत
सर्वमायुरियादिति क्षीरौदनं पाचयित्वा
सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १४ ॥ य इच्छे-
त्पुत्रो मे कपिलः पिङ्गलो जायेत द्वौ वेदा-
वनुब्रुवीत सर्वमायुरियादिति दध्योदनं
पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १५ ॥
अथ य इच्छेत्पुत्रो मे श्यामो लोहिताक्षो
जायेत त्रीन्वेदाननुब्रुवीत सर्वमायुरियादित्यु-
दौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० १६

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताम्० ॥ १७ ॥

(श० ब्रा० १४।७।५।१४-१७, बृ० उ० ६।४।१४-१७)

इसका अर्थ यह है (१) गौर वर्ण पूर्णायु एकवेद जाननेवाले पुत्रकी इच्छा हो तो दूध चावल पकाकर घी के साथ खावें० ॥ (२) भूरे वर्णवाले दो वेदोंके जाननेवाले पूर्णायु पुत्रकी इच्छा हो तो दही चावल पकाकर घीके साथ खावें० ॥ (३) काले वर्णवाले, लाल नेत्रवाले तीन वेद जाननेवाले पुत्रकी इच्छा हो तो पानीमें पके चावल पकाकर घीके साथ खावें ॥ (४) पुत्री पण्डिता और पूर्ण आयुवाली होनेकी इच्छा हो तो तिल चावलोंकी खिचड़ी बनाकर घीके साथ खावें ॥

इसके बाद का वचन वह है जिसमें मांसका उल्लेख है, 'यदि चार वेद जाननेवाला पंडित, वक्ता, दीर्घायु पुत्र होनेकी इच्छा हो तो मांसचावल पकाकर घीके साथ खावे, मांस बैलका हो।' अस्तु। इसका फलित यह है—

एकवेदके ज्ञानी पुत्रके लिये	दूधचावल	घीसे	खावे
दो "	" "	दही "	"	"
तीन "	" "	पानी "	"	"
पंडिता पुत्रीके लिये		तिलचावल		"
चार वेदज्ञानी पुत्रके लिये		गोमांस चावल		"

एक वेदके लिये दूध-चावल बस है, दो वेदोंके लिये दही चावल पर्याप्त है, तीन वेदोंके लिये पतले चावल पानीमें पके बस हैं, फिर चार वेदोंके लिये एकदम "गोमांसमें पके चावल" क्यों आवश्यक है?

यदि मांसका भोजनकी ही यहां अभीष्ट होता तो भेड़ बकरी आदि पशुओंका उल्लेख इससे पूर्व आना आवश्यक था। पर वैसा नहीं है। इसलिये यहां कुछ पूर्वके अनुकूलही शाकाहारका पदार्थ आवश्यक है ऐसा स्पष्ट पता लगता है। यदि भेड़ बकरी क्रमसे गोमांसपर गिनती होती तो मांसवालोंका पक्ष अटूट होता। परंतु यहां पूर्वापर क्रम शाकाहारका पर्याप्त होता है और चौथे वेदके लिये एकदम गोमांसपर छलांग कूद पड़ा है। जहां ब्राह्मणग्रन्थोंमें यज्ञिय पशुओंका उल्लेख है वहां मनुष्य, घोड़ा, गाय, बकरी, भेड यह क्रम है, भेड बकरीके बाद यज्ञिय पदार्थ धान्य गिना है। इसी क्रमसे यदि इस बृहदारण्यक वचनमें क्रम होता तो शाकभोजी लोगोंका मुंह बंद हो जाता। परंतु यहां तीन वेदोंतक शाकाहार पर्याप्त माना है और चतुर्थ वेदके लिये एकदम गोमांस आवश्यक माना है, यह बहुत दूरकी छलांग है।

जो यूरोपके लोग प्रत्येक वेदके "उत्पत्तिका समय" अलग अलग मानते हैं उनके लिये यहां एक बड़ीही आपत्ति आ जाती है। एक, दो और तीन वेदका तात्पर्य यदि हम ऋग्वेद, ऋग्यजुर्वेद और ऋग्यजु सामवेद लें, तो इन तीन वेदोंके ज्ञानके लिये मांसकी कोई आवश्यकता नहीं, और केवल चतुर्थ वेद अर्थात् अथर्ववेदके लियेही गोमांस की आवश्यकता उक्त वाक्यमें बताई है। युरोपियनोंके मतसे ऋग्वेद सबसे पुराना और अथर्व सबसे नवीन है। अर्थात् उनकीही युक्तिसे वेदत्रयीके लिये दूधचावल या दहीचावल बस है और नवीन अथर्ववेदके लिये गोमांस आया है। इससे यदि कोई कहे कि वैदिक कालमें भी प्राचीन अर्वाचीन भेद किया जाय, तो प्राचीन वैदिक समयमें मांस न था, अर्वाचीन समयमें मांस प्रचलित हुआ। युरोपियनोंकी युक्तियां इस प्रकार उनकेही विरुद्ध होती हैं। हम तो मानतेही हैं कि किसी भी वैदिक कालमें मांस भोजनकी प्रथा शिष्टसंमत नहीं थी। परंतु यहां यूरोपियनोंकी मानी हुई बातें मानकर ही उक्त शतपथके वचनका आशय देखा जाय, तो वह उनके मतके विरुद्ध जाता है और आदि वैदिक कालमें मांसभोजन नहीं था यह सिद्ध होता है। परंतु इस विषयको बढानेकी हमें आवश्यकता नहीं है, क्योंकि हमें पूर्वापर संबंधसे गोमांसकी आवश्यकता यहां है या नहीं, यही देखना है। प्रथम देखनेसे पता लगता है कि यहां मांसकी आवश्यकता नहीं है, इसका हेतु यह है—

पूर्वोक्त बृहदारण्यक उपनिषद्के वचनमें "औक्षेण वार्षभेण वा" ऐसा अंतिम वचन है। इस वचनमें "उक्षा और ऋषभ" ये दो शब्द हैं। संस्कृतमें इन दोनों शब्दों का एक ही "बैल" ऐसा अर्थ है। यदि दोनों शब्दोंका एकही अर्थ है तो बीचके "वा" शब्दकी आवश्यकता क्या है? उपनिषत्कारको "उक्षा" शब्दसे भिन्न पदार्थ

बताना है और " ऋषभ " शब्दसे भिन्न पदार्थ बताया है। यह भिन्नता वैद्यशास्त्रग्रंथ देखनेसे स्पष्ट हो जाती है---

(१) उक्षा = सोम औषधि

(२) ऋषभः = ऋषभक ,,

य वैद्यकके अर्थ लेनेपरही यहांके "वा (व)" शब्द की ठीक संगति लग सकती है। ये दोनों औषधियां बलवर्धक, वीर्य-उत्पादक और प्रजानिर्माणशक्ति की वृद्धि करनेवाली हैं, वाजीकरणकी औषधियोंमें इनका प्रमुख स्थान है। ऋषभकका वर्णन यह है --

जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृंगवत्।
जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ॥

(भाव प्र० १)

" हिमालयपर ऋषभक वनस्पति होती है। यह बैलके सींगके समान आकारवाली होती है। यह बल बढानेवाली और वीर्य बढानेवाली है। " जितने बलवाचक शब्द हैं उतने सब इस वनस्पतिके वाचक हैं। उक्षा का अर्थ सोम है यह बात हरएक कोशमें प्रसिद्ध है। ये दो वनस्पतियां परस्परभिन्न हैं, वीर्यवर्धक हैं, वाजीकरण-प्रयोगमें प्रयुक्त होती हैं, इनका स्वतन्त्र प्रयोग भी वाजीकरणमें किया जाता

अब पाठक यहां देखें कि हीन वेदोंके जानकार पुत्र पैदा करनेके लिये, दूधचावल, दहीचावल, पतले चावल और घी खानेको कहा, और चार वेद जाननेवाला सभामें विजयी पुत्र पैदा करनेके लिये ऋषभक औषधिके स्वरसके अथवा सोम औषधिके रसके साथ चावल पकाकर घीके साथ खानेका उपदेश किया, यह अर्थ प्रकरणके साथ लगता है और मांसमें इतनी छलांग मारनेका दोष भी नहीं

मांस शब्द संस्कृतमें जिस प्रकार शरीरके मांसका वाचक है, उसी प्रकार फलोंके गूदेका वाचक और वनस्पतियोंके घन स्वरस का भी वाचक प्रसिद्ध है। श्री. वा आपटे के कोशमें (The Fleshy part of a fruit) अर्थात् फलका गूदा यह मांस शब्दका अर्थ दिया है। यह अर्थ सब कोशकारोंको सम्मत है। ऋषभक वनस्पति वाजीकरण की औषधि है और वीर्यवर्धक भी है, इसलिये पुत्रोत्पत्ति प्रकरणके साथ यह अर्थ विशेष ही संगत होता है। जिस प्रकार इन औषधियोंका प्रयोग वाजीकरण वीर्यवर्धन आदिमें होता है। उस प्रकार मांस या गोमांसका स्थान होने की बात आयुर्वेदमें तो नहीं है।

इसके अतिरिक्त बृहदारण्यक उपनिषद् अध्यात्मविद्या का ग्रंथ है, इस ग्रंथद्वारा सर्वात्मभाव, अर्थात् भूतमात्रमें सर्वत्र आत्मभाव होनेके पश्चात् वह आत्मज्ञानी पुत्र सुप्रजानिर्माणके लिये गौको काटकर उसका मांस खायेगा यह असंभव बात है। आत्मज्ञान होनेके पश्चात् सुप्रजानिर्माण करना तो वैदिकतत्त्वज्ञान की दृष्टिसे संगत महत्त्व की बात है, जनकसे सुसंस्कारसंपन्न संतान उत्पन्न करनेकी यही रीति है। इसलिये मांसभक्षण जैसे कार्य ... अध्यात्मज्ञानीके लिये असंगत प्रतीत होती है। अतः पूर्व स्थलमें बताया हुआ वनस्पति विषयक अर्थ ही यहां लेना युक्तियुक्त है ऐसा हमारा विचार है।

यदि वेदमें गोमांस खानेकी आज्ञा होती तो और बात बन जाती। परन्तु वेदमें गौको इतना पवित्र माना है कि उसको ' अघ्न्य ' ही समझा है। इसलिये गोमांस-भक्षणकी कल्पना ही वैदिक सिद्धान्तके प्रतिकूल सिद्ध हो जाती है। इसलिये इस उपनिषद्वचनका वैदिक धर्मके अनुकूल अर्थ करना हो तो वनस्पतिविषयक ही अर्थ करना चाहिए, अन्यथा वह विरुद्धार्थ बन जायगा।

(१८) गोमेधका विचार।

बहुतसे लोगोंकी यह सम्मति है कि वैदिक समयके गोमेधमें गायकी हिंसा अवश्य होती थी। कलियुगमें गोमेध करनेका कलिवर्ज्य प्रकरणमें कहा निषेध उसकी सिद्धताके लिये बताते हैं। परन्तु ये लोग एक बात सिद्ध भूल जाते हैं कि पारसी लोगोंके जेंदावेस्ता नामक धर्मपुस्तकमें जो " गोमेज यज्ञ " वैदिक गोमेधके सदृश है, उसमें गौकी हिंसा बिल्कुल नहीं और उसके सोमयागमें भी हिंसा नहीं होती, केवल सोमवल्लीके रसका उपयोग किया जाता है। यूरोपियन लोग तुलनात्मक विचार करते हुए, परन्तु जिस समय तुलनात्मक विचारसे अहिंसा सिद्ध होती है उस समय उस विचारको वे छोड देते हैं। यदि पारसियोंका गोमेज गोवधके बिना बन सकता है तो

वैदिक धर्मोंका मानना क्यों नहीं बन सकता ?

"गोमेध" के लिये हिंसाका अवलंबन करनेकी आवश्यकता बिलकुल नहीं है, उदाहरणके लिये हम "गृहमेध, पितृमेध" शब्द सामने रख सकते हैं। पितृमेधमें जैसा पिताका सत्कार करना है और पिताके मांसके हवन की आवश्यकता नहीं होती, गृहमेधमें जिस प्रकार घरके आरोग्य रक्षण का तथा शुद्धि विचार माना जाता है, उसी प्रकार "गोमेध" में गौका सत्कार करना और उसके आरोग्यादिका विचार होना स्वाभाविक ही है। मनु भी कहते हैं—

> अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।
> होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥
> (मनुस्मृति ३।७०)

"विद्या पढ़ाना ब्रह्मयज्ञ है, माता-पिताओंको संतुष्ट रखना पितृयज्ञ है, होम-हवन, देवयज्ञ है, कृमि कीटकोंके लिये अन्नका समर्पण करना भूतयज्ञ है और नरमेध अतिथि सत्कार है।"

पितृमेध, गृहमेध ये शब्द सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इसी प्रकार नरमेध, अश्वमेध और गोमेध हैं। इनकी प्रसिद्धि आज होनेपर भी विद्वान् लोग जानते हैं कि गोमेधमें गायका बलि दिया जाता था। इसलिये इस बात का विचार विस्तारसे करना चाहिये—

(१६) यज्ञवाचक नाम।

यज्ञवाचक नामोंमें "अध्वर" शब्द है इसका अर्थ ही "अ-हिंसा" है, "ध्वर" शब्द हिंसावाचक है (ध्वरति हिंसा कर्मा ध्वर तत्प्रतिषेधः अध्वर,)। उसका निषेध अध्वर शब्दने किया है। यज्ञके नामोंमें अहिंसावाचक 'अध्वर' शब्दका होना सिद्ध कर रहा है कि यज्ञ मेध आदिमें किसी भी प्रकार हिंसा होना उचित नहीं है। "मेध" (मेधृ हिंसा-संगमयोः च) शब्दके तीन अर्थ हैं, "बुद्धिवर्धन, संगतिकरण और हिंसा" मेध शब्दमें हिंसाकी बू है, परन्तु "वर्धन और मिलाना" भी है। अर्थात् "गो-मेध" का शब्दार्थ होगा = (१) गोसंवर्धन (२) गोसंगतिकरण और (३) गोहिंसन। पाठक ही विचार करें कि तीन अर्थोंमें से गोमेधमें कौनसा अर्थ लिया जा सकता है। अहिंसावाचक "अध्वर" शब्दके साहचर्यसे गोहिंसन अर्थ दूर और करना पड़ता है और शेष दो अर्थ स्थानपर रह जाते हैं। गौकी पालना, गौओंको बढ़ाना और गौसे अच्छे बच्चे पैदा करना "Cow Breading" का तात्पर्य यही गोसंगतिकरण है। गोमेधमें ये सब बातें आती हैं और गोवध नहीं आता, यह यज्ञके नामोंका विचार करनेसे ही सिद्ध हो सकता है तथापि विचार की पूर्णताके लिये यहां गौके नामोंका भी विचार करते हैं—

(१७) गौके वैदिक नाम।

वैदिक कोश निघण्टुमें गायके नौ नाम दिये हैं उनमें निम्नलिखित तीन नाम अहिंसार्थक हैं—

१ अघ्न्या (अ-घ्न्या)=हनन करने अयोग्य। अहन्तव्य।
२ अही (अ-ही) = ,, ,, ,, ,,
३ अदिति (अ-दिति)=टुकड़े ,, ,, (अखंडनीया)

ये तीनों नाम गौकी हिंसा नहीं होनी चाहिये यह बात स्पष्ट रीतिसे बता रहे हैं। पहिले यज्ञके नामोंमें अहिंसा बताई, अब गौके नामोंमें भी वही अहिंसा है। गौके नाम स्वयं अपने निज अर्थसे बता रहे हैं कि गौ पवित्र है इसलिये उसकी कभी हिंसा नहीं होनी चाहिये। यही अर्थ प्रमाण मानकर महाभारतमें निम्न श्लोक लिखा है—

> अघ्न्या इति गवां नाम क एता हन्तुमर्हति
> महच्चकाराकुशलं वृषं गां वाऽऽलभन्तु यः ॥
> (म. भा. शान्ति० अ० २६३)

"अहो! गौओंका नामही अघ्न्या है अर्थात् गौ हिंसा करनेयोग्य नहीं है, फिर इन गौओंको कौन काट सकता है? जो लोग गौको या बैलको मारते हैं वे बड़ा अयोग्य कर्म करते हैं।"

(१८) चरककी साक्षी।

गोमेधके विषयमें वैद्यक ग्रंथकी चरकसंहितासे निम्नलिखित पंक्तियां लिखी हैं—

> आदिकाले खलु यज्ञेषु पशवः समालम्भनीया बभूवुः नारम्भाय प्रक्रियन्ते स्म। ततो दक्षयज्ञप्रत्यवरकालं मनोः पुत्राणां नरिष्यन्नाभाकेक्ष्वाकुनृगशर्यातीनां च क्रतुषु पशूनामेवाभ्यनुज्ञानात्पशवः प्रोक्षणमापुः। अतश्च प्रत्यवरकाल पृषध्रेण दीर्घसत्रेण यजमानेन

पशूनामलाभाद्गवामालम्भः प्रावर्तित । त दृष्ट्वा प्रव्यथिता भूतगणा । तेषां चोपयोगा दुपकृतानां गवां गौरवादौष्ण्यादसात्म्यादश स्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसामती- सार पूर्वमुत्पन्नः पृषध्रयज्ञे ॥

(चरक चिकित्सा० अ० १९)

" आदिकालमें सचमुच गौ आदि पशुओंको यज्ञोंमें सुशोभित किया जाता था, उनका वध नहीं होता था। पश्चात् दक्षयज्ञके नंतर नरिष्यन्, नाभाक, इक्ष्वाकु तथा कुविश्वदर्य आदि मनुके पुत्रोंके यज्ञोंमें पशुओंका प्रोक्षण होने लगा। इसके बाद बहुत समय व्यतीत होनेपर राजा पृषध्रने जब दीर्घ सत्र शुरू किया और अन्य पशु न मिलने लगे तब अन्य पशुओंके अभावमें गौओंका आलम्भन शुरू किया गौओंकी यह दशा देखकर सब प्राणिमात्रको बडा कष्ट हुआ। गौओंका मांस भारी, उष्ण और अस्वाभाविक होनेके कारण उस समय लोगोंकी अग्नि और बुद्धि शक्ति भी मन्द हो गई और अग्नि मंद होनेके कारण इसी पृषध्रके यज्ञसे गोवधसे अतिसार रोग उत्पन्न हुआ।

पाठक इस चरकाचार्यके कथनका खूब मनन करें। इस में यज्ञकी तीन अवस्थाएं बताई है—

(१) पहिले समयमें यज्ञोंमें पशुवध नहीं होता था, प्रत्युत गौ आदि पशुओंको यज्ञोंमें सुशोभित करके सत्कार से रखा जाता था,

(२) दूसरे समयमें अर्थात् उसके बादके समयमें मनु के पुत्रोंने पशुओंका यज्ञमें प्रोक्षण करनेकी रीति चलाई,

(३) पश्चात् तीसरे समयमें पृषध्रने सबसे प्रथम यज्ञ में गौका वध किया, परंतु इसका सबने निषेध किया। जिन्होंने इस यज्ञमें गोमांस खाया उनको अतिसार रोग हुआ, और तबसे अतिसार सब लोगोंको सताता रहा है।

इससे यह सिद्ध होता है कि अति प्राचीन वैदिक काल में निर्मांस यज्ञ होते थे, मध्य कालसे समांस यज्ञ शुरू हुए परंतु इस कालमें भी गौ मारी नहीं जाती थी, पश्चात् बहुत आधुनिक कालमें यज्ञमें गोवध शुरू किया परंतु इसके विरुद्ध सब जनता हुई और गोवध जहां हुआ वहांसे अतिसार रोग शुरू हुआ। हमारी यह संमति है कि यज्ञमें गोवध बहुत दिनतक चला न होगा, पृषध्रके समय शुरू हुआ, लोगोंको भी वह पसंद न हुआ और रोग भी फैलाय, इस लिये फिर किसीने यह दुष्कर्म किया ही न होगा। तात्पर्य प्राचीन कालके यज्ञोंमें न पशुवध होता था और नहीं गोवध होता था। जिसने किया उसने बहुत अच्छी प्रकार उसका फल भोगा और उससे शुरू हुआ अतिसार रोग अब भी जनताको कष्ट दे रहा है। एक वार ऐसा भयानक अनुभव देखनेके पश्चात् ऐसा कुकर्म कौन भद्र पुरुष फिर करेगा ?

चरकाचार्यके बताये तीन कालके हवनके तीन प्रकार और हमने इसी लेखमें इससे पूर्व नरमेधकी और यज्ञकी रचनाके प्रकरणोंमें बताये विभाग, इनकी परस्पर तुलना पाठक करें और अतिप्राचीन आदि वैदिक कालमें निर्मांस यज्ञकी प्रथा होनेका अनुभव देखें। सब बातें भिन्नभिन्न प्रमाणोंका विचार करनेके बाद यदि एक ही रूपसे दिखाई देने लगीं, तो वही निश्चित सत्य है, ऐसा मानना योग्य है।

(१९) लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया।

वेदमंत्रोंमें कई ऐसे मंत्र है कि जहां शब्दार्थसे कुछ तात्पर्य और प्रतीत होता है उदाहरणके लिये देखिये—

गोभिः श्रीणीत मत्सरम्।

(ऋ० ९।४६।४)

इसका शब्दार्थ यह है— " (गोभि) गौओंके साथ (मत्सर) सोम (श्रीणीत) पकाओ। " ऐसे मंत्र देखकर लोग भ्रममें पडते है कि यह गोमांसके साथ सोम पकानेकी या मिलानेकी आज्ञा है। परंतु यह व्याकरणके अज्ञानके कारण भ्रम उत्पन्न होता है। व्याकरणके तद्धित-प्रत्ययके साथ अच्छा परिचय हुआ तो यह भ्रम नहीं हो सकता, इस विषयमें श्री० यास्काचार्यका कथन देखिये —

अथाप्यस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति " गोभिः श्रीणीत मत्सरमिति " पयसः।

(निरुक्त २।५)

" तद्धित प्रत्यय होनेके समान अंशके लिये संपूर्णका प्रयोग किया जाता है, उदाहरण ' गोभिः श्रीणीत मत्सरं ' इसमें ' गो ' शब्दका अर्थ ' दूध ' है। " इसी विषयमें यास्काचार्यका और कथन सुननेयोग्य है—

"अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि" इत्यधिषवणचर्मणः। अथापि चर्म च श्लेष्मा च "गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व" इति रथस्तुतिः। अथापि स्नाव च श्लेष्मा च "गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता" इतीषुस्तुतिः ॥ १ ॥ २ ॥ ज्याऽपि गौरुच्यते। गव्या चेत्ताद्धितम्, अथ चेन्न गव्या गमयतीषून् इति। "वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्रपतान् पूरुषादः।"
(निरुक्त. २।५)

इस वचनमें वेदके तीन मन्त्र देकर श्री० यास्काचार्यजीने बताया है कि "चर्म, सरेस, तांत तथा धनुषकी डोरी" इतने अर्थ 'गो' शब्दके हैं अर्थात् यहां अंशके लिये संपूर्णका प्रयोग किया है।

आंख देखता है ऐसा कहनेके स्थानपर मनुष्य देखता है ऐसा सब बोलते ही हैं, इसी प्रकार गौसे उत्पन्न होनेवाले दूध, दही, घी, चर्म, सरेस, मांस और तांतकी बनी डोरी आदि सब पदार्थोंके लिये वेदमें एक ही "गो" शब्दका प्रयोग हुआ है। ऐसे प्रसंगोंमें पूर्वापर संबंधसे ही अर्थ करना चाहिये। पाठकोंकी सुविधाके लिये यहां हम इनके एक एक उदाहरण देते हैं

अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि।
(ऋ० १०।९४।९)

"(अंशुं) सोमका रस (दुहन्तः) दोहन करते हुए (गवि) चर्मपर (अध्यासते) बैठते हैं।" यज्ञकी विधि जिन्होंने देखी है उनको पता है कि चर्मपर सोम रखा जाता है और पश्चात् रस निकाला जाता है। इसलिये यहां "गवि" शब्दका अर्थ "चर्मपर" ऐसा है, "गायमें" ऐसा अर्थ नहीं। और देखिये—

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः। गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥ (ऋ. ६।४७।२६)

"हे (वनस्पते) वृक्षसे बने हुए रथ! तू (वीड्वङ्गः) दृढ अवयवोंवाला हमारा सहायक (प्रतरणः) पार ले जानेवाला और सुवीरोंसे युक्त हो। तू (गोभिः सन्नद्धः) चर्मकी रस्सियोंसे बांधा हुआ (वीळयस्व) वीरता दिखा, (आस्थाता) तेरे अंदर बैठनेवाला (जेत्वानि जयतु) जीतने योग्य शत्रुको जीते।"

इस मन्त्रमें अंशके लिये पूर्णका प्रयोग करनेके दो उदाहरण हैं— (१) "गो" शब्द चमडेकी डोरीका वाचक है, और (२) "वनस्पति" (वृक्ष) शब्द वृक्षसे बने हुए रथका वाचक है। जिस प्रकार वृक्षसे लकडी और लकडीसे रथ बनता है, उसी प्रकार गौसे चमडा और चमडेसे डोरी बनती है। इसी प्रकार गौसे दूध, दूधसे दही, दहीसे मक्खन और मक्खनसे घी बनता है, और इस कारण ही इन सब पदार्थोंके लिये "गो" शब्द प्रयुक्त होता है। अब और दूसरा उदाहरण देखिये—

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो
गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ॥
(ऋ० ६।७५।११)

"यह बाण (सु-पर्ण) उत्तम परोंसे (वस्ते) युक्त है, इसकी (दन्तः मृगः) नोक मृगकी हड्डीकी बनी है और यह (गोभिः सन्नद्धा) गोचर्मके बने बारीक धागोंसे अच्छी प्रकार बांधा है यह (प्रसूता) धनुष्यसे छूटा हुआ शत्रुपर (पतति) गिरता है।"

इस मन्त्रमें भी अंशके लिये पूर्णका प्रयोग होनेके दो उदाहरण हैं। एक "मृग" शब्द मृगकी अर्थात् हरणकी हड्डीका वाचक है। मृगकी हड्डी कहनेके स्थानपर केवल "मृग" ही कहा है। इसी प्रकार आगे जाकर चर्मसे बनी डोरियोंका वाचक शब्द "गोभिः" है। यह शब्द भी गोचर्मकी डोरीके लिये प्रयुक्त हुआ है। इसी प्रकार निम्न मंत्रमें देखिये—

वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः
प्रपतान्पूरुषादः ॥
(ऋ० १०। २७। २२)

(वृक्षे वृक्षे) लकडीसे बने प्रत्येक धनुष्यपर (नियता गौः) तनी हुई गोचर्मकी डोरी-ज्या (अमीमयत्) शब्द करती है (ततः) उससे (पुरुषादः) मनुष्योंको खानेवाले (वयः) पक्षियोंके पर लगे हुए बाण (प्रपतान्) शत्रु पर गिर जाते हैं।

इस मन्त्रमें दो या तीन शब्द अंशके लिये पूर्णका प्रयोग होनेके हैं।

(१) " वृक्ष " शब्द वृक्ष या लकडीसे बने हुए धनुष्य का वाचक है,

(२) " गौ " शब्द गोचर्मसे बने धनुष्यकी डोरीका वाचक है और

(३) " वय " (पक्षी) शब्द उनके पंख लगे बाणों का वाचक है ।

पाठक इतने उदाहरणोंसे समझ गये होंगे कि वेदकी यह शैलीही है कि अंशके लिये पूर्णका प्रयोग हो। यह प्रयोग यदि केवल गौके लियही होता तो कोई कह सकते थे कि यह खींचातानी की बात है, परंतु यहां तो अन्य वस्तुओंके लिये भी ऐसेही प्रयोग है और ढाई सहस्र वर्षोंके पूर्व ये उदाहरण देकर यही बात श्री० यास्काचार्यजीने बताई है । उक्त उदाहरणोंका समीकरण यह है—

१ 'वनस्पति' शब्द उसकी लकडीसे बने रथ के लिये
२ 'वृक्ष' ,, ,, ,, ,, धनुष्य ,,
३ 'गौ' शब्द उससे बने दूध, घी, आदि के ,,
४ ,, ,, ,, ,, चर्म, चर्मपदार्थ ,,
५ ,, ,, उसके चर्मसे बने हुए डोरी, बेग ,,
६ 'मृग' उसकी हड्डीसे बने शस्त्रका द्योतक है
७ 'वय': शब्द उस पक्षीके परोंसे बने बाणोंका वाचक है ।

इस प्रकार अनेक उदाहरण दिये जा सकते है, परंतु यहां हमने उतने ही दिये है कि जितने स्वयं श्री० यास्काचार्यने अपने निरुक्त ग्रंथमें दिये है । इनको देखनेसे पाठकोंका निश्चय हो गया होगा कि यह वैदिक शैली ही है । यह बात यूरोपके विद्वानोंके भी ध्यानमें आगई है और उन्होंने इसका स्वीकार भी किया है और इसलिये म० मेकडॉनेल और कीथ महोदयोंने अपने वैदिक इन्डेक्समें लिखा है कि-

" The term (गो) Go is often applied to express the products of the cow It frequently means the milk, but rarely the flesh of the animal. In many passages it, designates leather used as the material of various objects, as a bow-string or a sling or thongs to fasten part of the chariot or reins, or the lash of a whip (पृ० २३४)

अर्थात् " गो " शब्द गौसे बने हुए पदार्थ बतानेके लिये प्रयुक्त हुआ है । वारवार यह 'गो' शब्द दूधके लिये आता है, क्वचित् पशुके मांसके लिये आता है । कई मंत्रोंमें इस 'गौ' शब्दका अर्थ चर्म है, जिससे धनुष्यकी डोरी, रस्सी, चमडेकी पट्टी, गोफन, लगाम, चाबुक आदि पदार्थ है ।"

इसमें स्पष्ट लिखा है कि गो शब्दका अर्थ दूध, चर्म आदि पदार्थ वेदमें है । उक्त महोदयोंका मत है कि क्वचित् मांस भी अर्थ गो शब्दका होता है, परंतु ऐसे प्रयोग बहुत अल्प है । मांस अर्थ भी हो सकता है क्योंकि वह भी गौका अंशही है, परंतु जब गौ "अघ्न्य (अ-घ्न्या)" कही गई है तो उसके वधसे प्राप्त होनेवाले मांस की संभावना कैसे हो सकती है ? एकवार गौ को अघ्न्य कहा, यज्ञोंके नामों द्वारा अहिंसा (अ-ध्वर) कही, इसके पश्चात् गौके मांसकी प्राप्ति ही नहीं होती । अतः गो शब्दके वे ही अर्थ लेने होंगे कि जो गौका वध करनेके बिना प्राप्त हो सकते हैं, अर्थात् दूध, दही, मक्खन, घी, तथा चर्म तो मृत गौका भी मिल सकता है इसलिये उस चर्मके सब पदार्थ उसके अंतर्भूत हो जाते हैं, गौकी हड्डी भी इसी प्रकार गौ मरनेपर प्राप्त हो सकती है । एक मांस ही ऐसी वस्तु है कि जो हिंसा किये बिना नहीं प्राप्त हो सकती, अतः अघ्न्य गौका मांस वैदिक कालमें खाया जाता था इस विषयके कोई प्रमाण नहीं है ।

(२०) नामधातु " गोपाय " ।

जब एक बात निर्विवाद रीतिसे बहुमान्य और सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है तब उसका शब्द मूलतः न होनेपर भी भाषामें रूढ हो जाता है ।

" गोपायति " क्रिया और " गोपाय " धातु " गोप " शब्दसे संस्कृतमें तथा वेदमें बना है । " गोपायति " का अर्थ " रक्षण करता है " यह है, वास्तविक इसका अर्थ " (गोप इव आचरति) गोपालकके समान आचरण करता है । " यह है । गोपालनकी क्रिया सर्वमान्य और सर्वसम्मत हुए बिना ऐसे नाम धातुका प्रचारमें आना असंभव है ।

" गोपालकके समान आचरणका " अर्थ " संरक्षण " होनेका तात्पर्य यही है कि " गौका संरक्षण " एक सर्वमान्य और निःसंदेह बात है, उसमें शंका नहीं हो सकती,

किसीका इस विषयमें मतभेद नहीं हो सकता । " गुप् " धातु संरक्षण करनेके अर्थमें संस्कृतमें प्रयुक्त होता है और उसके रूप पूर्वोक्त नामधातुके समान " गोपायति " ही होते हैं । गोके संरक्षणका विलक्षण प्रभाव जैसा सर्वसाधारण पर हुआ इस शब्दद्वारा दिखता है, जिसका धातुके बनने और उसके रूप बनने पर भी असर पड़े, ऐसा कोई अन्य धातु या शब्द संस्कृतमें या वेदमें भी नहीं है ।

एक ही यह प्रयोग यदि सूक्ष्म विचारकी दृष्टिसे देखा जाय तो स्पष्ट सिद्ध कर देगा कि गौओंका संरक्षण, पालन और संवर्धन आर्योंमें और वैदिक धर्ममें एक विशेष महत्त्वकी बात है, कि जिसपर शंका ही नहीं हो सकती । वेदने इस शब्दप्रयोग द्वारा ही सिद्ध कर दिया है कि " गौ अघ्न्य है " और उसका पालन तो निर्विवाद रीतिसे होना चाहिये । वेदमें इसके प्रयोग देखिये —

ये गोपायन्ति सूर्यम् ।

(ऋ. १०।१५४।५)

" जो सूर्यकी रक्षा करते हैं, " यह इसका तात्पर्य है, परंतु इसका भाव यह है कि ' गोपालनके कर्मके समान कर्म सूर्यके साथ करते हैं । ' अर्थात् सूर्यकी पालना करते हैं । गोपालनके विषयमें और इससे अधिक कहना ही क्या चाहिये । वैदिक धर्ममें तो इस प्रकारके शब्दप्रयोगोंसे ' अंतिम आज्ञा ' ही कही जाती है, जिसका उलटपुलट होना असंभव है ।

इस नामधातु और धातुके प्रयोग वेदमें बहुत हैं, उन सबके उदाहरण यहां दिखानेकी आवश्यकता नहीं, परंतु इनकी उत्पत्ति यहां देखनेयोग्य है—

गो	=	गाय
गोप (गो-प)	=	गायका पालक
गोपय्	=	गोपालके समान आचरण करना अर्थात् रक्षा करना
गोपायति	=	रक्षा करता है ।
गोपायन	=	संरक्षण
गुप् (गु+प्)	=	(धातु) रक्षा करना

देखिये और विचारिये कि यदि गोपालनका महत्त्व निःसंदेह वैदिक धर्ममें न होता तो ऐसे प्रयोग वेदोंमें कैसे आजाते ? फिर इतना गोपालनका महत्त्व सिद्ध होनेपर किस प्रकार कहा जा सकता है कि वैदिक कालमें गोमांस भक्षणकी प्रथा थी । यदि गोमांसभक्षणकी प्रथा होती तो गोरक्षाका इतना महत्त्व कैसे दर्शाया जाता ?

(२१) विवाहमें गोमांस ।

विवाह-संस्कारमें गोमांस खाया जाता था ऐसा यूरोपियन पंडित म० मैकडोनेल और कीथने अपने वैदिक इन्डेक्स में पृ० १४५ पर लिखा है— " The marriage ceremony was accompanied by the slaying of oxen, clearly for food " विवाहसंस्कारमें गाय बैलोंका वध अन्नके लियेही किया जाता था । इस विषयका प्रमाण उन्होंने जो दिया है उसका विचार अब करना चाहिये —

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥

(ऋ० १० । ८५ । १३)

यह मंत्र एक आलंकारिक वर्णनमें आगया है इसका पूर्वापर संबंध देखनेसे मंत्रका अर्थ स्वयं खुल जायगा । इसलिये इसके पूर्वके कुछ मंत्र देखिये—

सत्येनोत्तभिता भूमिः सूर्येणोत्तभिता द्यौः ।
ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति दिवि सोमो अधि श्रितः १
चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम् ।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ॥ ७ ॥
स्तोमा आसन्प्रतिधयः कुरीरं छन्द ओपशः ।
सूर्याया अश्विना वराऽग्निरासीत्पुरोगवः ॥ ८ ॥
सोमो वधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा ।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात् ॥९॥
मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम् ॥१०॥
ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः ।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥११॥
शुची ते चक्रे यात्या व्यानो अक्ष आहतः ।
अनो मनस्मयं सूर्याऽऽरोहत्प्रयती पतिम् ॥१२॥
सूर्याया वहतुः प्रागात्सविता यमवासृजत् ।
" अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्युह्यते ॥ १३ ॥
यदयात शुभस्पती वरेयं सूर्यामुप ।
क्वैकं चक्रं वामासीत्क्व देष्ट्राय तस्थथुः ॥ १४ ॥

द्वे ते चक्रे सूर्ये ब्रह्माण ऋतुथा विदुः ।
अथैकं चक्रं यद्गुहा तदद्धातय इद्विदुः ॥ १६ ॥
(ऋ० १०।८५।१–१६)

इन मन्त्रोंका अर्थ देखनेके समय पाठक यह बात ध्यानमें रखें कि यह विवाहका आलंकारिक वर्णन है जिसमें सूर्यकी पुत्री सूर्याका विवाह चंद्रमासे होनेका वर्णन है, देखिये अब इसका अर्थ

"सत्यसे भूमिका धारण हुआ है, सूर्यने द्युलोकका धारण किया है, सचाईसे आदित्य ठहरे हैं, द्युलोकमें सोम रहा है ॥ १ ॥ विचारशक्तिका तकिया बनाया है, दृष्टिका अंजन आंखमें रखा है, भूमिसे द्युलोक तकके सब पदार्थ खजाना था जिस समय सूर्या वधू अपने पतिके पास गई ॥ ७ ॥ रथ बनानेमें मन्त्रोंके डंडे लगाये गये, कुरीर नामक छंदोंसे उसकी चमक बढाई गई। दोनों अश्विनीकुमार वधू पक्षके साथ थे और अग्नि सबके आगे था ॥ ८ ॥ सोम वधू चाहनेवाला वर था और अश्विदेव वधूके साथ रहे। सूर्य देवने मनसे पतिकी इच्छा करनेवाली सूर्यावधूको पतिके हाथमें अर्पण किया ॥ ९ ॥ इसका रथ मन ही था, द्युलोक उस रथका ऊपरका भाग था, दो श्वेत बैल रथको जोडे थे, जिस समय सूर्या अपने पतिके घर पहुंची ॥ १० ॥ ऋक् और साममन्त्रोंसे वे दोनों बैल अपने स्थानमें रखे गये थे। यहां दो कानही रथके दो चक्र थे, द्युलोकसे उसका स्थावर जंगम मार्ग है ॥ ११ ॥ तुम्हारे जानेके दोनों चक्र शुद्ध हैं, व्यान नामक प्राण रथका (अक्ष) मध्यदंड है, ऐसे (मनस्मयं अनः) मनरूपी रथपर सूर्या देवी बैठकर अपने पतिके पास जाती है ॥ १२ ॥ सविता देवने सूर्या देवीको दहेज-धूमधामके साथ भेजा। जो आगे चली, इस समय (मघासु हन्यन्ते गावः) [युरोपीयनोंका अर्थ = मघा नक्षत्रमें गौवें मारी जाती हैं।"] मघा नक्षत्रमें दहेजमें गौवें भेजी जाती हैं अर्थात् सूर्यकी किरणें चन्द्रमातक पहुचायी जाती है और (अर्जुन्योः पर्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें सूर्याके साथ सोमका विवाह किया जाता है ॥ १३ ॥ हे अश्विदेवो ! जब आप अपने तीन चक्रवाले रथमें बैठकर सूर्या देवीकी बरातमें स्वयं आये, तब आपके रथका एक चक्र कहां था, और आप आज्ञा पालनके लिये कहां ठहरे थे ॥ १५ ॥ हे सूर्या देवी ! तुम्हारे दो चक्र ब्राह्मण ऋतुओंके अनुसार जानते हैं और जो एक चक्र (गुहा) गुप्त है, (जो हृदयकी गुहामें अदृश्य है,) उसको वे ही जानते हैं कि जो अटल सत्य तत्त्वको जानते हैं ॥ १६ ॥

पाठक ये मंत्र देखें और उनका यह अर्थ भी देखें। तो उनको स्पष्ट पता लग जायगा कि यहां गौओंका वध करनेका संबंध ही नहीं है। यदि "गायें मारी जाती हैं" ऐसा बीचमें पढा तो वह वहां सजता भी नहीं है। ऊपरके अर्थमें यह यूरोपीयनोंका अर्थ और वास्तविक अर्थ दोनों दिये हैं। पाठक खूब विचार करके देखें और स्वयं अनुभव करें कि यूरोपीयनोंकी इन मन्त्रोंको समझनेमें कैसी बडी भारी भूल हुई है।

डा. वईल्सनने (अघासु हन्यन्ते गावः) का अर्थ "मघा नक्षत्रमें गौवें (are whipped along) चलाई जाती हैं।" ऐसा किया है जो अधिक शुद्ध है, परंतु "गौवें काटी जाती हैं" यह अर्थ मि. ग्रिफिथ, व्हिटने आदियोंने माना है, वह उनकी बडी भारी भूल है, यह पूर्वापर संबंध देखनेसे स्वयं स्पष्ट हुआ है। यह ऊपरके मन्त्रोंका जो अर्थ हमने ऊपर दिया है वह सब यूरोपीयन ऐसा ही मानते हैं, केवल "गौ काटने" वाला उनका अर्थ भिन्न है। वास्तवमें यहां अब इसका अधिक विवरण करनेकी आवश्यकता नहीं है, तथापि पाठकोंको यह अलंकार स्पष्ट समझमें आजाय, इसलिये संक्षेपसे यह अलंकार खोलते हैं। विवाहकी बरातका रथ —

रथ	मन (मं. १०)
रथका छत्र	द्युलोक (,,)
रथचालक	दो बैल (,,)
लगामें	ऋक्साम मंत्र (मं. ११)
मार्ग	स्थावर जंगम जगत् (११)
अक्ष (रथदंड)	व्यान प्राण (मं. १२)
तकिया	विचार शक्ति (मं. ७)
अंजन	दृश्य (मं. ७)
खजाना	सब पदार्थ (मं. ७)
रथके दंड	मंत्र (मं. ८)
रथकी चमक	मंत्रोंके छंद (मं. ८)
वधूके साथी	दो अश्विनीकुमार (मं. ९)
अग्रगामी	अग्नि (मं. ९)
दो रथ चक्र	दो कान (मं. ११)

मंत्रमें जिस प्रकार वर्णन है वह यहां दिया है, परंतु पाठक जानतेही हैं कि वेदका वर्णन आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीन विभागोंमें विभक्त होता है, इस विचारसे संगति करण करके नीचे कोष्टक दिया जाता है जिससे यह रूपक खुल जायगा—

अधिभूत	आधिदैवत	अध्यात्म
(लोकाचारमें)	(विश्वमें)	(शरीरमें)
वधूका पिता	सूर्य	परमपिता
वधू	सूर्या (सूर्यप्रभा)	बुद्धिशक्ति
वर	सोम	षोडशकला युक्त आत्मा
वधूके साथी	दो आश्विनी	श्वास, उच्छ्वास
बरातमें	अग्रगामी अग्नि	शब्द (वाणी)
आंखमें अंजन	द्रश्य	दृष्टि
वधूका धन	सब पदार्थ	सब अवयव
गौवें	किरणें	इन्द्रियाँ
रथ	विद्युत्	मन
रथकी छत	द्युलोक	मस्तिष्क
रथका मार्ग	स्थिरचर	जडचेतन
रथवाहक	(दो)बैल वायु	प्राणापान
लगामें		ऋक्सामामंत्र
रथके दंड		मंत्र
रथकी चमक		छंद
अक्ष		व्यानवायु
रथके दो चक्र	दिशाएं	दो कान
रथमें तकिये		सुविचार

यह कोष्टके देखनेसे यह वैदिक अलंकार पाठकोंके मनमें खुल गया होगा। इसलिये इसका विचार यहां अधिक फैलानेकी आवश्यकता नहीं है। पाठक यह विवाह अपने अंदर भी देख सकते हैं और बाहर जगतमें भी देख सकते हैं। वेद मंत्रोंमें बाह्य जगत्में होनेवाले सनातन विवाहका वर्णन किया हैं और बीच बीचमें व्यक्तिके शरीरमें होनेवाले विवाहकी भी सूचनाएं 'मन, सुविचार' आदि शब्दों द्वारा दी हैं। सूर्यकी प्रभा चंद्रमामें जाकर वहां रमती है, इसपर रूपकालंकारसे आध्यात्मिक तत्त्वका वर्णन इस सूक्तमें किया है।

"गो" शब्द सूर्य किरणोंका वाचक प्रसिद्ध है, इस विषयमें किसीको भी शंका नहीं है। "हन्यन्ते" इस क्रियामें "हन्" धातु है, "हन् हिंसागत्यो" ये व्याकरणाचार्य पाणिनी मुनिने इसके अर्थ दिये हैं अर्थात् "हिंसा और गति" ये इसके अर्थ धातु पाठमें है, कोशोंमें इस "हन्" धातुके अर्थ निम्न प्रकार हैं—

To kill (वध करना),
To multiply (गुणाकरना),
To go (जाना)।

हरएक कोशमें पाठक ये देख सकते हैं। यदि पाठक ये "हन्" धातुके अर्थ देखेंगे तो उनको—

अघासु हन्यन्ते गावोऽर्जुन्योः पर्यूह्यते ॥

इस पूर्वोक्त मंत्रके वाक्य का अर्थ (पूर्वोक्त अलंकार छोडकर भी) स्पष्ट हो जायगा "(अघासु) मघा नक्षत्रके समय (गाव.) गौवें (हन्यन्ते) चलाई जाती हैं, और (अर्जुन्यो.) फल्गुनी नक्षत्रके समय (पर्युह्यते) विवाह किया जाता है।" डा. शुक्लमनने यही अर्थ स्वीकृत किया है। अलंकार का तात्पर्य छोडकर और केवल स्थूल दृष्टिसे देखकर भी सरल अर्थ यह होता है। क्योंकि यद्यपि हन् धातुका वध करना अर्थ प्रसिद्ध है तथापि उसका दूसरा गतिवाचक अर्थ नष्ट नहीं हुआ है। यदि उसका (to multiply गुणा करना यह अर्थ लिया जाय तो 'गाव हन्यन्ते' का अर्थ होगा 'गौओंकी संख्या बढाई जाती है' गौवें दुगनी चौगनी की जाती हैं। जिस समय विवाह होता है उस समय बहुतसे आदमी इकट्ठे होते हैं, उनको दूध पिलानेके लिये स्थान स्थानसे गौवें इकट्ठी की जाती हैं, लाई जाती है और उनकी संख्या बढाई जाती है। विवाह प्रसंगके लिये यह अर्थ कितना सार्थ है और सरल है यह देखिये। "अघ्न्या" शब्दसे बताया हुआ गौका अवध्यत्व रख करही जो अर्थ पूर्वापर संबंधमें ठीक बैठ जायगा वही ठीक अर्थ होगा।

इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त कोष्टकमें देखिये तो पता लग जायगा कि जो अधिभूतमें "गौवें" हैं वेही अधिदैवतमें "किरणें" और आध्यात्मिक भूमिकामें "इंद्रियशक्तियां" हैं। जिस समय किसी बातके विषयमें संदेह उत्पन्न हो

जाता है उस समय अन्य क्षेत्रोंका व्यवहार देखकर अर्थका निश्चय करना चाहिये। अधिभूतपक्षमे अर्थात् लोक व्यवहार में गौओंका वध विवाह प्रसंगमें करना चाहिये या नही इस मंत्रका अर्थ कैसा करना चाहिये, " हन् " धातुके दो अर्थ हैं उनमें यहां कौनसा लिया जाय, इस शंकाका उत्पत्ति होनेपर अधिदैवतमें और अध्यात्ममें क्या होता है यह देखिये और उचित निश्चय कीजिये। अधिदैवत पक्षमें सूर्यकी किरणें चन्द्रमातक फैलाई जाती है, प्रकाशका विस्तार किया जाता है, यह अर्थ स्पष्ट है। सूर्यकी किरणें मारी नही जाती। यह देखनेसे हमें पता लगा कि " हन् " धातुका अर्थ वध यहां अपेक्षित नही है, प्रत्युत फैलाव विस्तार या गति अर्थही अपेक्षित है। प्रतिबंध या वध अर्थ यहां लिया जाता तो सूर्यकी किरणें मारी जानेपर चन्द्रमातक सूर्यकी प्रभा पहुंचेगी कैसे और सूर्यपुत्री प्रभा (सूर्या सावित्री) का सोम (चन्द्र) के साथ विवाह कैसे होगा? और धूमधामके साथ बरातभी कैसे चलेगा? अर्थात् यहां " हन् " धातुका वध अर्थ अपेक्षित नही है।

आध्यात्मिक पक्षमें अपने अन्दर देखिये कि क्या इंद्रिय शक्तियां मारी जानेसे आत्माका सुख बढेगा या उनको सुनियमोंसे चलानेसे कल्याण होगा। इसके विवाहका रथ जगत्‌के मार्ग परसे ऋक्साम मंत्रोंके द्वारा नियत धर्ममार्गपर ही चलना चाहिये, इसलिये इसके रथके बैल सुशिक्षित होके मंत्रोंकी लगामों द्वारा योग्य मार्गपरसे चलाने चाहिये। इत्यादि विचारसे स्पष्ट पता लगता है कि यहांभी गोपालनही अभीष्ट है।

इसी प्रकार विवाह यज्ञमें आनेवाले पारिवारिक सज्जनोंके दुग्धपानके लिये गौवोंको इकट्ठा करना, उनको योग्य मार्ग-परसे चलाना, इधर उधर भागने न देना योग्य है। उनका वध करनेसे, उनकी कतल करनेसे क्या लाभ होगा?

इस दृष्टिसे देखनेसेभी पता लग जाता है कि विवाह संस्कारमें गावोंकी संख्या (multiply) बढाना भी यहां अभीष्ट है, या उनको योग्य मार्गसे चलाना अभीष्ट है। ऊपर " हन् " धातुका अर्थ 'गति' दिया है इस गतिके अर्थ 'ज्ञान गमन और प्राप्ति' हैं। ये अर्थ सब व्याकरणशास्त्रकार मानते हैं। ये अर्थ यदि गति शब्दसे यहां लिये जाय तो " गाव. हन्यन्ते " का अर्थ होगा—

" गौओंका ज्ञान प्राप्त करना, गौओंको चलाना अथवा गौओंको प्राप्त करना। "

" हन् " धातुका अर्थ " ताडन करना " भी है। इस समय मराठी भाषामें यह अर्थ प्रचलित है, (हनन = हाणणें) इस शब्दका अर्थ सोटीसे ताडन करना है अर्थात् गवालिये हाथमें सोटी लेकर गावोंको जिस दिशामें ले जाना होता है उस दिशामें ले जाते हैं। यह " हनन " शब्दका अर्थ है। हन् धातुका यह अर्थ लिया जाय तो " हन्यन्ते गाव. " का अर्थ होगा " गौओंको गवालिये जिस मार्गसे ले जाना हो उस मार्गसे ले जाते हैं। " अर्थात् विवाहके प्रसंगमें गावोंको इकट्ठा करते हैं और इष्ट स्थानपर ले जाते हैं।

कुछ भी हो, 'यहां गौओंका वध " अभीष्ट नहीं है यह बात स्पष्ट है। श्री॰ सायणाचार्य जीने भी वध अर्थ नहीं किया है— " मघानक्षत्रेषु गाव. हन्यन्ते दण्डैः ताड्यन्ते प्रेरणार्थम्। " अर्थात् " मघा नक्षत्रके समय गौवें यहां पहुंचानेके लिये सोटियोंसे ताडित होकर प्रेरित की जाती है। " सूर्यके घरसे चली हुई गावें सोमके घर पहुंचनेके लिये मार्गमें ठीक मार्गसे चलायी जाती है। यहां सायण भाष्यका भाव यह है कि " सूर्य देवने अपनी पुत्रीके विवाहके समय दहेज, स्त्रीधन (या Dowry) के रूपमें दी हुई गौवें चन्द्रमाके घरतक पहुंचानेका कार्य करनेके लिये सूर्य देवके गवालिये गावें ले जाते हैं और ठीक मार्गसे उनको चलानेके लिये मार्गमें आवश्यक हुआ तो ताडन करते है, अन्तमें वे गौवें सोमके घर पहुंचती है और फल्गुनी नक्षत्रके समय सूर्य पुत्रीका चन्द्रमाके साथ विवाह होता है। " यदि यहां " गावोंका वध " अर्थ लिया जाय तो दहेजका बीचमेंही नाश होनेसे पुत्रीका भावी पति रुष्ट हो जायगा और विवाहमें आपत्ति आजा-यगी। इस कारण " वध " अर्थ यहां अभीष्ट नहीं है।

किसी भी प्रकार पाठक विचार करके देखेंगे, तो उनको स्पष्टतासे पता लग जायगा कि यहां 'गोवध' अभीष्ट नहीं है। इतना होते हुए भी यूरोपीयन पंडितोंने इस मंत्रके आधारसेही लिखा है कि-The marriage ceremony was accompanied by slaying of oxen, clearly for food " (विवाह संस्कारमें खानेके लियेही गाय बैल काटे जाते थे!) पूर्वापर संबंध

*

न देखते हुएही एकदम ऐसे अनुमान लिख मारते हैं, इसका बडा आश्चर्य होता है। यूरोपके लोग जो चाहे सो अनुमान करें, परंतु हमारे लोगोंको तो पूर्वापर संबंध देखकर अधिक विचार करकेही अपने अनुमान निकालने चाहिये। अन्यथा ऊपरवाले मंत्रमें देखिये कि किसी भी रीतिसे गौका वध प्रजताही नही, परंतु यही मंत्र गोमांसभक्षणका प्रमाण करके ये लोग पेश करते है। इससे और अधिक भूल कोई नही हो सकती।

नक्षत्रोंमें " मघा " नक्षत्र होतेही " पूर्वा और उत्तरा " ये दो फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। चन्द्रमाका तीन रात्रीका प्रवास इनमें होता है। सोमवारके दिन मघा नक्षत्र हुआ तो मंगल और बुधके दिनोंमे दोनों फल्गुनी नक्षत्र आते हैं। इसीलिये दहेज मघा नक्षत्रके समय भेजकर दूसरे या तीसरे दिन विवाह किया जाता है। इस मंत्रसे यदि कोई अनुमान निकालना है तो यही निकल सकेगा कि वेदके अनुसार दहेजमें गौवें दी जाती हैं और दहेज वरके घर पहुचनेके पश्चात् विवाह होता है। परंतु गौओंके वधका अनुमान तो कदापि नही निकल सकता। ऐसा अनुमान निकालना एक अज्ञानका विलक्षण प्रदर्शन करना ही है। यहां " हन् " धातुका अर्थ क्या है यह अवश्य देखना चाहिये—

१ हन् = (वध करना to kill) यह अर्थ प्रसिद्ध है।

२ हन् = (जाना, चलाना, प्रेरणा देना To go, to remove यह अर्थ व्याकरणाचार्योंने माना है और यह धातु इस अर्थमें क्वचित् भाषा में भी प्रयुक्त होता है। वेदमें यह अर्थ अधिक बार आता है और भाषामें कम। वैदिक कोष ' निघण्टु ' के २। १४ में यह ' गति ' अर्थ दिया है।

३ हन् = (रक्षा करना) जैसा " हस्त-घ्न " में " घ्न-हन् " का अर्थ "रक्षा करना" है। ' हस्तघ्न ' का अर्थ (*Hand guard*) " हाथकी रक्षा करनेवाला " ऐसा होता है। यह प्रयोग वेदमें है। (ऋ ६।७५।१४)

४ हन् = (गुणा करना To multiply) गणितमें यह प्रयोग है। " घात, हनन, हति, हत" आदि शब्द (multiplication) बढोत्री, गुणा, अर्थमें प्रयुक्त है।

५ हन् = (उडाना, बढाना to raise) ' तुरगखुरहतस्तथा हि रेणुः " (शाकुंतला १।३२) (घोडेके पावसे हत अर्थात् उडाई हुई धूली) ऐसे वाक्योंमे यह अर्थ होता है।

६ हन् = (ताडन करना to beat) जैसा पशुओंका सोटीसे गवालिये समयपर ताडन करते हैं।

७ हन् = (To ward off, avert रक्षा करना, दूरकरना) यह अर्थ महाभारतमें भी है।

८ हन् = (to touch, come in contact स्पर्श करना, संबंधमें आना) वराहमिहिर बृहत्संहितामें यह अर्थ ज्योतिषविषयमें प्रयुक्त है।

९ हन् = to give up, abandon छोड देना

१० हन् = to obstruct प्रतिबंध करना

" हन् " धातुके इतने अर्थ कोशोंमें हैं। इन अर्थोंमेंसे प्राचीन वेद मंत्रोंमे कौनसे अर्थ आये हैं इनका प्रकरण देखकर पूर्वापर संगतिसेही अर्थ करना चाहिये " हन् " धातु जहां जहां आजाय वहां वहां उसका ' वधही " अर्थ किया जाय तो अर्थका अनर्थ होनेमें विलंब नहीं लगेगा।

ऋषियोंकी गौके विषयमें संमति

प्रायः सब ऋषि गौको अवध्य मानते हैं। एक भी ऋषि ऐसा दीखता नहीं कि जो गौकी हिंसा चाहता हो। गौको दुःख देना भी ऋषियोंको इष्ट नहीं है। इस पुस्तकमें जो मंत्रोंके क्रमाक हैं वे यहां प्रथम दिये है जिससे पाठक जान सकेंगे कि यह मंत्र किस वेदका है और इस ग्रन्थमें कहां है। (   ) ऐसे गोल कोष्टकमें वेदके स्थानका निर्देश है और प्रारंभमें क्रम संख्या है। इस तरह इन मंत्रोंको पाठक पूर्वापर संबंधके लिये देख सकते हैं—

१ अगस्त्यः (मैत्रावरुणि.)

११ गावः अवध्या (ऋ० १।१७३।१)गौवें हिंसा करने योग्य नही हैं।

२ अथर्वा

५ हेतिं गोभ्य दूर नय (अथर्व ६।५९।३) -शस्त्र गौओंसे दूर रखो, अर्थात् गौका वध न करो।

अदितिं मा हिंसी—(अथर्व १८।४।३०) - गायकी हिंसा न कर।

२१ मुग्धा गोः शृंग अयजन्त (अथर्व ७।५।५) - मूढ लोग ही गौके अगोंसे हवन करते हैं ।

४४५ धेनुः सुमंगली(अथर्व३।१०।२) गौ सुख देनेवाली है।

५१६ गोभिः अमतिं निरुन्धान (ऋ० १।५३।४)- गौओंसे निर्बुद्धताको रोका जाता है, अर्थात् गोदुग्धसे बुद्धी बढती है ।

३ कक्षीवान् (दैर्घतमस औशिज)

२ गोः द्रविण वाजाय पुषायन् (ऋ० १।१२१।२)- गौके दूधरूपी धनकी उत्पत्ति हमारे बलको बढानेके लिये की है ।

गो मातर पर्यनुचक्षत गौकी माताकी देख भाल करनी चाहिये ।

४ कुत्सः (आंगिरस)

४ गोषु मा रीरिष, (ऋ० १।११४।८)-गौओंको कष्ट न दे, गौका वध न कर ।

१ गोघ्न आरे (ऋ० १।११४।१०)-गो घातक को दूर कर, गौके घात करनेवाले शस्त्र को दूर कर ।

१९ अदितिं ऊतये हवामहे (ऋ० १।१०६।१)- अवध्य गौ है, इसको हमारी सुरक्षाके लिये पास बुलाते हैं ।

५ चातनः

१७ यातुधाना गवां विषं भरन्ता (अथर्व ८।३।१६) राक्षस ही गौको विष देते हैं, अर्थात् जो गौको विष देते है वे राक्षस हैं ।

दुरेवा अदितये आवृश्चन्ता—जो दुष्ट होते है वेही गौको खुरचते हैं । अर्थात् जो गौको खुरचते हैं वे दुष्ट होते है।

पराञ्च परा दधातु इनको समाजसे दूर किया जावे

१८ यदि गां हंसि त्वा सीसेन विध्याम (अथर्व १।१६।४)-यदि तू गौकी हिंसा करेगा तो तुझे हम सीसेकी गोलीसे बीधेंगे । गोघातकको वधका दण्ड देना है ।

६ जमदग्निः (भार्गवः)

१ मा गां वधिष्ट (ऋ० ८।१०१।१५) गौका वध मत कर ।

४६१ दभ्रचेता मर्त्यः गां अवृक्त (ऋ ८।१०१।१६)- अल्प बुद्धिवाला मनुष्य ही गौको दूर करता है ।

७ दीर्घतमा (औचथ्यः)

१६ अघ्न्ये ! भगवती शुद्ध उदक पिब (ऋ० १।१६४।४०) गो अवध्य है, वह भाग्य देनेवाली है, उसको शुद्ध जल पीनेके लिये दो ।

२६ यत्र गाव तत् परम पद अवभाति (ऋ० १।१५४।६)-जहां बहुत गौवें होंगी वह ईश्वरका परमधाम ही है ऐसा प्रतीत होता है ।

५१५ गावः विक्षु पीपयन्त (ऋ० १।१५३।४)- गायोंको प्रजाजनोंमें बढाओ ।

८ प्रजापति (वैश्वामित्र)

२५ धेनव आधुनयन्ता तत् देवानां महत् असुरत्वम् (ऋ० ३।५५।१६)- जहां गौवें रहती हैं वह देवोंका सामर्थ्य ही है ।

९ प्रत्यंगिराः

१४ अनया ओषध्या गोषु कृत्या अहं अदूदुषम् (अथर्व ४।१८।५, १०।१।७)-इस औषधीसे गौओंमें किया घातक प्रयोग मैं दूर करता हूं । अर्थात् गौको किसीने विष आदि दिया हो तो औषधिसे वह विष दूर करना चाहिये ।

१६ गां मा वधीः (अथर्व१०।१।२९)-गायका वध न कर।

१० ब्रह्मा

१९ य गां पदा स्फुरति तस्य मूलं वृश्चामि (अथर्व १३।१।५६)-जो गायको लात मारता है, उसकी जड मैं काटता हूं । गायको कोई लात न मारे

४६८ रयीणां सदनं धेनुं उपसदेम (अथर्व ११।१।३४)-सम्पत्तिका घर गाय है, उसको हम प्राप्त करते हैं ।

५१५ अमृतेन सभृतां घृतस्य धारां प्रभर, पातॄन् अमृतेन स (अथर्व ३।१२।८)- घृत और दूध रूपी अमृतसे घडे भरो और पीने वालोंको परोस दो।

११ भरद्वाज (बार्हस्पत्य)

८ गव्युः वज्रः संवर्तताम् (ऋ० ६।४१।२)— गौकी सुरक्षा करनेवाला तेरा वज्र गोरक्षा करनेके लिये सदा सिद्ध रहे ।

४४१ गावः भद्रं अक्रन्— (ऋ० ६।२८।१; अथर्व ४।२१।१)—गौवें कल्याण करती हैं ।

११ प्रयोगः

९ पापः आत्मपराजितः गां अश्नात्, स अद्य जीवाति, मा श्वः (अथर्व ५।१८।२)—जो पापी और आत्मघातकी हो वही गायको खावे, यदि वह आज जीवित है तो कल वह जीवित नहीं रहेगा।

१० गौः अनाद्या (अथर्व०५।१८।३)—गौ (का मांस) खाने योग्य नहीं है।

१३ वसिष्ठः (मैत्रावरुणिः)

७ गोहा वधः आरे अस्तु (ऋ० ७।५६।१७)—गोघातक शस्त्र दूर रहे, गौके पास न आने पावे।

४४४ गोभिः स्याम दधानः (ऋ० ७।९०।६)—गौओंसे सुख मिलता है।

१४ विश्वामित्रः (गाथिनः)

१२ विविक्वान् प्रयुतां चरन्तीं आगोपा धेनुं प्राविदत् (ऋ० ३।५७।१)—विवेकी पुरुष भट कनेवाली अरक्षित गौसे सुरक्षित करता है।

१५ हिरण्यस्तूप (आंगिरस)

१गवां राय गवां परं केत (ऋ० १।३३।१)—गौओंसे धन तथा गौ संबंधी श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

यहां तक १५ ऋषियोंके वचन दिये हैं। इनके वचनोंसे गौकी भक्ति कितनी है यह यहां पाठक देख सकते हैं। इसी तरह प्रत्येक ऋषिको संमति है। गौ अवध्य है, गौको सुख देना चाहिये, गौ मानवोंका हित करती है, गौके दूध और घीसे मनुष्योंकी बुद्धि बढ़ती है। इत्यादि ऋषियोंकी संमतियां अत्यंत मनन करने योग्य हैं। इसी तरह देवताओंका भी गौके साथ प्रेम है। इन्द्र, सूर्य, अग्नि को गोरक्षक कहा है, इनकी शक्तिके लिये गौकी उपमा दी है। इसी तरह मरुत् देवता तो गोभक्त होनेमें सुप्रसिद्ध हैं—

मरुत्

गोमातरः (ऋ, १।८५।३)=मरुत् गौको माता मानते हैं।
गोबन्धवः (ऋ ८।२०।८) ,, ,, बहन ,, ,,
पृश्निमातरः (ऋ १।८५।२) ,, ,, माता ,, ,,

यहां पाठक देख सकते हैं कि मरुत अपने आपको गौका भाई, और गौको माता माननेवाले मानते हैं। इससे और अधिक गोभक्ति क्या हो सकती है। इनकी भक्ति देख कर मनुष्योंको उचित है कि वे ऐसी भक्ति अपने मनमें धारण करें और गौकी सेवा करें। जब गौ देवोंके लिये भी प्रिय है तो मनुष्य तो उस पर प्रेम अवश्य ही करें। यह तो कहनेकी भी आवश्यकता नहीं है।

इस पुस्तकका परिचय

इस ' गोज्ञानकोश ' के प्राचीन खण्डका यह अति प्राचीन कालका वेद विभाग है। वेदसे प्राचीन और कोई ग्रन्थ नहीं है, जिसकी खोज करनी है। अर्थात् जगत्के आदि ग्रथोंकी यह साक्षी है और इन प्राचीनतम ग्रथोंमें गौका गौरव इस तरह मिलता है।

इस ' वैदिक विभाग ' का यह ' प्रथम खण्ड ' है। इसका और एक द्वितीय खण्ड होगा जो संभवतः इससे भी बडा होगा, और उसमें कई अन्य महत्व पूर्ण विषय आ जायगे। जो न केवल मनोरञ्जक ही होंगे, परन्तु अनेक उपयुक्त विषयोंका ज्ञान देनेवाले भी होंगे।

इस ' वैदिक विभाग ' की विस्तृत भूमिका तो द्वितीय खण्डके प्रारंभमेंही जायगी। यहां यह प्रस्तावना रूप केवल स्वरूपदर्शन करनेकेलिये ही दो चार पृष्ठ लिखे हैं। इस ग्रंथके प्रारम्भमें ' गौकी जानकारी ' प्राप्त करनेका आदेश है। जानकारी तो सब प्रकारकी हो सकती है। गौका दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ आदि तो खानेके पदार्थ सब जानते है। इनके विषयमें विशेष कहना अनावश्यक है ? इनमें भूमिपरका अमृत ही कहना योग्य है। पर गौके संबंधमें खोज तो उसके अन्यान्य पदार्थोंकी भी करनी चाहिये। गोबर, मूत्र, चर्म, लोम, बाल, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि आदि जो पदार्थ उनके शरीरसे प्राप्त होते हैं, उनके गुणधर्म तथा उपयोगके संबंधमें यह खोज करनी चाहिये। इससे बहुतही उपयुक्त ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

गौकी जानकारी प्राप्त करनी चाहिये, इतना प्रथम कहनेके पश्चात् उनकी देखभाल करनी चाहिये यह भी कहा है। (पृ० १-२) आगे पृष्ठ ६ तक गायका वध करना उचित नहीं है ऐसा कहा है।

' गौ माता है ' यह विषय इसके आगे है। सब देव इस गौको माता मानते हैं। विशेष कर मरुत् देव तो इस

गौको माता मानकर इसकी सेवा करते हैं, यह मनोरंजक विषय पृ. ७ पर पाठक देख सकते हैं।

आगे पृ. २५ तक गौको अवध्य माननेवाले मन्त्र हैं। 'अघ्न्या गौ' का यह वर्णन स्पष्टतासे बता रहा है कि गौ सर्वथा अवध्यही है। गाय, बैल और पर्वत इन तीनोंको 'अघ्न्य' वेदने कहा है अर्थात् ये अवध्य हैं। पर्वतकी अवध्यता वहाँ गौवें चरती हैं इसलिये है। अर्थात् वास्तविक अवध्य गौ है और गौको चरनेके लिये पर्वत चाहिये, इसलिये पर्वत संरक्षणीय है। गो घातकके लिये मृत्यु दण्ड यहां कहा है। इससे मनुष्यके समान गायकी योग्यता है यह सिद्ध होता है। जो गायको अवध्य मानते थे किस तरह गायका वध कर सकते हैं और गो मेधमें भी किस तरह गौका वध किया जा सकता है जैसा कि आज मानते हैं। वेदमन्त्रोंका अर्थ गौको अवध्य मानकर ही करना चाहिये, यह इसका तात्पर्य है। गौ 'अवध्य' होनेके कारण किसी तरह भी वह वध्य नहीं होती। वेदको यदि गोमेधमें गोवध अभीष्ट होता, तो गायको 'अघ्न्या' वेद कभी न कहता। अघ्न्या कहकर यदि उसका वध होगा तो अपनाही मन्तव्य खण्डित होगा। वैसा तो वेदमें नहीं होगा।

इस दृष्टीसे यह 'अघ्न्या' प्रकरण विचारपूर्वक पाठकोंको देखना उचित है।

आगे गौका विश्वरूपदर्शन है और पृ. ३१ पर एक गौका मूल्य दस महापद्मके बराबर है यह वर्णन देखने-योग्य है। इसका अर्थ यह है कि एक गौके संरक्षण करनेसे दस महापद्म अर्थात् एक सहस्र करोड यज्ञ करने जैसी सफलता प्राप्त हो सकती है। इतना महात्म्य वेदमें गौका है। फिर ऐसी गौका वध कौन भला कर सकता है। अतः गौ निःसंदेह अवध्यही है।

आगे पृ. ३६ पर गौसे उत्पन्न पदार्थोंके नाम दिये हैं। करीब ८७ पदार्थ हैं जो गौसे होते हैं। इसके बाद विश्वकी सब भाषाओंमें गौशब्दके अपभ्रष्टरूप बताये हैं। इससे सिद्ध होता है कि एक 'गौ' शब्दही यूरोपकी सब भाषाओंमें गया है। युरोपकी सब भाषाओंमें इस तरह इन रूपोंमें गो शब्द है। आगे पृ. ४७ तक गो शब्दके प्रयोग जो वेदमें आये हैं दिये हैं। इससे पता लगेगा कि वेद कितने विविध अंगोंसे गौका विचार करता है और गौके संबंधका हार्दिक प्रेम प्रकट कर रहा है।

लुप्त ताद्धित-प्रक्रिया

इसके पश्चात वेदकी 'लुप्ततद्धित प्रक्रिया' दी है। यह विषय पृ. ५७ तक विस्तारके साथ दिया है। जो गौके संबंधका विचार करना चाहते हैं और गोमांस भक्षण वेदमें है या नहीं इसका निर्णय जो करना चाहते हैं उनको यह प्रकरण अर्थात् पृ. ४७ से ५७ तक के पृष्ठ अवश्य तथा विचारपूर्वक देखने चाहिये। इन प्रश्नोंका और इन नियमोंका जितना मनन होगा, उतना पता लग सकता है कि वेदकी परिभाषा सर्वथा पृथक है। इस परिभाषाको न समझनेसे ही वेदमंत्रोंके अर्थका अनर्थ हुआ है। इसलिये पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इस प्रकरणको बारम्बार मननपूर्वक पढें और इस परिभाषाको समझनेका प्रयत्न करें। यह परि-भाषा समझनेके बाद भी किसी तरहका संदेह रह नहीं सकेगा।

घी, दूध, दही आदिके लिये भी केवल 'गो' शब्दका प्रयोग वेदमें होता है, 'दूध पिओ' 'घी खाओ' आदिके लिये 'गौ पिओ और गौ खाओ' ऐसे प्रयोग होते हैं। इसलिये सहजहीसे अर्थका अनर्थ होता है। इस कारण इस लुप्ततद्धित प्रयोगको समझना आवश्यक है।

आगे 'वशा गौ' (घरमें रहनेवाली गाय), 'शती-दुग्धा गौ' (सौ मनुष्योंका पोषण करनेके लिये जितना दूध चाहिये उतना दूध देनेवाली गौ), 'ब्रह्मगवि' (ब्राह्मणकी गौ) ये तीन प्रकरण पृ. १०७ तक हैं। ये प्रकरण शान्तिसे देखनेयोग्य हैं।

इसके पश्चात् 'वेदमें भैंस' का वर्णन पृ. ११७ से १३१ तक है। पाठक इसको अवश्य देखें। वेदमें भैंसका वर्णन होनेपर भी कहीं भी भैंसके दूधके सेवन करनेका, अथवा भैंसके घीके हवनका वर्णन नहीं है। अर्थात् वेदको भैंस अपरिचित नहीं है, पर परिचित होनेपर भी वेद गायके दूध आदिको ही सेवनीय करके वर्णन करता है और कभी भैंसके पदार्थोंका वर्णन नहीं करता। यह गौका महत्त्व बतानेके लिये पर्याप्त प्रमाण है। इस दृष्टिसे पाठक इस प्रकरणका मनन करें।

पृ. १५१ से १५३ तक घरमें दूध, दही, घी और शहद (मधु) घडोंमें भरकर रखने और घडोंसे अतिथिके लिये परोसनेके उल्लेख देखने योग्य हैं। घृतपानसे आयु बढती है, आरोग्य बढता है, बुद्धि तथा तेज बढता है,

इसलिये बहुत प्रमाणमें घीका सेवन करना चाहिये। राष्ट्रीय प्रयत्नसे राष्ट्रमें दुधारू गौओंकी संख्या बढानी चाहिये। पृ १६७ पर घृतमिश्रित अन्नका भक्षण करना चाहिये यह आदेश पाठक देख सकते हैं। अग्निमें भी जो आहुति डाली जाती है वह घीसे भीगी होनी चाहिये। इस तरह घृतका पर्याप्त सेवन ही वेदमें कहा है। आज गौ और दूध दोनोंका ही दुर्भिक्ष हो गया है। वेदके आदर्श जीवनसे हम कितने पीछे हटे हैं यह यहां अनुभवमें आ सकता है।

'गायको दुधारू बनाने' का विषय पाठक पृ १७१ से पृ १८२ तक देख सकते हैं। 'गाय शतौदना' होनी चाहिये अर्थात् एक गाय १०० मनुष्योंको दूध पिलावे। एक दिनके दूधसे १०० मनुष्य तृप्त हों। यहांतक गाय दुधारू बन सकती है। वेदका मुख्य विषय 'सोमरसमें दूधको मिलाना' यह इसके आगे पाठक देख सकते हैं। यह विषय पृ. १८३ से २२८ तक है। इसमें कितनी उपमाएं कितने विविध अलंकार और कितने विविध प्रकारोंसे यह एक ही विषय समझाया है, यह देखने योग्य है। सोमरसमें दूधका मिश्रण करना यह एकही विषय है। इसमें लुप्त-तद्धित प्रक्रियाके व्याकरणके प्रयोग सैकडों हैं। कहीं तो गौओंके झुण्डमें सोम दौडता है ऐसा कहा है और कहीं सोमके लिये गौओंके बाड खोले गये हैं ऐसा कहा है। अनेक अलंकार और अनेक वर्णन करनेके प्रयोग यहां पाठक देख सकते हैं। सोम और गौका दूध ये दोनों विषय ऋषियोंको बडे प्रिय थे। इसलिये इसके वर्णनमें जितनी वर्णनकी चतुराई दीखती है और विविधता दीखती है उतनी क्वचित ही किसी अन्य विषयमें दीखती होगी।

इसके पश्चात् 'उक्षा' (बैल व सोम) का प्रकरण है। इस प्रकरणको समझना बडा आवश्यक है। इसके अज्ञानके कारण ही बडे अनर्थ हुए हैं। बैलके मांस खानेकी कल्पना इसके अज्ञानसे ही उत्पन्न हुई है। पृ २२८ से २७८ तक यह विषय है। अनेक उपमाएं, अनेक विशेषण और अनेक अलंकार यहां पाठक देख सकते हैं। इनको देखनेसे पाठकोंको स्पष्ट पता लग जायगा कि बैलके मांसका भक्षण करनेका नाम भी वेदमें नहीं है। क्योंकि वेदमें जिस तरह गौ 'अघ्न्या' अर्थात् अवध्य है, उसी तरह बैल भी 'अघ्न्य' अर्थात् अवध्य ही है। किसी अन्य प्राणीके लिये वेद 'अघ्न्य' नहीं कहता। केवल गाय और बैलको ही वेदमें अघ्न्य अर्थात् अवध्य कहा है।

इसके पश्चात् गायके दानका वर्णन है। गाय किसको देनी चाहिये और गोदान लेनेका अधिकारी कौन है यह महत्त्वपूर्ण विषय यहां वर्णन किया है। एकसे लेकर हजारों गायोंका दान यहां वर्णन किया है। जो ज्ञानी है और जो अनेक ब्रह्मचारियोंको पढाता है वही गोदान लेनेका अधिकारी है। जिसके आश्रममें सहस्रों विद्यार्थी पढते हों वही हजार गौओंका दान लेवे। इस तरह यह प्रतिपादन वैदिक समयकी शोभन परिस्थितिका स्वरूप स्पष्ट कर रहा है।

पाठक इतने विषय इस विभागमें देख सकते हैं। गौका वध किसी तरहसे भी, किसी भी कारणके लिये नहीं होता था, यही बात इससे सिद्ध होती है।

दूसरे विभागमें इससे भी अधिक महत्त्वकी बातें हैं। गोमेधका सच्चा स्वरूप क्या था, गोमेधका क्या वैदिक आशय है। ये सब विषय द्वितीय विभागमें पाठक देख सकते हैं।

'गोवर्धन संस्था, पूना' की प्रेरणासे इस पुस्तकके द्वारा गोसेवा करनेका भाग्य मुझे प्राप्त हुआ इसलिये गोवर्धन संस्थाका हार्दिक धन्यवाद किये बिना मैं नहीं रह सकता। वेदके गोमेधके विषयमें कितनी असभ्य तथा विपरीत बातें जनतामें और जगतमें प्रसिद्ध हुई हैं, उसकी गणना करना अशक्य है। इस ग्रन्थसे उनका निराकरण होकर गौका सच्चा महत्त्व प्रकट होनेमें सहायता होगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है।

राम नवमी
माघ कृ ९
फाल्गुन सं० २००६

लेखक
श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
अध्यक्ष-स्वाध्याय मण्डल
'आनन्दाश्रम' पारडी (जि. सूरत)



गो-ज्ञान-कोश

वैदिक विभाग

प्रथम खण्ड

गौके सम्बन्धके सम्पूर्ण वैदिक ज्ञानका संग्रह

[१] गौके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करो।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।३३।१)

एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥

" (एत) आओ ! (गव्यन्तः) अनेक गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करते हुए हम सब (इन्द्रं उप अयाम) इन्द्रके निकट चलें, वही (अस्माकं सु प्रमतिं) हमारी सुबुद्धि (वावृधाति) बढाता रहता है। (आत्) और (अन्-आ-मृणः) वही अविनाशी प्रभु (अस्य गवां रायः) अपने गौओंसे प्राप्त होनेवाले धनको तथा गौओंके सम्बन्धी (परं केतः) उच्चकोटिके ज्ञानको भी (नः) हमें (कुवित्) बारबार (आवर्जते) देता है। सबको उचित है कि वे (अन-आ-मृणः) कभी दूसरेका घात न करें, अहिंसक भावसे प्रभावित हों, सबके साथ उत्तम बर्ताव रखें। अपनेमें अच्छी बुद्धिकी वृद्धि करें, और (गवां रायः) गौ बडाही श्रेष्ठ धन है, इसलिए (गवां परं केतः) गौसे सम्बन्ध रखनेवाला सब श्रेष्ठ ज्ञान प्राप्त करें। " इस मन्त्रमें निम्नलिखित उपदेश हैं—

१ **गव्यन्तः** — गौएं बहुत संख्यामें प्राप्त करनेकी इच्छा मनुष्य करे और वैसा प्रयत्न भी करें।

२ **गवां रायः** — गौओंसे धनकी प्राप्ति होती है, गौवें ही बडा धन है। किस तरह गौवें बडा धन है, इसकी जानकारी मनुष्य प्राप्त करें। तथा—

३ **गवां परं केतः** — गौओंके सम्बन्धमें उत्तम उत्तम ज्ञान प्राप्त करे।

गौओंकी जानकारीका स्वरूप।

१ प्रथम पास बहुत गौएं किस तरह पाली जा सकती हैं इसको जानना।

२ गौओंसे धनकी प्राप्ति किस तरह होती है, यह ठीक तरह जानना।

३ गौओंके सम्बन्धका सब ज्ञान यथावत प्राप्त करना, अर्थात गौकी योग्य पालना करनेकी विधि, गौसे उत्पन्न दूध, दही, मक्खन, घी, छाछ, मठ्ठा आदि खाद्य पदार्थ, गोबर, मूत्र आदि खादके पदार्थ, बछड़ा बछड़ी आदि वंश सबंधी, तथा बैल आदिके सबंधी, तथा मांस, हड्डी, चर्म, बाल, सींग, चरबी आदिके संबंधी, सब प्रकारकी योग्य जानकारी मनुष्यको प्राप्त करनी चाहिये। इसी तरह दूधसे क्या क्या बन सकता है, छाछसे क्या बनता है, घीसे क्या लाभ होता है, इत्यादि गोसबंधी सब पदार्थोंके प्रयोग, उपयोग, सयोग, सुयोग, विनियोग आदिका सब ज्ञान मनुष्यको प्राप्त करना चाहिये। मनुष्यकी सब प्रकारकी उन्नति इस ज्ञानसे होगी।

[२] गौओंकी माताकी देखभाल।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२१।२)

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः॥ २॥

"(सः द्यां स्तम्भीत् ह) उस इन्द्रने देवल द्युलोकको स्थिर किया, उसी प्रकार उस (ऋभुः) तेजस्वी (नरः) नेताने (गोः धरुणं द्रविणं) गायके धारकशक्ति देनेवाले धनको, यानि दूधको, (वाजाय) अन्नके लिए, अथवा बलको बढानेके लिए, गौओंमें (प्रुषायत्) बढाया है। और उस (महिषः) महान इन्द्रने (स्व-जां) अपने निजी तेजसे उत्पन्न किये हुए (व्रां) जीवको (अश्वस्य मेनां) घोडेकी स्त्री अर्थात् घोडीको और (गोः मातरं) गौकी माताको भी प्रेमपूर्वक (परि) सब प्रकारसे (अनु चक्षत) अनुकूलतापूर्वक देख लिया।"

गौ और घोडोंकी अच्छी उत्पत्ति हो, इसलिए दोनोंकी देखभाल अच्छी तरह अनुकूलतापूर्वक करनी चाहिए। सब मानवोंका धारण पोषण तथा बलसंवर्धन करनेवाला दूध गायका ही है, इसलिए गौ-मातासे ही प्रतिदिन उसकी और उसके वंशकी भी देखभाल अच्छी तरह करनी चाहिये। इस मन्त्रमें निम्नलिखित बात गौके सम्बन्धमें देखनेयोग्य है।

१ गोः द्रविणं वाजाय सः प्रुषायत् — गौओंके अन्दर दूधरूपी धनकी वृद्धि, सबके बल बढानेके लिए, ईश्वरनेही की है।

२ गोः मातरं परि अनु चक्षत — गायकी माताकी सब ओरसे अनुकूलतापूर्वक देखभाल करनी चाहिए। गायकी माताकी परिस्थिति अनुकूल रही, तो उससे उत्तम संतान होती है जो दूध अधिक परिमाणमें और अधिक गुणमें देती है। इसलिए गौकी माताकी विशेष देखभाल करना आवश्यक है। गौके वंशको सुधारनेका यही उपाय है।

गौकी देखभाल।

गौकी देखभाल उस गौकी माता और गौके पितासे शुरू होती है। योग्य गौ और योग्य बैलसे उत्पन्न

गौंही उत्तम होती है। इसलिए गौके वंशका सुधार करना चाहिए। जितना यान गौके वंशके सुधारमें रखा जाय, उतनीही उत्तम गौकी पैदाइश होगी और उतना अधिक धन उस गासे प्राप्त होगा। गासे प्राप्त सभी पदार्थ धनरूपही हैं, और गौके वंशकी सुरक्षासे ये धन भी अधिक सुरक्षित होते हैं।

गो-ज्ञान-कोशमें यह संपूर्ण ज्ञान संगृहित किया जायगा।

[३] गायका वध न कर।

जमदग्निर्भार्गव । गौः । त्रिष्टुप्। (ऋ० ८।१०१।१५)

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥ ३ ॥

" (रुद्राणां माता) शत्रुओंको रुलानेवाले वीर मरुतोंकी माता, (वसूनां दुहिता) वसुओंकी मानो कन्यारूपी, (आदित्यानां स्वसा) अदितिके पुत्रोंकी बहन और (अमृतस्य नाभिः) अमृत रसके तो केन्द्ररूपी गाय है, इसलिए (चिकितुषे जनाय) ज्ञानी मनुष्योंसे (प्र वोचं नु) मैं घोषणा करके कहता हूं, कि, (अनागां अ-दितिं गां) निरपराध तथा अवध्य गायका (मा वधिष्ट) वध न करो। "

१ ' चिकितुषे जनाय प्र वोचं ' मा गां वधिष्ट ' — समझदार मनुष्यसे मैं घोषणा करके कहता हूँ कि ' गायका वध न कर। '

२ ' अनागां आदितिं गां मा वधिष्ट— निष्पाप और (अ-दिति) अवध्य गाय है, इसलिए गायका वध न कर। किंवा गौ निष्पाप और (अदिति अन्नदात्री) अन्न देती है, इसलिए गायका वध न कर। '

' अदिति ' पदके दो अर्थ है, (१) एक (अ-दिति) अवध्य। ' दिति ' का अर्थ टुकडा करना, काटना, और ' अ-दिति ' का अर्थ न काटना, टुकडे न करना अर्थात् अवध्य। ' गौ ' अदिति है अर्थात् काटने, टुकडे करने-योग्य नहीं है। वह अ-छिन्ननीय है। (२) अदितिका दूसरा अर्थ (अदनात् अदितिः) भक्षण करनेयोग्य दूध, दही, मक्खन, घी आदि अन्न देनेवाली, तथा बैलको जन्म देकर उसके द्वारा कृषिसे धान्य आदिकी उत्पत्ति करानेवाली। ये दोनों अर्थ यहां लेनेयोग्य हैं। गायके वधका निषेध करनेवाला यह मन्त्र है, ' मा गां वधिष्ट ' (गायका वध न कर) यह वेदकी घोषणा इस मन्त्रमें की गई है। इस घोषणासे मानवोंको वेदकी आज्ञा यही है कि, ' मानवो ! गायका वध न करो। ' तथा और देखिये—

कुत्स आङ्गिरस । रुद्रः । जगती। (ऋ० १।११४।८)

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान् मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित् त्वा हवामहे ॥ ४ ॥

" हे रुद्र ! (नः तोके मा रीरिषः) हमारे बालबच्चोंकी हिंसा न कर, (नः तनये मा) हमारी संतानको न मार, (नः आयौ मा) हमारे मानवोंका संहार न कर, (नः गोषु अश्वेषु मा) हमारे गौओं तथा घोडोंको विनष्ट न कर, (नः वीरान्) हमारे वीरोंको (भामितः मा वधीः) क्रोधके मारे तू न मार, (हविष्मन्तः) हम हविर्द्रव्य लेकर (त्वा) तेरी (सदं इत) हमेशा (हवामहे) प्रार्थना करते है। "

१ नः गोषु मा रीरिषः— हमारी गौओंका वध न कर गौओंको कष्ट देकर हमारा नाश न कर।

इस मन्त्रके इस वचनका भाव यह है कि, गौओंको जो कष्ट होगा, वह अन्तमें जाकर हमारे लिए, मानवोंके लिए ही कष्ट सिद्ध होगा, क्यों कि, मानवी उन्नतिके साथ गौओंकी सुरक्षाका चोली-दामनका-सा संबंध है। इस लिए हमारी गौओंको किसी तरह कष्ट न पहुँचे, ऐसा सुप्रबन्ध करना योग्य है।

शस्त्र गौके पास पहुँचाही न इसलिए कहा है—

[४] शस्त्र गौओंसे दूर रहे।

अथर्वा। रुद्र, अरुन्धती, औषधिः। अनुष्टुप्। (अथर्व० ६।५९।३)

विश्वरूपां सुभगामच्छावदामि जीवलाम्।
सा नो रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः॥ ५॥

" (सुभगां विश्वरूपां) अच्छे भाग्यसे युक्त और नाना रूपवाली (जीवलां अच्छा आवदामि) जीवला नामक औषधिके विषयमें मैं अच्छाही कहता हूँ। (रुद्रस्य अस्तां हेतिं) रुद्रके फेंके शस्त्रको (नः गोभ्यः दूरं नयतु) वह जीवला वनस्पति हमारी गौओंसे दूर ले जावे। "

१ हेतिं गोभ्यः दूरं नयतु— शस्त्र गौओंसे दूर रहे। अर्थात् गौओंके पास शस्त्र न आवे।

अनेक प्रकारकी विविध रंगरूपवाली जीवला औषधि (जीव-ला) दीर्घ जीवन देनेवाली है, वह गौओंको प्राप्त होवे। गौवें इस जीवला औषधिका सेवन करें और उस औषधिके गुणधर्मोंसे युक्त उत्तम दूध देवें। जिससे भय उत्पन्न हो, ऐसा कोई शस्त्र गौओंके पास न आवे। गौएँ सदा सुरक्षित और निर्भय रहें। यही भाव पुनः निम्नलिखित मन्त्रमें देखिये—

कुत्स आङ्गिरस। रुद्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।११४।१०)

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥ ६॥

" (हे क्षयद्वीर) शत्रुदलके वीर सैनिकोंका वध करनेहारे रुद्र! (ते गोघ्नं उत पूरुषघ्नं) तेरा वह हथियार, जो गौओं तथा मानवोंका वध करनेहारा है, (आरे) हमसे दूर रहे। (अस्मे) हमें (ते) तुझसे (सुम्नं अस्तु) उत्तम सुख प्राप्त हो, (नः च मृळ) और हमें तू सुखी कर। (देव! नः च अधि ब्रूहि) हे देव! हमें उपदेश दे, (अध च) और (द्वि-बर्हाः) दोनों शक्तियोंसे युक्त हे रुद्र! (नः शर्म यच्छ) हमें सुख दे। "

बर्हः – शिखा, पूँछ, शक्ति। द्विबर्हाः – दोनों शक्तियोंसे युक्त, ज्ञान तथा कर्म इन दोनोंसे पूर्ण, दो चोटियाँ धारण करनेवाला।

१ ते गोघ्नं आरे – तेरा गोवधका शस्त्र दूर रहे।

२ ते पूरुषघ्नं आरे – तेरा मनुष्यवधका शस्त्र दूर रहे।

हम जहां रहते हैं, वहां पुरुषवध (मनुष्यवध) न होवे और वैसाही गोवध भी न होवे। यहां मनुष्यवध और गोवध समान महत्वके साथ आया है। मानवी समाजकी सुस्थितिके लिए जैसा मनुष्यवध नहीं होना चाहिये, वैसा ही गौका वध भी नहीं होना चाहिये। यहां प्रथम गोवधका निषेध करके पश्चात् मनुष्यवधका निषेध किया है, यह देखनेयोग्य है, तथा—

वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मरुत । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।५६।१७)

दृशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।

आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥ ७ ॥

" (सुमेके रोदसी) सुदृढ, परस्पर सुसबद्ध द्यावापृथिवीको (वरिवस्यन्तः मरुतः) पर्याप्त स्थान देनेवाले वीर मरुत् (नः मृळन्तु) हमें सुख दें, (वः) तुम्हारे पासका (गोहा नृहा वधः) गायकी और मानवोंकी हत्या करनेवाला शस्त्र (आरे अस्तु) दूर रहे, हे (वसवः) बसानेहारे देवो ! (अस्मे सुम्नेभिः नमध्वं) हमें सुखोंके बोझसे झुका दो, हमें सुखी करो ।"

१ गो-हा नृहा वधः आरे अस्तु– जिससे गायका वध और मनुष्यका वध हो सकता है, वैसा हथियार गायसे और मनुष्यसे दूर रहे । हमारे गौओं और मनुष्योंका वध न हो ।

इस मन्त्रसे भी गोवध और मनुष्यवध समान महत्त्वके साथ लिखा है । जैसा मनुष्यवध न हो वैसाही गोवध भी न होने पाय । यहां भी गोवधका निषेध प्रथम है और पश्चात मनुष्यवधका निषेध है । यदि शस्त्र गौके पास जाय भी, तो गौकी सुरक्षा करनेहीके लिए । इस विषयमें अगला मन्त्र देखिये—

[५] शस्त्र गौकी रक्षा करे ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।४१।२)

या ते काकुत् सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत् पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।

तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात् सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ ८ ॥

" हे इन्द्र ! (ते या काकुत्) तेरी जो जिह्वा (सुकृता) भली भाँति सुसंस्कृत बनायी हुई है, (या वरिष्ठा) जो श्रेष्ठतम है, (यया मध्वः ऊर्मिं) जिससे मीठे सोमरसके प्रवाहको (शश्वत पिबसि) हमेशा पीता है, (तया पाहि) उससे अब हमारी रक्षा कर, (ते अध्वर्युः प्र अस्थात्) तेरे लिए अध्वर्यु आ रहा है और (ते गव्युः वज्र) तेरा गायोंकी रक्षा करनेहारा वज्र हथियार (सं वर्तता) भली भाँति रहे । "

१ ते गव्युः वज्रः संवर्तताम् – तेरा गौओंकी सुरक्षा करनेवाला वज्र (सं) भली भाँति (वर्तता) सिद्ध रहे । (क्षत्रियका शस्त्र गौओंकी सुरक्षाके लिए सिद्ध रहे ।)

गव्युः वज्रः = a weapon that worships the cows,

गव्युः = sacred to the cows, worshipping the cows, belonging to cows, fit for cattle; pasture land, गायोंके लिए हितकारी, गौओंका चरागाह । 'गव्युः वज्रः' अर्थात गायकी रक्षा अथवा गायका हित करनेवाला शस्त्र हो । क्षत्रियका शस्त्र गौकी रक्षा करता रहे, यह सूचना इस मन्त्रमें है । पापी क्षत्रिय गौकी रक्षा नहीं करता, गौको कष्ट देता है और उसका बुरा फल भोगता है । इस विषयमें निम्न लिखित मन्त्र देखिये—

मयोभूः । ब्रह्मगवी । अनुष्टुप् । (अथर्व० ५।१८।२)

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः ।

स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥ ९ ॥

“ (पापः राजन्यः) पापी क्षत्रिय (अक्ष-द्रुग्ध आत्मपराजितः) जो आंखसे द्रोह करता है और जो स्वयं अपनी कमजोरीहीसे पराजित हुआ है, वह (ब्राह्मणस्य गां अद्यात्) ब्राह्मणकी गायको खा जाय, तो (अद्य जीवानि, मा श्वः) आज भलेही जीवित रहे, किन्तु कल नहीं जीयेगा । ”

आविष्टिताऽघविषा पृदाकूरिव चर्मणा ।
सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥ १० ॥ (अथर्व ५।१८।३)

(राजन्य) हे क्षत्रिय ! (एषा ब्राह्मणस्य गौः अनाद्या) यह ब्राह्मणकी गौ खानेयोग्य नहीं, क्यों कि (सा चर्मणा आविष्टिता) वह चमडेसे ढकी हुई (तृष्टा पृदाकुः इव) प्यासी नागिनके समान (अघ-विषा) भयंकर विषसे भरी रहती है ।

जो क्षत्रिय पापी है, अपनी दृष्टिसे भी सदा द्रोह करनेवाला दुष्ट है अर्थात् जो दूसरेके ऐश्वर्यको देखकर जलता है, जो अपनीही कमजोरीके कारण सदा सर्वदा पराजित हुआ रहता है, वही ब्राह्मणकी गायको खायगा। यहां ब्राह्मणके गायको खानेसे मतलब गायके दूध दही घी आदिको खाना है, न कि गौको मारकर मांस खाना। गौको हडप करनेका यही तात्पर्य है । पापी क्षत्रियही ऐसा करे तो करे । पुण्यवान् सदाचारी क्षत्रिय ऐसा कभी न करेगा । क्योंकि ब्राह्मणकी गो चमडेसे ढकी भयानक विषैली नागिन जैसी है । वह इस तरहका अपराध करनेवालेका नाश अवश्य करेगी ।

वसिष्ठकी गौको बलात् हरण करनेका अपराध राजा विश्वामित्रने किया । उसमें उसका पराभव हुआ और अन्तमें विश्वामित्रको राज्यत्याग करना पडा, यह कथा प्रसिद्ध है ।

यहां ब्राह्मणकी गौको खानेका वर्णन है । ब्राह्मण अहिंसा वृत्तिवाले होते हैं, उनका घर विद्याकी वृद्धि करता रहता है, ऐसे स्थानसे जो क्षत्रिय अपने बलके घमंडके कारण गौ आदि धन छीन लेगा, वह अन्य लोगोंके घरोंमें भी लूट मार करेगाही । इसलिए ऐसे क्षत्रियको पापी कहा है । ऐसे पापी क्षत्रियका नाश होगा ।

[६] अवध्य गौएँ इन्द्रकी सेवा करती हैं ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । [ऋ. १।१७३।१]

गायत् साम नभन्यं१ यथा वेरर्चाम तद्वावृधानं स्वर्वत् ।
गावो धेनवो बर्हिष्यदब्धा आ यत्सद्मानं दिव्यं विवासान् ॥ ११ ॥

“ [नभन्यं साम] आकाशमें गूंजता हुआ सामगान [यथा वेः] जैसे तुम्हें प्रिय हो, उस ढंगसे उद्गाता [गायत्] गा रहा है, [यत् बर्हिषि] जब यज्ञके आसनपर [सद्मानं] बैठनेहारे [दिव्यं] द्युलोकमें विद्यमानकी [अदब्धाः धेनवः] न दबानेयोग्य अहिंसनीय धेनुएँ और [गावः आ विवासन्] गायें आकर सेवा करती रहें, वैसेही [तत्] उस यशसे [वावृधानं] बढनेवाले तुझको [स्वः-वत्] स्वर्गके तुल्य हम भी [अर्चाम] पूजित करें । ”

१ अ-दब्धा धेनवः गावः दिव्यं [इन्द्रं] आ विवासन् = अहिंसनीय अवध्य दुधारू गौवें द्युलोकके इन्द्रकी सेवा करती हैं । जैसी अवध्य गौवें इन्द्रकी सेवा करती है वैसी सेवा हम भी करें । गौ अवध्य है, इतनाही नहीं परन्तु वह माता भी है । [अदब्धा धेनवः] गौवें दबानेयोग्य नहीं है ।

[७] गौ माताकी सेवा

कुत्स आङ्गिरस । विश्वे देवा । जगती । (ऋ० १।१०६।१)

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥ १२ ॥

" [ऊतये] हमारी रक्षा हो इसलिए हम [इन्द्रं] इन्द्रको [मित्रं] मित्रको [वरुणं] वरुणको [अग्निं] अग्निको [मारुतं शर्धः] मरुतोंके बलको और [अ-दितिं] अवध्य गौको [हवामहे] सभीको बुला रहे हैं, [दुः-गात् रथं न] बुरे मार्गसे रथको जिस प्रकार सुरक्षित रखते हैं, उसी प्रकार [सुदानवः, वसवः] अच्छे दानी और सुखपूर्वक बसानेहारे ये सभी देवतागण [नः] हमें [विश्वस्मात्] सभी प्रकारके [अंहसः] पापोंसे [निः पिपर्तन] सुरक्षित रखें । "

१ ऊतये अ-दितिं हवामहे— हमारी रक्षाके लिए हम गोमाताकी प्रार्थना करते हैं । यह गोमाता अवध्य है और दूध आदि अन्न देनेवाली है ।

गौ माता है ।

इस मन्त्रमें इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, मरुत इन देवोंके साथ अदिति माताकी अर्थात् गो माताकी प्रार्थना की है कि, वह गो माता हमारी रक्षा करे । मरुतोंके वर्णनमें मरुत् वीर गौओंको माता तथा बहन माननेवाले हैं, ऐसा कहा है—

गो-मातरः— यत् शुभयन्त अञ्जिभिः । ऋ० १।८५।३
गो-बन्धवः— सुजातासः इषे भुजे । ऋ० ८।२०।८
यूयं पृश्निमातरः मर्तासः स्यातन । ऋ० १।३८।४
अधि श्रियं दधिरे पृश्निमातरः । ऋ० १।८५।२
स्वश्वा स्थ सुरथाः पृश्निमातरः । ऋ० ५।५७।२
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः । ऋ० ५।५७।३
सुजातासः जनुषा पृश्निमातरः । ऋ० ५।५९।६
उदीरयन्त वायुभिः पृश्निमातरः । ऋ० ८।७।३
उत् ईरते स्तोमैः पृश्निमातरः । ऋ० ८।७।१७
पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः । वा० य० २५।२०
यूयं उग्रा मरुतः पृश्निमातरः । अथर्व० १३।१।३
पुरो दधे मरुतः पृश्निमातॄन् । अथर्व० ४।२७।०

" [गो मातरः] गायको माता माननेवाले वीर मरुत देव हैं । [गो-बन्धवः] गायको बहन माननेवाले वीर मरुत् गौके भाई हैं । [पृश्निमातरः] गायको माता माननेवाले वीर मरुत् देव हैं, ये मानवी वीर हैं, परन्तु देवत्वकी शोभा धारण करते हैं, अपने पास अच्छे रथ रखते हैं, उसमें घोडे उन रथोंको जोतते हैं । ये कुलीन वीर हैं । "

इन मन्त्रोंमें मरुतोंको गायको माता माननेवाले उग्र वीर कहा है । गौ मरुतोंको दूध पिलाती है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखिये—

दुदुह्रा पृश्निः मरुद्भ्यः । ऋ० ५।६०।५
शुक्रं दुदुह्रे पृश्निः ऊधः । ऋ० ६।६६।१

पृश्निः क्रुध्मः मही जभार । ऋ० ७।५६।४
पृश्निं वोचन्त मातरं । ऋ० ५।५२।१६
पृश्न्या ऊधः अपि शुक्रः । ऋ० २।३४।१०
पृश्नेः पुत्रा रभिष्ठाः । ऋ० ५।५८।५

" मरुत वीरोंके लिए गौ दूध देती है । यही गौ मरुतोंके लिए पय धारण कर रही है । मरुद्वीर गौको माता कहते हैं । अर्थात् ये मरुद्वीर गौके पुत्र हैं । "

इस तरह मरुद्वीर गौको माता मानते हैं । गौका दूध पीते हैं और गौकी सुरक्षा करते हैं । यह देवमाता गौ हमारी सुरक्षा करे, इसलिए इस मन्त्रमें अवध्य गोमाताकी प्रार्थना इन्द्रादि देवोंके साथ की है ।

[८] गौ घातपातके अयोग्य है

दीर्घतमा औचथ्यः । गौः । त्रिष्टुप् । (ऋ. १।१६४।४०)

सूयवसाद्भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम ।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ १३ ॥

" [अ-घ्न्ये] हे अवध्य गौ ! तू वधके लिए अयोग्य है, [सु-यवस-अद्] उत्तम धान्य एवं तृण खाकर, [भगवती] अच्छा भाग्य देनेवाली हो, [अथो] पश्चात् तुम्हारे कारण [वयं] हम [भगवन्तः स्याम] भाग्यवान बनें, [विश्वदानी] सर्वैव तू [तृणं] घास [अद्धि] खा ले और [आ-चरन्ती] चारों ओर सञ्चार करनेवाली तू [शुद्धं उदकं पिब] निर्मल एवं पवित्र जलका पान कर । "

गौएँ अच्छा धान्य तथा तृण आदि खाकर शुद्ध जलका पान करे, और श्रेष्ठ दूध देकर गौको समीप रखनेवालेको भाग्यवान बना दे । गौका कभी वध नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह सदाके लिए [अ-घ्न्या] अवध्य है ।

गौके नामही ' अ-घ्न्या ' [अवध्य] तथा ' अ-दिति ' [घातपातके अयोग्य] हैं । जिनका नामही ' अ-वध्य ' अर्थवाला है, उसका वध कैसे हो सकता है ? अ-घ्न्या= अ-वध्या= not to be killed यह पदही गौके वधका निषेध करता है । वेदमन्त्रोंमें तथा लौकिक संस्कृतमें ' अ-घ्न्या ' पद केवल ' गौ ' का ही वाचक है । ' अघ्न्य ' पदका पुल्लिंगमें अर्थ ' बैल ' है और स्त्रीलिंगमें अर्थ गाय है । गाय और बैल दोनों अवध्य हैं, इस कारणसे उनके लिए ' अघ्न्या ' पद प्रयुक्त होता है । श्री मोनिअर विलियम महोदयके संस्कृत-इंग्लिश कोषमें इस पदके ये अर्थ दिये हैं—

अघ्न्यः= not to be killed अवध्य, a bull बैल
अघ्न्या= not to be killed अवध्य, a cow गाय

गौका ' अ-घ्न्या ' नाम ' अवध्यत्व ' का दर्शक है, ऋ ८।१०१।१५ में ' मा गां वधिष्ट ' [गायका वध न कर] ऐसी स्पष्ट आज्ञा है, गायसे शस्त्र दूर रखनेका आदेश अनेक मन्त्रोंमें है । ये सब मन्त्र देखनेसे ' गौ निःसंदेह अवध्य है ' यही सिद्ध होता है । गौके अवध्यत्वके विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

[९] गौ पर किये गये वध प्रयोगको निष्फल बनाना और गौको बचाना ।

शुक्रः । कृत्यादूषणम् । अनुष्टुप् । (अथर्व. ४।१८।५; १०।१।४)

अनयाहमोषध्या सर्वाः कृत्या अदूदुषम् ।
यां क्षेत्रे चक्रुर्यां गोषु यां वा ते पुरुषेषु ॥ १४ ॥

" [अनया ओषध्या] इस औषधिसे [सर्वाः कृत्या अहं अदूदुष] सभी कृत्याओंको मैंने दूषित कर रखा है, अर्थात् मारक प्रयोगको दूर किया है। [यां क्षेत्रे गोषु यां ते पुरुषेषु चक्रुः] जिन्होंने खेतमें, गौमें अथवा तेरे मानवोंमें बना दिया था। मारक प्रयोगका विष इस औषधिसे दूर किया है और गौओंको बचाया है।"

वात इव वृक्षान्नि मृणीहि पादय मा गामश्वं पुरुषं उच्छिष एषाम् ।
कर्तॄन्निवृत्येतः कृत्येऽप्रजास्त्वाय बोधय ॥ १५ ॥ (अथर्व-१०।१।१७)

[वृक्षान् वातः इव] पेड़ोंको वायु जिस प्रकार उखाड़ फेंक देता है, वैसेही [नि मृणीहि, पादय] उन्हें तू कुचल दे, विनष्ट कर, [एषां अश्वं गां पुरुष मा उच्छिषः] इनके घोड़े, गौ या पुरुषको जीता न छोड़। इस उद्देश्यसे जिन्होंने यह मारक प्रयोग किया था, हे कृत्ये ! [इतः कर्तॄन् निवृत्य] यहाँसे उन निर्माणकर्ताओंके समीप जाकर [अप्रजास्त्वाय बोधय] उन्हें जगा दे, जिससे वे अपने आपको सन्तानहीन पा जायँ। अर्थात् मारक प्रयोगसे गौको तो बचाया, परन्तु प्रयोग करनेवालेकी संतानपर उस प्रयोगको वापस भेजा, जिससे करनेवालेके सन्तान मर गये।

अनागोहत्या वै भीमा कृत्ये मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः ॥ १६ ॥ (अथर्व० १०।१।२९)

" हे कृत्ये ! [अन्-आगः हत्या] निरपराधका वध [भीमा वै] सचमुच भीषण है, इसलिए [नः गां अश्वं पुरुषं मा वधीः] हमारी गाय, घोड़े या पुरुषका वध न कर।"

मारक प्रयोगका विष औषधि विशेषसे दूर करना और उस मारक प्रयोगको निःसत्त्व बना देनेका यहां विधान है। जिस औषधिसे यह होता था, उस औषधिकी खोज करनी चाहिये। मारक प्रयोग जिसपर किया जाता है, वह मर जाता है। इस औषधिसे गौपर किया मारक प्रयोग निर्बल किया और गौको बचाया है, इतनाही नहीं परन्तु उसी प्रयोगको वापस भेजकर करनेवालेकी सन्तानोंको भी मारा है। यहां केवल गौका बचाव करनेका विषयही हमें देखना है।

(१०) गौको विष देना अथवा खुरचना दण्डनीय है।

चातनः । अग्निः । त्रिष्टुप् । [अथर्व० ८।३।१६]

विषं गवां यातुधाना भरन्तामा वृश्चन्तामदितये दुरेवाः ।
परैणान् देवः सविता ददातु परा भागमोषधीनां जयन्ताम् ॥ १७ ॥

[यातुधानाः गवां विषं भरन्तां] जो दुरात्मा लोग गायोंको विष देते हैं और [दुरेवाः अदितये आवृश्चन्तां] जो दुष्ट लोग गौको काटते हैं, अथवा गौके शरीरपर खुरचते हैं, [सविता देवः एनान् परा ददातु] उत्पादक देव इन्हें समाजसे दूर हटावे, [ओषधीनां भाग पराजयन्तां] इनको औषधियोंका भाग भी खानेके लिए न दिया जाय।"

जो दुष्ट लोग गौको विष देते हैं, गौपर विष-प्रयोग करते हैं, गौके शरीरपर खुरचते हैं, अथवा जो गौके साथ बुरा बर्ताव करते हैं, उनको समाजसे दूर रखा जाय और सागभाजी भी उनको खानेके लिए न मिले। अर्थात् वे भूखे मर जांय।

(११) गोवध कर्ताको वध दण्ड ।

चातन । दधत्य सीसम् । ककुम्मती अनुष्टुप् । (अथर्व० ११६।४)

यदि नो गां हंसि यद्यश्वं यदि पूरुषम् ।
तं त्वा सीसेन विध्यामो यथा नोऽसो अवीरहा ॥ १८ ॥

[यदि] यदि तू [नः गां अश्वं पुरुषं] हमारी गौ, घोडे तथा पुरुषकी [हंसि] हत्या करता है, तो [तं त्वा] ऐसे तुझको [सीसेन विध्यामः] सीसेकी गोलीसे हम बींधते हैं, [यथा] जिससे तू [नः अ-वीर-हा असः] हमारे वीरोंका वध न करनेवाला बने ।

गौका वध करनेवालेका गोलीसे वध करना चाहिये । गोवध करना, वीरका वध करनेके समान, पुत्रका वध करनेके समान, भयकर कर्म है । अतः गौके वध कर्ताको गोलीसे विद्ध करनेयोग्य यहां समझा गया है ।

(१२) गायको लात मारना दण्डनीय है ।

ब्रह्मा । अध्यात्मं । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १३।१।५६)

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्यं च मेहति ।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न च्छायां करवोऽपरम् ॥ १९ ॥

[यः गां च पदा स्फुरति] जो गायको पांवसे ठुकराता है, [सूर्यं च प्रत्यङ् मेहति] या सूर्यके सन्मुख मूत्रोत्सर्ग करता है, [तस्य ते मूलं वृश्चामि] उस पुरुषका मूल मैं काटता हूं, [अपरं छायां न करवः] उसके पश्चात् तू अपनी छाया यहां नहीं करेगा ।

गायको लात मारना दण्डके योग्य है । गौको कभी लात न मारनी चाहिये । उसी तरह गौका वध करना, गौको विष देना अथवा अन्य प्रकारसे गौको कष्ट पहुंचाना दण्डनीय माना गया है । गौको किसी प्रकार कष्ट न पहुंचाना चाहिये, इसीलिये गौको ' अ-घ्न्या ' कहा है ।

(१३) अघ्न्या गौ ।

१. मारुतं गोषु अघ्न्यं शर्धं प्रशंस । [ऋ० १।३७।५] = मरुतोंके बलकी, जो गौओंकी हिंसासे रक्षा करता है, प्रशंसा करो ।

२. इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहाम् । [ऋ० १।१६४।२७, अथर्व० शौ० ७।७७।८, ९।१०।५] = यह अवध्य गौ अश्वि देवोंके लिए दूध दे ।

३. अघ्न्ये ! विश्वदानीं तृणं अद्धि । [ऋ० १।१६४।४०, अथर्व शौ० ७।७७।११, ९।१०।२०; पै० १६।६९।१०] = हे अवध्य गौ ! तू सदा घास खा ।

४. अघ्न्यायाः ततं घृतं शुचि । [ऋ० ४।१।६] = इस अवध्य गौका तपा घी शुद्ध है ।

५. सुप्रपाणं भवतु अघ्न्याभ्यः । [ऋ० ५।८३।८] = अवध्य गौओंके लिए उत्तम पीनेयोग्य पानी प्राप्त हो ।

६. यौ अघ्न्यां अपिन्वतं, अपो न स्तर्यम् । [ऋ० ७।६८।८] = अश्विदेवोंने अवध्य गौको पुष्ट किया और पात्रमें जल भरनेके समान उसमें दूध भर दिया ।

७. अघ्न्या पयोभिः तं वर्धेत् । [ऋ० ७।६८।९] = अवध्य गौ अपनी दुग्ध धाराओंसे उसको बढा दे । उसको पुष्ट कर दे ।

८ अघ्न्या त्रि सप्त नामा बिभर्ति । [ऋ० ७।८७।४] = अवध्य गौ इक्कीस नामोंको धारण करती है ।

९. अघ्न्यानां धेनूनां न पतिं इषुध्यति । [ऋ० ८।६९।२] = अवध्य गौओंके स्वामीकी वह इच्छा करता है ।

१०. कृशं न हासु अघ्न्या । [ऋ० ८।७५।८, तै० २।६।११।२ मै० ४।११।६, काठ० ७।१७।४] = दुबलेको ये अवध्य गौवें नहीं त्यागती, अर्थात उसे दूध पिलाकर पुष्ट करती है ।

११ न हि मे अस्ति अघ्न्या । [ऋ० ८।१०२।१९] = मेरे पास अवध्य गौ नहीं है ।

१२ इमं शिशुं अघ्न्या धेनव अभिश्रीणन्ति । [ऋ० ९।१।९] = इस बालकको ये अवध्य गौवें अपने दूधसे पुष्ट करती हैं । [अर्थात इस सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है ।] यहां 'शिशु' पदका अर्थ सोमवल्लीका रस है ।

१३ यं त्वा वाजिन् अघ्न्या अभ्यनूषत । [ऋ० ९।८०।२] = हे बलवान् सोम ! अवध्य गावें तेरी इच्छा करती हैं ।

१४ इन्दुः अघ्न्याया ऊधः पिप्ये । गावः पयसा चमूषु अभिश्रीणन्ति । [ऋ० ९।९३।४] = सोम अवध्य गौका दुग्धाशय पुष्ट करता है । ये गौवें अपने दूधसे सोमपात्रोंमें सोमरसको [illegible] देती हैं । अर्थात सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है ।

१५ वैभूवसः त्रित अघ्न्यायाः मूर्धन् इमं अविन्दत् । [ऋ० १०।४६।३]= विभूवसके पुत्र त्रितने अवध्य गौके [गोबरके] सिरपर इस अग्निको प्राप्त किया । [गोबर जलाकर अग्नि सिद्ध किया] । [यहांका 'अघ्न्या' पद गौसे उत्पन्न गोबरका वाचक है । गोबर भी नाश करने अयोग्य है, यह इसका तात्पर्य है । क्योंकि गोबरके खादसे उत्तम धान्य निर्माण होता है ।

१६. अघ्न्या नीचीनं दुहे । [ऋ० १०।६०।११, अथर्व शौ० ६।९१।२, पै० १९।११।१] = अवध्य गौका दूध अधोमार्गसे दुहा जाता है ।

१७ यः अघ्न्यानां क्षीरं भरति । [ऋ० १०।८७।१६, अथर्व शौ० ८।३।१५, पै० १६।७।६] = जो अवध्य गौका दूध लेता है ।

१८ इन्द्रः अघ्न्यानां पतिं अरक्षत । [ऋ० १०।१०२।७] = इन्द्रने अवध्य गौओंके स्वामीकी रक्षा की ।

१९. वत्सं जातं इव अघ्न्या । [अथर्व शौ० ३।३०।१, पै० ५।१९।१]= नये जन्मे बछडेको अवध्य गौ जैसा प्यार करती है [वैसी प्यार तुम एकदूसरेसे करो ।]

२० एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से निहन्यताम् । [अथर्व० शौ० ६।७०।१-३] = हे अवध्य गौ ! तेरा मन इसी तरह बछडेपर लग जाय ।

२१ यावतीनां ओषधीनां अघ्न्या गावः प्राश्नन्ति, तावतीस्तुभ्य शर्म यच्छन्तु । [अथर्व शौ० ८।७।२५, पै० १६।१४।६] = जो औषधियां अवध्य गौवें खाती हैं, वे तेरे लिए सुखकारी हों ।

२२. पिता वत्सानां पतिः अघ्न्यानां स पोषं कृणोतु । [अथर्व० शौ० ९।४।२,४, पै० १६।२४।२,५, काठ० १३।३०, मै० २।५।१०, ४।२।१०।७५, तै० सं० ३।३।९।२, ऐ० आ० ५।१।६, तै० ब्रा० ३।१।१।३] = बछडोंका पिता और अवध्य गौओंका पति बैल है, वह हमारा पोषण करे ।

२३. य अघ्न्यानां पुष्टिं स्वे गोष्ठे अव पश्यते। [अथर्व शौ० ९।४।१९; पै० १६।२५।९]= वह अवध्य गायोंकी पुष्टि अपनी गोशालामें देखता है।

२४. जिह्वा सं मार्ष्टु अघ्न्ये। [अथर्व० शौ० १०।९।३, पै० १६।१३६।३]= हे अवध्य गौ! तेरी जिह्वा मार्जन करे।

२५. पक्तारं अघ्न्ये! मा हिंसी। [अथर्व० शौ० १०।९।११, पै० १६।१३७।१]= हे अवध्य गौ! तेरे लिए अन्न पकानेवालेको कष्ट न पहुंचा।

२६. अघ्न्ये! ते लोमानि दात्रे आमिक्षां दुहताम्। [अथर्व० शौ० १०।९।२४, पै० १६।१३८।४]= हे अवध्य गौ! तेरे बाल दाताको दही दें।

२७. अघ्न्ये! ते रूपाय नमः। [अथर्व० शौ० १०।१०।१, पै० १६।१०७।१]= हे अवध्य गौ! तेरे स्वरूपके लिए प्रणाम है।

२८. अघ्न्ये! पदवीर्भव। अघ्न्ये! प्रजहि। अघ्न्ये! अनु संदह। [अथर्व० शौ० १२।१०।१२, १४, [५।५८, ६०], १०।२।४, [५।६३।१५] = हे अवध्य गौ! मार्गदर्शक हो। शत्रुका नाश कर। शत्रुको जला दे।

२९. प्रजानति अघ्न्ये! जीवलोकं। [अथर्व शौ० १८।३।४]= जीवितोंके स्थानको जाननेवाली अहिंसनीय स्त्री।

३० अघ्न्यौ। [अथर्व शौ० १८।४।४९]= अवध्य [बैल]।

३१. अघ्न्या मा रक्षतु। [अथर्व० शौ० १९।२६।२, २७।१५]= अवध्य गौ मेरी रक्षा करे।

३२ अघ्न्या [गाव] आप्यायध्वम्। [वा० य० १।१, काण्व० १।१, काठ० १।१, ३०।५०, मै० १।१, कपि० १।१, श० ब्रा० १।७।१।६, अघ्निया। [तै० स० १।२।८।१ ६।१।११।३, तै० ब्रा० १।४।३।२, ३।७।४।२]= गौवें अवध्य हैं, वे बढती रहें।

३३ इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता तेऽघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृत ब्रूतात्॥ [वा० य० ८।४३, श० ब्रा० ४।५।८।१०]
हव्ये काम्ये इळे रन्ते चन्द्रे ज्योते०। [काण्व० ९।३३, ला० श्रौ० ३।६।३]।
इडे रन्तेऽदिते सरस्वति प्रिये प्रेयसि महि विश्रुति।
एतानि ते अघ्निये नामानि०। [तै० सं० ७।१।६।८]।
इडे रन्ते सरस्वति महि विश्रुति० [पञ्च ब्रा० २०।१५।१५, ला० श्रौ० ९।४।१]।
केनापि न हन्यते इत्यघ्निया गौः। [सा० भा० तै० सं० ७।१।६।८]।

हे अवध्य गौ! तेरे नाम इडा [इळा], रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योता, अदिति, सरस्वति, मही, विश्रुति, प्रिया, प्रेयसी ये बारह हैं।

'कोई इसका हनन कर नहीं सकता, इसलिए अघ्न्या [अघ्निया] गौको कहते हैं, ऐसा [तै० सं० ७।१।६।८] सायन भाष्यमें कहा है। अर्थात गौकी अवध्यता इस पदसे स्पष्टतया जानी जाती है।

३४ विमुच्यध्वं अघ्न्या अगन्म तमसः पारम्। [वा० य० १२।७३, काण्व० १३।७४। मै० २।७।१२, काठ० १६।५०, कपि० २५।३, श० ब्रा० ७।२।२।२१, तै० ब्रा० ६।६।२]= हे अवध्य गौ! खोल दो बन्धनको, हम अन्धकारसे मुक्त हों।

३५ अयक्ष्मास्त सन्तु अघ्न्या। [पै० २।२०।२]= अवध्य गौवें यक्ष्मरोगसे रहित हों।

३६. अघ्न्या गावो घृतस्य मातरः । [ऋ० २।३३।५] = अवध्य गौवें घृतको पैदा करती हैं ।

३७. जीवन्त्वघ्न्याः । ता मे विषस्य दूषणीः । [पै० ४।२२।७] = अवध्य गौवें जीवित रहें वे मेरे विषको दूर करनेवाली हैं ।

३८ तीर्थे अवगाहन्ते अघ्न्या । [पै० ७।१३।११, १५।१५।१०] = तीर्थमें गौवें स्नान करती हैं ।

३९ तिरश्चीनां अघ्न्या रक्षतु । [पै० १०।८।५, १३।३।१६] = दुष्टोंसे अवध्य गौ हमारा रक्षण करे ।

४० तैर्युज्यन्तां अघ्निया । [तै० ब्रा० ३।६।१] = उनके साथ अब य बैलोंको जोत दिया जावे ।

४१. अस्मासु अघ्निया यूयं दधाथ इन्द्रियं पय । [तै० ब्रा० ३।७।१०।१] = हे अवध्य गौओं ! हमारे लिए इन्द्रियका बल बढानेवाला दूध तुम देती रहो ।

४२. गवां पतिः अघ्न्य । [अथर्व० शौ० ९।४।१७, पै० १६।२५।७] = गौओंका पति बैल अवध्य है ।

४३. आप अघ्न्या । [अथर्व० शौ० १९।४४।९, ७।८८।२, पै० १५।३।९, वा० य० ६।२२, २०।१८, काण्व० ६।३०; २२।४; मै. ३।२।१८, काठ० ३।२७, ३८।६०, श० ब्रा० ३।८।५।१०, १२।९।२।४, ऐ० आ० १।३।५, अघ्निया । [तै० सं० १।३।११।१, तै० ब्रा० २।६।६।२, ३।२।१।४, कपि० २।१५] = जलको नहीं बिगाडना चाहिये ।

४४ अघ्न्यौ मा आरताम् । [ऋ० ३।३३।१३, अथर्व० १४।२।१६] = दोनों अवध्य बैल दुःखको न प्राप्त हों ।

४५. अघ्न्यस्य मूर्धनि । [ऋ० १।३०।१९] = अहिंसनीय पर्वतके शिखरपर ।

४६. अघ्न्ये ! आमूलाद् ब्रह्मज्यं अनुसंदह । [अथर्व० शौ० १२।५।६२-६३, पै० १६।१४६।१२] = हे अवध्य गौ ! दुराचारीको समूल जला दे ।

४७ पयो अघ्न्यासु । [मै० १।२।६, काठ० २।३७, ४।५०, कपि० १।१९] = पयो अघ्नियासु । [तै० सं० १।२।८।१; ६।१।११।३, तै० ब्रा० १।४।३।३, ३।७।४।२], पयो अघ्न्यायां । [ऐ० ब्रा० ५।२७; ७।३] = अवध्य गौओंमें दूध होता है ।

४८ अघ्नियां उपसेरताम् । [तै० ब्रा० ३।७।४।१३] = अवध्य गौकी सेवा करो ।

४९. माऽदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ शूनमारताम् । [ऋ० ३।३३।१३, अथर्व० शौ० १४।२।१६] = उत्तम कर्म करनेवाले निष्पाप दोनों बैल क्षीण न हों । [दोनों जलप्रवाह न सूख जाय ।]

इस तरह वैदिक वाङ्मयमें १३७ बार ' अ-घ्न्या ' पद प्रयुक्त हुआ है । तैत्तिरीयोंके पाठसे ' अ-घ्नियाः । ' है । यह केवल बोलनेका ढंग है, अर्थकी दृष्टिसे दोनों पदोंका भाव एकही है । इनमें छः बार बैलके अर्थमें 'अघ्न्य' पद पुल्लिंगमें है । वैसेही पर्वत वाचक एक बार और जलप्रवाह-वाचक दो बार है, स्त्रीवाचक एक बार स्त्रीलिंगमें है । शेष १२७ बार स्त्रीलिंगमें गौ-वाचक ' अघ्न्या ' पद आया है । इनमें भी ३ बार धेनु और गौ पदका विशेषणरूप ' अघ्न्या ' पद है, शेष सब १२४ बार गो वाचक ' अघ्न्या ' पद है । यह पद मंत्रोंमें वारवार पुनरुक्त होनेके कारण ऊपर केवल ४९ वचन दिये हैं, येही पुनरुक्त होकर १३७ मन्त्रोंमें ' अघ्न्या ' पद आया है ।

' अघ्न्या ' किंवा ' अघ्निया ' पदका अर्थ (not to be killed) अर्थात् ' जिसका वध न होना चाहिये ' है । सायनाचार्यने इसका अर्थ [केनापि न हन्यते] ' किसीके द्वारा जो मारी नहीं जाती ' ऐसा किया है, जो ऊपर दिया है । जब यह नामही गौका है, तब गौका वध सर्वथा निषिद्धही है, यह बात वैदिक वाङ्मयमें निश्चितही है ।

जैसा गौका नाम ' अघ्न्या ' [अवध्य अर्थवाला] है वैसा न मनुष्यका नाम है, न किसी अन्य प्राणीका। इतनाही नहीं परन्तु ' अ-दिति ' यह दूसरा भी एक पद गौकी अवध्यता बतानेवाला वैदिक सारस्वतमें सुप्रसिद्ध है। इसका अर्थ [अ-दिति] काटनेके लिए अयोग्य है। इन दो पदोंमें भेद यही है कि, ' अघ्न्या ' का अर्थ स्पष्टतया ' गौ ' ऐसाही है, परन्तु ' अ-दिति ' पदके अर्थ गौ, काटनेको अयोग्य, प्रकृति, आदिमाता, देवमाता, अन्न देनेवाली, आदि अनेक हैं। परन्तु इन अनेक अर्थोंमें इस ' अ-दिति ' पदका ' अवध्य ' ऐसा एक अर्थ अवश्य है। जब यह पद गौके लिए वेदमें आता है, तब इसका अर्थ ' अ-वध्य ' मुख्यतया होता है।

वैदिक सारस्वतमें गौके नामोंमें ' अघ्न्या ' और ' अ-दिति ' ये दोनों पद सुप्रसिद्ध हैं। ' अदिति ' पदके अनेक अर्थोंमें एक अर्थ ' गौ ' है, परन्तु ' अघ्न्या ' पदका वैदिक या लौकिक संस्कृत सारस्वतमें ' गौ ' के बिना दूसरा कोई मुख्य अर्थ नहीं है। गौण वृत्तीसे जो २४ अन्य अर्थ होते हैं वे ऊपर उदाहरणके साथ दियेही है। पुल्लिंगमें ' अघ्न्य ' पदका बैल और स्त्रीलिंगमें ' अघ्न्या ' पदका ' गौ ' अर्थही केवल एकमात्र मुख्य अर्थ है।

वैदिक सारस्वतमें ' गौ 'का अर्थ बैल और गाय दोनों हैं, वैसेही ' अघ्न्या ' पदके अर्थ बैल और गौ लिंग-भेदसे हैं। वैदिक दृष्टिसे यदि कोई प्राणी ' अवध्य ' है, तो गौही है, अथवा बैलही है, इसीलिए गाय बैलके लिए ' अ-घ्न्य ' पदका प्रयोग होता है। यदि ' अघ्न्या ' नाम रखकर वेद-मन्त्र गौ या बैलके वधकी आज्ञा देंगे, तब तो वह अपनाही खण्डन करनेवाली ' वदतो व्याघातदोष ' की बात बनेगी। वैसी कल्पना वेदके विषयमें कोई न करेंगे।

इसलिए हमारा निःसंदेह कथन यह है कि, वेदमें जहां जहां गाय अथवा बैलके वधके साथ संबंध दर्शानेवाले मन्त्र आ जायेंगे, वहां इस ' अघ्न्या ' पदसे गौ या बैलके वधका सर्वथा निषेध सैकडों मन्त्रों द्वारा किया है, यह बात सबसे प्रथम स्वयं सिद्धही माननी चाहिये। अर्थात् ' गौ अवध्य है ' यह बात इस पदसे सिद्ध है, अतः अन्य वचनोंका अर्थ इस गौकी अवध्यता अटल मानकरही करना आवश्यक है। अर्थात् ऐसा मार्ग ढूंढना चाहिये कि, जिससे गौकी अवध्यता सिद्ध हो जाय और अन्य मन्त्र भी सुसंगत प्रतीत हों।

अब हम प्रथम यह देखना चाहते हैं कि गौके वधका निषेध मंत्रोंमें किस तरह किया गया है—

५० **गां मा हिंसीरदितिं विराजम्।** [वा० य० १३।४३, तै० सं० ४।२।१०।२, मै० २।७।२१, काठ० १६।२०९, १०२।५, श० ब्रा० ७।५।२।१९], **स्व गां मा हिंसीरदितिं विराजम्।** [काठ० १६।२०९] ' गौकी हिंसा न कर, क्योंकि यह अवध्य है और तेजस्विनी है।' हिंसा पदसे कृत, कारित, अनुमोदित सब प्रकारकी हिंसा लेनी चाहिये। क्रूर भाषण करना, क्रूरतासे प्रहार करना, आदि क्रूर बर्ताव भी किसी तरह गौके साथ नहीं होना चाहिये। वध तो सर्वथा निषिद्धही है।

मा गां अनागां अदितिं वधिष्ट। [ऋ० ८।१०१।१५, तै० ब्रा० ६।१२।१, कौ० ९२।१४; सा० मं० ब्रा० २।८।१५, पार० १।३।२७, आप० म० ब्रा० २।१०।१०, हिर० गृ० १।१३।१२, मान० गृ० १।९।२३] = ' गौ निष्पाप है और अन्न देती है, अतः वह अवध्य है, इसलिए गौका वध न कर।' तथा और देखिये—

५१ **महीं साहस्रीं असुरस्य मायां अग्ने मा हिंसीः।** [वा० य० १३।४४, काण्व० १४।४६; काठ० २।२४२; मै० २।२४२; तै० सं० ४।२।१०।३] = [महीं साहस्रीं] गौ सहस्रोंका पालन करनेवाली है और [असुरस्य मायां] ईश्वरकी अद्भुत शक्ति है, अतः उसकी हिंसा न कर। [कईयोंके मतसे यह मन्त्र बकरीके वधका निषेध करता है। हमने ' मही ' पदका गौ अर्थ जो वैदिक वाङ्मयमें है, वही यहां लिया है। महीका चाहे जो अर्थ हो, यह मन्त्र पशु-वधका निषेध करता है, इसमें संदेह नहीं है।] तथा—

५२ इमं साहस्रं शतधारमुत्सं व्यच्यमानं सरिरस्य मध्ये। घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥ [वा० य० १३।४९, काण्व० १४।५१, काठ १६।१६, मै० २।७।१७, तै० सं० ४।२।१०।२] = हे अग्ने ! तू गोरूपी पशुकी हिंसा न कर। यह गौ हजारों प्रकारके उपकार करनेवाली है। सैकडों क्षीरधाराओंसे दूधके हौज भरकर यह गौ अनेकोंको अन्न देती है। सब जनताके लिए घी देती है अतः इसकी हिंसा न कर। तथा—

५३ अनागोहत्या वै भीमा, कृत्ये, मा नो गामश्वं पुरुषं वधीः। [अथर्व० १०।१।२९] [अन्-आग-हत्या] निष्पापकी हत्या करना [भीमा] भयंकर कार्य है। हे [कृत्ये] मारक प्रयोग ! तू हमारी गौ, घोडे और पुरुषका [मा वधीः] वध न कर। और देखिये—

अथर्वा। यम। त्रिष्टुप्।

५४ कोशं दुहन्ति कलशं चतुर्बिलमिडां धेनुं मधुमतीं स्वस्तये। ऊर्जं मदन्तीमदितिं जनेष्वग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्॥ [अथर्व० १८।४।३०] = ये [चतुर्बिलं कोशं कलशं दुहन्ति] चार छेदोंवाले दुग्धाशयरूपी कलश जैसे खजानेका दोहन करते हैं। यह गौ [इडां] अन्न देनेवाली [मधुमतीं] मीठा रस देनेवाली हमारे [स्वस्तये] कल्याणके लिए [ऊर्जं मदन्ती] अन्न देकर आनंद बढानेवाली [जनेषु अदितिं] जनतामें अवध्य है। हे अग्ने ! इसकी हिंसा न कर।

इस तरह वेदमें गौकी हिंसाका निषेध करनेवाले मंत्र हैं। यह याज्ञ-हिंसाका निषेध नहीं है, प्रत्युत सभवनीय अयाज्ञ-हिंसाका निषेध है। क्योंकि गौका नामही ' अ-घ्न्या ' है और गौके वधका भी स्पष्ट शब्दोंसे निषेध किया गया है। अब देखिये इतना निषेध करनेपर भी कोई गौका वध करे, तो उसको वधका दण्ड लिखा है—

गो-घातकको वधदण्ड।

५५. अन्तकाय गोघातम्। [वा० य० ३०।१८, काण्व ३४।१८]। गौका वध करनेवालेको मृत्यु दण्ड दो। अर्थात् जो गौका वध करता है, उसका वधदण्डही योग्य है। जो गो-घातक है, वह इस तरह वध्य हुआ। तथा और देखो—

५६ क्षुधे, यो गां विकृन्तन्तं भिक्षमाण, उपतिष्ठति, तम्। [वा० य० ३०।१८, काण्व ३४।१८] ' जो [गां विकृन्तन्तं] गौके टुकडे करनेवालेके पास [भिक्षमाण उपतिष्ठति] भीख मांगनेके लिए उपस्थित रहता है, [तं क्षुधे] उसको भूखके लिए अर्पण करो। ' अर्थात् गौका वध करनेवालेसे जो भीख लेनेकी अपेक्षा करता है, वह भी भूखसे मरे। भीख मांगनेवाला भी गोघातकके घर भिक्षा न मांगे। चाहे वह भूखसे मरे, परंतु गोघातकके घर भीख मांगनेके लिए भी न जावे। गोघातकके घर अन्य कार्यके लिए कभी न जावें, यह इसीसे सिद्ध होता है। अर्थात् गोघातकपर इतना तीव्र सामाजिक बहिष्कार रखना चाहिए। भूखो मरे, परन्तु गोघातकसे अन्न लेकर जीनेका यत्न न करें।

इतने विवरणसे यह सिद्ध हुआ कि—

१ गौका नाम ' अघ्न्या ' है और बैलका नाम ' अघ्न्य ' है। इन पदोंका अर्थ ' अवध्य, वध करनेको अयोग्य ' ऐसा है। इसलिए गौका वध न करना चाहिए। बैल भी उसी तरह अवध्य है।

२ ' अघ्न्य ' पदका अर्थ बैल है, और ' अघ्न्या ' पदका अर्थ गौ है। इस अर्थके सिवा इस पदका कोई दूसरा मुख्य अर्थ वेदमें अथवा संस्कृत भाषामें नहीं है। अतः गाय तथा बैलकी अवध्यता स्पष्टता-पूर्वक दिखानेके लिएही ये पद बने हैं। अतः गाय और बैलका वध नहीं होना चाहिए।

मा गां वधिष्ट, गां मा हिंसी। ' ऐसी आज्ञा अनेक बार करके वेदमंत्रोंद्वारा गोवधका सुस्पष्ट रीतिसे

निषेध किया है। इसलिए गायका वध न होना चाहिए। इसी तरह बैलके वधका भी निषेध है। क्योंकि वेदमें 'गौ' पदके गाय और बैल ऐसे दो अर्थ हैं।

४ गोघातकको मृत्यु देवताके लिए समर्पण करनेकी आज्ञा वेद देता है। इससे गो-घातक वध्य हुआ। जो गौका वध करेगा वह वध्य होगा, इसलिए वैदिक सभ्यतामें गौका वध होना असंभव है।

५ गोवधकर्ताके ऊपर सामाजिक बहिष्कार इतना तीव्र रखा जाता था कि, गोवधकर्ताके पास भीख मांगनेके लिए भी कोई न जा सके। फिर दूसरे कार्योंके लिए जाना तो सर्वथा असंभवसा प्रतीत होता है। जो भीखमंगा गोवधकर्ताके पास जाकर भीख मांगे, उसको भूखाही रखा जाता था। इस निर्बंधसे प्रतीत होता है कि, गोवध करना और सम्मानसे रहना वैदिक समयमें असंभव था।

अबतकके विवरणसे इतनी बात स्पष्टताके साथ सिद्ध हो चुकी है। अब जो वेदमन्त्र इसके विरोधीसे दीखते हैं, उनका विचार करना है। वेदमें कई मन्त्र ऐसे दीखते हैं कि, जो गोवध होनेका सन्देह पाठकोंके मनमें उत्पन्न कर सकें। उनका विचार यह है—

(१४) शस्त्र गायके टुकडे कर सकता है।

अग्नि सौचीको, वैश्वानरो वा। अग्नि। त्रिष्टुप्। [ऋ० १०।७९।६]

किं देवेषु त्यज एनश्चकर्थाग्ने पृच्छामि नु त्वामविद्वान्।
अक्रीळन् क्रीळन् हरिरत्तवेऽदन्वि पर्वशश्चकर्त गामिवासिः॥ २०॥

हे अग्ने! [अविद्वान् त्वां नु पृच्छामि] मैं अनपढ तुझसे पूछता हूँ कि, [देवेषु त्यजः एनः किं चकर्थ] देवोंमें क्या तू पाप कर चुका है? [क्रीळन् अक्रीळन्] खेलता या न खेलता हुआ [हरिः] हरिद्वर्णवाला तू [अत्तवे] खानेके लिए लकडी वगैरह [अदन्] खाता हुआ, [असिः गां इव] तलवार गायके जैसे टुकडे करेगी, वैसे [पर्वशः वि चकर्त] छोटे छोटे पर्व या गाँठोंमें विशेषतया लकडी आदिको जलानेके समय तोड चुका।

[यथा] असिः गां पर्वशः [वि कृन्तति, तथा] त्वं हे अग्ने! पर्वशः वि चकर्त।

जैसे खड्ग जोडोंसे गौके टुकडे करता है, वैसेही तू, हे अग्ने! सब खानेकी वस्तुओंके टुकडे करता है। [और उन पदार्थोंको शनैः शनैः भक्षण करता है।]

इस मन्त्रमें गायके टुकडे करनेकी आज्ञा नहीं है, प्रत्युत यह एक उपमा है। जैसी तलवार गौके टुकडे करती है, वैसा अग्नि लकडी आदिको खण्डशः खाता है। यहां तलवारका गुण बताया है और अग्निके जलानेकी रीति कही है। यह गोवधका विधान नहीं है। केवल उपमा देनेसे यह आज्ञा नहीं समझी जाती। इसके अतिरिक्त 'गौ' पदके अर्थोंमें 'गौसे उत्पन्न हुए पदार्थ' ऐसा भी अर्थ है। [तथा 'गो' पदके अनेक अर्थ बतानेवाला आगे आनेवाला प्रकरण भी यहां देखिये] परन्तु इसका विचार जिस समय वैसी आज्ञा आ जायगी उस समय किया जायगा। यहां मूढ याजक क्या करते हैं, यह प्रथम देखना है—

(१५) मूढोंका यज्ञ।

अथर्वा [ब्रह्मवर्चसकामः]। आत्मा। त्रिष्टुप्। [अथर्व० ७।५।५]

मुग्धा देवा उत शुनाऽयजन्तोत गोरङ्गैः पुरुधाऽयजन्त।
य इमं यज्ञं मनसा चिकेत प्र णो वोचस्तमिहेह ब्रवः॥ २१॥

' [मुग्धाः देवाः] मूढ याजक [शुना अयजन्त] कुत्तेसे यज्ञ करते हैं, और [गोः अङ्गैः] गौके अवयवोंसे [पुरुधा अयजन्त] अनेक प्रकारसे यज्ञ करते हैं । जो इस सबके बीच याजकोंके [मनसा चिकेत] यज्ञको मनसे जानता है, वह आकर [नः प्र वोचत्] हमें कहे, वह [इह] यहां आकर हमें [प्र ब्रवः] कहे । ' कि ऐसा यज्ञ हो रहा है ।

यह मूर्खोंका यज्ञ है, इसमें कुत्तेके मांसका और गौके मांस-खण्डोंका हवन किया जाता है । पर यह पापोंका कुकर्म है । यह कोई वैदिक आर्योंका शुभ कर्म नहीं । गोवध करनेसे इन याजकोंको दण्ड दिया जायगा और वे अपने ऐसे कुकर्मोंका फल अवश्य भोगेंगे । ऐसे कुमार्गी लोग गौका वध करते हैं, पर राजाके आदेशसे उनको वधका दण्ड मिलता है । इसलिए उक्त मंत्रमें कहा है कि, किसीको ऐसे कुकर्मका पता लगा, तो वह आकर शासकोंको खबर दे, और शासक उक्त कुकर्म-कर्ताको योग्य दण्ड दे ।

गोवध करके उसके मांस-खण्डोंका हवन करनेसे अतिसार रोगकी उत्पत्ति हुई, ऐसा चरक नामक वैद्यक ग्रन्थमें अतिसारकी उत्पत्तिके प्रकरणमें लिखा है । इस सब लेखका तात्पर्य यही है कि ' गौ अवध्य है । '

(१६) गौकी प्रशंसा करनेवाले देव ।

विश्वामित्रो गाथिनः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । [ऋ० ३।५७।१]

प्र मे विविक्वाँ अविदन्मनीषां धेनुं चरन्तीं प्रयुतामगोपाम् ।
सद्यश्चिद्या दुदुहे भूरि धासेरिन्द्रस्तदग्निः पनितारो अस्याः ॥ २२ ॥

[विविक्वान्] विवेकशील इन्द्रने [मे मनीषां] मेरी प्रिय अथवा प्यारी [प्रयुतां चरन्तीं] अकेली चरती हुई [अगोपां धेनुं] अरक्षिता गायको [प्र अविदत्] प्राप्त कर लिया, [या सद्यः] जो गौ तुरन्तही [भूरि धासेः] बहुत दुग्धरूपी अन्न [दुदुहे] देती है, [तत् अस्याः] अतः इसकी, [इन्द्रः अग्निः] इन्द्र, अग्नि और अन्य सब देव* भी, [पनितारः] सराहना करनेवाले होते हैं ।

सर्वेश [इन्द्रः] प्रभु हमारी प्यारी गौकी रक्षा करता है । यद्यपि गौ अकेली घूमती रही, तो भी प्रभुकी कृपासे उसकी रक्षा होती रहती है । वह गौ घर आकर पर्याप्त दूध देती है, [उस दूधसे सब देवोंके लिए हवि दी जाती है,] अतः अग्नि, इन्द्र तथा सब अन्य देव इस गौकी बहुत प्रशंसा करते हैं । सब देवोंद्वारा सदा गौकी प्रशंसा होती रहती है ।

१ अस्याः भूरि धासेः [धेनोः] अग्निः इन्द्रः [विश्वे च देवाः] पनितारः । = इस बहुत दूध देनेवाली गौकी अग्नि इन्द्र आदि सब देव प्रशंसा करते हैं ।

२ विविक्वान् प्रयुतां चरन्तीं अगोपां धेनुं प्र अविदत् ।= विवेकी पुरुष अकेली विचरनेवाली अरक्षिता गायको भी सुरक्षित करता है, [अर्थात् अरक्षिता गौको भी सुरक्षित रखता है, अथवा अरक्षित देखकर भी किसी तरह उपद्रव नहीं देता ।] अरक्षिता गौको भी सुरक्षित रखना चाहिये ।

* इस मन्त्रमें ' विश्वे देवाः ' (सब देव) इस पदकी अनुवृत्ति द्वितीय मन्त्रसे आती है । और इस सूक्तकी देवता ' विश्वे देवाः ' है, इसलिए ये पद अर्थ करनेके समय यहाँ लेना उचित है । ' पनितारः ' बहुवचन होनेसे भी यहाँ इन्द्र और अग्निके अतिरिक्त ' अन्य देव ' लेना आवश्यकही है ।

(१७) गौके सामने देव व्रती रहते हैं।

बिन्दुः पूतदक्षो वा आङ्गिरसः। मरुतः। गायत्री। (ऋ. ८।९४।२)

यस्या देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते।
सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २३ ॥

(यस्या उपस्थे) जिस गोमाताके निकट (विश्वे देवाः) सभी देव (व्रता धारयन्ते) व्रतोंको धारण करते हैं और (दृशे कं सूर्यामासा) देखनेमें सुखदायी होकरही सूर्य और चन्द्र भी विशेष प्रकाशते रहते हैं। [अर्थात् ये भी गौके सामने व्रती होकर संयमपूर्वक रहते हैं।]

गौके सामने सब देव नियमसे रहते हैं, गौके भयसे कोई देव अपने नियमोंका उल्लंघन नहीं करते। [इस मन्त्रमें पूर्व मन्त्रसे ' गौ ' पदकी अनुवृत्ति है, इसलिए अर्थमें पूर्व मन्त्रसे ' गौ ' पद लिया है।]

१ यस्याः (गोः) उपस्थे विश्वे देवाः व्रता धारयन्ते। = गौके सम्मुख सब देव नियमोंका पालन करते हैं, कोई नियमोंका उल्लंघन नहीं करते। [अर्थात् अपने नियत गुणधर्मसे ये सब देव रहते हैं।]

२ सूर्यमासा कं दृशे। = सूर्य और चन्द्र भी अपने सुखदायक प्रकाशसे प्रकाशते हैं। [यह सब गौका प्रभाव है।] गौके लिएही सूर्य प्रकाशता है, चन्द्र शीतल चांदनी देता है, जल शीतल होकर तृषा शान्त करता है, वायु बहती है, वनस्पतियाँ उगती और फूल फल देती हैं, इसी तरह सब अन्य देव अपने अपने कार्य करते हैं, यह सब गौके लिएही है। गौको सुख मिले, गौको आनन्द हो, गौकी वृद्धि हो, इसलिए ये सब देव इस तरह अपने नियमोंका पालन करते हैं। यही गौकी महिमा है।

(१८) गौवें जहां रहें वहाँ परम पद है।

दीर्घतमा औचथ्यः। विष्णुः। त्रिष्टुप्। (ऋ. १।१५४।६)

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि ॥ २४ ॥

(यत्र) जिस स्थानमें (भूरिशृङ्गाः अयासः गावः) बडी सींगवाली चपल गायें रहती हैं, (ता वास्तूनि) उन घरोंमें (वां गमध्यै) तुम जाकर रहो, ऐसी हमारी (उश्मसि) इच्छा है, (अत्र अह) यहाँ सचमुच (उरु गायस्य वृष्णः) अति प्रशंसित तथा बलवान देवका (परमं पदं) श्रेष्ठ स्थान (भूरि अव भाति) बहुत प्रकाशमान होता है।

१ यत्र गावः, ता वास्तूनि, तत् उरुगायस्य वृष्णः परमं पदं अव भाति। = जहां गौवें रहती हैं, वे घर, वह स्थान, सबके द्वारा वर्णित बलवान ईश्वरका परम पद है, ऐसा प्रतीत होता है। [परम धामके समान वह गौका स्थान प्रकाशता है।]

जिस देशमें बहुतसी नीरोग गौवें सुखसे रहती हों, वही परम श्रेष्ठ देश है। गौवोंकी विपुलता हो तोही उस स्थानका महत्त्व बढता है। अर्थात् यह महत्त्व गौओंकाही है।

(१९) गौ परमेश्वरकी सामर्थ्यही है।

प्रजापतिर्वैश्वामित्रः, प्रजापतिर्वाच्यो वा। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ. ३।५५।१६)

आ धेनवो धुनयन्तामशिश्वीः सबर्दुघाः शशया अप्रदुग्धाः।
नव्यानव्या युवतयो भवन्तीर्महद्देवानामसुरत्वमेकम् ॥ २५ ॥

[अ-शिश्वीः] जिनके पास बछडे नहीं पहुँचे हैं, [शशयाः] जो सोयी हुई हैं, [अ-प्रदुग्धाः] जिनका दूध नहीं दुहा जा चुका है, [सबर्दुघाः धेनवः] ऐसी विपुल दूध देनेहारी गौएँ [युवतयः] युवक दशामें विद्यमान, [नव्या नव्याः] नये नये रूप [भवन्ती] धारण करनेवाली [आ धुनयन्ता] जिस दूधकी वर्षा करती, वह [एक देवानां महत् असुरत्वं] एक सब देवोंकी बडी भारी ईश्वरी जीवन-सामर्थ्य है।

' गौ ' परमेश्वरके अद्भुत सामर्थ्यसे निर्माण हुई है। गौका दूध भी परमेश्वरकी प्रत्यक्ष अद्भुत सामर्थ्यही है। सब देवोंद्वारा एक बडी भारी [असु-र-त्वं] जीवनका सामर्थ्य प्रकट होती है, वह सम्पूर्ण सामर्थ्य उस गौमें दूधके रूपसे रहती है। अर्थात् गौका दूध परमेश्वरी सामर्थ्यसे भरपूर है।

१ सबर्दुघा धेनवः [यत्] आ धुनयन्तां, [तत्] देवानां एकं महत् असु-र-त्वम्। = विपुल दूध देनेवाली गौवे [जिस अमृतरसरूप दूधकी] वृष्टि करती हैं, [वह] सब देवोंको एकही जीवन देनेवाला अद्भुत और बडा सामर्थ्य है।

गौके देहमें, गौके अवयवोंमें, सब देव रहते हैं और वे अपना अपना अद्भुत प्रभाव उस गौके दूधमें रखते हैं, इसीलिए गौके दूधमें देवी जीवनका रस रहता है। सब देवोंकी अद्भुत सामर्थ्य गौके दूधमें रहती है। गौकी आखोंमें सूर्य, नासिकामें वायु, प्राण और अश्विनौ, जिह्वामें जल देवता, मुखमें अग्नि, कानमें दिशाएँ, पेटमें ओषधियाँ, इस तरह सब अन्य अवयवोंमें सब अन्य देव हैं। वे सब अपनी दैवी सामर्थ्य दूधमें रखते हैं। इसलिए दूध अमृत-रस है।

[२०] गायोंका उत्पन्नकर्ता प्रभुही है।

श्यावाश्व आत्रेयः। इन्द्रः। शक्वरी। [ऋ० ८।३६।५]

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥२६॥

हे [शतक्रतो सत्पते इन्द्र] सैकडों कार्य करनेवाले सज्जनोंके पालनकर्ता प्रभो ! [मरुत्वान्] तू मरुतोंके साथ रहनेवाला [अप्सुजित्] जलोंमें विजयी होनेवाला [विश्वाः पृतनाः सेहानः] सभी शत्रुकी सेनाओंका पराभव करनेवाला [उरु ज्रयः] बहुत वेगवाला- एवं [गवां अश्वानां जनिता असि] गायों और घोडोंका सृजनकर्ता है, इसलिए [ते] तेरे लिए [यं भागं अधारयन्] जिसे भागके रूपमें धर दिया था, उस [कं सोमं] सुखदायक सोमको अब [मदाय पिब] आनन्दके लिए पी जाओ।

१ गवां जनिता इन्द्रः = गौओंका उत्पन्नकर्ता प्रभुही है।

पुरुषसूक्तमें भी ऐसाही कहा है— ' गावो ह जज्ञिरे तस्मात्। ' [ऋ० १०।९०।१०, वा० य० ३१।८, काण्व० ३५।८; अथर्व० १९।६।१२] = गौवें उस परमेश्वरसे उत्पन्न हुईं। जिस तरह मिट्टीसे घडा, सोनेसे जेवर और पीतलसे बर्तन बनते हैं, वैसीही परमेश्वरसे गौवें निर्माण हुई हैं। परमेश्वरही गौवोंका ' अभिन्न-निमित्त-उपादान-कारण ' है, अतः परमेश्वरही गौका रूप धारण करता है। ' पुरुषही यह सब विश्व है। ' [ऋ० १०।९०।२] ऐसा कहा है। इससे यह सिद्ध है कि, परमेश्वरही गौ है। जैसा अन्य सब विश्व परमेश्वर है वैसी गौ भी परमेश्वरहीका रूप है।

(२१) विश्वरूपी गौ

वामदेवो गौतमः । ऋभवः । त्रिष्टुप् । [ऋ० ४।३३।८]

रथं ये चक्रुः सुवृतं नरेष्ठां ये धेनुं विश्वजुवं विश्वरूपाम् ।
त आ तक्षन्त्वृभवो रयिं नः स्ववसः स्वपसः सुहस्ताः ॥ २७ ॥

[ये ऋभवः] जिन ऋभुओंने [सु-वृतं नरे-ष्ठां रथं चक्रुः] सुन्दर ढंगसे चलनेवाले, नेताओंमें प्रतिष्ठापनीय रथको बना लिया, [ये विश्व-जुवं विश्व-रूपां धेनुं] जो सबको प्रेरणा देनेवाली, विश्वरूप गायको निर्माण कर चुके, [ये स्ववसः = सु-अवस] वे ऋभुदेव अच्छे अन्नोंसे युक्त [स्वपस = सु-अपसः, सु-हस्ता] अच्छे कर्मोंसे युक्त तथा कुशल कार्यकर्ता होते हुए उत्तम हाथोंसे युक्त [नः रयिं आ तक्षन्तु] हमारे लिए धन निर्माण करें ।

इस मन्त्रमें कहा है कि ' ऋभवः विश्वरूपां धेनुं चक्रुः । '= ऋभु देवोंने विश्वरूपी गौका निर्माण किया । यहां विश्वरूप गौका अर्थ ' अनेक रंगरूपवाली गौ ' ऐसा भी है और ' विश्वरूपी गौ ' ऐसा भी है । इस दूसरे अर्थके विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

गोतमो राहूगणः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । [ऋ० १।८९।१०]

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।
विश्वे देवा अदितिः पञ्चजना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम् ॥ २८ ॥

(अदितिः द्यौः) अदितिही द्यु है, (अदितिः अन्तरिक्षं) अदितिही अन्तरिक्ष है, (अदितिः माता) अदितिही माता है, (सः पिता) अदितिही पिता है, अदितिही (सः पुत्रः) पुत्र है । (अदितिः विश्वे देवाः) अदितिही सारे देव हैं; (अदितिः पञ्चजनाः) अदितिही पाँचों जातियोंके लोग हैं, (अदितिः जातं जनित्वं) अदितिही समूचा अतीतकाल वस्तुजात है और आगे चलकर भविष्यमें होनेवाला सब कुछ अदितिही है ।

यहांपर अदितिका अर्थ गौ है । गौकाही यह सब रूप है । यह सारा विश्व गौकाही विश्वरूप है । यह बात विदित है कि, अदिति शब्द गौका पर्यायवाची शब्द है । (निघण्टु २।११)

द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, भूलोक, पिता, माता, पुत्र, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांच प्रकारके लोग, भूत भविष्य वर्तमानमें जो हुआ था, जो हो रहा है और जो होगा वह सब गौरूपही है । इससे सब विश्व[illegible] जो है, सब अदिति अर्थात् अ-खण्ड गौका रूप है, यह बात स्पष्ट शब्दोंमें लिखी है । जो भी कुछ है, [illegible] गौरूपही है ।

१ अदितिः द्यौः अन्तरिक्षं, [भूमिः,] विश्वे देवाः, पञ्चजना पिता, माता, पुत्रः, जातं जनित्वं [भूत भविष्य]= अखण्ड गौही द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक, [भूलोक], सूर्य, वायु, अग्नि आदि सब देव, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र निषाद, ये पांच प्रकारके लोग, पिता माता पुत्र, भूत वर्तमान और भविष्यकालमें जो भी है, [illegible] है । गौकाही यह [illegible] है । [' गौः ' पद इस [illegible] विश्वरूपका वाचक है ।]

इस विषयमें निम्न स्थानमें लिखित संपूर्ण सूक्त देखिये—

(अथर्व० ९।७।१—२६)

(एक. पर्यायः) ब्रह्मा । गौः । १ आर्चीबृहती, २ आर्च्युष्णिक्, ३,५ आर्च्यनुष्टुप्, ४,१४,–१६ साम्नी बृहती, ६,८ आसुरी गायत्री, ७ त्रिपदा पिपीलिकमध्या निचृद्गायत्री, ९,१३ साम्नी गायत्री, १० पुर उष्णिक्, ११–१२, १७,२५ साम्न्युष्णिक, १८,२२ एकपदाऽऽसुरी जगती, १९ एकपदाऽऽसुरी पङ्क्ति, २० याजुषी जगती, २१ आसुर्यनुष्टुप्, २३ एकपदाऽऽसुरी बृहती, २४ साम्नी भुरिग्बृहती, २६ साम्नी त्रिष्टुप्, ७,१८–१९,२२–२३ द्विपदा।

प्रजापतिश्च परमेष्ठी च शृङ्गे इन्द्रः शिरो अग्निर्ललाटं यमः कृकाटम् ॥ १ ॥
सोमो राजा मस्तिष्को द्यौरुत्तरहनुः पृथिव्यधरहनुः ॥ २ ॥
विद्युज्जिह्वा मरुतो दन्ता रेवतीर्ग्रीवाः कृत्तिका स्कन्धा घर्मो वहः ॥ ३ ॥
विश्वं वायुः स्वर्गो लोकः कृष्णद्रं विधरणी निवेष्यः ॥ ४ ॥
श्येनः क्रोडोऽन्तरिक्षं पाजस्यं बृहस्पतिः ककुद्बृहतीः कीकसाः ॥ ५ ॥
देवानां पत्नीः पृष्टय उपसदः पर्शवः ॥ ६ ॥
मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टा चार्यमा च दोषणी महादेवो बाहू ॥ ७ ॥
इन्द्राणी भसद्वायुः पुच्छं पवमानो बालाः ॥ ८ ॥
ब्रह्म च क्षत्रं च श्रोणी बलमूरू ॥ ९ ॥
धाता च सविता चाष्ठीवन्तौ जङ्घा गन्धर्वा अप्सरसः कुष्ठिका अदितिः शफाः ॥ १० ॥
चेतो हृदयं यकृन्मेधा व्रतं पुरीतत् ॥ ११ ॥
क्षुत्कुक्षिरिरा वनिष्ठुः पर्वताः प्लाशयः ॥ १२ ॥
क्रोधो वृक्कौ मन्युराण्डौ प्रजा शेपः ॥ १३ ॥
नदी सूत्री वर्षस्य पतय स्तना स्तनयित्नुरूधः ॥ १४ ॥
विश्वव्यचाश्चर्मौषधयो लोमानि नक्षत्राणि रूपम् ॥ १५ ॥
देवजना गुदा मनुष्या आन्त्राण्यत्रा उदरम् ॥ १६ ॥
रक्षांसि लोहितमितरजना ऊबध्यम् ॥ १७ ॥
अभ्रं पीबो मज्जा निधनम् ॥ १८ ॥
अग्निरासीन उत्थितोऽश्विना ॥ १९ ॥
इन्द्रः प्राङ् तिष्ठन् दक्षिणा तिष्ठन् यमः ॥ २० ॥
प्रत्यङ् तिष्ठन् धातोदङ् तिष्ठन्त्सविता ॥ २१ ॥
तृणानि प्राप्तः सोमो राजा ॥ २२ ॥
मित्र ईक्षमाण आवृत्त आनन्दः ॥ २३ ॥
युज्यमानो वैश्वदेवो युक्तः प्रजापतिर्विमुक्तः सर्वम् ॥ २४ ॥

एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम् ॥ २५ ॥
उपैनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवस्तिष्ठन्ति य एवं वेद ॥ २६ ॥

(प्रजापतिः च परमेष्ठी च शृङ्गे) गौके दो सींग मानो प्रजापति और परमेष्ठी है। (शिर इन्द्रः ललाटं अग्निः, कृकाटं यमः) इस गौका सिर माथा तथा गलेकी घाँटी क्रमशः इन्द्र, अग्नि तथा यम है ॥ १ ॥

(सोमः राजा मस्तिष्कः) राजा सोम मस्तिष्क है, (उत्तरहनुः द्यौः अधरहनुः पृथिवी) इसके दोनों जबड़े द्युलोक तथा भूलोक हैं ॥ २ ॥

(जिह्वा विद्युत्, दन्ता मरुतः, ग्रीवा रेवतीः, स्कन्धा कृत्तिकाः, वहः घर्मः) इसकी जीभ, दाँत, गर्दन, कंधे तथा कूबड़ क्रमशः बिजली, मरुत्, रेवती, कृत्तिका और सूर्य है ॥ ३ ॥

(वायुः विश्वं, कृष्णद् स्वर्गो लोकः) वायु सब अवयव तथा स्वर्गलोक कृष्णद्र है, (विधरणी निवेष्यः) धारक शक्ति पृष्ठवंशकी सीमा है ॥ ४ ॥

(श्येनः क्रोडः) श्येन उस गौकी गोद है, (अन्तरिक्षं पाजस्यं) अन्तरिक्ष पेट है, (बृहस्पतिः ककुत्) बृहस्पति ककुद है, (बृहती कीकसाः) बृहती हड्डी है ॥ ५ ॥

(देवानां पत्नीः पृष्टयः) देवोंकी पत्नियाँ पीठके भाग है, (उपसदः पर्शवः) उपसद् इष्टियाँ पसलियाँ हैं ॥६॥

मित्र तथा वरुण (अंसौ) कंधे हैं, त्वष्टा और अर्यमा (दोषणी) बाहु भाग है, (बाहू महादेवः) महादेव बाँहे है ॥ ७ ॥

इन्द्राणी (भसत्) गुह्य भाग है, (वायुः पुच्छं, पवमानः बालाः) वायु पूछ है, पवमान केश हैं ॥ ८ ॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय (श्रोणी) चूतड़ है, (बलं ऊरू) बल रानें हैं ॥ ९ ॥

धाता तथा सविता (अष्ठीवन्तौ) टखने है (गन्धर्वाः जङ्घा) गन्धर्व जाँघें है, (अप्सरसः कुष्ठिकाः, अदितिः शफाः) अप्सराएँ खुरभाग हैं, और अदिति खुर है ॥ १० ॥

(चेतो हृदयं) चेतना हृदय है, मेधाबुद्धि यकृत् है, व्रत उसकी आँतें हैं ॥ ११ ॥

(क्षुत् कुक्षिः) क्षुधा कोख है, (इरा वनिष्ठुः) अन्न बड़ी आंत है, (पर्वताः प्लाशयः) पहाड़ छोटी आंत है ॥ १२ ॥

(क्रोधो वृक्कौ) क्रोध गुर्दे हैं, (मन्युः आण्डौ) उत्साह अण्डकोश है, (प्रजाः शेपः) प्रजा जननेंद्रिय है॥१३

(नदी सूत्री) नदी सूत्रनाडी है, (वर्षस्य पतयः स्तनाः) वर्षापति मेघ स्तन हैं, (ऊधः स्तनयित्नुः) गरजनेवाला मेघ दुग्धाशय है ॥ १४ ॥

(विश्वव्यचा चर्म) सभी जगह फैला हुआ आकाश चमड़ा है, (ओषधयः लोमानि) ओषधियाँ रोंगटे है, (नक्षत्राणि रूपं) नक्षत्र रूप है ॥ १५ ॥

(देवजनाः गुदा) देवजन गुदा है, (मनुष्या आन्त्राणि) मानव आंते है, (अत्रा उदरं) भक्षक प्राणी उदर है ॥ १६ ॥

(रक्षांसि लोहितं) राक्षस खून है, (इतरजना ऊबध्यं) अन्य लोग अपचित अन्न है ॥ १७ ॥

(अभ्रं पीवः) मेघ मेद, चरबी है, (निधनं मज्जा) मरण मज्जा है ॥ १८ ॥

(आसीनः अग्निः, उत्थितः अश्विना) बैठना और उठना अग्नि तथा अश्विनौ है ॥ १९ ॥

(प्राङ् तिष्ठन् इन्द्रः) पूर्व दिशामें ठहरना इन्द्र है, और (दक्षिणा तिष्ठन् यमः) दक्षिण दिशामें ठहरना यम है ॥२०॥

(प्रत्यङ् तिष्ठन् धाता) पश्चिम दिशामें ठहरता धाता है। (उदङ् तिष्ठन् सविता) उत्तर दिशामें ठहरता सविता है ॥ २१ ॥

(तृणानि प्राप्तः सोमः राजा) तृणोंको प्राप्त होनेपर राजा सोम बनता है ॥ २२ ॥

(ईक्षमाणः मित्रः) देखनेवाला सूर्य, और (आवृत्तः आनन्दः) लौट आनेपर आनन्द है ॥ २३ ॥

(युज्यमानः वैश्वदेवः) जोते जानेपर सब देव होते हैं, (युक्तः प्रजापतिः) जोतनेपर प्रजापति, (विमुक्तः सर्वं) और छोड जानेपर सब कुछ बनता है ॥ २४ ॥

(एतत् वै गोरूपं) यह निस्सन्देह गोरूप है, यही (विश्वरूप सर्वरूप) गौका विश्वरूप तथा सर्वरूप है ॥ २५ ॥

(यः एवं वेद) जो इस बातको जानता है, (एनं विश्वरूपाः सर्वरूपाः पशवः उपतिष्ठन्ति) उसके समीप विश्वरूपी और सर्वरूपी सब पशु रहते हैं ॥ २६ ॥

इस सूक्तमें गौके विश्वरूपका जो वर्णन है वह निम्नलिखित तालिकामें बताया जाता है—

गौके अवयवोंमें देवताओंका स्थान।

गौके अंग	देवता
मंत्र १	
गौके सींग (दोनों)	प्रजापति, और परमेष्ठी
गौका सिर	इन्द्र
गौका माथा	अग्नि
गौके गलेका भाग	यम
मंत्र २	
गौका मस्तिष्क	सोम राजा
गौका ऊपरका जबडा	द्युलोक
गौका निचला जबडा	पृथिवी
मंत्र ३	
गौकी जिह्वा	विद्युत् बिजुली
गौके दांत	मरुत
गौकी गर्दन	रेवती (नक्षत्र)
गौके कंधे	कृत्तिका
गौका कूबड	सूर्य
मंत्र ४	
गौकी निवेष्य	विश्वरणी
गौके सब (प्राणापान)	वायु
गौके कृष्णद्र	स्वर्गलोक
मंत्र ५	
गौकी गोद	श्येन

गौका पेट	अन्तरिक्ष
गौका ककुद (कूबड़)	बृहस्पति
गौकी हड्डी	बृहती (छन्द)
मंत्र ६	
गौकी पीठका भाग	देवपत्नियाँ
गौकी पसलियाँ	उपसद इष्टियाँ
मंत्र ७	
गौके कंधे (दोनों)	मित्र और वरुण
गौके बाहुभाग (दोनों)	त्वष्टा और अर्यमा
गौके बाहु (दोनों)	महादेव
मंत्र ८	
गौका गुह्य भाग (योनि)	इन्द्राणी
गौका पुच्छ	वायु
गौके बाल (केश)	पवमान (सोम)
मंत्र ९	
गौके चूतड़ (दोनों)	ब्राह्मण और क्षत्रिय
गौकी रानें (दोनों)	बल
मंत्र १०	
गौके टखने	धाता और विधाता
गौकी जाँघें (दोनों)	गन्धर्व
गौके खुरभाग	अप्सराएँ
गौके खुर	अदिति
मंत्र ११	
गौका हृदय	चेतना (चैतन्य)
गौका यकृत	मेधा बुद्धि
गौकी आँतें	व्रत (यज्ञनियम)
मंत्र १२	
गौकी कोख	क्षुधा
गौकी बड़ी आंत	अन्न
गौकी छोटी आंत	पर्वत
मंत्र १३	
गौके गुर्दे	क्रोध
बैलके अण्ड	मन्यु (उत्साह)
बैलका जननेन्द्रिय	प्रजा
मंत्र १४	
गौकी नाड़ी	नदी

गौके स्तन	नद्योंका पति मेघ
गौका दुग्धाशय	गर्जनेवाला मेघ
मंत्र १५	
गौका चमड़ा	व्यापक आकाश
गौका लोम	औषधियाँ
गौका रूप	नक्षत्र तारागण
मंत्र १६	
गौकी गुदा	देवजन, देवलोक
गौकी आंतें	मनुष्य
गौका पेट	भक्षक प्राणी
मंत्र १७	
गौका रक्त	राक्षस
गौका अपचित अन्न	इतर जन
मंत्र १८	
गौका मेद	अभ्र
गौकी मज्जा	निधन (मृत्यु)
मंत्र १९	
गौ बैलका बैठना	अग्नि
गौ बैलका उठना	अश्विनौ
मंत्र २०	
गौका पूर्व–दिशामें ठहरना	इन्द्र
गौका दक्षिण–दिशामें ठहरना	यम
मंत्र २१	
गौका पश्चिम–दिशामें ठहरना	धाता
गौका उत्तर–दिशामें ठहरना	सविता
मंत्र २२	
बैल घासको प्राप्त होनेसे	सोम राजा होता है
मंत्र २३	
बैल देखने लगनेसे	मित्र राजा होता है
बैल लौट आनेसे	आनन्द राजा होता है
मंत्र २४	
बैल जोतनेके समय	सब देवराजा होता है
बैल जोते जानेपर	प्रजापति राजा होता है
बैल मुक्त होनेपर (छोडनेपर)	सब कुछ राजा होता है
मंत्र २५	
गोरूप	सब रूप

यहां ' गोरूप ' का अर्थ गाय और बैलका मिलकर रूप लेना चाहिये । क्योंकि इन मंत्रोंमें दोनोंका वर्णन है । बैलही हलमें जोते जानेसे प्रजापति अर्थात् प्रजाओंका पालन करनेवाला बनता है । मित्र सूर्य विष्णु आदि बैलही होता है । क्योंकि बैल हलमें जोते जानेसे भूमीपर धान्य उगता है, जो सब प्रजाका पालन पोषण करता है ।

इस तरह गौ और बैल सब देवतारूप है, प्रत्यक्ष तीनों लोक इन गौ और बैलसे हैं । यहां गौसे कोई इतर नहीं है ऐसी बात नहीं है ।

अदितिके (ऋ० १।८९।१०) मंत्रमें जो संक्षेपसे विश्वरूप कहा, वही अति विस्तारसे इस सूक्तमें वर्णित है । तात्पर्य सब विश्वभरमें जो देवताओंका रूप है, वह सब गौकाही रूप है, यह इस सूक्तने स्पष्ट किया है । यह गौकी महिमा है ।

इस गौके विश्वरूपके तथा गौके सर्व देवतामय होनेके विषयमें अनेक पुराणोंमें विस्तारके साथ वर्णन आया है, जो पुराणोंके वर्णनके प्रसंगमें (गो-ज्ञान-कोश द्वितीय विभागमें) दिया जायगा ।

गौ विश्वरूप अर्थात् सर्व देवतामय, परम पूजनीय और सम्यक् सेवनीय देवता है, अतः उसकी उत्तम सेवा करनेसेही मानवोंका सुख बढ सकता है ।

अब पुनः संक्षेपसे गौके विश्वरूप सब देवी तथा उस गौका दूध देवता सेवन करते हैं, इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखिये—

कश्यप । वशा । अनुष्टुप्, ३१ उष्णिग्गर्भा । (अथर्व० १०।१०।३०–३१)

वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः ।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ ५५ ॥
वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये ।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासत ॥ ५६ ॥

वशा गौही द्युलोक, भूलोक तथा प्रजापालक विष्णु है, (ये साध्याः वसवः च) जो साध्य तथा वसु हैं, वे (वशायाः दुग्धं अपिबन्) वशा गौका दुग्ध पी चुके हैं, जो साध्य तथा वसु (वशायाः दुग्धं पीत्वा) वशा गौका दूध पीकर रहे हैं, (ते वै) वे सचमुच (ब्रध्नस्य विष्टपि) सूर्य-मण्डलपर (अस्याः पयः उपासते) उसके दूधका सेवन या पूजन करते हैं ।

१ वशा द्यौः पृथ्वी विष्णुः प्रजापतिः ।= वशमें रहनेवाली गौही द्युलोक, भूलोक, विष्णु (व्यापक देव), प्रजापति (प्रजाका पालनकर्ता) देव है । अर्थात् गौही यह सब है ।

द्युलोक, भूलोक अर्थात् बीचका अन्तरिक्ष भी गौही है । इन त्रिलोकीमें रहनेवाले देव भी गौही हैं । विष्णु देव भी गौका रूप धारण करता है । संक्षेपसे यह गौका विश्वरूपही है ।

२ साध्या वसवः वशाया दुग्धं अपिबन् ।= साध्य देव और अष्टवसु ये सब देव वशा गौका दूध पीते हैं । स्वर्गमें रहकर ये देव वशा गौका दूधही पीते हैं । क्योंकि वही स्वर्गीय अमृत है ।

३ साध्या वसवः च ब्रध्नस्य विष्टपि वशाया दुग्धं उपासते ।= साध्य व अष्टवसु ये सब देव स्वर्गमें रहकर इस वशा गौका दूध प्राप्त करते हैं और इसी दूधकी उपासना करते हैं अर्थात् ये देव वशा गौका दूध पीकर स्वर्गमें रहते हैं ।

गौवोंके भेद।

गौवोंके कई भेद हैं— (१) वशा, (२) सूतवशा, (३) विलिप्ती। इनके विषयमें निम्नलिखित मंत्रमें वर्णन है -

कश्यप। वशा। अनुष्टुप्। (अथर्व० १२।४।४७)

त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा।
ताः प्र यच्छेद्ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ ४७ ॥

(वशा-जातानि त्रीणि) गौकी तीन जातियां हैं, एक (विलिप्ती) घी मले जानेके समान जिसका शरीर चिकना रहता है, दूसरी (सूत-वशा) सेवकके सामने रहनेपर जो वशमें रहती है और तीसरी (वशा) सबके वशमें रहती है। गौकी ये तीन जातियां हैं। ये तीनों प्रकारकी गौवें ब्राह्मणको देनेयोग्य हैं। जो इन गौओंका दान ब्राह्मणोंको देता है, वह प्रजापतिके कोपसे दूर रहता है, अर्थात प्रजापतिका आनन्द वह प्राप्त करता है।

इस मन्त्रमें तीन प्रकारकी गौओंका वर्णन है।

दानके योग्य तीन गौवें।

१ **वशा गौः**— जो सबके वशमें रहती है, किसीको सींग या टांग नहीं मारती, जब चाहे, छोटा लडका भी उसका दोहन करके दूध प्राप्त कर सकता है।

२ **सूत-वशा गौः**— (१) सेवक सामने खडा रहा हो, तभी जो वशमें रहती है। सेवकके दूर होनेपर जो वशमें नहीं रहती। (२) अथवा (सूत) बछडा साथ रहनेसे जो (वशा) वशमें रहती है।

३ **विलिप्ती गौः**— सब शरीरपर घीके मले जानेके समान चिकने शरीरवाली गौ। इस गौके दूधमें घीकी मात्रा अत्यधिक होती है।

इसी (अथर्व० १२।४) सूक्तमें और तीन नाम गौके लिए आ गये हैं। ये तीन जातियां भी यहाँ वर्णन करना है

४ **अ-वशा**— जो कभी वशमें रहतीही नहीं, सदा ऊधम मचाती रहती है। किसीको दूध दुहने नहीं देती, ऐसी उच्छृंखल गौ (अथर्व० १२।४।४२)।

५ **भीमा भीमतमा**— भयानक। दिखनेमें भयङ्कर और बर्तावमें भी भयानक। इसे पालना कठिन है। (अथर्व० १२।४।४१,४८)।

६ **वशानां वशतमा**— वश रहनेवाली गौओंमें अत्यंत वशमें रहनेवाली। जिस गायसे किसी तरहके कष्ट होनेकी संभावनाही नहीं है। यह गौ बहुत दूध देती है, दिनमें अनेकबार दूध देती है और चाहे जब दूध देती है (अथर्व १२।४।४२)। कामधेनु यही है, कामना होनेपर जो दूध देती है वही कामधेनु है।

यहां तकके वर्णनसे यह स्पष्ट है कि गौके गुणोंके अनुसार गौकी निम्नलिखित जातियां समझी जाती हैं —

[१] वशा, वशानां वशतमा, [२] सूतवशा, [३] विलिप्ती, [४] कामदुघा, कामधेनु, [५] अवशा, [६] भीमा, भीमतमा। अन्तिम दो दान करनेके अयोग्य हैं और पहिली चार अथवा तीन जातियोंकी गौवें दानके योग्य हैं। ' वशा, सूतवशा और विलिप्ती ' का दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये ऐसा स्पष्ट आदेश ऊपरके मंत्रमें है।

ब्राह्मणका घर पाठशालाके समान जैसा पठन-पाठनका केन्द्र हुआ करता था, इसलिए और वह विद्या-प्रचारका स्थान था इसलिए, ब्राह्मणोंको गौओंका दान करनेका विधान इस मंत्रमें किया है। जब ब्राह्मण अपनी सुविधा बिना वेतन राष्ट्रके नवयुवकोंको प्रदान करते रहते हैं, तब उनकी तथा ब्रह्मचारियोंकी आजीविकाके लिए आवश्यक गोधनादिका दान करना जनताका कर्तव्यही होता है। गौका दान करना हो तो वशा, सूतवशा, विलिप्ती और कामदुघाओंमें किसी जातिकी गौका दान करना चाहिये, अवशा, भीमा ये गौवें दानके लिए अयोग्य हैं।

(२९) एक गाय।

अथर्वा। कश्यपः, सर्वे ऋषय, छन्दांसि च, विराट्। अनुष्टुप्। [अथर्व० ८।९।२५]

को नु गौः क एकऋषिः किमु धाम का आशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुः कतमो नु सः ॥ ५८ ॥

[क नु गौः] सचमुच एक गाय कौन है? [क एकः ऋषिः] कौन एक ऋषि है? [किं उ धाम] कौनसा एक धाम है? [काः आशिषः] कौनसे आशीर्वाद है? [पृथिव्यां एकवृत् यक्षं] पृथ्वीमें एकही व्यापक पूजनीय देव है, [सः एक ऋतु कः नु?] भला वह एक ऋतु कौनसा है? इन प्रश्नोंका उत्तर अगला मंत्र दे रहा है—

एको गौरेक एकऋषिरेकं धामैकधाशिषः।
यक्षं पृथिव्यामेकवृदेकर्तुर्नाति रिच्यते ॥ ५९ ॥

[एकः गौः] एकही गौ है, [एकः ऋषिः] एकही ऋषि है, [एक धाम] एकही स्थान है, [आशिषः एकधा] आशीर्वाद भी एकही प्रकारसे दिया जाता है, [पृथिव्यां एकवृत् यक्ष] भूमिपर एकही व्यापक पूज्य देव है। [ऋतु एकः] एकही ऋतु है, [न अतिरिच्यते] उससे बढकर दूसरा कुछ भी नहीं। अर्थात् इस विश्वमें सब मिलकर एकही गोरूपी सत् है।

[१] सपूर्ण विश्व मिलकर एकही विश्वरूपी गौ है, [२] सपूर्ण विश्वमें व्यापक एकही परमात्मा-परमेश्वर सबका ज्ञाता और द्रष्टा ऋषि है, [३] सब विश्व मिलकर एकही परम धाम है, एकही स्थान है, [४] सबके लिए एकही आशीर्वाद है, जो सबके मिलकर कल्याणके लिएही दिया जाता है, [५] पृथ्वीभरमें एकही व्यापक पूजनीय देव है, जिसके ज्ञानी, शूर, व्यापारी और कारीगर ये क्रमशः सिर, बाहु, पेट और पांव है। अर्थात् जनता-जनार्दन-ही यह सर्वके द्वारा पूजनीय यक्ष है। [६] एकही ऋतु यह है, जो मानवोंमें शुभकर्म करनेके लिए अखण्ड उत्साह-रूपसे रहता है। इससे बढकर दूसरा कोई भी नहीं है।

यहां कहा है कि विश्वरूपी एकही गौ है, जिसका दूध सब खाते पीते हैं, और सब जिससे पुष्ट होते हैं। इस गौकी देखभाल करनेवाला स्वामी एकही प्रभु है और इस गौके रहनेकी गोशाला विश्वभरमें व्यापक एकही स्थान है और वही परमपद है। यह वर्णन विश्वरूपी गौकाही है जो अथर्व. ९।७ में किया गया है।

विश्वरूपी गौ एकही हो सकती है, क्योंकि विश्वभरमें व्यापक एकही वस्तु होना संभव है। एक स्थान जो विश्वभरमें व्यापक है वह एकही है। इस मंत्रमें यद्यपि गौ, ऋषि, यक्ष आदि विभिन्न नाम हैं, तथापि वे एकही

गौ सब कुछ है।

विश्वरूप गौ है, अथवा गौ विश्वरूपी है, किंवा सब विश्वका और विश्वान्तर्गत सब पदार्थोंका नाम गौ है, अर्थात् गौ शब्दसे सबका ज्ञान होता है। इसके प्रमाण अब सुनिये—

(२३) ' गो ' का यौगिक अर्थ

[१] गम् (गच्छ)= गवौ। ' गच्छति इति गौः ' = जो चलती है, गमन करती है, जो गतिशील है वह ' गौ ' है।

[२] गा (गाङ्) गतौ। ' गाते इति गौः = जो गति करती है वह गौ है। इन दो धातुओंसे ' गौ ' पदकी सिद्धि होती है। अर्थात् ' गौ ' पदमें ' गति, गतिमत्त्व ' गुण है। जो गतियुक्त है वह ' गौ ' है। सब जगत्, सब संसारही गतियुक्त है, संपूर्ण विश्वही गतिमय है, संसार गतिवाला है, इसलिए संसारको ' संसारचक्र ' कहते हैं। जिस कारण सब विश्व गतिशील है, उसी कारण यौगिक अर्थसे, अथवा तत्त्वार्थसे, संपूर्ण विश्व ' गौ ' ही है। जो गौकी विश्वरूपता ऊपर दिये गये मंत्रों और सूक्तोंद्वारा बतायी गयी, वही इस यौगिक अर्थसे भी बतायी गयी है।

गम् = ग + ओ = गौ (जो गतियुक्त है)
गा = गा + ओ = गौ (जो गतियुक्त है)

विश्व गौ है, क्योंकि वह गतिमान है और संपूर्ण विश्वमें ऐसी कोई वस्तु नहीं कि, जो गतियुक्त न हो। गतिमय संपूर्ण विश्व होनेसे उसका अन्वर्थक नाम ' गौ ' हुआ है। यौगिक अर्थसे संपूर्ण विश्वही ' गौ ' है। अब विश्वके अन्तर्गत पदार्थोंका वाचक ' गौ ' पद है, इस विषयमें कुछ प्रमाण देखिये—

गौ = द्युलोक, स्वर्ग, आदित्य।

निघण्टु नामक वैदिक कोशमें (अ. १।४ में) स्वर्ग, द्युलोक तथा आदित्यके ६ नाम दिये हैं वे ये हैं— ' स्वः। पृश्निः। नाकः। गौः। विष्टप्। नभः ' — इति षट् साधारणानि। (निघण्टु १।४)

निरुक्तमें इनके विषयमें लिखा है कि, ये ६ पद (दिवश्च आदित्यस्य च। निरुक्त २।१३) द्युलोक तथा सूर्यके वाचक हैं। अर्थात् ' गौ ' का अर्थ ' स्वर्लोक, द्युलोक और सूर्य ' हुआ। इनमें ' नभ ' पद आकाशवाचक है, इसलिए ' गौ ' का अर्थ ' आकाश ' हुआ।

स्वर्गलोक, द्युलोकका नाम ' गौ ' हुआ। इसका अर्थ इस लोकमें रहनेवाले सूर्य, सूर्य-किरण आदि पदार्थ भी ' गौ ' ही हुए। द्युलोकस्थ पदार्थोंके साथ द्युलोक ' गौ ' पदसे जाना जाता है। अतः निरुक्तकार कहते हैं कि ' **गौ आदित्यो भवति** (निरु. २।१४) = आदित्यका, सूर्यका वाचक ' गौ ' पद है। क्योंकि सूर्य गतिमान है और वह गति उत्पन्न करता है।

सूर्यकी किरणें तथा अन्य सब प्रकाशकी किरणें भी ' गौ ' पदसे जानी जाती हैं। निघण्टु १।५ में किरणवाचक पन्द्रह पद दिये हैं, इनमें ' गावः, उस्राः ' ये गौवाचक नाम हैं। इस तरह गौका अर्थ किरण-वाचक हुआ। प्रकाशकी किरणें सम्पूर्ण विश्वभरमें व्यापक हैं, इसलिए भी सम्पूर्ण विश्वमें ' गौ ' व्यापक है, ऐसा कहा जा सकता है। इसी कारण नक्षत्रोंका नाम भी ' गौ ' है, क्योंकि उनमें गति है और किरण भी उनसे चारों ओर फैलती हैं। इस तरह द्युलोक तथा उसके अन्तर्गत सब पदार्थोंका वाचक ' गौ ' पद हुआ।

अन्तरिक्षलोकवासी गौ ।

अन्तरिक्षलोकका नाम भी ' गौ ' है [ऋ० १।८०।१०] । अन्तरिक्षलोकमें रहनेवाले पदार्थोंका नाम भी ' गौ ' ही है । ' गो [चन्द्रमा]ऽपि गौरुच्यते । सुषुम्णः सूर्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः ' । [वा० य० १८।४०, नि० २।५।६, ५।५।२४] चन्द्रमाका नाम गौ है । ' सर्वेऽपि रश्मयो गाव उच्यन्ते ' । [नि० २।१।७] सब प्रकारकी किरणें गो शब्दसे बोधित होती हैं । चन्द्रमाकी किरणें ' गो ' पदसे जानी जाती हैं । विद्युत और बिजली भी गौ पदसे ज्ञात होती है ।

येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता । विद्युद् भवन्ती० ॥ [ऋ० १।१६४।२९; नि० २।२।९] यह गौ शब्द करती है । यह मेघमें रहती हुई यह शब्द करती है, गर्जन करती है । विद्युत् रूपसे प्रकट होती है । [निघण्टु ५।१।५४] में पदनामोंमें ' गो ' पदका पाठ है । अन्तरिक्षलोकमें इन्द्र, रुद्र ये देव रहते हैं । इन्द्रके लिए ' वृषभ ' पद वेदमन्त्रोंमें प्रयुक्त हुआ है । रुद्रका वाहन ' वृषभ ' है । मेघका नाम भी ' वृषभ ' वेदमन्त्रोंमें है । ये सब अन्तरिक्ष स्थान-निवासी हैं । ' गौ ' का अर्थ बैल और गौ दोनों प्रकारका है । ' विद्युत, इन्द्रका वज्र, मेघ ' ये अर्थ इस तरह ' गौ ' पदके हैं ।

' वृषभ ' राशीका वाचक गो पद है । यह राशी नक्षत्रपुञ्जकाही नाम है, जो आकाशमें विद्यमान है ।

भूलोकवासी गौ ।

निघण्टु १।१ में प्रारंभमेंही पृथ्वीवाचक इक्कीस वैदिक नाम दिये हैं । इनमें ' गौ, मही, अदितिः ' ये पद गौके वाचक हैं । गौ पद पृथ्वीवाचक सुप्रसिद्ध है । सब भाषाओंमें वही ' गौ ' पद रहा है— [लाटिन] Bos बोस्, [प्राचीन जर्मन] Chuo चूओ, [नवीन जर्मन] kuh कू, [इंग्लिश] Cow काउ, [केल्टिक] Golhw गौ, [गाथिक] Gavi गावि, [आधुनिक जर्मन] Gau गौ । इस तरह वैदिक ' गौ ' पद आज भी अनेक भाषाओंमें दिखाई दे रहा है । इस विषयमें विशेषरूपसे आगे देखिये—

' **गौरिति पृथिव्या नामधेयं, यत् अस्यां भूतानि गच्छन्ति** । [निरु० २।१।१] = ' गौ ' पद पृथ्वीका वाचक है । क्योंकि पृथ्वी स्वयं गतियुक्त है, और सब प्राणी इस पृथ्वीपर चलते हैं । इस कारण इस भूमिको ' गौ ' कहते हैं । घर, रहनेका स्थान, जल, जलप्रवाह, गाय, बैल, पशु, गौसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थ अर्थात दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी, चर्म, मांस, हड्डी, मेद, तांत, मूत्र, गोमय, गोबर आदि सब पदार्थ गो पदसे जाने जाते हैं । इन्द्रियोंका नाम गौ है, शरीरके बाल, केश गौ कहे जाते हैं । वाणी, शब्द, वाक्य वक्तृत्व गौ पदसे बोधित होता है [निघ० १।११] । भूमिकी खानमें प्राप्त होनेवाले हीरा, रत्न, सोना आदि भी गौही कहे जाते हैं, क्योंकि वह गो नाम पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ है । इसी तरह भूमिमें उत्पन्न होनेके कारण ' धान्य, वृक्ष, वनस्पति ' भी गौ कहे जाते हैं । दिशा-दर्शक यंत्र भी गौ कहा जाता है ।

जिस तरह ' गौ ' से उत्पन्न दूध, दही आदि सब पदार्थ ' गौ ' ही कहे जाते हैं, उसी तरह भूमिरूपी ' गौ ' से उत्पन्न सभी पदार्थ, जो भी भूमिसे उत्पन्न होते हैं, ' गौ ' ही कहे जाते हैं । इसी कारण सब खनिज पदार्थ ' गौ ' कहे जाते हैं ।

निघण्टु ३।१६ में कवि, स्तोता, गायक आदिकोंके तेरह नाम दिये हैं । इनमें ' गौ, नद, रुद्र ' ये पद हैं । ' रुद्र ' का नाम ' पशुपति ' प्रसिद्ध है, ' नद ' अर्थात नदी जल और घासद्वारा गौके साथ संबंध रखती है । ये सब नाम स्तोताके यहां हैं । इनमें ' गौ ' भी है, इसका अर्थ कवि, काव्यकर्ता है । पर्जन्य भी भूमिसे उत्पन्न होनेसे कारण ' गौ ' कहे जाते हैं और यह भाव ऋ० १।८५।१० इस मन्त्रने प्रमाणित की है ।

भूमिसे उत्पन्न होनेके कारण 'सोम, ऋषभ औषधि, रोहिणी वनस्पति, चणिका नामक घास' ये सब वनस्पतियां 'गौ' नामसे सुप्रसिद्ध हैं। 'गोपीथ' का अर्थ 'सोमरसपान' है [ऋ० १।१९।१] वैद्यक-कोश [रा० नि० व० ५] में अष्टवर्ग वनस्पतिमें ऋषभ औषधि 'गो' पद-वाचक है, ऐसा लिखा है, उसी ग्रन्थके [रा० नि० व० ८ वें भाग] से 'चणिका तृण' यह अर्थ लिया है। मेदिनी-कोशमें 'रोहिणी' वनस्पति अर्थ दिया है।

'गौ' संख्या गो शब्दसे बोधित होती है, महापद्म संख्या भी [१०००,००,००,००,००० महापद्म] 'गौ' पदसे जानी जाती है। इस विषयमें ताण्ड्य महा-ब्राह्मण [अ० १७, ख० १४, व० २] का वचन देखिये—

१ यदा अग्निहोत्रं जुहोति, अथ दश-गृहमेधिन आप्नोति एकया रात्र्या,
२ यदा दशसंवत्सरानग्निहोत्रं जुहोति, अथ दर्शपूर्णमासयाजिनं आप्नोति,
३ यदा दशसंवत्सरान्दर्शपूर्णमासाभ्यां यजते, अथ अग्निष्टोमयाजिनं आप्नोति
४ यदा दशभिः अग्निष्टोमैर्यजते, अथ सहस्रयाजिनं आप्नोति,
५ यदा दशभिः सहस्रैः यजते, अथ अयुतयाजिनं आप्नोति,
६ यदा दशभिः अयुतैः यजते, अथ प्रयुतयाजिनं आप्नोति,
७ यदा दशभिः प्रयुतैः यजते, अथ नियुतयाजिनं आप्नोति,
८ यदा दशभिः नियुतैः यजते, अथ अर्बुदयाजिनं आप्नोति,
९ यदा दशभिः अर्बुदैः यजते, अथ न्यर्बुदयाजिनं आप्नोति,
१० यदा दशभिः न्यर्बुदैः यजते, अथ निखर्वकयाजिनं आप्नोति,
११ यदा दशभिः निखर्वकैः यजते, अथ बद्वयाजिनं आप्नोति,
१२ यदा दशभिः बद्वैः यजते, अथ अक्षितयाजिनं आप्नोति,
१३ यदा दशभिः अक्षितैः यजते, अथ गौः भवति,
१४ यदा गौः भवति, अथ अग्निर्भवति,
१५ यदा अग्निः भवति, अथ संवत्सरस्य गृहपतिं आप्नोति,
१६ यदा संवत्सरस्य गृहपतिर्भवति, अथ वैश्वदेवस्य मात्रां आप्नोति।

इसका अर्थ निम्नलिखित तालिकामें देते हैं जिससे गौका प्रमाण समझमें आ जायगा—

१ एक अग्निहोत्र	=	१ गृहमेधी	१
२ दश संवत्सर अग्निहोत्र	=	१ दर्शपूर्ण याजी	१०
३ दश संवत्सर दर्शपूर्ण०	=	१ अग्निष्टोम याजी	१००
४ दश अग्निष्टोम	=	१ सहस्र याजी	१०००
५ दश सहस्र यजन	=	१ अयुत याजी	१०,०००
६ दश अयुत यजन	=	१ प्रयुत याजी	१००,०००
७ दश प्रयुत यजन	=	१ नियुत याजी	१०,००,०००
८ दश नियुत याजी	=	१ अर्बुद याजी	१००,००,०००
९ दश अर्बुद याजी	=	१ न्यर्बुद याजी	१०,००,००,०००
१० दश न्यर्बुद याजी	=	१ निखर्व याजी	१००,००,००,०००
११ दश निखर्व याजी	=	१ बद्व याजी	१०,००,००,००,०००
१२ दश बद्व याजी	=	१ अक्षित याजी	१००,००,००,००,०००
१३ दश अक्षित याजी	=	१ गौ	१०००,००,००,००,०००

१४ एक गौ = १ आंगिन

१५ एक आंगिन = १ संवत्सर गृहपति

१६ एक संवत्सर गृहपति = वैश्वदेव मात्रा

इस तरह 'गौ' पदका अर्थ एक महापद्म संख्या, या गव्योंकी संख्या है। अर्थात् इतने यज्ञ करनेसे मनुष्यको, अर्थात् याजकको, 'गौ' का अधिकार प्राप्त होता है। वह 'गौ' ही बनता है।

इतने विवरणसे यह स्पष्ट हुआ कि 'गौ' पदका यौगिक वाच्यार्थ 'गतिशील' है और सब विश्व गतिशील है, इसलिए समग्र विश्वही गोवाचक है। निघण्टु तथा निरुक्तमें गौका अर्थ द्युलोक और भूलोक दिया है, अर्थात् बीच-का अन्तरिक्षलोक भी उसमें आ गया। इन तीनों लोकोंमें जो भी कुछ वस्तुमात्र है, उसके समेत तीनों लोक गौ पदसे बोधित होते हैं, इससे भी सम्पूर्ण विश्व 'गौ' पदसे बोधित हुआ। यही भाव 'अदितिर्द्यौः' [ऋ० १।८९।१०] इस मंत्रमें तथा अथर्व० ९।७ सूक्तमें कहा है। इस तरह विश्वरूप गौ है, यह तीनों प्रमाणोंसे सिद्ध हुआ है। वैदिक वाङ्मयमें गौ पदसे सम्पूर्ण विश्व बोधित होता है।

'गौ' में सब विश्व स्थानीय देवताओंके अंश हैं। विश्वमें ऐसा कोई पदार्थ नहीं कि, जो गौमें अंशरूपसे न रहा हो। इस तरह भी गौ विश्वरूपी है। पुराणोंमें गौका कौन अंश कौनसा देवता है इसका विस्तारसे वर्णन है, जो पुराणके प्रकरणमें [गो-ज्ञान-कोश द्वितीय भागमें] आ जायगा।

इतने विवरणसे जो बताया है, वही संक्षेपसे कोशग्रन्थोंमें इस तरह दिया है। सबसे प्रथम अमरकोश, विश्व-कोश, मेदिनीकोश आदिमें 'गौ' के अर्थ देखिये—

गोपे गोपालगोसंख्यगोधुगाभीरवल्लवाः ॥ ५७ ॥
गोमहिष्यादिकं पादबन्धनं द्वौ गवीश्वरे।
गोमान् गोमी गोकुलं तु गोधनं स्याद् गवां व्रजे ॥ ५८ ॥
त्रिष्वाशितं गवीनं तद् गावो यत्राशिताः पुरा।
उक्षा भद्रो बलीवर्द ऋषभो वृषभो वृषः ॥ ५९ ॥
अनड्वान् सौरभेयो गौः उक्ष्णां संहतिः औक्षकम्।
गव्या गोत्रा गवां वत्सधेन्वोः वात्सकधैनुके ॥ ६० ॥
उक्षा महान्महोक्षः स्याद् वृद्धोक्षस्तु जरद्गवः।
उत्पन्न उक्षा जातोक्षः सद्योजातस्तु तर्णकः ॥ ६१ ॥
शकृत्करिस्तु वत्सः स्याद् दम्यवत्सतरौ समौ।
आर्षभ्यः षण्डतायोग्यः षण्डो गोपतिरिट्चरः ॥ ६२ ॥
स्कन्धप्रदेशस्तु वहः सास्ना तु गलकम्बलः।
स्यान्नस्तितस्तु नस्योतः प्रष्ठवाड् युगपार्श्वगः ॥ ६३ ॥
धूर्वहे धुर्यधौरेयधुरीणाः सधुरंधराः।
उभावेकधुरीणैकधुरावेकधुरावहे ॥ ६५ ॥
स तु सर्वधुरीणो यो भवेत् सर्वधुरावहः।
माहेयी सौरभेयी गौः उस्रा माता च शृङ्गिणी ॥ ६६ ॥
अर्जुन्यघ्न्या रोहिणी स्याद् उत्तमा गोषु नैचिकी।
वर्णादिभेदात् संज्ञाः स्युः शबलीधवलादयः ॥ ६७ ॥

द्विहायनी द्विवर्षा गौरेकाब्दा त्वेकहायनी ।
चतुरब्दा चतुर्हायण्येवं त्र्यब्दा त्रिहायणी ॥ ६९ ॥
वशा वन्ध्याऽवतोका तु स्रवद्गर्भाऽथ संधिनी ।
आक्रान्ता वृषभेणाथ वेहद्गर्भोपघातिनी ॥ ७० ॥
काल्योपसर्या प्रजने प्रष्ठौही बालगर्भिणी ।
स्यादचण्डी तु सुकरा बहुसूतिः परेष्टुका ॥ ७० ॥
चिरसूता बष्कयणी धेनुः स्यान्नवसूतिका ।
सुव्रता सुखसंदोह्या पीनोध्नी पीवरस्तनी ॥ ७१ ॥
द्रोणक्षीरा द्रोणदुग्धा धेनुष्या बन्धके स्थिता ।
समांसमीना सा यैव प्रतिवर्षं प्रसूयते ॥ ७२ ॥
ऊधस्तु क्लीबमापीनं समौ शिवककीलकौ ॥ ७३ ॥ [अमरकोश २।९]
स्वर्गेषु पशुवाग्वज्रदिङ्नेत्रघृणिभूजले ।
लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः— ॥ २५ ॥ [अमरकोश ३।३]
गौर्नादित्ये बलीवर्दे किरणक्रतुभेदयोः ।
स्त्री तु स्याद्दिशि भारत्यां भूमौ च सुरभावपि ॥
नृस्त्रियोः स्वर्गवज्राम्बुरश्मिदृग्बाणलोमसु । [केशव]
गौः स्वर्गे च बलीवर्दे रश्मौ च कुलिशे पुमान् ।
स्त्री सौरभेयीदृग्बाणदिग्वाग्भूष्वप्सु भूम्नि च ॥ [मेदिनी]

कोशोंकेही क्रमसे इनके अर्थ ये हैं—

१ गोप = गां पाति । पा रक्षणे ।

'गोपो गोपालके गोष्ठाध्यक्षे पृथ्वीपतावपि ।
ग्रामौघाधिकृते पुंसि सारिवाख्यौषधौ स्त्रियाम् ॥' [मेदिनी]

२ गोपाल = गां पालयति । पाल रक्षणे । गोपालो नृप-गोप-ईशे । [मेदिनी]

३ गोसंख्य = गां संचष्टे । चक्षिङ् व्यक्तायां वाचि ।

४ गोधुक् = गां दोग्धि । गोप-गोदुह-गव्रजाः । [त्रिकाण्डशेष]

५ आभीर = आ भी-र । आ समन्ताद्भयं राति । आ-भासि-ईर । आ भासि ईरयति वा ।

६ वल्लवः बल्लव = वल्लनं । वल्ल संवरणे । वल्लं धाति वाययति वा ।

७ गोमहिष्यादिकं पादबन्धनं = गौश्च महिषी च । पादे बन्धनं अस्य ।
गोमहिष्यादिकं यादवं धनं = यदूनां धनं गोमहिष्यादिकं । गवादि यादवं वित्तं । गोपालित ।

८ गवीश्वर , गोमान्, गोमी = गवां ईश्वर , बहवो गावो यस्य स गोमान् । गोमी । त्रीणि गवां स्वामिनः ।

९ गोकुलं = गवां कुलं । गोसङ्घात ।

१० गोधनं = गवां धनं समूह । 'गोकुलं गोधनं' इति स्याद् गोसंघात ।

१ आशितंगवीनं = पुरा आशिता भोजिता गावो यत्र । गवां चरणस्थानम् ।

२ उक्षा = उक्षति । उक्ष् सेचने ।

३ भद्रः = भन्दति । भदि कल्याणे ।

'भद्रः शिवे खञ्जरीटे वृषभे तु कदम्बके । करिजातिविशेषे ना क्लीबं मंगलमुस्तयोः ॥'

' काञ्जिके च स्त्रियां शस्त्री कृष्णा व्योम मलंयु च । तिथिभेदे प्रसारिण्यां कट्फलामलयोरपि ॥
त्रिषु श्रेष्ठे च साध्वी च न पुंसि कमणान्तरे ॥ ' [मेदिनी]

१४ बलीवर्द = वरणं । वट् ईप्सायां । ईश्च वर्ते ईवर्ती । तौ उक्तावीति ईवर्द । अतिशयित बल अस्य स बली । बली चासौ ईवर्दश्च ।

१५ आश्वशः = अश्वति । अश् गतौ ।

१६ वृषभः = वर्षति । वृषु सेचने । ' वृषभः श्रेष्ठवर्षयो ' इति विश्व ।

१७ वृष = ' वृषो धर्मे बलीवर्दे श्रृङ्ग्यां पुराशिभेदयो । श्रेष्ठे स्यादुत्तरस्थश्च वासगृधकशुक्रले ॥ ' वृषा मूषकपर्ण्यां च । [मेदिनी]

१८ अनड्वान् = अन शकटं वहति ।

१९ सौरभेय = सुरभ्या अपत्यम् ।

२० गौ = गच्छति । ' गौः स्वर्गे च बलीवर्दे ' [विश्व , मेदिनी च] ।

२१ औक्षकं = उक्ष्णां समूह । उक्षाणां संहति । वृषसंघ ।

२२ गव्या, गोत्रा = गवां संहति ।

२३ वात्सक , धेनुक = वत्सानां समूह । धेनूनां समूह ।

२४ महोक्षः = महान् च असौ उक्षा च ।

२५ वृद्धोक्ष , जरद्गव = वृद्धश्चासौ उक्षा च । जरंश्चासौ गौ च । वृद्धवृषभ ।

२६ जातोक्ष = जातश्चासौ उक्षा च ।

२७ तर्णकः = तृणोति । सद्योजातवत्स ।

२८ शकृत्करी = शकृत् करोति ।

२९ वत्स = वदति इति वत्स । ' वत्सः पुत्रादिवत्सयोः ' [विश्व, मेदिनी च]

३० दम्यः, वत्सतर = दम्य दमनार्ह । दमु शमने । वत्सतर , तनुर्वत्स । वत्सभावमतीत्य द्वितीयं वयः स्पृष्टस्य ।

३१ आर्षभ्य , षण्डतायोग्य = ऋषभस्य प्रकृतिरार्षभः । षण्डताया योग्य । स्पष्टताकण्ठप्राप्त ।

३२ षण्ड = सनोति सन्यते वा । षणु दाने । षण्डं पद्मादिसंघाते न स्त्री स्याद्गोपतौ पुमान् ॥ षण्ड स्यात् पुंसि गोपतौ । शाकुष्माण्डे वर्षवरे तृतीयप्रकृतावपि ॥ [मेदिनी]

३३ गोपति = गवां पतिः ।

३४ इट्चर = इत्पूर्ण इट् । इषु इच्छायां । एषा चरति । ' इट्चर ' इति केचित । वृति स्वच्छीकः । षण्डः, गोपति , इट्चर , इट्टर वा '-सांड ' इति ख्यातस्य ।

३५ वह = वहति युगमनेन । ' वहः स्याद्वृषभ स्कन्धे वाहे गन्धवहेऽपि च । [विश्व:, मेदिनी च ।]

३६ सास्ना, गलकम्बल = सस्ति । षस स्वप्ने ।
' कम्बलो नागराजे स्यात् सास्नाप्रावारयोः कृमौ । कम्बलश्चोत्तरासंगे कम्बलं सलिले मतम् ॥ ' [विश्व:]

३७ नस्तितः, नस्योत = नस्तम । णस कौटिल्ये । नस्तं कृत अस्य । नासिकायां भवा । नस्योतः=नस्यया नासा रज्ज्वा उतः । नस्योत इति पाठभेदः । भारवाहवृषकस्य ।

३८ प्रष्ठवाट् = प्रष्ठं अग्रगामिनं वहति ।

३९ युगपार्श्वगः = युगस्य स्कन्धकाष्ठस्य पार्श्वे गच्छति । दमनकाले पृष्ठारोपित काष्ठकाष्ठस्य ।

४० युग्यः, प्रासंग्यः, शाकट = रथादियोग्याश्च वृषभाणाम् ।

४१ धुर्य , धौरेयः, धुरीणः, धुरः, धूः = पञ्च धुरंधर वृषस्य ।

४२ एकधुरीण, एकधुर, एकधुरावह = त्रीणि धुरंधरस्य ।
४३ सर्वधुरीण, सर्वधुरावह = द्वे धुरीणश्रेष्ठस्य ।
४४ मही = 'गौरुर्वी प्रिया इळा मही ।' [निरुक्ते] । मह्यते इति मही ।
४५ माहेयी = मह्या अपत्यं स्त्री । मह्याया अपत्यं इति स्वामी ।
४६ सौरभेयी = सुरभ्या अपत्यम् ।
४७ उस्रा = वसतिक्षीरं अस्याम् । वस निवासे । 'उस्रो वृषे च किरणेऽप्युस्राऽर्जुन्युपलिकयोः ।' [मेदिनी]
उस्रस्तु वृषभे प्रोक्तः किरणे च तथा पुमान् ।
४८ माता = मान्यते । मान् पूजायाम् । 'मातरौ गोजनन्यौ द्वे' इति रुद्रः । 'माता गौर्द्विजननी गोलाद्यवृषादि भूमिषु ।' इति विश्व, मेदिनी च ।
४९ शृङ्गिणी = शृंगे स्त अस्याः ।
५० अर्जुनी = अर्जुनवर्णयोगात् ।
अर्जुन ककुभे पार्थे कार्तवीर्यमयूरयोः । मातुरेक सुतेऽपि स्यात् धवले पुनरन्यवत् ॥
नपुंसके तृणे नेत्ररोगे स्यादर्जुनी गवि । उषायां बाहुदानद्यां कुट्टिन्यामपि च क्वचित् । [विश्वः, मेदिनी च]
५१ अघ्न्या = न हन्यते, न हन्ति दातारं वा ।
५२ रोहिणी = रोहितवर्णयोगात् । 'रोहिणी सोमवल्केभे कण्ठरोगोभयोर्गवि' — [हेमचन्द्र]
५३ नैचिकी = नीचैश्चरति । यद्वा 'निचि' कर्णशिरो देशे । इति रभसः । प्रशस्तं निचिकं अस्याः । श्रेष्ठाया गो । 'नैचिकी गौरुत्तमा तु नीचिका सा प्रकीर्तिता ।' [— नाममाला ।]
५४ शबली, धवला, धवली = धवलयोगात् । शबल-योगात् । मुकुट. 'धवली' इत्यादि । कृष्णा, कपिला, पाटला' इत्यादयः । प्रमाणभेदात 'दीर्घा, ह्रस्वा, खर्वा, वामनी' इत्यादय । अंगभेदात 'पिङ्गाक्षी, लम्ब-कर्णी, वक्रशृंगी' इत्यादय ।
५५ द्विहायनी = द्वौ हायनौ अस्याः । द्वे वर्षे वय प्रमाणं अस्याः ।
५६ एकाब्दा = एको हायनो यस्या । एकोऽब्दो यस्या ।
५७ चतुर्हायनी, त्रिहायनी =
५८ वशा, वन्ध्या, वन्ध्या = वष्टि । वश् कान्तौ ।
'वशो जनस्पृहायत्तेस्वायत्तत्वप्रभुत्वयोः । वशा भार्या वन्ध्यगव्यां हस्तिन्यां दुहितर्यपि ॥' [हेम ।]
बध्नाति इति वन्ध्या । बन्ध् बन्धने ।
५९ अवतोका, स्रवद्गर्भा = अवगलितं तोकमपत्यं यस्याः । स्रवद्गर्भो यस्याः । द्वे पतितगर्भायाः ।
६० संधिनी = वृषभेणाक्रान्ता । संधाने । संधाव्यतेऽस्याः । अवश्य संधत्ते वा । कृतमैथुनायाः । 'संधिनी वृषभाक्रान्ताकालदुग्धोभयोः स्त्रियाम् ।' [मेदिनी ।]
६१ वेहत्, गर्भोपघातिनी = विहन्ति गर्भम् । गर्भं उपहन्ति । द्वे वृषभयोगेन गर्भपातिन्याः ।
६२ काल्या, उपसर्या प्रजने = प्रजने गर्भग्रहणे प्राप्तकाला । उपस्रियते वृषभेण । उपसर्या, काल्या प्रजने । गर्भग्रहणयोग्यायाः ।
६३ प्रष्ठौही, बालगर्भिणी = प्रष्ठं वहति । बाला चासौ गर्भिणी च । द्वे प्रथमं गर्भं धृतवत्याः ।
६४ अचण्डी, सुकरा = न चण्डी । सु सुखं करोति । सुक्रियते वा । द्वे सुशीलायाः ।
६५ बहुसूतिः, परेष्टुका = बह्वी सूतिर्यस्याः । परं इच्छति । परैरिष्यते वा । द्वे बहुप्रसूतायाः ।
६६ चिरसूता, बष्कयिणी = चिरं सूता । बष्कते । बष्क गतौ । बष्कयस्तरुणवत्सः सोऽस्त्यस्याः । यद्वा

'वष्कयस्त्वेकहायनो वत्स' इति कात्यायनः । तेन ... । अत्र पक्षे 'बष्कयणी' इति इकारान्तोऽपि उपान्त्यः । द्वे दीर्घकालेन प्रसूतायाः ।

६७ धेनुः नवसूतिका = धीयते । नवा सूता अनयाऽस्या । द्वे नूतनप्रसूतायाः 'धेनुर्गोमात्रके दोग्ध्र्यां' इति हैमः ।

६८ सुव्रता, सुखसंदोह्या = शोभनं व्रतं अस्याः । सुखेन दुह्यते । द्वे सुशीलायाः ।

६९ पीनोध्नी, पीवरस्तनी = पीनं ऊधोऽस्याः । पीवरः स्तनोऽस्याः । स्थूलस्तन्याः ।

७० द्रोणक्षीरा, द्रोणदुग्धा = द्रोणपरिमितं क्षीरं अस्याः । द्रोणं दोग्धि । द्वे द्रोणपरिमितदुग्धदात्र्याः ।

७१ धेनुष्या = बन्धके स्थिता गौः ।

७२ समांसमीना = समायां समायां विजायते । प्रतिवर्षं प्रसवित्र्याः गौः ।

७३ ऊधः, आपीनं = वहति । आप्यायते अत्र । द्वे क्षीराशयस्य ।

७४ शिवकः, कीलकः = श्यति गां रज्जुना, शेतेऽत्र वा । 'गव्यं त्रिषु गवां सर्वं गोविट् गोमयमस्त्रियाम् ॥५०॥

तत्तु शुष्कं करीषोऽस्त्री दुग्धं क्षीरं पयः समम् । पयस्यमाज्यदध्यादि द्रप्सं दधि घनेतरम् ॥५१॥

घृतमाज्यं हविः सर्पिर्नवनीतं नवोद्धृतम् । तत्तु हैयङ्गवीनं यद्ध्योगोदोहोद्भवं घृतम् ॥५२॥

दण्डाहतं कालशेयमरिष्टमपि गोरसः । तक्रं ह्युदश्विन्मथितं पादाम्ब्वर्धाम्बु निर्जलम् ॥ ५३ ॥

मण्डं दधिभवं मस्तु पीयूषोऽभिनवं पयः ॥ ५४ ॥' [अमरकोष २।९]

७५ गव्यं = गवां सर्वं । गोरसस्य ।

'गव्यं नपुंसकं ज्यायां वाच्यवद्धितेऽन्यवत् स्त्रियाम् । गोसमूहे विलिङ्गं तु गोदुग्धादौ च गोहिते ॥' [मेदिनी]

७६ गोविट्, गोमयं = गोविट् । गोः पुरीषं । द्वे गोमयस्य ।

७७ करीषः = कीर्यते । कॄ विक्षेपे । शुष्कगोमयस्य ।

७८ दुग्धं, क्षीरं, पयः = दुह्यते स्म । क्षयति । क्षीरं ईरयन्ते । पीयते । 'दुग्धं क्षीरे पूरिते च । क्षीरं पानीय-दुग्धयोः । पयः क्षीरे च नीरे च' इति हैम ।

७९ पयस्यं = आज्य-दध्यादि । पयसो विकारः । तक्रं नवनीतं च । घृतदध्यादि ।

८० द्रप्सं = घनेतरं दधि । दृप्यति अनेन । दृप्यति अनेन । 'द्रप्सं द्राक् 'सामीयं' इति सर्वानन्दः । 'द्रप्सं दध्यघनं तथा' इति नाममाला । घनात्कठिनादन्यत् । शिथिलं दधि । 'धातुद्रप्सौ सरे' इति दुर्गः । स्यन्दमानम् ।

८१ घृतं, आज्यं, हविः, सर्पिः = घ्रियते । 'घृतं आज्याम्बुदीप्तेषु' इति हेमचन्द्रः । आ अज्यते अनेन । हूयते इति हविः । 'हविः सर्पिषि होतव्ये' इति हैमः । सर्पति । सृप्लृ गतौ ।

८२ नवनीतं = नवं च नवीनं च । नवं च तदुद्धृतं च । अचिरात् संयोगस्य नवोद्धृतस्य ।

८३ हैयङ्गवीनं = ह्यस्तन इति गोदोहः । गवां दोहः । ह्योगोदोहः । ह्योगोदोहाद्भवति । एकरात्रपर्युषितादधः उत्पन्नस्य घृतस्य ।

८४ दण्डाहतं, कालशेयं, अरिष्टं, गोरसः = दण्डेन आहतं विलोडितं । कलश्यां मन्थपात्रे भवं । अरिष्टं नञ्समासः । 'अरिष्टं अशुभे तक्रे सूतिकागारे आसवे । शुभे मरणचिह्ने च ।' इति विश्वः । गोरसस्य दुग्धादुत्पन्नत्वात् । चत्वारि तक्रस्य ।

८५ तक्रं, उदश्वित्, मथितं [क्रमेण पादाम्बु, अर्धाम्बु, निर्जलं] = तनक्ति संकुच्यते वा । उदकेन श्वयति वर्धते । मथ्यते स्म । तक्रं पादाम्बु । उदश्विदर्धाम्बु । मथितं निर्जलम् ।

८६ मण्डं, मस्तु = दधिभवं मस्तु । मस्तौ भवति । मस्यते दधिनिःसृतदधिजलस्य ।

८७ पीयूषः = अभिनवं पयः । पीयते । पीयतेऽनेन वा । 'पीयूषः सप्तदिवसावधिक्षीरे तथामृते ।' इति विश्व-मेदिन्यौ नवप्रसूतायाः गोः क्षीरस्य । नूतन प्रसवानन्तरं आ दिवसपर्यन्तं यत्क्षीरं दुह्यते तत्पीयूषमित्युच्यते ।

गाय और गायसे सम्बन्ध रखनेवाले, तथा गायसे उत्पन्न पदार्थोंके इतने पद संस्कृत और वैदिक भाषामें हैं। इतने किसी अन्य भाषामें नहीं हैं। इससे सिद्ध होता है कि गौका सम्बन्ध आर्योंके जीवनके साथ कितना घनिष्ठ था। अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्धके बिना प्रत्येक वस्तुके लिए पृथक् शब्द भाषामें नहीं आ सकता। इससे सिद्ध हो सकता है कि, गौका और आर्योंका जीवन परस्पर मिला हुआ जीवन था।

(२४) 'गौ' पदके अन्यान्य भाषाओंमें रूप।

१ प्राचीन इंग्लिश [ॲंग्लो सॅक्सन]	cu	कू
२ प्राचीन फ्रीशियन	ku	कू
३ ,, सॅक्सन	co	को
४ मध्यकालीन डच	koe	कोए
५ डच	koe	,,
६ मध्यकी जर्मन	ko	को
७ प्राचीन उच्च जर्मन	chuo	चूआ, कुआ
८ मध्यकालीन उच्च जर्मन	kuo	कुओ
९ जर्मन	kuh	कू
१० ऐसलॅण्डियन	kyr	क्यर, [द्वितीया kú कू]
११ स्वीडिश	ko	को
१२ डॅनिश	koe	को
१३ मूल ट्यूटानिक	kou-z, koz	कौज्, कोज्
१४ आर्य	gwous	ग्वौ [द्वितीया gwom ग्वां, ग्वो]
१५ संस्कृत	gauo, gam, go	गौ, गां, गो
१६ जर्मन	bous, bof, bo	बोस्, बोफ्, बो

इससे स्पष्ट होता है कि 'गौ' पद संस्कृत अथवा वैदिक भाषासे अन्यान्य भाषाओंमें गया और उन लोगोंके भ्रष्ट उच्चारणके कारण, तथा लिपिकी अशुद्धताके कारण, उसके ये बिगड़े रूप अब भी उन भाषाओंमें मिलते हैं। क्योंकि गौ वाचक अनेक पदोंमेंसे केवल 'गौ' यह एकही पद अन्यान्य भाषाओंमें पहुंचा और वहां गहरा पैठ गया, इसलिए यह 'गौ' पदही सबको विशेष प्रिय था। प्रिय होनेके कारणही सबने उसको अपनाया। अब अन्यान्य कोशोंसे 'गौ' पदके तथा 'गौ' से जिन पदोंका साधन हुआ उन पदोंके आशय, वैदिक उदाहरणोंके साथ, अकारादि क्रमसे देखिये—

आधुनिक संस्कृत-अंग्रेजीके कोशोंमें भी ये ही अर्थ दिये हैं। उदाहरणार्थ श्री मोनिअर विलियम महोदयके कोशमें 'गो' पदके ये अर्थ दिये हैं—

an ox बैल, a cow गाय, cattle गायें, kine, herd of cattle गोकुल, any thing coming from or belonging to an ox or cow गाय और बैलसे उत्पन्न वस्तु, Milk, flesh, skin, hide, leather, strap of leather, bow-string, sinew दूध, मांस, चर्म, चमड़ा, चमड़ेकी पट्टी, धनुष्यकी डोरी, स्नायु; the herds of the sky, the stars तारका, नक्षत्र, तारागण, Rays of light किरण,

प्रकाश किरण; the sign Taurus वृषभ राशी; the sun सूर्य; the moon चन्द्रमा; a kind of medical plant ऋषभ नामक औषधि, a singer Praiser कवि, गायक, स्तोता; a goer, horse अश्व, घोडा, sun's ray सूर्य-किरण, सुषुम्ना, water जल, पानी, an organ of sense इन्द्रिय, the eye नेत्र, आंख, a billion दशलक्ष गुणा दशलक्ष, the sky आकाश, the thunderbolt इन्द्रका वज्र, विद्युत्, the hairs of the body शरीरके बाल, केश, लोम, an offering in the shape of a cow गोमेध; a regin of the sky आकाशका प्रदेश, the earth भूमि, पृथ्वी, the number nine नौकी संख्या; a mother माता; speech वाणी, वाक्, सरस्वती, voice, note शब्द, आवाज, स्वर ।

ये अर्थ पूर्वस्थानमें दिये वेदमंत्रोंके अर्थोंका अनुसरण करनेवाले हैं। तथा अमरकोष, मेदिनीकोष, केशव कोष आदि नाना कोषोंमें दिये अर्थही ये हैं। इस तरह सब विश्वही गौकी महिमा है। इतनी गौकी महिमा है इसीलिए वह अवध्य, पूजनीय और सेवा करनेयोग्य है। गौकी सेवा यथायोग्य की गयी तो वही गौ मानवोंकी सुरक्षा और उन्नति करती है।

(२५) 'गो' शब्दके वेदमें प्रयोग।

'गो' पदकी विभक्तियां यों होती हैं।

प्रथमा	गौः	गावौ	गावः
सबोधन	(हे) गौः	(हे) गावौ	(हे) गावः
द्वितीया	गाम्	गावौ	गाः (गावः)
तृतीया	गवा	गोभ्याम्	गोभिः
चतुर्थी	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः
पञ्चमी	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः
षष्ठी	गोः	गवोः	गवाम् (गोनाम्)
सप्तमी	गवि	गवोः	गोषु

[वेदमें द्विवचन 'गावा' भी होता है, द्वितीयाका बहुवचन 'गावः' भी ब्राह्मणोंमें दीखता है, वेदमें षष्ठीका बहुवचन 'गवां' कई बार आता है]। गोः पादान्ते (पा० अ० ७।१।५७) = आमोनुट्। 'आम्' इस षष्ठी बहुवचनके प्रत्ययका 'नाम्' वेदके मन्त्र-पादोंके अन्तमें होता है। उदाहरण- 'विद्मा हि त्वा गोपतिं शूर गोनाम्।' (ऋ० १०।४७।१) यह पद मंत्रके चरणके अन्तमें है, बीचमें 'गवां' होता है, जैसे, 'गवां शता पृक्षयामेषु।' (ऋ० १।१२२।७) वेदमें पादके अन्तमें भी क्वचित् 'गवां' आता है, जैसे— 'विराजं गोपतिं गवाम्।' (ऋ० १०।१६६।१) 'शुच्यपो अनूपाश्च गवाम्।' (ऋ० ४।१।१९)

तात्पर्य वेदमंत्रोंके पादके अन्तमें प्रायः 'गोनाम्' होता है और पादके बीचमें या प्रारम्भमें 'गवां' होता है।

१ 'गो' (गौः)= पदका पुल्लिंगमें अर्थ 'बैल' है और स्त्रीलिंगमें अर्थ 'गौ' है। 'बहुवचनमें' गौओंका झुण्ड' अर्थ है। 'सर्वत्र विभाषा गोः।' (पा० अ० ६।१।१२२)= लौकिक और वैदिक संस्कृतभाषामें पदान्त में गोपदके आगे अकारादि पद आनेसे विकल्पसे वह गोपदके पीछेके ओकारमें मिलता है। जैसा-गो+अग्रं=गोऽग्रं, गोअग्रं।

२ 'गो' (गौः)= गाय अथवा बैलसे उत्पन्न वस्तु, दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी, मांस, हड्डी, चर्म, मूत्र, गोबर आदि। चमडा, पट्टी, तांत, सरेस, चर्मके पदार्थ जो गौके चर्मसे बने हों। (इस विषयमें 'वेदकी कुछ तद्धित प्रक्रिया' प्रकरण देखो, वहां इस अर्थको बतानेके लिए अनेक उदाहरण दिये हैं।)

३ गावः= (बहुवचनमें) आकाश स्थानीय तारकागण। उदाहरण—

ता वां वास्तून्युश्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृङ्गा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य वृष्णः परमं पदमव भाति भूरि॥ ६०॥ (ऋ० १।१५४।६)

'जहां (भूरि शृङ्गाः अयासः गावः) बहुत सींगवाली चपल गौवें अर्थात् बहुत किरणवाली चमकनेवाली तारकाएं चकमती हैं, वे घर आप दोनोंके लिए प्राप्त करनेयोग्य हैं ऐसा हम (उश्मसि) चाहते हैं। वह (उरुगायस्य वृष्णः) अनेकों द्वारा प्रशंसित बलवान् विष्णुदेवका परमपद ऊपरसे बहुतही चमक रहा है।' इस मंत्रमें 'गावः' का अर्थ तारकाएं है और उसके सींग प्रकाश-किरण हैं। 'गावः' का अर्थ भी प्रकाश-किरण होता है, देखो—

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः॥ ६१॥ (ऋ० ७।३६।१)

'यज्ञके स्थानसे (ब्रह्म) प्रार्थनाएँ सूर्यके पास पहुंचीं, सूर्यने अपने किरणोंसे (गाः वि ससृजे) गौवें, अर्थात् प्रकाश, छोड दी हैं।' यहां 'गाः' का अर्थ प्रकाश तथा प्रकाश-किरण है।

४ गो (गौः)= गमन करनेवाला, घोडा अथवा बैल। उदा०—

त्वमायसं प्रति वर्तयो गोर्दिवो अश्मानमुपनीतमृभ्वा॥ ६२॥ (ऋ० १।१२१।९)

'हे इन्द्र! तूने (गोः) गमन करनेवाले असुरके ऊपर (आयसं अश्मान) लोहेका वज्र (प्रति वर्तयः) फेंक दिया, जो वज्र द्युलोकसे (ऋभ्वा उपनीत) ऋभु लाया था।' यहां 'गौ' का अर्थ 'गमन करनेवाला, भागने वाला' शत्रु ऐसा भी सायनने किया है। कई इस 'गोः' का अर्थ 'प्रकाशमान् द्युलोक' ऐसा भी करते हैं। कई इसका अर्थ 'चमडेकी थैली' ऐसा करते हैं और द्युलोकसे जो शस्त्र लाया गया था वह चमडेकी थैलीमें रखकर लाया गया था, ऐसा मानते हैं। कई दूसरे 'गोः' अर्थ शत्रुपर पत्थर मारनेकी चमडेकी गोफन करते हैं, जिसमें पत्थर रखकर घुमाकर शत्रुपर फेंका जाता है। ये विभिन्न अर्थ 'गौ' पदके ऊपर संख्या ३ में दिये अर्थोंके अनुसार हैं। तथा और—

अस्मद्र्यक् शुशुचानस्य यम्या आशुर्न रश्मिं तुव्योजसं गोः॥ ६३॥ (ऋ० ४।२२।८)

'जिस तरह (आशु. गोः तुवि-ओजस रश्मिं) शीघ्रगामी घोडेके बलवान् रश्मि (लगाम) ठीक हाथमें रहते हैं, ठीक उस तरह प्रकाशमान स्तोताकी स्तुति हमारे पास आवे।' यहां 'गौ' का अर्थ घोडा (अथवा कदाचित् बैल भी होगा) है (यह अर्थ सायनाचार्यने किया है।)

५ गो (गौ.)= सर्व, निखर्व संख्या (गौके विश्वरूप लेखमें ताण्ड्यमहाब्राह्मणका वचन ३१ पृष्ठपर देखो)

६ गो (गौ)= वज्र। उदा०—

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन् गवा मघवन्त्संचकानः॥ ६४॥ (ऋ० ५।३०।७)

'हे इन्द्र! हमारे द्वारा प्रशंसित हुआ तू (दान) घातपात करनेवाले शत्रुपर (गवा इन्वन्) वज्रसे आघात करता हुआ (जनुषा मृधः) जन्म स्वभावसे हिंसक शत्रुओंका (सु वि अहन्) उत्तम रीतिसे विनाश कर।' इस मंत्रमें 'गवा' का 'वज्रसे' अर्थ है।

गवां व्रतं= यह एक वैदिक सामगानका नाम है।

७ गो-अग्रं= जिसके अग्रभागमें गौवें रहती हैं, जिसका प्रमुख भाग गौओंसे या गौओंके दूध, दही, घृतादिसे सिद्ध होता है, जिसमें मुख्य भाग गौ अथवा गौओंसे उत्पन्न घृतादिका रहता है। इसके उदाहरण—

गोतमो राहूगणः । उषाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९२।७)

भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः ।
प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान् ॥ ६५ ॥

' यह तेजस्विनी सत्य वचनोंको चलानेवाली द्युलोककी दुहिता गोतम ऋषियों द्वारा प्रशंसित हुई है । हे उषा देवि ! तू हमें संतान, मानव, घोड़े और गौवें जिनके अग्रभागमें हैं ऐसे अन्न धन ला दो । यहां ' गो-अग्र ' पद है । गायें जिनमें मुख्य हैं ऐसे धन इस पदसे निर्दिष्ट होते हैं ।

८ गो-अजन = जिससे गायें हाँकी जाती हों ऐसा दण्ड या लकड़ी । उदा०—

दण्डा इवेद्गो-अजनास आसन् परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित् तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥ ६६ ॥ (ऋ० ७।३३।६)

' भरतवंशीय लोग (गो-अजनासः दण्डाः इव आसन्) गौओंके हाँकनेके दण्डके समान छोटे और कृश थे । इनका पुरोहित वसिष्ठ हुआ, तबसे उन ही प्रजाओंकी बहुतही वृद्धि हुई । ' इस मन्त्रमें ' गो-अजनासः दण्डाः ' गौवें हाँकनेके दण्डोंकी उपमा दी है ।

९ गो-अर्घ = गौओंका मूल्य, गौके मूल्यका पदार्थ । उदा०—

गोस्तु महिमानं नावतिरेत्, गवा ते क्रीणानीत्येव ब्रूयात्, गोअर्घमेव सोमं करोति ॥ (तै० सं० ६।१।१०।१)

' गौकी महिमाको कम करना उचित नहीं है, अतः गौसे तुझे खरीदता हूं ऐसा कहना उचित है, गौके मूल्यसे सोमका मूल्य होता है । ' यहां सोमको खरीदना हो तो गौको देकर खरीदना चाहिये । गौका मूल्य कम करना उचित नहीं है । गौका मूल्य कम करके गौका अपमान नहीं करना चाहिये ।

१० गो-अर्णस् = गौओंसे परिपूर्ण, गायोंकी समृद्धिसे पूर्ण । उदा०—

अग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः ॥ ६७ ॥ (ऋ० १।११२।१८)
स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गो-अर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ॥ ६८ ॥ (ऋ० १०।३८।२)
गो-अर्णसि त्वाष्ट्रे अश्वनिर्णिजि प्रेमध्वरेष्वध्वराँ अशिश्रयुः ॥ ६९ ॥ (ऋ० १०।७६।३)

' गौओंसे परिपूर्ण धनकी रक्षा करनेके लिए तुम विवरमें भी सबसे प्रथम प्रविष्ट हो गये थे । हे इन्द्र ! हमें गौओंसे परिपूर्ण यशस्वी धन दो । गौओंसे युक्त और घोड़ोंको पास रखनेवाले त्वष्टृपुत्र वृत्रका आक्रमण होनेके समय देवोंने यज्ञोंका आश्रय किया । ' इन मन्त्रोंमें ' गो-अर्णस ' पद आया है ।

इस ' गो-अर्णस् ' पदका अर्थ ' प्रकाशों अथवा किरणोंसे परिपूर्ण ' ऐसा भी होता है, इसका उदाहरण देखो—

उषा न रामीररुणैरपोर्णुते महो ज्योतिषा शुचता गो-अर्णसा ॥ ७० ॥ (ऋ० २।३४।१२)

' उषा अपनी लाल रंगकी प्रभासे रात्रिका नाश करती है और बड़े तेजस्वी प्रकाश-किरणोंसे युक्त ज्योतिसे अन्धकारको भी दूर करती है । '

११ गो-अश्वा= गौएं और घोड़े । गोअश्वमिह महिमेत्याचक्षते । (छांदो० उ० ७।२४।२)

गायें और घोड़े यह यहां महिमा है, ऐसा कहते हैं ।

' हिरण्यस्य पात्रं गोअश्वानां दासीनां प्रवराणां परिधानानां० । ' (श० ब्रा० १४।५।१।१०)= गायें, घोड़े, दासियाँ आदि धन है । ' गवाश्वः '= गायें और घोड़े ।

१२ गो-अश्वीयं= सामगानका नाम ।

१३ गो-आयु= गोष्टोमका एक भाग । (लाट्यायन श्रा० १०।११।०।२)

१४ गो-ऋजीक= गायके दूधके साथ मिश्रित अथवा गौके दूधसे बना हुआ ।

इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥ ७१ ॥ (ऋ० २।५८।४)

' ये गोदुग्धके साथ मिलाये मधुर सोमरस आपके लिए तयार है, उषःकालके पूर्वही वे हमारे मित्रोंने तयार किये है । ' तथा—

पिबा तु सोम गोऋजीकमिन्द्र ॥ ७२ ॥ (ऋ० ६।२३।७)

' हे इन्द्र ! तू गौका दूध मिलाया यह सोमरस पी । '

असावि देव गोऋजीकमन्धः ॥ ७३ ॥ (ऋ० ७।२८।१)

' यह गौका दूध मिलाया पेय तैयार किया है । ' इत्यादि उदाहरण ' गो-ऋजीक ' के हैं ।

१५ गो-ओपशा= गौके चमडेके पट्टोंसे युक्त, चमडेके पट्टोंसे बना हुआ । उदा०—

या ते अष्ट्रा गोओपशाऽऽघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥ ७४ ॥ (ऋ० ६।५३।९)

' तेरा अंकुश गौके चमडेके मियानमें है, वह पशुओंको देनेवाला है, उससे हम सुख चाहते हैं । '

१६ गो-काम = गौकी इच्छा करनेवाला । उदा०—

गोकामा मे अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीयः ॥ ७५ ॥ (ऋ० १०।१०८।१०)

' मैं जब इन्द्रके पास जाऊंगी, तब गौओंकी इच्छा करनेवाले देव तुमपर हमला करेंगे, अतः हे पणियो ! तुम यहांसे दूर जाओ । '

' गोकामा एव वयं स्म इति ' । (श० ब्रा० ११।६।३।२, १४।६।२।४)

१७ गो-क्षीर= गायका दूध ।

' तस्मिञ्छ्रान्ते गोक्षीरमानयति । (श० ब्रा० १४।२।१।१८)

१८ गो-गति = गायोंका मार्ग ।

सधाघते गोमीद्या गोगतीरिति ॥ ७६ ॥ (अथर्व २०।१२९।१२)

१९ गो-घ्न = गौका घातक, गोवधकर्ता । ' आरे ते गोघ्नं । ' (ऋ० १।११४।१०)= गोघातकको दूर करो । ' गोघ्नोऽतिथिः '= गोरक्षक अतिथि, जैसा ' हस्त-घ्न '= हस्त-रक्षक वैसाही ' गो-घ्न '= गोरक्षक ।

२० गोघात = गौका घात करनेवाला, गौका वधकर्ता । ' मृत्यवे गोघातं । ' (वा० य० ३०।१८) = गौका वध करनेवालेको मृत्युको अर्पण करो ।

२१ गोचर्मन् = गायका चमडा, जिस भूमिपर १०० गायें १ बैल और उनके बछडे रह सकते हैं उतनी भूमि । २०० हाथ लंबी और ७ हाथ चौडी भूमि, ३० दण्ड लंबा तथा १ दण्ड और ७ हाथ चौडा स्थान, एक मनुष्यके लिए एक वर्षभर उपजीविका करनेके लिए आवश्यक धान देनेवाली भूमि । इससे प्रतीत होता है कि, पृथ्वीका मापन गोचर्मसे करते थे । उदा०—

' इमां पृथिवीं विभजामहै, तां विभज्य उपजीवामेति, तां औक्ष्णैश्चर्मभिः पश्चात्प्राञ्चो विभजमाना अभीयुः । ' (श०ब्रा० १।२।५।२) =

इस भूमिका विभाग करेंगे और बांटेंगे और उसपर हम उपजीविका करेंगे । उन्होंने ऐसा कहा और बैलके चमडे-से भूमिका मापन किया । यहां गौके चमडेकी पट्टी बनाकर उससे मापन किया ऐसा भाव प्रतीत होता है ।

२२ गोज = गौसे उत्पन्न, गौके दूधसे बना हुआ । किरणोंसे पैदा हुआ । भूमिसे उत्पन्न । उदा०—

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्- अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम् ॥ ७७ ॥ (ऋ० ४।४०।५)
इस मंत्रमें ' गोजा ' पद है । ' गोसे उत्पन्न ' अर्थात् किरणोंसे उत्पन्न ।

२३ गो-जात = गौसे उत्पन्न, नक्षत्रोंसे परिपूर्ण आकाशसे उत्पन्न, अन्तरिक्षमें उत्पन्न । उदा०—

दधातयन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥ ७८ ॥ (ऋ० ६।५०।११)
' *द्युलोकसे उत्पन्न, पृथ्वीसे उत्पन्न, अन्तरिक्षसे उत्पन्न अथवा प्रकाशसे उत्पन्न सब देव हमें सुख दें ।* '
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ७९ ॥ (ऋ० ७।३५।१४)
पञ्च जना मम होत्रं जुषन्तां गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥ ८० ॥ (ऋ० १०।५३।५)
इन मन्त्रोंमें भी ' गोजाता ' पदका वैसाही अर्थ है ।

२४ गो-जित् = गौओंको जीतकर प्राप्त करना । विजय प्राप्त करके गौओंकी प्राप्ति करना । ' **पवस्व गोजित्** ' (ऋ० ९।५९।१) = ' हे गौओंको जीतनेवाले सोम ! तू शुद्ध हो । '

२५ गोजीर = गौका दूध भरपूर मिलानेसे उत्तेजित हुआ सोमरस । उदा०—

' अजीजनो हि पवमान सूर्यं गोजीरया रंहमाणः पुरन्ध्या ' ॥ ८१ ॥ (ऋ० ९।११०।३)

' गौके दूधसे मिश्रित सोमरससे उत्तेजित हुई बुद्धिसे तूने, हे पवमान ! सूर्यको निर्माण किया है ।

२६ गोतम = एक ऋषि जिसने ऋग्वेदके मं० १ के सूक्त ७४ से ९४ तकके २१ सूक्त देखे हैं । यह रहूगण ऋषिका पुत्र है । बहुतसी गौओंका पालन अपने आश्रममें करनेवाला ऋषि ' गौतम ' कहा जाता है ।

' एवाग्निर्गोतमेभिः ... विप्रेभिरस्तोष्ट ॥ ८२ ॥ (ऋ० १।७७।५)
अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः ॥ ८३ ॥ (ऋ० १।७८।५)
वाचो गोतमाग्नये । भरस्व ... ॥ ८४ ॥ (ऋ० १।७९।१०)
ब्रह्म कृण्वन्तो गोतमासो अर्कैः ॥ ८५ ॥ (ऋ० १।८८।४)
सस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ॥ ८६ ॥ ' (ऋ० १।८८।५)
इस तरह रहूगण पुत्र गोतम ऋषिका उल्लेख इन सूक्तोंमें है ।

२७ गोत्र = गायोंका रक्षण करनेवाला, गोठा, गायोंका निवासस्थान, मेंढक, गायोंको बांधनेका स्थान, मेघ, पर्वत, पर्वतपरका कीला । उदा०— ' **मयि गोत्रं हरिश्रियम्** । ' (ऋ० ८।५०।१०)= मुझे हराभरा, हरीभरी वनश्रीसे युक्त पर्वत, गौओंकी पालना करनेके लिए दो ।

गोत्रा = गायोंका समुदाय । भूमि जिसपर गौओंकी पालना होती है ।

२८ गोत्रभिद् = इन्द्र, अपने वज्रसे पर्वतोंको तोडनेवाला । उदा०—
यो गोत्रभिद् वज्रभृद् ... सः इन्द्रः ॥ ८७ ॥ (ऋ० ६।१७।२)
गोत्रभिदं गोविदं वज्रबाहुं ... इन्द्रम् ॥ ८८ ॥ (ऋ० १०।१०३।६)
पुरन्दरो गोत्रभिद्वज्रबाहुः ॥ (वा० य० २०।३८)
' वज्रधारी और पर्वतका भेदन करनेवाला इन्द्रही है । ' बृहस्पतिका रथ । उदा०—

' बृहस्पते ... गोत्रभिदं स्वर्विदं रथं तिष्ठसि । ' ॥ ८९ ॥ (ऋ० २।२३।३)= हे बृहस्पते तू पर्वतके भेदन करनेवाले रथपर ठहरता है ।

२९ गोद. (गो+द) = गायोंको देनेवाला । उदा०—

' अस्मभ्यं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ ९० ॥ (ऋ० ३।३०।२१) = हे इन्द्र ! तू गौओंका दान देनेवाला है

अत: हमारा भाग रखो अर्थात् हमें भी गौवें दो। इस ' गो-द ' शब्दसे अँग्रेजी भाषाका ' गॉड God ' पद बना है। गौका दान करनेवाला प्रभु है।

३० गोदत्र = गायोंका दान करनेवाला। उदा०—

मा ते गोदत्र निरराम राधसः इन्द्र ! ॥ ९१ ॥ [ऋ० ८।२१।१६] ' हे गौओंका दान करनेवाले इन्द्र ! तेरी कृपासे हम विमुख न हों।

३१ गोदरी = गौओंके निवास स्थानको खोलना। उदा०—

अयाम अर्वद्भिः शक्र गोदरे। जयेम पृत्सु वज्रिव ॥ ९२ ॥ [ऋ० ८।९२।११] = हे इन्द्र ! हम घोडोंपरसे गौओंके स्थानवालेके पास पहुंचे है और इस युद्धमें जय पाओंगे।

३२ गोदुह = गौका दोहन करनेवाला-वाली, गाके दोहनका समय। ' सुदुघां इव गोदुहे। ' [ऋ० १।४।१]= ' गौके दोहन करनेके समयमें सुखसे दोहन करनेवाली गो। '

३३ गोधा [गो-धा] = गौके चर्मका वेष्टन जो हाथपर क्षत्रिय लोग करते हे जिससे धनुष्यकी डोरीके आघातसे हाथका बचाव होता है।

' गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ' ॥ ९३ ॥ [ऋ० १०।२८।१०] = चर्मकी पट्टिया उसको सहजहीमें बांध देती है, गोधाके चर्मका वेष्टन।

३४ गोधायस = गायोंका पोषण, गौओंको छीननेवाला। उदा०—

गोधायसं वि धनसैरदर्द ॥ ९४ ॥ [ऋ० १०।६७।७] = गौओंको छीननेवाले शत्रुका विदारण किया।

३५ गोनामिक = मैत्रायणी संहिता ४।२ प्रपाठकमें कहे यज्ञका नाम। [मैत्रा० ४।२।१-१४]

३६ गोन्योधस् = गौ दूधसे भरपूर भरा हुआ। उदा०—

इन्दुर्वाजी पवते गोन्योधा० ॥ ९५ ॥ [ऋ० ९।९७।१०] = बलवर्धक सोमरस गौके दूधसे भरपूर मिश्रित होकर छाना जाता है।

३७ गोप, गोपति, गोपा, गोपाल = गौओंका पालक, गवालिया, बैल। गौओंका रक्षणकर्ता।

' द्विबर्हसो य उप गोपमागुरदक्षिणासो अच्युता दुदुक्षन् ' ॥ ९६ ॥ [ऋ० १०।६१।१०] = वे दुगने बलवान होकर गौओंका पालन करनेवालेके पास पहुचे, और दक्षिणा न लेते हुए भी सुस्थिर रखी गौओंका दोहन करने लगे। ' यो गवां गोपतिर्वशी। ' [ऋ० १।१०१।४] = जो गौओंका पालक है।

३८ गोपत्य, गौपत्य = गौओंका पालन करना, गौएं पास रखना। ' मयि रायस्पोषं गौपत्यं सुवीर्यम्। [वा० य० ११।५८] = मुझे धनकी वृद्धि, गौओंकी पुष्टि और उत्तम पराक्रमकी शक्ति प्राप्त हो।

३९ गोपयस्य = गाओंका रक्षक सामर्थ्य। उदा०—

' तद्वायं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यं ' ॥ ९७ ॥ [ऋ० ८।२५।१३] = वह श्रेष्ठ रक्षक सामर्थ्य हम स्वीकारते।

४० गोपरीणस् = गौओंसे परिपूर्ण, गौओंके दूधसे परिपूर्ण।

' इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे ' ॥ ९८ ॥ [ऋ० ८।४५।२४] = इस यज्ञमें तुझे गौके दूधसे परिपूर्ण हुए ये सोमरस तुझे आनंदित करें।

४१ गोपवन = अत्रिकुलमें उत्पन्न ऋषि। उदा०—

' यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः ' ॥ ९९ ॥ [ऋ० ८।७४।११] = गोपवन ऋषि अपनी वाणीसे अग्निकी स्तुति करता है।

*

४२ गोपाजिह्व = गौओंका पालन करनेवालोंके समान जिसकी जिह्वा अर्थात् भाषा है। संरक्षक भाषा बोलने-वाली जिह्वा। उदाहरण—

'गोपाजिह्वस्य तस्थुषो विरूपा विश्वे पश्यन्ति मायिनः कृतानि' ॥ १०० ॥ [ऋ० ३।३८।९] = संरक्षण करनेकी भाषा बोलनेवाले इस देवके नाना प्रकारके कृत्य सब ज्ञानी जन देखते हैं।

४३ गोपाय् = गौओंका पालन करना अर्थात् सब प्रकारकी रक्षा करना। [गौओंका पालनही सर्वस्वकी रक्षा है।] 'कवयो ये गोपायन्ति सूर्यम्'। [ऋ० १०।१५४।५] = जो कवि सूर्यकी रक्षा करते हैं।

४४ गोपावत् = रक्षण सामर्थ्यसे युक्त। उदा०—

'यद्गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुण सुदासे' ॥ १०१ ॥ [ऋ० ७।६०।८] = अदिति, मित्र और वरुणने सुदासको संरक्षण सामर्थ्ययुक्त उत्तम सुख दिया।

४५ गोपीथ [गो+पीथः] = गौका दूधका पेय। संरक्षण। 'गोपीथाय प्र हूयसे'। [ऋ० १।१९।१]= गौओंका दूध पीनेके लिए तू बुलाया जाता है। 'यो वो गोपीथे न भयस्य वेद' ॥१०२॥ [ऋ० १०।३५।१४] = जो आपकी सुरक्षामें भयको नहीं जानता, अर्थात निर्भय होकर रहता है।

४६ गोपीथ्य = संरक्षण देना, भूमिकी सुरक्षा।

'जज्ञिषे इत्था गोपीथ्याय' ॥ १०३ ॥ [ऋ० १०।९५।११] = इस तरह सुरक्षाके लिए तू उत्पन्न हुआ है।

४७ गो-बन्धुः = गौका भाई। 'गोबन्धवः सुजातास' [ऋ० ८।२०।८] = मरुत वीर कुलीन हैं और गौओंके भाई हैं।

४८ गो-पुरोगव [गो-पुरो-गव] = गौ जिनकी नेत्री है। गौके पीछे पीछे जानेवाला। उदा०—

'घृतं अन्न दुहतां गोपुरोगवम्' ॥ १०४ ॥ [अथर्व० ८।७।१२] = गाओंके अनुकूल होकर चलानेवालेको घी और अन्न मिलता रहे।

४९ गोपोष = गौओंका पोषण, गौशालाकी वृद्धि।

'गोपोषं च मे वीरपोषं च धेहि' ॥ १०५ ॥ [अथर्व० १३।१।१२] = मेरे गौओंका पोषण हो और मेरे वीरोंका पोषण हो ऐसा कर।

५० गोप्तृ=रक्षक। 'शतं गोप्तार अस्याः'। [अथर्व० १०।१०।५] = सौ रक्षक इस गौके हैं।

५१ गोबल = [ताण्ड्य ब्रा० ३।११।९।३] एक मनुष्यका नाम।

५२ गोमघ = गौओंका दान। गौरूप धनसे युक्त।

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः' ॥ १०६ ॥ [ऋ० ६।३५।४] = वह गोरूपी धनको पास रखनेवाले भक्तको अन्न दे।

५३ गोमत्, गोमती = गौओंसे युक्त। 'सं गोमदिन्द्र अस्मे श्रवः धेहि' ॥१०७॥ [ऋ० १।९।७] = हमें गौओंसे युक्त यश दे।

५४ गोमयं (गो-मयं) = गौओंसे परिपूर्ण, गोबर। 'य उदाजन् पितरो गोमयं वसु' ॥ १०८ ॥ [ऋ० १०।६२।२] = गौओंसे युक्त धन पितरोंने प्राप्त किया। गोबर धनही है।

५५ गोमातृ = गौको माता माननेवाले। 'गोमातरः यच्छुभयन्ते अञ्जिभिः' ॥ १०९ ॥ [ऋ० १।८५।३] = गौको माता माननेवाले वीर मरुत् आभूषणोंसे फबते हैं।

५६ गो-मायु = गौके समान शब्द करना, गौका पित्त, मेंडक, गीदड़, 'गोमायुरेको अजमायुरेकः' ... 'वाचं वदन्तः' ॥११०॥ [ऋ० ७।१०३।६] = एक गौके समान शब्द करनेवाला मेंडक है जो शब्द करता है।

५७ गो-मृगः = वनकी गौ अथवा वनका साँड।
'प्रजापतये च वायवे च गोमृग' ॥ १११ ॥ [वा० य० २४।३०]
प्रजापति और वायुके लिए गोमृग देना चाहिये।
५८ गोरभस् = गौके दूधसे सामर्थ्यवान् बना, जिसकी शक्ति गौके दूधसे बढाई गयी है, ऐसा सोमरस।
'हरिं यत्ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभस आद्रिभिर्वाताप्यम्' ॥ ११२ ॥ [ऋ० ९।१२१।८]= तेरा आनन्द बढानेके लिए पत्थरोंसे कूटकर निकाला, दूधसे बढाया, वायुसे मिलाया यह सोमरस है।
५९ गोरूप = गौका रूप। 'एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्' ॥११३॥ [अथर्व० ९।७।२५]= यह निःसंदेह विश्वका रूप सब रूप है और गोरूप भी यही है, अर्थात् सब विश्वही एक गौ है।
६० गोलत्तिका = एक पशुका नाम। 'गोलत्तिका ते अप्सरसाम्' ॥ ११४ ॥ [वा० य० २४।३७]
६१ गोवपुस् = गौके समान शरीर धारण करनेवाला, गौके समान रूपवाला।
'बृहस्पतिर्गोवपुषो वलस्य निर्मज्जानं न पर्वणो जभार' ॥ ११५ ॥ [ऋ० १०।६८।९]= बृहस्पतिने गौके समान रूप धारण करनेवाले वलके पर्वोंको और मज्जाको भी तोड डाला।
६२ गोविकर्त = गोहत्या करनेवाला। [मैत्रा० २, श० ब्रा० ५।३।१।१०]
६३ गोविद् = गौओंको प्राप्त करना।
'स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्' ॥११६॥ [ऋ० १।८२।४] गौओंको प्राप्त करनेवाले रथपर वह चढता है।
६४ गोविन्दु = गौको अथवा गौके दूधको ढूंढनेवाला। 'गोविन्दुर्द्रप्स' । [ऋ० ९।९६।१९]= गौके दूधकी इच्छा करनेवाला सोमका रस। गोव्यच्छः = गौको पीडा देनेवाला। 'मृत्यवे गोव्यच्छम्।' [वा० य० ३०।१८, काण्व० ३४।१८], 'गोव्यच्छस्य च।' [काठ० १५।४]।
६५ गोश-पदका = [गोष्पद, गोष्पद] गौके पांवका चिह्न जहां लगा है। जहां गौवें बारबार जाती आती हैं। 'गोशपदके' [अथर्व० २०।१२९।१८]
६६ गोशफ = गौका खुर, पांव। 'गोशफे शकुलाविव' [अथर्व० २०।१३६।१] गौके पांवसे बने जलस्थानमें मछलियाँ जैसी नाचती हैं।
६७ गोश्रीतः = गौके दूधमें मिलाया सोमरस। 'गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासः' ॥ ११७ ॥ [ऋ० १।१३७।१]= गौके दूधके साथ ये सोमरस मिलाये रखे हैं। 'गोश्रीते मधौ मदिरे' ॥ ११८ ॥ [ऋ० ८।२१।५]= इस मधुर आनन्दकारक सोमरसमें गौका दूध मिला दिया है।
६८ गोषनिः = गायोंको प्राप्त करना। उदा०—
'उत नो गोषणिं धियं कृणुहि वीतये' ॥ ११९ ॥ [ऋ० ६।५३।१०]= हमारे लिए गौएं प्राप्त करनेकी बुद्धि धारण करो।
६९ गोसखा [गो+सखि]= गौओंका मित्र दूधके साथ मिला हुआ [सोमरस]। 'तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्' ॥ १२० ॥ [ऋ० ५।३७।४]= गौके दूधके साथ मिलाये तीखे सोमरसको पीता है।
७० गोषतमाः [गोस-तमाः]= अधिक गौओंसे युक्त। 'दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः' ॥ १२१ ॥ [ऋ० ६।३३।५]= द्युलोकमें हम अधिक गौओंसे युक्त हों।
७१ गोषा [गो-सा, गो-सन्]= गौओंको पास रखनेवाला। 'गोषा इन्द्रो'। [ऋ० ९।२।१०] इन्द्र गौओंको पास रखनेवाला है।

७२ गोषाता = गौएँ पाना, गौओंका दान करनेवाला, गायोंके लिए युद्ध करना।

'यत्र गोषाता धृषितेषु खादिषु विष्वक् पतन्ति' ॥ १२२ ॥ [ऋ० १०।३८।१]।

'गोषाता यस्य ते गिरः' ॥ १२३ ॥ [ऋ० ८।८४।७]=

जिस युद्धमें गौओंको प्राप्त करनेके लिए यत्न होता है। उसको गायें देनेके लिए तू प्रेरणा करता है।

७३ गोषादी = गौपर बैठनेवाला पक्षी। 'स्वप्ने कौलीकान् गोषादीः। [वा० य० २४।२४]

७४ गोषु गम् [गोषु गच्छ्] = युद्धके लिए चढाई करना, शत्रुपर हमला करना, विजय प्राप्त करना। उदा०—

स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति।

हन्त्योजसा यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः। ॥ १२४ ॥ [ऋ० २।२५।४]

'जिस जिसको ब्रह्मणस्पति अपने साथ रखता है, वह अपने [सत्वभिः गोषु गच्छति] बलोंके साथ लडने जाता है और शत्रुका बलपूर्वक वध करता है। 'तथा—' युवा कविर्दीदयद्गोषु गच्छन्' ॥ १२५ ॥ [ऋ० ५।१५।१]= 'तरुण कवि वीर तेजस्वी होता हुआ लडनेके लिए जाता है। ' तथा—

'यं त्वं विप्र हिनोषि धनाय। स तवोती गोषु गन्ता' ॥ १२६ ॥ [ऋ०८।७१।५]

'जिसे तू, हे ज्ञानी! धनप्राप्तिके लिए प्रेरित करता है वह तेरी सुरक्षामें रहकर लडनेके लिए बाहर निकलता है।

इन मंत्रोंमें 'गोषु गच्छति। गोषु गच्छन्, गोषु गन्ता।' ये पद हैं, इनका अर्थ वास्तवमें गौओंमें जाता है ऐसा है, पर वेदमें इसका अर्थ होता है, युद्धके लिए तैयार होकर जाता है, शत्रुपर चढाई करनेके लिए जाता है। गौओंमें जाता है इसका अर्थ गौओंकी देखभालपूर्वक रक्षा करनेके लिए जाता है, इस कार्यमें उसको गोघातकोंसे युद्ध करनेकी आवश्यकता होती है, अतः वह यह युद्ध करता है। इस कारण 'गोषु गच्छति' का अर्थ 'युद्ध करना' हुआ होगा।

७५ गोषूक्ती = ऋग्वेद ८ वे मण्डलके १४ वे और १५ वे सूक्तका एकतम ऋषि। [ऋ० ८।१४-१५]

७६ गोषद् = गायोंके मध्यमें बैठना। 'गोषदसि' [मै० ४।१।२; तै० १।१।२।१, काठ० १।२; कपि० १।२, मा० श्रौ० १।१।१]

७७ गोषेधा = गौके सम्बन्धि निषिद्ध, अनिष्ट। 'गोषेधां अस्मज्ञाशयामसि ॥१२७॥ [अथर्व० १।१८।४]

७८ गोष्ठानं [गो+स्थानं] = गौओंका स्थान। 'व्रजं गच्छ, गोष्ठानम्' [वा० य० १।२५]= गौओंके निवास-स्थान, जहां गौओंका समुदाय है वहां जा।

७९ गोष्ठ्य = गोशालामें उत्पन्न होनेवाला कृमि। 'नमो गोष्ठ्याय'। [वा० य० १६।४४]= गोशालामें होनेवाले कृमिके लिए नमस्कार है।

८० गोष्ठ [गो-स्थ] = गौओंके रहनेका स्थान। 'नि गावो गोष्ठे असदन्' ॥१२८॥ [ऋ० १।१९१।४] = गौवें गोशालामें बैठी हैं।

८१ गोहा [गो-हन्] = गौका वधकर्ता। 'आरे गोहा।' [ऋ० ७।५६।१७] = गौका वध करनेवाला दूर रहे।

८२ गवयः = गौरमृग, वन्य गौ अथवा वन्य बैल। 'विदद् गौरस्य गवयस्य गोहे' ॥ १२९ ॥ [ऋ० ४।२१।८]= वन्य गौ अथवा वन्य बैल उसके रहनेके स्थानमें मिलता है।

८३ गवाशिरः [गो+आशिरः] = गौके दूधमें मिलाया सोमरस।

'इमे वां मित्रावरुणा गवाशिरः, सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ १३० ॥ [ऋ० १।१३७।१]= हे मित्र और वरुण!

आपके लिए ये सोमरस गौके दूधमें मिलाये रखें हैं, ये सोमरस स्वच्छ और शुभ्र हैं ।

८४ गविष [गो+इष] = गौकी प्राप्तिकी इच्छा, इच्छा, आतुरता ।

युवामिद्ध्यवसे पूर्व्याय परि प्रभूती गविषः स्वापी ' ॥ १३१ ॥ [ऋ० ७।९१।७] =
हम गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले सुरक्षाके लिए आपकी मित्रता चाहते हैं ।

८५ गविष्टि [गो+इष्टि] = गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा, इच्छा, युद्ध करनेकी इच्छा, युद्धका उत्साह, युद्ध ।

' **क्रन्ददश्वो गविष्टिषु** ॥ १३२ ॥ [ऋ० १।३६।८]= युद्धोंमें घोडा हिनहिनाता है ।

८६ गविष्ठिर= अग्निकुलमें उत्पन्न एक ऋषि, यह ऋ० ५।१।१-१२ का द्रष्टा है । ' **गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ** ' ॥ १३३ ॥ [ऋ० ५।१।१२] = गविष्ठिर ऋषिने नमस्कारपूर्वक अग्निका स्तोत्र किया । ' **अत्रिरत्रिं भरद्वाज गविष्ठिरं प्रावत्** ' ॥ १३४ ॥ [ऋ० १०।१५०।५] । ' **यौ गविष्ठिरं अवथः** ' ॥ १३५ ॥ [अथर्व० ४।२९।५]

८७ गवेषण [गो+एषणा] = गौओंकी खोज, गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा, इच्छा, उत्सुकता, युद्धकी इच्छा ।

' **स घा विदे अन्विन्द्रो गवेषणो बन्धुक्षिद्भ्यो गवेषण** ' ॥ १३६ ॥ [ऋ० ६।१३२।३] = इन्द्रही गौओंकी खोज करता है और अपने बन्धुओंके लिए गौवें देता है, अथवा इस कार्यके लिए युद्ध भी करता है ।

८८ गव्यत्= गौओंकी इच्छा करनेवाला, इच्छा करनेवाला, युद्धकी इच्छा करनेवाला ।

' **एतायामोप गव्यन्त इन्द्रं** ' ॥ १३७ ॥ [ऋ० १।३३।१]= चलो हम गौओंकी इच्छा करते हुए इन्द्रके पास चले जायँ ।

८९ गव्यः = गौओंकी इच्छा करनेवाला, दूधकी इच्छा करनेवाला । उदा०—

' **गव्यो षु णो यथा पुरा** ' ॥ १३८ ॥ [ऋ० ८।४६।१०] = ' पूर्वके समान हमें गौएं देनेका वर दो ।

९० गव्यय, गव्यया, गव्ययी = गौओंसे प्राप्त, गौओंके सम्बन्धमें ।

' **गव्ययी त्वग्भवती** । ' [ऋ० ९।७०।७] = गौसे प्राप्त चर्म है ।

९१ गव्ययुः = गौओंकी तथा गोदुग्धकी इच्छा करनेवाला । ' **गव्ययुः सोम रोहसि** ' ॥ १३९ ॥ [ऋ० ९।३६।६] = हे सोम ! तू गोदुग्धकी इच्छा करता हुआ बढता है ।

९२ गव्यु = गौओंकी इच्छा करनेवाला, गौके दुग्धकी इच्छा करनेवाला । युद्धकी इच्छा करनेवाला । उत्साही ।

' **गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः** ' ॥ १४० ॥ [ऋ० ९।९७।१५] हे सोम ! तू गौके दूधकी इच्छा करता हुआ आ ।

९३ गव्यूतिः = गोचरभूमि, गौवें रहनेका स्थान । ४००० दण्ड अथवा दो कोसका अन्तर ।

' **गावो न गव्यूतीरनु** ' ॥ १४१ ॥ [ऋ० १।२५।१५] = गौवें जैसी गोचरभूमिके पास (चरागाहके पास) जाती हैं ।

वेदमें तद्धित प्रत्ययके न होनेपर भी तद्धित प्रत्ययका अर्थ, विना तद्धित-प्रत्यय लगे, केवल मूलपदसेही व्यक्त होता है । इसका अनुसंधान न रहा तो अर्थका अनर्थ प्रतीत होने लगता है, इसलिए इस प्रक्रियाका विशेष रूपसे विचार यहां करना आवश्यक है । प्रथमतः तद्धित-प्रत्ययका स्वरूप देखिये—

गो = गाय, (मूलशब्द)

गव्य = (तद्धित-प्रत्ययसे बना शब्द), गायसे उत्पन्न होनेवाले सब पदार्थ, जैसा दूध, दही, छाछ, मक्खन, घी, मूत्र, गोबर, चर्म, मांस, तांत, सरेस आदि पदार्थ ।

परन्तु वेदमें केवल ' गो ' पदसेही ' गव्य ' का अर्थ व्यक्त होता है, इसलिए वेदमें ' गो ' पदके अर्थ भी

उतनेही हैं जितने ' गव्य ' के । अर्थात ' दूध, दही, घी, मांस, मूत्र, गोबर, चर्म ' आदि अर्थ केवल ' गो ' पदके ही होते हैं । प्रत्यय लगानेकी आवश्यकता वेदमें नहीं रहती । लौकिक संस्कृतमें ऐसा नहीं होता, परन्तु वैदिक संस्कृतमें केवल ' गो ' केही नहीं, अपितु अनेक पदोंसे, बिना तद्धित-प्रत्यय लगाये मूल पदसेही, तद्धित-प्रत्यय लगानेके समान अर्थ होते हैं । इस विषयमें श्रीयास्काचार्य निरुक्तकार क्या कहते है, देखिये-

अथापि अस्यां ताद्धितेन कृत्स्नवन्निगमा भवन्ति । 'गोभिः श्रीणीत मत्सरं' इति पयसः । 'अंशुं दुहन्तो अध्यासते गवि ' इति अधिषवणचर्मणः । अथापि चर्म च श्लेष्मा च 'गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व' इति रथस्तुतौ । अथापि स्नाव च श्लेष्मा च ' गोभिः सन्नद्धो पतति प्रसूता ' इति इषु स्तुतौ । (निरुक्त २।२।५)

और भी (कृत्स्नवत्) मूल पदही (ताद्धितेन) तद्धित अर्थसे प्रयुक्त होनेके उदाहरण (निगमाः भवन्ति) वेद-मन्त्रोंमें अनेक होते हैं । उदाहरणके लिए देखो-

' गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ' (ऋ ९।४६।४) = यहां ' गो ' पदका अर्थ ' दूध ' है ।

' अंशु दुहन्तो अध्यासते गवि ' (ऋ० १०।९४।९) = यहांका ' गवि ' (गौ) पदका अर्थ ' चमडा ' है ।

' गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्व । ' (ऋ० ६।४७।२६) = इस मंत्रमें ' गो ' का अर्थ ' चमडा और सरेस ' है ।

'गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ' (ऋ० ६।७५।११) = इस मंत्रमें 'गो' पदका अर्थ ' तांत और सरेस ' है ।

निरुक्तकार और भी कहते हैं-

' ज्याऽपि गौरुच्यते । ' वृक्षे वृक्षे नियतामीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः । ' वृक्षे वृक्षे धनुषि धनुषि । नियताऽमीमयद् गौः । (निरुक्त २।१।६)

' गौ ' पदका अर्थ धनुष्यकी डोरी, ज्या है । इसके लिए यह उदाहरण है-

(वृक्षे वृक्षे) प्रत्येक धनुष्यपर (नियता गौः) तनी हुई ज्या अर्थात् डोरी रहती है जो (अमीमयत्) शब्द करती है । उससे (पूरुष-अदः) मानवोंके जीवनको खानेवाले (वयः प्र पतान्) पंख लगे हुए बाण फेंके जाते है । (ऋ १०।२७।२२)

इस मन्त्रमें तीन उदाहरण है, जो तीनोंके तीनों लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके दर्शक है, देखिये-

गौ = (गाय) ज्या, धनुष्यकी डोरी, जो गोचर्मकी तांतकी बनती है,

वृक्ष = (वृक्ष) धनुष्य, यह किसी वृक्षकी लकडीका बनता है,

वयः = (पक्षी) पक्षीके पंख लगे बाण

इतने उदाहरण निरुक्तकारने दिये है, और लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया वेदमें किस तरह होती है, पदोंका स्पष्ट अर्थ कैसा दीखता है और वास्तविक अर्थ कैसा होता है, यह बताया है । यही अधिक स्पष्ट करनेके लिए हम इन उदाहरणोंको अधिक स्पष्ट कर देते हैं—

यहां उक्त उदाहरणोंके हम ऊपर ऊपर दीखनेवाला अर्थ और वास्तविक सत्य अर्थ ऐसे दोनो अर्थ करके दिखाते है-

(१) ' गोभिः मत्सरं श्रीणीत ' (ऋ० ९।४६।४)

[दीखनेवाला अर्थ] = (गोभिः) अनेक गौओंके साथ (मत्सरं) मद उत्पन्न करनेवाले सोमको (श्रीणीत) पकाओ ।

[सत्य अर्थ] = (गोभिः) गौके दूधके साथ (मत्सरं) सोमवल्लीके आनन्दवर्धक रसको (श्रीणीत) पकाओ ।

(२) ' अंशु दुहन्तो गवि अध्यासते । ' (ऋ० १०।९४।९)

[दीखनेवाला अर्थ] = सोमको दुहनेवाले (गवि) गौपर (अध्यासते) बैठते हैं ।

[सत्य अर्थ] = सोमका रस निकालनेवाले, रस निकालनेके समय (गोभि) गौके चमडेके आसनपर (अध्यासते) बैठते हैं।

(३) ' गोभि सन्नद्धो असि वीळयस्व । ' (ऋ० ६।४७।२६)

[दीखनेवाला अर्थ] = तू (गोभि) अनेक गौओंके साथ (सन्नद्धः असि) बंधा है, अत (वीळयस्व) तू बलवान् बन ।

[सत्य अर्थ] = हे रथ ! तू (गोभि.) अनेक गौओंके चमडोंसे (सन्नद्धः असि) मढा हुआ है। अतः (वीळयस्व) तू बलवान् बना है।

(४) ' गोभि सन्नद्धा प्रसूता पतति । ' (ऋ० ६।७५।११)

[दीखनेवाला अर्थ] = (गोभि·) गौओंके साथ (सन्नद्धा) बंधी हुई (प्रसूता पतति) फेंकनेपर गिर जाती है।

[सत्य अर्थ] = (गोभिः) गौओंके तांतसे तथा स्नेससे (सन्नद्धा) उत्तम प्रकारसे बंधा हुआ बाण (प्रसूता पतति) धनुष्यसे फेंके जानेपर शत्रुपर जा गिरता है।

सूचना— यहां ' गौ ' पदका अर्थ गाय और बैल दोनो तरह हो सकता है, जहां दूध घीके साथ संबंध है वहां गाय और अन्यत्र बैल अर्थ लेना योग्य है।

(५) ' वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः । ' (ऋ० १०।२७।२२)

[दीखनेवाला अर्थ] = (वृक्षे-वृक्षे) प्रत्येक वृक्षपर (नियता) लटकाई हुई (गौ) गाय (मीमयत्) चिल्लाती है। (ततः) उससे (वयः) पक्षी, जो (पुरुष-अदः) पुरुषोंको खाते है, (प्र पतान) उडते है।

[सत्य अर्थ] = (वृक्षे-वृक्षे) वृक्षकी लकडीसे बने प्रत्येक धनुष्यपर (नियता) चढाई हुई (गौ) गौकी तांतसे बना रोदा (मीमयत्) टणत्कारका शब्द करता है, (ततः) उस रोदेसे (वयः) पक्षीके पंख लगे बाण, जो (पूरुषादः) मानवोंका संहार करते है, (प्र पतान्) शत्रुपर जाकर गिरते है।

इस अर्थमें जो वेदमन्त्रके पदोंके अर्थ हुए वे यो हैं—

१ वृक्ष = धनुष्य, क्योंकि वृक्षकी लकडीसे धनुष्य बनता है, इसलिए वृक्षकाही अर्थ धनुष्य है।

२ गौ = ज्या, धनुष्यकी डोरी, क्योंकि धनुष्यकी डोरी गौकी तांतसे बनती है, इसलिए गौका अर्थ गाय या बैलकी तांतकी बनी डोरी है।

३ वयः = बाण, क्योंकि पक्षियोंके पर बाणोंपर लगते हैं, इसलिए ' वि., वयः ' का अर्थ बाण है।

' वृक्ष ' का अर्थ ' पेड, वृक्ष, ' ' गौ ' का अर्थ ' गाय, बैल ' और ' विः, वयः '-का अर्थ ' पक्षी ' है। ये अर्थ सब जानतेही हैं। ये अर्थ सब कोषोंमें है। परन्तु ये अर्थ वेदमंत्रोंमें नहीं लेने है, पर तद्धित प्रत्यय लगकर होनेवाले अर्थ, प्रत्यय न लगते हुए भी, उस मूल पदसेही लेने हैं। यह यास्काचार्य निरुक्तकारका कथन है। अब हम इसी नियमके अनुसार अन्यान्य वेदमंत्रोंके अर्थ देखते हैं—

(६) अभीमं अघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम् । सोमं इन्द्राय पातवे ॥ [ऋ० ९।१।९]

[दीखनेवाला अर्थ] = [इन्द्राय पातवे] इन्द्रके पीनेके लिए [अघ्न्याः धेनवः] अवध्य गौएँ [इम शिशु सोमं] इस बछडे सोमको [अभि श्रीणन्ति] पकाती है।

[सत्य अर्थ] = इन्द्रके पीनेके लिए अवध्य गौओंका दूध इस सोमके रसमें मिलाकर पकाया जाता है।

यहां ' अघ्न्याः धेनवः ' का अर्थ ' गौका दूध ' है और ' शिशुं सोमं ' का अर्थ ' सोमवल्लीका रस ' है। औषधिका रस उसके पुत्रके समानही होता है।

(७) यद् गोभिर्वासयिष्यसे ॥ [ऋ. ९।२।४, ९।६६।१३]

सायन-भाष्य- यत् यदा गोभि गोविकारैः पयोभिः वासयिष्यसे आच्छादयिष्यसे ।

[दीखनेवाला अर्थ] = जब सोम [गोभिः] गौओंसे [वासयिष्यसे] आच्छादित किया जाता है ।

[सत्य अर्थ] = जब सोमरस [गोभिः] गौओंके दूधके साथ [वासयिष्यसे] मिलाया जाता है ।

(८) तं गोभि वृषणं रसं मदाय देववीतये । सुतं भराय सं सृज ॥ [ऋ० ९।६।६]

[देववीतये मदाय] देवोंके पीनेके लिए और आनन्दके लिए [तं वृषणं सुतं रसं] उस बलवर्धक निचोडे रसको [भराय] युद्धके लिए [गोभिः सं सृज] गौओंके साथ छोड दो ।

[सत्य अर्थ] = उस बलवर्धक सोमरसमें गौका दूध मिला दो । [सायन-भाष्य- ' गोभिः पयोभिः ']

(९) देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानं अति मेष्य । सं गोभिर्वासयामसि ॥ [ऋ० ९।८।५]

[देवेभ्यः मदाय] देवोंके आनन्दके लिए [त्वा] तुझ सोमरसको [मेष्यः कं अति सृजानं] भेडोकी ऊनके छननेसे जलके साथ छानकर [गोभिः सं वासयामसि] गौओंसे ढक देते हैं ।

[सत्य अर्थ] = सोमरसको छानकर [गोभि सं वासयामसि] गौके दूधसे मिलाते हैं ।

(१०) सोमासो गोभिरञ्जते । [ऋ० ९।१०।३]

[सोमासः] सोम [गोभिः] गौओंके साथ [अञ्जते] जाते हैं ।

[सत्य अर्थ] = [सोमासः] सोमरस [गोभिः] गौके दूधके साथ [अञ्जते] मिलाते हैं ।

[सा० भा०— **गोभिः पयोभिः**]

(११) यदी गोभिर्वसायते । [ऋ० ९।१४।३]

[यदि] जब [गोभिः] गौओंसे [वसायते] बसाया जाता है ।

[सत्य अर्थ] = जब सोमरस [गोभिः] गौके दूधके साथ मिलाया जाता है । [सा० भा०- **गोभिः गोविकारैः** विकारे प्रकृति शब्दः । क्षीरादिभिः वसायते आच्छाद्यते ।]

'**(१२) गाः कृण्वानः न निर्णिजम् । [ऋ० ९।१४।५, ९।८६।२६]**

सोम [गाः] गौओंको [निर्णिजं न] अपने अंगरखे जैसा बनाता है ।

[सत्य अर्थ] = सोमरस [गाः] गौओंके दूधके साथ मिलकर अपना उत्तम रूप बनाता है ।

(१३) अभि गावो अनूषत योषा जारं इव प्रियम् । [ऋ० ९।३२।५]

[योषा प्रियं जारं इव] जैसी स्त्री प्रिय यारके पास जाती है, वैसीही [गावः] गौएँ सोमके पास [अभि अनूषत] जाती हैं ।

[सत्य अर्थ] = सोमरसके साथ [गावः] गौओंका दूध मिलाया जाता है ।

(१४) संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभि । [ऋ० ९।६१।२१]

[सूपस्थाभिः धेनुभिः] उत्तम समीपस्थ गौओंके साथ [संमिश्लः] मिलकर, हे सोम ! तू [अरुषः भव] तेजस्वी हो ।

[सत्य अर्थ] = उत्तम [धेनुभिः] गौओंके दूधके साथ [संमिश्लः] मिला हुआ सोम चमकने लगे ।

[सा० भा०— **धेनुभिः गोविकारैः पयोभिः** ।]

(१५) तुभ्यं धावन्ति धेनवः । [ऋ० ९।६६।६]

हे सोम ! [तुभ्यं] तेरे लिए [धेनवः धावन्ति] गौएँ दौडती हैं ।

[सत्य अर्थ] = सोमरसमें मिश्रित होनेके लिए [धेनवः] गोदुग्धके प्रवाह बहते रहे हैं ।

(१६) अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभि सुत । [ऋ० ९।६८।९]

[अद्रिभिः सुतः] पर्वतोंसे निचोडा हुआ तू सोम [अद्भिः] जलोंसे [गोभिः] गौओंसे [मृज्यते] शुद्ध किया जाता है ।

[सत्य अर्थ] = [अद्रिभिः] पर्वतोंपर होनेवाले पत्थरोंसे [सुत] निचोडा सोमरस [अद्भिः] जलके साथ तथा [गोभिः] गोदुग्धके साथ मिलाकर छाना जाता है।

इस मन्त्रमें ' अद्रि ' पद पर्वतवाचक है, परन्तु यहां पर्वतमें मिलनेवाले ' पत्थरों ' का वाचक है। इन पत्थरों-से सोम कूटा जाता है और रस निकाला जाता है। यह भी लुप्त-तद्धितका उत्तम उदाहरण है। ' गौ ' पद तो वारंवार दूध और दहीके लिए आयाही है।

(१७) उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवः। [ऋ० ९।६९।४]

[उक्षा] बैल [मिमाति] शब्द करता है और उसके पास [धेनवः प्रति यन्ति] गाएँ जाती हैं।

[सत्य अर्थ] = [उक्षा] बलका वर्धन करनेवाला सोमरस छाना जानेके समय [मिमाति] शब्द करता है, छननेसे नीचे टपकनेका शब्द करता है, उस समय उसमें [धेनवः] गौका दूध मिलाया जाता है।

' उक्षा ' पदका अर्थ ' बैल और सोम ' दोनों है, वेदमन्त्रके ' उक्षा ' पदका अर्थ ' सोम ' न लगाते हुए ' बैल ' अर्थ लगानेसे अर्थका अनर्थ कैसे हो जाता है इसका एक उदाहरण यहां देखिए—

(१८) शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीराः तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥ (ऋ० १।१६४।४३)

(आरात्) दूरसे (शकमयं धूमं) गोबरसे निकलनेवाला धुआँ (अपश्यं) मैंने देखा और (एना विषूवता अवरेण) इस फैलनेवाले निकृष्ट धुएँके (पर) परे अर्थात् नीचे विद्यमान अग्निको भी मैंने देखा। वहां (वीराः) बुद्धिमान् लोग (उक्षाणं पृश्निं अपचन्त) बैल और गायको पकाते थे और (तानि प्रथमानि धर्माणि आसन्) वे पहिले धर्म थे।

[सत्य अर्थ] = मैंने जलती आग देखी और दूरसे इसका धुआँ भी देखा। बुद्धिमान् लोग (उक्षाणं) बल-वर्धक सोमरसको (पृश्निं) गोदुग्धके साथ (अपचन्त) पकाते थे। ये पहिले धर्म थे। अथवा (पृश्निं उक्षाणं) चितकबरे सोमरसको पकाते थे। ये प्रारंभिक धर्म थे।

' उक्षा ' का अर्थ ' सोम और बैल ' है तथा ' पृश्नि ' का अर्थ ' गौ और दूध ' है। सोमरसके साथ दूधके मिलाये जाने और उसका पाक करनेका विधान अनेक मंत्रोंमें ऊपर आया है और आगे अनेक मंत्रोंमें आयगा। उसके अनुसंधानसे इस मन्त्रका सत्य अर्थ कैसा उत्तम है, वह देखिये। इसको जो नहीं समझते, वे इस मन्त्रका कैसा अर्थ करते हैं वह अनर्थ ऊपर दिखाही है।

इस मंत्रका सायन-भाष्य- ' उक्षाणं फलस्य सेक्तारं पृश्निं शुक्लवर्णम्। पृश्निर्वल्लिरूपः सोमः तं धीराः अपचन्त। ' यहां ' उक्षा ' का अर्थ सोमही दिया है, तथापि इस मंत्रका अर्थ कइयोंने बैल लगाके अनर्थ किया है।

(१९) सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते। (ऋ० ९।७२।१)

(सोम) सोम (धेनुभिः) गौओंके साथ (कलशे) कलशमें (सं अज्यते) सिंचित होता है।

[सत्य अर्थ] = सोमरस (धेनुभिः) गौके दूधके साथ पात्रमें मिलाया जाता है।

(२०) अरममाणो अत्येति गाः। (ऋ० ९।७२।३)

(अरममाणः) न रमता हुआ सोम (गाः अति एति) गौओंका अतिक्रमण करके दूर जाता है।

[सत्य अर्थ] = (अरममाणः) प्रवाहित होनेवाला सोमरस (गाः अति एति) गौओंके दूधमें पूर्ण रीतिसे मिलाया जाता है।

(२१) अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तं अक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः॥ (ऋ० ९।७२।६)

(अपसः मनीषिणः कवय) कर्ममें कुशल मननशील ज्ञानी जन (कवि अक्षितं अंशु) बुद्धिवर्धक क्षीण न हुए सोमको (दुहन्ति) दुहते हैं। उस (ऋतस्य सदने योना) यज्ञके स्थानमें (पुनर्भुवः गाव) पुनः प्रसूत हुई गौएँ तथा (मतयः) बुद्धियाँ (संयत.) इकट्ठी होकर (सं यन्ति) मिलकर चलती हैं।

[सत्य अर्थ] = कर्ममें कुशल मननशील ज्ञानी जन बुद्धिवर्धक (अंशुं दुहन्ति) सोमका रस निकालते हैं, इस समय यज्ञके मण्डपमें (पुनर्भुव गावः) पुन प्रसूत हुई गौओंका दूध दुहा जाता है और (मतय·) स्तोत्रपाठ भी साथ साथ चलता रहता है।

इस मन्त्रमें ' अंशु ' का अर्थ सोमका रस, ' गाव ' का अर्थ गौओंका दूध और ' मतय ' का अर्थ स्तोत्र है। सोमसे सोमरस निकाला जाता है, गौसे दूध उत्पन्न होता है और बुद्धिसे स्तोत्र बनता है, इसलिए मूलपदका ही उक्त अर्थ होता है। जहां सोमरस निकाला जाता है, वहांही गौका दूध लाया जाता है और स्तोत्रपाठ भी वहीं होता रहता है। ये तीनों उदाहरण एकही जातिके हैं।

(२२) क्षिपो मृजन्ति परि गोभिरावृतं । (ऋ ९।८६।२७)

(गोभिः परि आवृतं) गौओंसे घेरे हुएको (क्षिप मृजन्ति) अंगुलियाँ शुद्ध करती हैं।

[सत्य अर्थ] = (गोभिः परि आवृत) गौके दूधके साथ चारों ओरसे मिलाये सोमरसको अंगुलियां छान रही हैं।

(२३) यद् गोभिः इन्दो चम्वोः समज्यसे आ सुवान सोम कलशेषु सीदसि ॥ (ऋ० ९।८६।४७)

हे (इन्दो) सोम ! (यत्) जब तू (चम्वोः) पात्रोंमें (गोभि सं अज्यसे) गौओंके साथ प्रविष्ट होता है, तब हे सोम ! तू (सुवान कलशेषु सीदसि) रस निकालनेपर कलशोंमें बैठता है।

[सत्य अर्थ] = जब सोमरस बर्तनोंमें (गोभिः) गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, तब वह छाना जाकर कलशोंमें रखा जाता है।

(२४) उत स्म राशिं परि यासि गोनां इन्द्रेण सोम सरथं पुनान. ॥ (ऋ० ९।८७।९)

हे सोम ! इन्द्रके साथ रथपर बैठकर (पुनान.) पवित्र होता हुआ तू (गोनां राशिं परि यासि) गौओंकी राशिको प्राप्त करता है।

[सत्य अर्थ] = इन्द्रको प्रदान करनेके लिए पवित्र किया जानेवाला--छाना जानेवाला सोमरस (गोनां राशिं) गौओंके दूधके बर्तनके पास जाता है अर्थात् सोमरस दूधमें मिलाया जाता है।

(२५) मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः । (ऋ० ९।९१।२)

(अविभि) भेडों (गोभि·) गौओं और (अद्भि) जलोंके साथ (मर्मृजान.) शुद्ध किया जाता है।

[सत्य अर्थ] = (अविभि·) भेडोंकी उनके छन्नोंसे, (गोभि) गौओंके दूधके साथ तथा (अद्भि·) जलके साथ मिलाकर सोमका रस छाना जाता है।

(२६) सं सिन्धुभि. कलशे वावशानः समुस्रियाभि. प्रतिरन्न आयु· ॥ (ऋ० ९।९६।१४)

हे सोम ! तू (सिन्धुभि) नदियोंके साथ कलशमें जानेकी इच्छा करता हुआ (उस्रियाभि) गौओंके साथ मिलकर (नः आयुः प्रतिरन्) हमारी आयुको बढा।

[सत्य अर्थ] = सोमरस (सिन्धुभिः) नदियोंके जलके साथ तथा (उस्रियाभि·) गौओंके दूधके साथ बर्तनमें मिलकर उसके सेवनसे हमारी आयुको बढा दे।

इस मंत्रमें ' सिंधु ' शब्द नदीके जलके लिए और ' उस्रिया ' शब्द गौके दूधके लिए आया है।

(२७) अक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश । (ऋ० ९।९६।२२)

सोम (गोभिः अक्तः) गौओंके साथ मिलकर कलशोंमें घुसता है।

[सत्य अर्थ] = सोमरसमें गौओंका दूध मिलानेके बाद वह कलशोंमें भरा जाता है।

(२८) पवमान पवसे धाम गोनाम्। (ऋ० ९।९७।३१)
हे (पवमान) शुद्ध होनेवाले सोम ! तू (गोनां धाम) गौओंके स्थानको (पवसे) प्राप्त होता है।
[सत्य अर्थ] = सोमरस (गोनां धाम) गौओंके दूधमें मिलाया जाता है।

(२९) सोम गावो धेनवो वावशानाः। (ऋ० ९।९७।३५)
गौएँ सोमकी इच्छा करती है, अर्थात् सोमरस गोदुग्धमें मिलानेके लिए सिद्ध हुआ है।

(३०) गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः। (ऋ० ९।९७।३४)
(गावः) गौएँ (गोपतिं) गौके पतिको (पृच्छमानाः) पूछती हुई (यन्ति) जाती है।
गौओंका दूध सोमरसमे मिलानेके लिए तैयार है।

यहां ' गो-पति ' पद ' बैल ' का वाचक है और बैलवाचक ' उक्षा ' शब्द सोमका वाचक है, इसलिए गोपति पद सोमका वाचक हुआ है। ' गौ ' का अर्थ ' दूध ' और ' गोपति ' का अर्थ ' सोमरस ' है।

(३१) गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि। (ऋ० ९।१०४।४)
हे सोम! (ते वर्णं) तेरे वर्णको हम (गोभिः) गौओंसे (अभि वासयामसि) आच्छादित करते है।
सोमरसमें (गोभिः) गौओंका दूध मिलाते हैं और उसके रंगको सुधारते हैं।

(३२) शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम्॥ (ऋ० ९।१०५।४)
(ते शुचिं वर्णं) तेरे शुद्ध वर्णको मैं (गोषु) गौओंमें (अधि दीधरं) धर देता हूँ।
सोमके रंगको मैं (गोषु) गौके दूधमें मिला देता हूँ। सोमरसको दूधमें मिलाता हूँ।

(३३) नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः।
सुते चित् त्वाऽप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम्॥ (ऋ० ९।१०७।२)

हे सोम! (अ-दब्धः सुरभिंतरः) अहिंसित और सुगंधित तू (नूनं पुनानः) निश्चयसे पवित्र किये जानेवाले (अविभिः परि स्रव) भेडोंके साथ चूता रह। (सुते चित्) रस निकालने पर (अन्धसा) अन्नके साथ (गोभिः) गौओंके साथ (श्रीणन्त) मिलाते हुए हम (उत्तर अप्सु मदामः) पश्चात् जलोंमें प्रशंसित करते हैं।

[सत्य अर्थ] = किसी तरह न दबनेवाले सुगन्धसे युक्त सोमरस (पुनान) छाननेके समय (अविभिः) भेडोंकी ऊनके छननोंसे छाना जाता है। छाननेके पश्चात् (अन्धसा) सत्तुके खानेयोग्य आटेके साथ और (गोभिः) गौके दूधके साथ (श्रीणन्त) मिलाया जाता है और पश्चात् उसमें जल भी डालते है, तब वह बडा प्रशंसनीय हो जाता है।

(३४) अनूपे गोमान् गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः। (ऋ० ९।१०७।९)
(अनूपे) निम्न प्रदेशमे (गोमान्) गौवाला (गोभिः) गौओंके साथ (अक्षाः) चू रहा है, वह सोम (दुग्धाभिः अक्षाः) दुही गौओंके साथ चू रहा है।

बर्तनके नीचले भागमें गोदुग्धमिश्रित सोम, गौके दूधके साथ मिलकर छननेके नीचे चू रहा है, वह सोमरस दुही गौओंके दूधके साथ नीचे चू रहा है, छाना जा रहा है।

(३५) पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य। (ऋ० ९।१०९।१५)
सब देव (नृभिः सुतस्य) मनुष्योंद्वारा निचोडे और (गोभिः श्रीतस्य) गौओंसे मिलाये सोमरस (पिबन्ति) पीते हैं।
सब लोग सोमका रस निचोडनेके बाद उसमें गौका दूध मिलाकर पीते हैं।

स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः। (ऋ० ९।१०९।१७)
(सः) वह सोम (सहस्र-रेताः वाजी) हजारों सामर्थ्योंसे युक्त है, बलवान् है वह (अद्भिः मृजानः) जलोंके साथ शुद्ध किया जाता है और (गोभिः श्रीणानः) गौओंसे मिलाया जाता है, अतः (अक्षाः) चूता है।

सोमरसमें अनेक शक्तियां है। इस रसमें जल और गौका दूध मिलाया जाता है और यह मिश्रण उसमेंसे लाया जाता है।

पर्वतवाचक ' अद्रि ' शब्द ' पर्वतसे प्राप्त होनेवाले पत्थरोंका वाचक ' है इसके उदाहरण ये हैं—

(ऋग्वेद नवम मंडल)

१ हस्तच्युतेभि अद्रिभिः सुतं सोमं पुनीतन। (ऋ० ९।११।५)
२ इन्दो! यत् अद्रिभिः सुतः पवित्रं परिधावसि। (२४।५)
३ हरिं हिन्वन्ति अद्रिभि। (२६।५,३२।२,३८।२,३९।६,५०।३,६५।८)
४ अप्सु त्वा मधुमत्तमं हरिं हिन्वन्ति अद्रिभिः। (३०।५)
५ सुन्वन्ति सोम अद्रिभिः। (३४।३)
६ अध्वर्यो! अद्रिभि. सुत सोमं पवित्र आ सृज। (५१।१)
७ सोमो देवो, न सूर्यो, अद्रिभि पवते सुत। (६३।१३)
८ यस्य ते मद्यं रस तीव्रं दुहन्ति अद्रिभिः। (६५।१५)
९ एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळति अद्रिभिः। (६६।२९)
१० त्वं सुष्वाणो अद्रिभि। (६७।३)
११ अद्भिः गोभि. मृज्यते अद्रिभिः सुतः। (६८।९)
१२ अद्रिभिः सुतः पवते। (७१।३)
१३ अद्रिभि सुतो मतिभिश्चनोहित। (७५।४)
१४ मधुमन्तं अद्रिभिः दुहन्ति अप्सु वृषभ दश क्षिप। (८०।५)
१५ अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ। (८६।२३)
१६ गभस्तिपूतो नृभिः अद्रिभिः सुतः। (८६।३४)
१७ नरः सोमं हिन्वन्ति अद्रिभिः। (१०१।३)
१८ सुष्वाणासो व्यद्रिभि गो अधि त्वचि। (१०१।११)
१९ सुषाव सोमं अद्रिभिः। (१०७।१)
२० सोम सुवानो अद्रिभिः। (१०७।१०)
२१ सोम! प्र याहि इन्द्रस्य कुक्षा नृभि येमानो अद्रिभि सुतः। (१०९।१८)
२२ सुधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रिय पतिर्गवां इन्दु॥ (७२।४)
२३ नृभि सोम! प्रच्युतो ग्रावभिः सुत। (८०।४)
२४ सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे। (८२।३)

संस्कृतमें ' अद्रि, गोत्र, गिरि, ग्रावा, अचल, शैल, धर, पर्वत ' आदि पद ' पर्वत ' वाचक हैं। इनमेंसे ' अद्रि और ग्रावा ' ये दो पर्वतवाचक पद कूटने पीसनेके लिए प्रयुक्त होनेवाले पत्थरोंके वाचक ऊपरके मंत्रोंमें आये है। ' ग्रावा ' के केवल अन्तिम दो उदाहरण हैं, और पहिले सब उदाहरण ' अद्रि ' के हैं। पत्थर पर्वतसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए पर्वतवाचक ' अद्रि ' और ' ग्रावा ' पद पत्थरोंके वाचक माने गये है। जिस तरह गौसे उत्पन्न होनेवाले ' दूध ' के लिए ' गौ ' पद प्रयुक्त होता है, वैसेही ये सब उदाहरण लुप्त-तद्धितके हैं।

उक्त सब मंत्रोंमें यही कहा है कि (अद्रिभि) पर्वतोंमें उत्पन्न हुए पत्थरोंसे सोम कूटा जाता है और उससे रस निकालते हैं। प्रत्येक मन्त्रमें यद्यपि सोमके सम्बन्धकी कुछ विशेष बात कही है तथापि हमें यहां केवल इतनाही बताना है कि पर्वतवाचक ' अद्रि और ग्रावा ' पद पर्वतसे उत्पन्न पत्थरोंके अर्थमें इन मन्त्रोंमें प्रयुक्त हुए है।

अब उक्त मन्त्रभागोंके अर्थ क्रमशः देखिये— (१) हाथोंसे कूटनेवाले पत्थरोंसे निकले सोमरसको छानो। (२) हे सोम! तू पत्थरोंसे रस निकलनेपर छननेके पास दौडता है। (३) पत्थरोंसे हरे सोमका रस निकालते हैं। (४) पत्थरोंद्वारा रस निकालनेपर पानी मिलाते हैं। (५) सोमका रस पत्थरोंसे निकालते हैं। (६) हे अध्वर्यो! पत्थरोंसे सोमका रस निकालनेपर छननेपर रखो। (७) सोमदेव, सूर्यके समान, पत्थरोंसे रस निकालनेपर पवित्र करता है, (८) तेरा आनन्दकारक तीव्र रस पत्थरोंसे निकालते हैं। (९) यह सोम चमडेपर पत्थरोंके साथ खेलता है। (१०) पत्थरोंके साथ रस निकालते हैं। (११) पत्थरोंसे रस निकलनेपर जल और गौके दूधके साथ छाना जाता है। (१२) पत्थरोंसे रस निकालते हैं। (१३) पत्थरोंद्वारा निकाला रस मन्त्रोंसे प्रशंसित होता है। (१४) मधुर बलवर्धक रसको पत्थरोंसे कूटकर दस अंगुलियां जलमें मिलाती हैं। (१५) पत्थरोंसे निकाला रस छननेपर चढाया जाता है। (१६) मानवोंने पत्थरोंसे पवित्र रस निकाला है। (१७) मनुष्य सोमका रस पत्थरोंसे निकालते हैं। (१८) गौके चमडेपर बैठकर पत्थरोंसे सोमका रस निकालते हैं। (१९) पत्थरोंसे सोमरस निकाला। (२०) पत्थरोंसे सोमरस निकाला जा रहा है। (२१) मानवोंने पत्थरोंद्वारा निकाला सोमरस इन्द्रकी कोखमें चला जावे। (२२) मनुष्योंद्वारा निकाला, पत्थरोंसे कूटा, यज्ञमें प्रिय गौओंका पति सोमरस है। (२३) मानवोंने पत्थरोंद्वारा कूटकर सोमरस निकाला है। (२४) यज्ञमें पत्थरोंद्वारा सोमका रस निकालते हैं।

उक्त मन्त्रभागोंका अर्थ यहां क्रमसे दिया है। प्रत्येक मन्त्रभागमें पर्वतवाचक 'अद्रि' तथा 'ग्रावा' पदका अर्थ 'कूटनेका पत्थर' है।

ये सब उदाहरण लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके हैं। पूर्व स्थानमें निरुक्तकार यास्काचार्यके वचनमें 'वृक्षे-वृक्षे' पद (धनुषि, धनुषि) धनुष्य अर्थमें आया है। धनुष्य एक प्रकारकी बांसकी लकडीसे बनता है। बांसकोही यहाँ वृक्ष कहा प्रतीत होता है। वेदमें एक स्थानपर 'वृक्ष' पद 'पलंग अथवा खटिया' का वाचक आया है देखिए—

माता च ते पिता च तेऽग्रं वृक्षस्य रोहतः। माता च ते पिता च तेऽग्रे वृक्षस्य क्रीडतः॥
(वा. य. २३।२४-२५)

'तेरे माता और पिता (वृक्षस्य अग्रं) पलंग अथवा खटियापर आरोहण करते थे।' इस मन्त्रमें 'वृक्ष' पदका अर्थ 'वृक्षकी लकडीसे बना पलंग' है।

यहां करीब ६२ उदाहरण लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके दिये हैं। इनसे इस वैदिक प्रक्रियाकी ठीक कल्पना पाठकोंके मनमें स्थिर हो सकती है। उक्त 'अद्रि' पदवाले उदाहरण हमने केवल नवम मण्डलकेही दिये हैं। नवम मण्डल सोम मण्डलही है। पाठकोंकी सुविधाके लिए हम अब अन्य मण्डलोंके मन्त्र यहां देते हैं, वहां भी 'अद्रि' पद पत्थरवाचकही है—

(१) हरिं यत् ते मन्दिनं दुक्षन् वृधे गोरभसं अद्रिभिः वाताप्यम्। (ऋ. १।१२१।८)

(ते मन्दिनं हरिं) तेरे हर्षके लिए हरे वर्णका सोमरस (दुक्षन्) निकाला, वह (अद्रिभिः) पत्थरोंके द्वारा निकाला था, और (गोरभसं) गौके दूधके साथ मिलाया था और (वाताप्यं) वायुमें उसको चढाया भी था।

(२) पिबा सोमं इन्द्र सुवानं अद्रिभिः। (ऋ० १।१३०।२)

हे इन्द्र! तूने (अद्रिभिः) पत्थरोंसे सोम कूटकर निकाला, यह रस पी जा।

(३) तुभ्यायं सोमः परिपूतो अद्रिभिः। (ऋ० १।१३५।२)

तेरे लिए पत्थरोंद्वारा यह सोम कूटकर रस निकाला और छानकर तैयार किया है।

(४) सुषुमा यातमद्रिभिर्गोश्रीता मत्सरा इमे सोमासो मत्सरा इमे॥ १॥
तां धां धेनुं न वासरीं अंशुं दुहन्ति अद्रिभिः सोमं दुहन्ति अद्रिभिः॥ ३॥ (ऋ० १।१३७)

' आओ ! हमने ये सोमरस (अद्रिभिः) पत्थरोंसे कूटकर निकाले हैं, (गो-श्रीता) गौओंके दूधके साथ मिलाये हैं, अब ये रस आनन्दवर्धक बने हैं। तुम्हारी धेनुके दूध दुहनेके समानही सोमको पत्थरोंसे कूटकर उससे रस दुहते हैं। '

(५) गा अपो अधुक्षन् सो अविभि अद्रिभि' नरः। (ऋ० २।३६।१)

(अद्रिभि) पत्थरोंसे कूटकर निकाला रस (अविभिः) भेडोंकी ऊनके छननेसे छाना (गा) गौका दूध उसमें मिलाया तथा (अप) जल भी मिलाया है।

(६) अपावृणोत् हरिभिः अद्रिभिः सुतम्। (ऋ० ३।४४।५)

हरे वर्णके पत्थरोंसे निकाले सोमरसको प्रकट किया।

(७) सोमं सुषाव मधुमन्तं अद्रिभि। (ऋ० ४।४५।५)

पत्थरोंसे सोम कूटकर मधुर रस निकालते हैं।

(८) सोता हि सोममद्रिभिः एमेनं अप्सु धावत। (ऋ० ८।१।१७)

(अद्रिभि सोमं सोत) पत्थरोंसे सोमका रस निकालो, (एन अप्सु धावत) इसको जलोंमें स्वच्छ करो।

इस तरह वेदोंमें अन्यत्र भी पर्वतवाचक ' अद्रि ' पद सोम कूटनेके पत्थरोंका वाचक है। इसके कई और उदाहरण हैं, परन्तु यहां अब इतनेही पर्याप्त हैं।

लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके ये उदाहरण निम्नलिखित मन्त्रोंमे पाये जाते हैं, वे देखनेयोग्य हैं-

१ वशा सोमं आऽहरत्। (अथर्व० १०।१०।१२)= वशा गौने सोमका हरण किया, अर्थात् गौके दूधमें सोमरस मिलाया गया। और दूध अधिक मात्रामें रहनेके कारण सोमका रंग न दीखते हुए दूधकाही रंग उस मिश्रणपर दीखने लगा।

२ वशा सोमेन सं आगत। (अथर्व० १०।१०।१३)= वशा गौ सोमके साथ मिली, अर्थात् गौके दूधके साथ सोमरसका मिश्रण हुआ।

३ वशा समुद्रं अध्यष्ठात्। (अथर्व० १०।१०।१३)= वशा समुद्रपर ठहरी, अर्थात् गौका दूध जल (मिश्रित सोमरसके मिश्रण) के ऊपर दीखने लगा। (सोमरसमें दूध इतना अधिक मिलाना चाहिए कि वह ऊपर दीखे और सोमरसका रंग मिट जाय।)

४ वशा समुद्रे प्रानृत्यत्। (अथर्व० १०।१०।१४)= गौ समुद्रपर नाचने लगी, अर्थात् सोमरसरूपी समुद्रपर गौका दूध दिखाई दिया। (सोमरसमें गौका दूध मिलाया और उस मिश्रणमें दूधका भाग अधिक था, जो ऊपर दीखने लगा।)

५ वशा समुद्रं अत्यख्यत्। (अथर्व० १०।१०।१५)= वशा गौ समुद्रका तिरस्कार करने लगी अर्थात् सोमरसरूपी समुद्रसे गौका दूध उक्त मिश्रणमें अधिक होनेसे अधिक वस्तु न्यून वस्तुका तिरस्कार करती है वही यहां हुआ।

[यहां ' वशा ' पद गौके दूधका वाचक और ' समुद्र ' पद सोमरसमें मिलाये जलका और जलमिश्रित सोमका वाचक है। लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाका कहांतक संबंध पहुंचता है सो देखिए। ' समुद्र ' का नाम ' सिंधु ' है। सिन्धुका अर्थ ' नदी ' है। नदीका जल यज्ञमें सोमरस निकालनेके लिए काममें लाते हैं, इसलिए ' समुद्र ' पदसे ' जल ' लिया और पश्चात् यह जल सोमरसमें होनेसे ' समुद्र ' का अर्थही ' सोमरस ' हुआ। वेदमंत्रका अर्थ करनेके लिए इतना दूर संबंध देखना पडता है।]

६ अश्वः समुद्रो भूत्वा (वशा) अध्यस्कन्दत्। (अथर्व० १०।१०।१६)= घोडा समुद्र बनकर गौपर चढ गया, अर्थात् ' घोडा ' नाम बलवर्धक ' सोम ' समुद्र नाम ' जल ' जैसा बनकर, सोमरसके रूपमें निचोडे जाकर गौके दूधके साथ उण्डेला गया।

७ कस्याः माश्नीयात् अब्राह्मणः। (अथर्व० १२।४।४३)
तस्या नाश्नीयात् अब्राह्मण । (४४,४६)

किस गौका भक्षण अब्राह्मण न करे ? उस गौका भक्षण अब्राह्मण न करे । अर्थात् वशा जातीकी गौका दूध अब्राह्मण न पीवे ।

यहां पदोंके अर्थसे गौके मांसके खानेका भाव प्रतीत होता है, परन्तु यहाँ केवल दूध, घी, दही आदिके सेवनकाही भाव है। गोविकारके लिए गौ शब्दका प्रयोग यहा हुआ है।

८ यदि हुतां, यदि अहुतां, अमा च पचते वशाम्। (अथर्व० १२।४।५३)= दान देनेपर अथवा दान न देनेपर अपनेही घर गौको पकाता है। इनका गौके मांसको पकाता है ऐसा भाव नहीं है, परन्तु गौके दूधका पाक बनाता है, ऐसा भाव यहा है।

ये उदाहरण लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके है। इनका अर्थ इसी प्रक्रियाके अनुसार समझना चाहिये।

लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके कुछ उदाहरण

९ ग्रावा त्वा अधि नृत्यतु। (अथर्व० १०।९।२)= यह पत्थर तेरे ऊपर नाचता रहे, अर्थात् गौके चर्मपर रखे सोमको कूटता रहे।

१० शतौदनां य पचति। (अथर्व० १०।९।४)= जो सौ मानवोंके पर्याप्त होनेयोग्य दूध देती है, उस गौको पकाता है अर्थात् इस गौके दूधको पकाता है, दूधका पाक तैयार करता है।

११ ते शमितारः पक्तारः जना ते गोप्स्यन्ति। (अथर्व० १०।९।७)= तुझे शान्त करनेवाले और तेरा पाक करनेवाले लोगही तेरी सुरक्षा करेंगे, अर्थात् गौको शान्तिसुख देनेवाले और गौके दूधका पाक करनेवाले लोगही गौकी सुरक्षा करेंगे।

१२ हे नृपते ! ते देवा' गां अत्तवे न अदुः। (अथर्व० ५।१८।१)= हे राजन् ! तेरे पास देवोंने गौ खानेके लिए दी नहीं है, अर्थात् अपने भोगके लिए नहीं दी है। गौका उपभोग क्षत्रिय अपने भोगके लिए न करे।

१३ हे राजन्य ! ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां मा जिघत्सः। (अथर्व० ५।१८।१)= हे क्षत्रिय ! ब्राह्मणकी गौ न खा, अर्थात् ब्राह्मणकी गौका अपहरण न कर।

१४ पापः राजन्यः ब्राह्मणस्य गां अद्यात्। (अथर्व० ५।१८।२)= पापी क्षत्रिय कदाचित ब्राह्मणकी गौको खायेगा अर्थात् दुष्ट क्षत्रियही ब्राह्मणकी गौका अपहरण करेगा।

१५ ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराऽभवन्। (अथर्व० ५।१८।१०)= ब्राह्मणकी गौको खाकर वैतहव्य क्षत्रिय पराभूत हुए अर्थात् ब्राह्मणकी गो छीननेसे इन क्षत्रियोंका पराभव हुआ था।

१६ हन्यमाना गौः वैतहव्यान् अवातिरत्। (अथर्व० ५।१८।११)= हनन की हुई गौ उन क्षत्रियोंको पराभूत करनेका कारण बनी अर्थात् वे क्षत्रिय ब्राह्मणकी गौको हरण करके ले जाते थे, इस कारण उनका पराभव हुआ।

१७ चरं-अजां अपेचिरन्। (अथर्व० ५।१८।११)= अन्तिम बकरीको भी पकाया, अर्थात् ब्राह्मणकी अन्तिम बकरीका उन क्षत्रियोंने हरण किया और उसके दूधका पाक करके सेवन किया, इससे उन क्षत्रियोंका पराभव हुआ।

१८ पच्यमाना ब्रह्मगवी राष्ट्रस्य तेजः निर्हन्ति। (अथर्व० ५।१९।४)= पकायी ब्राह्मणकी गौ राष्ट्रके तेजको नष्ट करती है, अर्थात् ब्राह्मणकी गौ हरण करनेपर, वह राष्ट्रको निस्तेज करती है।

इतने उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जाता है कि वेदमें लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया है, अतः जहां ऐसे प्रयोग हुए हों, वहां इस प्रक्रियाके अनुसारही अर्थ करना चाहिये। अन्यथा अर्थका अनर्थ बनेगा। अब यहां पाठकोंकी सुविधाके लिए यहांतक दिये पदोंके अर्थ पुनः बताते हैं—

(२६) वशा गौ ।

[अथर्व० १०।१०।१-३४]

कश्यपः । वशा । अनुष्टुप्, १ ककुम्मती; ५ पञ्चपदा० स्कन्धोग्रीवी बृहती, ६, ८, १० विराट्, २३ बृहती; २४ उपरिष्टाद्बृहती; २६ आस्तारपङ्क्तिः; २७ शंकुमती; २९ त्रिपदा विराड्गायत्री; ३१ उष्णिग्गर्भा; ३२ विराट् पथ्या बृहती ।

[१] नमस्ते जायमानायै जाताया उत ते नमः ।
बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः ॥ १४२ ॥

हे [अघ्न्ये] अवध्य गौ ! [ते जायमानायै नमः] जन्मते समय तुझे प्रणाम है, [उत ते जातायै नमः] और जन्म होनेपर तुझे प्रणाम है, [ते बालेभ्यः शफेभ्यः] तेरे बालों और खुरोंके लिए [रूपाय नमः] और तेरे रूपके लिए प्रणाम है ।

गौ सदा अवध्य है, किसी तरह दुःख देनेयोग्य नहीं है । वह प्रत्येक अवस्थामें वंदनीय और सेवा करनेयोग्य है ।

[२] यो विद्यात्सप्त प्रवतः सप्त विद्यात्परावतः ।
शिरो यज्ञस्य यो विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ १४३ ॥

[यः सप्त प्रवतः विद्यात्] जो सात उच्चताएँ जानता है और जो [सप्त परावतः विद्यात्] सात दूरताएँ जानता है, तथा [यः यज्ञस्य शिरः विद्यात्] जो यज्ञका सिर जानता है [सः] वही विद्वान् [वशां प्रति गृह्णीयात्] गौका दान ले ।

पंच ज्ञानेंद्रिय और मन तथा बुद्धिसे प्राप्त होनेवाली सातों उच्च अवस्थाओंको जो जानता है, तथा जिसको पता है, कि इनकी कितनी दूरीतक पहुंच होती है, और यज्ञमें मुख्य तत्त्व क्या है, इसे जो जानता है वह गौका दान लेनेका अधिकारी है । उक्त सात इन्द्रियोंकी शक्ति संयमित और विकसित करनेसे मनुष्य उच्चताओंको प्राप्त कर सकता है और इनकी जहांतक पहुंच है, वहां जो तत्त्व है, उन्हें जिसने जाना है, और जो यज्ञमें मुख्यका भाग कौनसा है यह जानता है, वही गौका दान लेनेका अधिकारी है । प्रत्येक मनुष्य अथवा प्रत्येक ब्राह्मण गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है ।

[३] वेदाहं सप्त प्रवतः सप्त वेद परावतः ।
शिरो यज्ञस्याहं वेद सोमं चास्यां विचक्षणम् ॥ १४४ ॥

मैं सात उच्चताओंको जानता हूं और सात दूरताओंको भी मैं जानता हूं, यज्ञका सिर भी मैं जानता हूं तथा तेजस्वी सोमको भी मैं जानता हूं ।

कईयोंकी संमति इस मंत्रमें और पूर्वमंत्रमें यह है कि यहां ' सप्त प्रवतः ' का अर्थ ' सात नदियां ' है और ' सप्त परावतः ' का अर्थ ' सप्त लोक ' है । ' यज्ञका सिर ' अर्थात् यज्ञका मुख्य भाग ' सोमरस ' है, इस सम्बन्धका विज्ञान जो जानता है वह गौका दान ले ।

[४] यया द्यौर्यया पृथिवी ययाऽऽपो गुपिता इमाः ।
वशां सहस्रधारां ब्रह्मणाच्छावदामसि ॥ १४५ ॥

[यया द्यौः] जिससे द्युलोक, [यया पृथिवी] जिससे भूलोक और [यया इमाः आपः गुपिताः]

जिसने ये जल सुरक्षित किये हैं, उस [सहस्रधारां वशां] हजारों धाराओंसे दूध देनेवाली वशा गौकी हम [ब्रह्मणा अच्छा आवदामसि] ज्ञान वा बुद्धिपूर्वक अथवा मन्त्रोंके द्वारा प्रशंसा करते हैं।

गौने सबकी रक्षा की है, इसलिए उसकी हम प्रशंसा करते हैं।

[५] शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ।
ये देवास्तस्यां प्राणन्ति ते वशां विदुरेकधा ॥ १४६ ॥

[अस्याः पृष्ठे अधि] इस गौकी पीठपर, गौके पीछे [शतं गोप्तारः] सौ गो-पालक हैं, (शतं दोग्धारः] सौ दुहनेवाले हैं, और [शतं कंसाः] सौ मनुष्य दुग्धपात्र लिए खड़े हैं, [ये देवाः] जो देव [तस्यां प्राणन्ति] उस गौमें अपना जीवन धारण करते हैं, [ते एकधा वशां विदुः] वे प्रत्येक इस वशा गौको जानते हैं।

गौके महोत्सवमें उत्तम गौके पीछे सौ गोपाल, सौ दोहनकर्ता, सौ दुग्धपात्र लेनेवाले चलते हैं। इस तरह उत्तम वशा गौका महोत्सव मनाया जाता है। गौके आश्रयसे अर्थात् गौका दूध घी आदि सेवन करके देव अपना जीवन धारण करते हैं, यज्ञसे उनको जो घृतादि मिलता है, उससे वे देव प्राण धारण करते हैं। वेही वशा गौका

[६] यज्ञपदीराक्षीरा स्वधाप्राणा महीलुका ।
वशा पर्जन्यपत्नी देवाँ अप्येति ब्रह्मणा ॥ १४७ ॥

[यज्ञपदी] यज्ञ जिसके पांव हैं, [इरा-क्षीरा] अन्नरूप दूध देनेवाली, [स्वधा-प्राणा] अपनी धारणशक्तिको सचेत करनेवाली, [*महीलुका*] *भूमीके समान पर्याप्त अन्न देनेवाली* [*पर्जन्य-पत्नी*] पर्जन्य घास उगाकर जिसकी पालना करता है, ऐसी [वशा] वशा गौ [ब्रह्मणा देवान् अपि एति] मंत्रके साथ देवताओंके पास जाती है।

गौ ब्राह्मणोंको दानमें दी जाती है। वे ब्राह्मण इसके दूधसे हवन करके गौका दूध और घृत देवोंको पहुंचाते हैं। इस तरह गौ देवोंके पास पहुंचती है।

गौ यज्ञको अपना घृत आदि देकर यज्ञको चलाती है, अन्नरूपी दूध देती है, जिससे प्राणियोंकी धारणाशक्ति बढ़ती है। पर्जन्य वृष्टिद्वारा घास उत्पन्न करता है और गौका पालन करता है। यह गौका महत्त्व है।

[७] अनु त्वाऽग्निः प्राविशदनु सोमो वशे त्वा ।
ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यो विद्युतस्ते स्तना वशे ॥ १४८ ॥

हे [वशे] *वशा गौ !* [*त्वा अग्निः अनु प्राविशत्*] *तुझमें अग्नि प्रविष्ट हुआ है,* [*त्वा सोमः अनु*] तुझमें सोम प्रविष्ट हुआ है, हे [भद्रे वशे] कल्याणकारिणी वशा गौ ! [पर्जन्यः ते ऊधः] पर्जन्यही तेरा दुग्धाशय बना है, [ते स्तनाः विद्युतः] तेरे थन बिजलियां हैं।

गौ सूर्य प्रकाशमें घूमती है, उस समय सूर्य-किरणोंके द्वारा अग्नि उस गौके अन्दर प्रविष्ट ही जाता है। सोम वनस्पतिको गौ खाती है, इस कारण सोमका प्रवेश गौमें होता है। पर्जन्यसे नदी आदिमें पानी होता है, वह पानी गौ पीती है, इस तरह पर्जन्य गौमें प्रविष्ट होकर दुग्धाशयमें रहता है। पर्जन्यद्वारा विद्युत्‌का भी परिणाम पानीमें होता है। इस तरह अग्नि, सोम, पर्जन्य और विद्युत्, ये चार देव गौके दूधमें रहते हैं। इस कारण गौका दूध इन दैवी शक्तियोंसे युक्त रहता है।

[८] अपस्त्वं धुक्षे प्रथमा उर्वरा अपरा वशे ।
तृतीयं राष्ट्रं धुक्षेऽन्नं क्षीरं वशे त्वम् ॥ १४९ ॥

हे [वशे] वशा गौ ! [त्वं प्रथमा अपः धुक्षे] तू प्रथम जल दुहकर देती है, [अपरा उर्वरा] पश्चात् उपजाऊ भूमिको निर्माण करती है, [तृतीयं राष्ट्रं धुक्षे] तीसरे स्थानमें राष्ट्रको दुहकर [त्वं अन्नं क्षीरं] अन्न और दूध देती है ।

मेघरूपी गौ प्रथम वृष्टिसे जल देती है, इससे बैल हल चलाकर जमीनको अपने गोबरसे उपजाऊ बनाकर अन्न उत्पन्न करते हैं। पश्चात् सम्पूर्ण राष्ट्रको दूध और अन्न भरपूर देती है । यह सब गौकाही माहात्म्य है।

[९] यदादित्यैर्हूयमानोपातिष्ठ ऋतावरि ।
इन्द्रः सहस्रं पात्रान्त्सोमं त्वाऽपाययद्वशे ॥ १५० ॥

हे [ऋतावरि वशे] सत्य यज्ञमार्गको चलानेवाली वशा गौ ! [यत् आदित्यैः हूयमाना] जब आदित्यों द्वारा बुलायी जानेपर [उपातिष्ठ] तू समीप पहुंची, तब [इन्द्रः] इन्द्रने [त्वा] तुझे [सहस्र पात्रान् सोम अपाययत्] सहस्रों पात्रोंमें सोमरस पिलाया था ।

यज्ञमें गौको यथेच्छ सोमरस पिलाया जाता है और उस गौका दूध लिया जाता है । इस दूधमें सोमका सत्त्व आ जाता है । इस तरह सोमके सत्त्वसे युक्त दूध पीनेसे बडे लाभ होते हैं ।

[१०] यदनूचीन्द्रमैरात्व ऋषभोऽह्वयत् ।
तस्मात्ते वृत्रहा पयः क्षीरं क्रुद्धोऽहरद्वशे ॥ १५१ ॥

[यत् अनूची इन्द्रं ऐः] जब तू इन्द्रके पीछे पीछे गयी तब [त्वा ऋषभः अह्वयत्] तुझे वृत्ररूपी बैलने बुलाया, [तस्मात्] इसलिए (क्रुद्धः वृत्रहा) क्रोधित हुआ इन्द्र, हे [वशे] गौ ! [ते पयः क्षीरं अहरत्] तेरे दूधको [और दुग्धसे उत्पन्न पदार्थोंको] उठा ले गया ।

गौ इन्द्रके साथ साथ रहती थी । तब वृत्रासुरने, इन्द्रके शत्रुने, गौको अपने पास बुलाया और दूध प्राप्त करना चाहा । यह देखकर इन्द्रको क्रोध आया और तुरन्तही इन्द्रने गौका सब दूध दुहकर किसी गुप्त स्थानमें रख दिया । दूध किसी दुष्टको प्राप्त न हो, इसलिए गुप्त स्थानपरही रखना चाहिये । दूध सुरक्षित स्थानमेंही रखना चाहिये । ढँककर रखना चाहिये ।

[११] यत्ते क्रुद्धो धनपतिरा क्षीरमहरद्वशे ।
इदं तदद्य नाकस्त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥ १५२ ॥

हे [वशे] वशा गौ ! [यत् क्रुद्धः धनपतिः] जब क्रोधित हुआ धनका स्वामी [ते क्षीरं] तेरे दूधको [आहरत्] ले लेता है, [तत् इदं नाकः अद्य] तब यह स्वर्गधाम आजही उस दूधको [त्रिषु पात्रेषु रक्षति] तीन पात्रोंमें रख लेता है ।

शत्रुको दूध न मिले इस इच्छासे क्रोधित हुआ वीर इन्द्र गौओंसे दूध लेकर तीन पात्रोंमें सुरक्षित रखता है । इस तरह सब लोग दूधको सुरक्षित रखें ।

[१२] त्रिषु पात्रेषु तं सोममा देव्यहरद्वशा ।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १५३ ॥

[त्रिषु पात्रेषु] तीन पात्रोंमें [तं सोमं] रखे उस सोमरसको [वशा देवी] गौ माता

वेधी [आहरत्] प्राप्त करती है। उस यज्ञमें अथर्ववेदी दीक्षित होकर सुवर्णके आसनपर बैठता है।

सोमका रस निकालकर तीन पात्रोंमें छानते हैं। उस छाने हुए रसमें गौका दूध मिलाया जाता है। ऐसे यज्ञमें अथर्ववेदी ब्रह्मा सुवर्णके आसनपर बैठा रहता है।

वशा सोमं आहरत् = गौ सोमको हर लेती है, अर्थात् गौके दूधमें सोमरस मिलाया जाता है।

[१३] सं हि सोमेनागत समु सर्वेण पद्वता।
वशा समुद्रमध्यष्ठाद्गन्धर्वैः कलिभिः सह ॥ १५४ ॥

[सोमेन हि सं आगत] सोमके साथ संगत हुई, [सर्वेण पद्वता सं उ] सब पांववालोंके साथ वह संगत हुई। वह वशा गौ गंधर्वों और [कलिभिः सह] युद्ध करनेवाले वीरोंके साथ [समुद्रं अध्यष्ठात्] समुद्रपर ठहरी थी।

वशा सोमेन समागत = गौ सोमके साथ मिली, अर्थात् गौका दूध सोमके रसके साथ मिलाया गया।

वशा सर्वेण पद्वता सं आगत = गौ सब पांववालोंसे मिली, अर्थात् दूध सब मानवोंको मिल गया, दिया गया।

वशा समुद्रं अध्यष्ठात् = गौ समुद्रपर जाकर ठहरी, अर्थात् गौका दूध सोमके रसके साथ मिलाया गया। सोमका रस निकालनेके समय जल मिलाया जाता है, इसलिए यहां कहा कि जलके साथ गौके दूधको मिलाया गया।

कलिः = युद्ध, वीर, युद्ध करनेवाले।

वशा कलिभिः समागत = गौ वीरोंके साथ मिल गयी, अर्थात् गौका दूध वीरोंको पीनेके लिए मिल गया।

[१४] सं हि वातेनागत समु सर्वैः पतत्रिभिः।
वशा समुद्रे प्रानृत्यदृचः सामानि बिभ्रती ॥ १५५ ॥

[वशा वातेन हि सं आगत] गौ वायुके साथ मिली, [सर्वैः पतत्रिभिः सं उ] सब पक्षियोंके साथ मिली। ऋचा और सामोंको [बिभ्रती] धारण करनेवाली वशा [समुद्रे प्रानृत्यत्] समुद्रपर नाचने लगी।

वशा वातेन सं आगत = गौ वायुके साथ मिल गयी। अर्थात् सोमरसके साथ मिलाया दूध वायुको मिलानेके लिए बर्तनसे दूसरे बर्तनमें ऊपरसे उण्डेला गया।

पतत्रिन् = पक्षी, दिनरात्र, अहोरात्र, अग्नि।

वशा सर्वैः पतत्रिभिः सं आगत = गौ सब पक्षियोंसे मिली अर्थात् गौका दूध या घृत सब अग्नियोंमें हवन किया गया।

ऋचः सामानि बिभ्रती वशा समुद्रे प्रानृत्यत् = ऋचाओं और सामोंको धारण करके वशा समुद्रपर नाचने लगी, अर्थात् यज्ञमें जब ऋग्वेदके मंत्र और सामगान गाये जाने लगे तब गौका दूध सोमरसमें मिलाये पानीके साथ मिश्रित होने लगा।

[१५] सं हि सूर्येणागत समु सर्वेण चक्षुषा।
वशा समुद्रमत्यख्यद्भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती ॥ १५६ ॥

(वशा सूर्येण हि सं आगत) वशा गौ सूर्यके साथ मिल गयी, (सर्वेण चक्षुषा सं उ) सब

आंखवालोंके साथ मिल गयी, वह गौ [भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती] कल्याणकारक तेजोंको धारण करती हुई (समुद्रं अत्यख्यत्) समुद्रको तिरस्कृत करने लगी।

वशा सूर्येण सं आगत = वशा गौ सूर्यके साथ मिली, अर्थात् गौ सूर्यके प्रकाशमें घूमती रही।

वशा सर्वेण चक्षुषा सं आगत = वशा गौ आंखवालेके साथ मिली, अर्थात् गौका दूध आंखवाले सोमके रसके साथ मिलाया गया। सोमवल्लीके ऊपर आंख जैसे धब्बे होते हैं, इसलिए सोमका ऐसा वर्णन यहां किया गया है।

भद्रा ज्योतींषि बिभ्रती वशा समुद्रं अत्यख्यत् = वशा गौ अनेक तेजोंको धारण करती हुई समुद्रका तिरस्कार करने लगी, अर्थात् गौका दूध सोमरसमें मिलनेपर चमकने लगा और सोमरसके पानीसे वह अधिक प्रमाणमें मिलाया गया, अर्थात् पानी परिमाणमें न्यून होनेसे दूधसे पानीका तिरस्कार होने लगा। बहु प्रमाणवाला अल्प प्रमाणवालेका तिरस्कार करता है। सोमरसका पान करनेके लिए उसमें अधिक दूध मिलाना चाहिये।

[१६] अभीवृता हिरण्येन यदतिष्ठ ऋतावरि।
अश्वः समुद्रो भूत्वाऽध्यस्कन्दद्वशे त्वा ॥ १५७ ॥

हे (ऋतावरि) सत्य यज्ञमार्गको चलानेवाली गौ! (हिरण्येन अभीवृता यत् अतिष्ठः) सुवर्णसे आच्छादित होकर जब तू ठहरती है, तब (समुद्र अश्वः भूत्वा) समुद्र घोडा बनकर हे वशा गौ! [त्वा अध्यस्कन्दत्] तेरे ऊपर चढता है।

समुद्रः अश्वः भूत्वा त्वा (वशां) अध्यस्कान्दत् = समुद्र घोडा होकर तुझपर चढ गया। अर्थात् समुद्र अर्थात् नदीका जल मिलाकर अश्व अर्थात् सोमका रस तैयार हुआ, वह गौके दूधपर गिराया जाने लगा।

यहां 'समुद्र' का अर्थ 'नदीका जल' है, 'अश्व' का अर्थ 'सोमरस' है और 'वशा' का अर्थ गायका दूध है।

[१७] तद्भद्राः समगच्छन्त वशा देष्ट्र्यथो स्वधा।
अथर्वा यत्र दीक्षितो बर्हिष्यास्त हिरण्यये ॥ १५८ ॥

[तत् भद्राः सं अगच्छन्त] जहां कल्याण करनेवाले पुरुष इकट्ठे हुए, वहां [वशा देष्ट्री] गौ मार्ग बतानेवाली हुई, [अथ उ स्वधा] और अन्न देनेवाली बन गयी। जहां दीक्षित होकर अथर्व-वेदी ब्रह्मा सुवर्णके आसनपर बैठता है। [यहांका द्वितीय चरण मंत्र १२ के द्वितीय चरणके समानही है]

कल्याण करनेवाले याजक इकट्ठे हुए और यज्ञ करने लगे। उस यज्ञमें गौही यज्ञका मार्ग बताती रही, अर्थात् गौके दूध घी आदिसेही यज्ञ होने लगा और दूधरूपी अन्न भी गौही देने लगी।

[१८] वशा माता राजन्यस्य वशा माता स्वधे तव।
वशाया यज्ञ आयुधं ततश्चित्तमजायत ॥ १५९ ॥

[राजन्यस्य माता वशा] क्षत्रियकी माता गौ है, हे [स्वधे] स्वधा! हे अन्न! [तव माता वशा] तेरी माता वशा गौही है, [वशायाः आयुधं यज्ञे] गौकी रक्षा यज्ञमें शस्त्र करता है, [ततः चित्तं अजायत] उस यज्ञसे चित्त उत्पन्न हुआ है।

गौ क्षत्रियकी माता है, अन्नको उत्पन्न करनेवाली भी गौही है, क्योंकि गौसे बैल उत्पन्न होता है और बैल भूमिमें अन्नकी उत्पत्ति करता है। गौकी रक्षा यज्ञमें क्षत्रियके शस्त्र करते हैं। गौके दूध और घृतसे चित्तका पोषण होता है।

[१९] ऊर्ध्वो बिन्दुरुदचरद्ब्रह्मणः ककुदादधि ।
ततस्त्वं जज्ञिषे वशे ततो होताऽजायत ॥ १६० ॥

[ब्रह्मणः ककुदात् अधि] मंत्रके ऊर्ध्व भागसे [बिन्दुः ऊर्ध्वः उदचरत्] एक बिन्दु ऊपर चला गया। हे वशा गौ! [ततः त्वं जज्ञिषे] उससे तू उत्पन्न हुई है। [ततः होता अजायत] उससे होता भी बना है।

मन्त्रोंके नादसे गौ और होता यज्ञमें एकत्र आ गये हैं। मंत्रसे यज्ञ बना और यज्ञके लिए गौ और हवनकर्ता दोनों बने हैं।

[२०] आस्नस्ते गाथा अभवन्नुष्णिहाभ्यो बलं वशे ।
पाजस्याज्जज्ञे यज्ञ स्तनेभ्यो रश्मयस्तव ॥ १६१ ॥

हे वशा गौ! [ते आस्न गाथा अभवन्] तेरे मुखसे गाथाएं हुई है, [उष्णिहाभ्य बलं] तेरे कन्धोंसे बल हुआ [पाजस्यात् यज्ञः जज्ञे] तेरे पेटसे यज्ञ हुआ और [तव स्तनेभ्यः रश्मयः] तेरे थनोंसे किरण बने हैं।

गौसे यज्ञ हुआ, यज्ञसे गाथाएं हुईं, यज्ञसे बल बढ गया। यह सब लाभ गौसेही हुआ है।

[२१] ईर्माभ्यामयनं जातं सक्थिभ्यां च वशे तव ।
आन्त्रेभ्यो जज्ञिरे अत्रा उदरादधि वीरुधः ॥ १६२ ॥

हे [वशे] वशा गौ! [तव ईर्माभ्यां सक्थिभ्यां च अयनं जातं] तेरे पांवों और जांघोंसे गति उत्पन्न हुई है, तेरी [आन्त्रेभ्यः अत्रा जज्ञिरे] आंतोंसे भक्षण शक्ति उत्पन्न हुई है और तेरे [उदरात् अधि वीरुधः] पेटसे औषधियाँ उत्पन्न हुई हैं।

गौ वनस्पतियां खाती है, इसलिए उसके पेटमें औषधियां रहती है।

[२२] यदुदरं वरुणस्यानुप्राविशथा वशे ।
ततस्त्वा ब्रह्मोदह्वयत्स हि नेत्रमवेत्तव ॥ १६३ ॥

हे [वशे] वशा गौ! [यत् अथ वरुणस्य उदरं अनुप्राविशथाः] जब वरुणके उदरमें तू प्रविष्ट हुई, [ततः] वहांसे [ब्रह्मा त्वा उदह्वयत्] ब्रह्माने तुझे ऊपर बुलाया, [सः हि तव नेत्रं अवेत्] और वही तेरा मार्गदर्शक हुआ।

वरुणका उदर जलस्थान है, वहांसे गौको लाकर उस गौका पालन-पोषण ब्रह्माने किया और ब्रह्माके मार्गदर्शनसे गौकी उन्नति हुई। और आगे यही गौ यज्ञको चलानेवाली अर्थात् यज्ञको अपने दूध घीसे संपन्न करनेवाली बनी।

ब्रह्मा अर्थात् ज्ञानी ब्राह्मण गौका उत्तम सुधार करते हैं। गौके वंशका सुधार, गौको अधिक दुधारू बनाना, अधिक घृत देनेवाली बनाना, यह कार्य ब्राह्मण करते हैं।

[२३] सर्वे गर्भादवेपन्त जायमानादसूस्वः ।
ससूव हि तामाहुर्वशेति ब्रह्मभिः क्लृप्तः स ह्यस्या बन्धुः ॥ १६४ ॥

[असूस्वः] बच्चा न देनेवाली गौके प्रथम [जायमानात् गर्भात्] गर्भकी उत्पत्ति होनेके समय [सर्वे अवेपन्त] सब भयसे काँपने लगे। बच्चा होनेपर [तां ससूव] उसे बच्चा हुआ, अतः यह [वशा इति] वशा गौ है, ऐसा [आहुः] कहने लगे। यह ब्रह्मा [ब्रह्मभिः क्लृप्तः] सूक्तोंसे समर्थ हुआ है, और वह [अस्याः बन्धुः] इस गौका भाई है।

गौके प्रथम गर्भधारणके पश्चात् उसकी प्रसूतिके समय सबको भय होता है और सब इसकी सुखप्रसूतिकी कामना करते हैं। इतनी गौ सबको प्यारी रहती है। प्रसूत होतेही सबको आनन्द होता है और गौकी उत्पत्ति होनेसे सबको बहुतही आनन्द होता है। यज्ञ करनेवाला ब्रह्मा सबसे अधिक आनन्दका अनुभव करता है, क्योंकि इससे उसका यज्ञ सुसंपन्न होता है। यह ब्रह्मा उस गौका भाई है। भ्राता बहिनसे जैसा प्रेम करता है, वैसा प्रेम ब्रह्मा गौसे करता है।

[२४] युध एकः सं सृजति यो अस्या एक इद्वशी।
तरांसि यज्ञा अभवन्तरसां चक्षुरभवद्वशा ॥ १६५ ॥

[एकः युधः सं सृजति] एक योद्धाओंको प्रेरणा करता है, [यः अस्याः एकः इत् वशी] जो इस गौको एकही वशमें रखनेवाला है। [यज्ञाः तरांसि अभवन्] यज्ञ सामर्थ्यरूप बना और उन [तरसां] सामर्थ्योंकी [चक्षुः वशा अभवत्] आंख वशा गौ बनी।

गौकी रक्षा करनेके लिए वीरोंको प्रेरणा वही याजक करता है, जो इस गौको वशमें रखता है। यज्ञोंसे बल बढता है और गौही सब प्रकारके बल बढाती है।

[२५] वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णाद्वशा सूर्यमधारयत्।
वशायामन्तरविशदोदनो ब्रह्मणा सह ॥ १६६ ॥

[वशा यज्ञं प्रत्यगृह्णात] वशा गौने यज्ञका स्वीकार किया है। वशा गौने सूर्यको [अधारयत्] धारण किया है। [ब्रह्मणा सह ओदनः] ब्रह्मके अर्थात् मंत्रके साथ चावलोंका भात (वशायां अन्तः अविशत्] वशा गौके अन्दर प्रविष्ट हुआ है।

वशा गौसे अर्थात् उस गौके दूध घी आदिसे यज्ञ होता है। वशा गौ सूर्य प्रकाशमें घूमती है और सूर्यके प्रकाश-को अपने अन्दर धारण करती है। [पूर्व मंत्र ७ में गौमें अग्नि रहता है ऐसा कहा है। मंत्र २० में गौके थनोंसे किरणें निकलती हैं, ऐसा कहा है, मंत्र ९ में आदित्योंके साथ रहनेवाली गौ कहा है, उन बातोंकी पुष्टि इस मंत्रसे होती है।] यज्ञमें मंत्रोंके पाठके साथ पकाये चावल गौको खिलाये जाते हैं, वह गौ खाती है।

[२६] वशामेवामृतमाहुर्वशां मृत्युमुपासते।
वशेदं सर्वमभवद्देवा मनुष्या३ असुराः पितर ऋषयः ॥ १६७ ॥

[वशां एव अमृतं आहुः] वशा गौको अमृत कहते हैं, [वशां मृत्युं उपासते] वशा गौको मृत्यु मानकर उसकी सेभी उपासना करते हैं। देव, मनुष्य, असुर, पितर और ऋषि [इदं सर्वं] ये सब [वशा अभवत] वशा गौही बनी है।

गौमें जो दूध है वह अमृत है, अमरत्व अर्थात् अपमृत्युको हटाकर निरोगिता और दीर्घ आयुष्य देनेवाला है। पर गौको जो कष्ट देते हैं, उनके लिए यही गौ मृत्युरूप होती है। सब प्रकारके देवों, मानवों आदिके लिए गौही जीवन देती है। गौके दूध घी आदिके बिना इनमेंसे कोई भी जीवित नहीं रहेंगे।

[२७] य एवं विद्यात्स वशां प्रति गृह्णीयात्।
तथा हि यज्ञः सर्वपाद्दुहे दात्रेऽनपस्फुरन् ॥ १६८ ॥

[यः एवं विद्यात्] जो इस तरह जानता है [सः वशां प्रति गृह्णीयात्] वही वशा गौका दान ले। [तथा हि सर्वपात् अनपस्फुरन् यज्ञः] वैसा सम्पूर्ण अस्खल न होता हुआ यज्ञ (दात्रे दुहे] दाताके लिए [अमृतरूपी] दूध देता है।

वशा गौका दान वह ले जो पूर्वोक्त सब तत्त्वज्ञान जानता है। ऐसा विद्वान् ब्राह्मणही गौका दान लेनेका अधिकारी है। जो ऐसे विद्वान्को गौका दान देता है, उसे यज्ञ यथासाग सम्पूर्णतया करनेका श्रेय प्राप्त होता है। मत्र २ में यज्ञके तत्त्वको जाननेवाला विद्वान वशा गौका दान लेनेका अधिकारी है ऐसा कहा है। उस मंत्रके साथ इस मंत्रका अनुसंधान करके जानना उचित है कि, गौका दान अतिविद्वान् ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणही ले। अज्ञानी मनुष्य गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है।

[२८] तिस्रो जिह्वा वरुणस्यान्तर्दीद्यत्यासनि।
तासां या मध्ये राजति सा वशा दुष्प्रतिग्रहा ॥ १६९ ॥

वरुणके [आसनि अन्तः] मुखमें [तिस्रः जिह्वा] तीन जिह्वाएं हैं। [तासां मध्ये या राजति] जो उनके बीचमें विराजती है, [सा वशा] वह वशा गौ है। वह [दुष्प्रतिग्रहा] गौ दानमें लेना कठिन है।

अर्थात् जो ज्ञानी है, वही गौका दान ले सकता है। अज्ञानीके लिए गौका दान लेना योग्य नहीं है।

[२९] चतुर्धा रेतो अभवद्वशायाः।
आपस्तुरीयममृतं तुरीयं यज्ञस्तुरीयं पशवस्तुरीयम् ॥ १७० ॥

[वशायाः रेत चतुर्धा अभवत्] वशा गौका वीर्य चार प्रकारसे विभक्त हुआ है। [तुरीयं आप] चौथा भाग जल बना, [तुरीयं अमृतं] चौथा भाग अमृत अर्थात् दूध बना, [तुरीयं यज्ञ] चौथा भाग यज्ञ बना और [तुरीयं पशव] चौथा भाग पशु बने हैं।

इन चारों भागोंमें गौका सत्व चार प्रकारसे बँटा हुआ है।

[३०] वशा द्यौर्वशा पृथिवी वशा विष्णुः प्रजापतिः।
वशाया दुग्धमपिबन्त्साध्या वसवश्च ये ॥ १७१ ॥

वशा गौही द्युलोक, पृथ्वी, विष्णु और प्रजापति बनी है। जो साध्य और वसु हैं, वे वशा गौका दूध पीते हैं।

अर्थात् देवताएं वशा गौका दूध पीते है, और गौही भूमि, अन्तरिक्ष और स्वर्ग तथा उनमें रहनेवाले सब देव बनती है, क्योंकि वे सब देव वशा गौके दूधका सेवन करते हैं और अपना जीवन बढाते है।

[३१] वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये।
ते वै ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥ १७२ ॥

जो साध्य और वसु देव हैं, वे वशा गौका दूध पीकर [ब्रध्नस्य विष्टपि] स्वर्गधामके परमोच्च स्थानमें [अस्याः पयः उपासते] इस गौके दूधकी पूजा करते हैं। गौके दूधकी स्वर्गमें प्रतिष्ठा होती है। स्वर्गधाममें सब देव बैठकर बातें करते हैं, उसमें गौके दूधकाही वे वर्णन करते हैं।

[३२] सोममेनामेके दुह्रे घृतमेक उपासते।
य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ १७३ ॥ [ऋ० १०।१५४।१]

[एके सोमं एनां दुह्रे] कई याजक सोमका रस निकालते हैं और इस गौको दुहते हैं, अर्थात् सोमरसमें मिलानेके लिए गौका दूध दुहते हैं। [एके घृतं उपासते] दूसरे घीकी उपासना करते हैं। [एवं विदुषे] ऐसे ज्ञानी विद्वान्को [ये वशां ददुः] जो वशा गौका प्रदान करते हैं, [ते दिवः त्रिदिवं गताः] वे स्वर्गके भी ऊपरके विभागमें जाकर बसते हैं।

मंत्र २, २७ और ३२ में ' वशा गौका दान विद्वान् ज्ञानीही ले ' ऐसा कहा है। इसलिए गौके दानके प्रसंगमें ' ब्राह्मण ' वाचक वैदिक पदका अर्थ ' ब्रह्मज्ञानी तत्त्ववेत्ता ब्राह्मण ' निश्चयसे समझना चाहिये।

[३३] ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वांल्लोकान्त्समश्नुते ।
ऋतं ह्यस्यामार्पितमपि ब्रह्माथो तपः ॥ १७४ ॥

ब्रह्मज्ञानियोंको वशा गौका दान देनेसे सब लोकोंकी प्राप्ति होती है। क्योंकि [अस्यां ऋतं, ब्रह्म, तपः अपि हि आर्पितं] इस गौमें सत्य, यज्ञ, ज्ञान, वेद और तप सब विद्यमान रहता है। अर्थात् गौका दान ब्रह्मज्ञानियोंको करनेसे दाताको इन सबकी प्राप्ति होती है।

[३४] वशां देवा उप जीवन्ति वशां मनुष्या उत ।
वशेदं सर्वमभवद्यावत्सूर्यो विपश्यति ॥ १७५ ॥

वशा गौपर देव और मानव भी पेट भरा करते हैं। [यावत् सूर्यः विपश्यति] जहांतक सूर्य प्रकाशता है, वहांतकके क्षेत्रमें जो भी कुछ है, [इदं सर्वं वशा अभवत्] वह सब वशा गौही बनी है। अर्थात् वशा गौके आधारपरही यह सब रहा है। [गौका ' विश्वरूप ' देखो, पृ० २०-२६]

अब वशा गौका अगला सूक्त देखिये—

[अथर्व० १२।४।१-५३]

कश्यपः । वशा । अनुष्टुप्, ७ भुरिक्; २० विराट्, ३२ उष्णिग्बृहतीगर्भा, ४२ बृहतीगर्भा ।

[१] ददामीत्येव ब्रूयादनु चैनामभुत्सत ।
वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्यस्तत्प्रजावदपत्यवत् ॥ १७६ ॥

[एनां च अनु अभुत्सत] जब इस गौको वे ब्राह्मण जान लें, तब [वशां याचद्भ्य ब्रह्मभ्यः] वशा गौकी याचना करनेवाले इन ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंसे वह क्षत्रिय राजा [ब्रूयात्] कहे कि, मैं [ददामि इति] इस गौको दान देता हू, [तत् प्रजावत् अपत्यवत्] यह दान सन्तानको देनेवाला है।

वशा वह गौ है, जो सदा वशमें रहती है। चाहे जिस समय प्रत्येकको दूध देती है। किसीको सींग या टांग मारती नहीं, उछलती नहीं। सदा शांत रहती है। दूध भी अधिक देती है। जब ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण किसी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्रके पास ऐसी गौको देखकर उसकी याचना करे, तब वह गौका स्वामी कहे कि, ' मैं यह गो तुम्हें देता हू। ' कभी दान देनेसे पीछे न हटे। इस तरह सुयोग्य ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणोंको उत्तम गौका दान करना, यह कृत्य सुसंतान देनेवाला है।

ब्रह्मज्ञानी तत्त्ववेत्ता ब्राह्मणही गौका दान लेनेका अधिकारी है इस विषयमें पूर्व [अथर्व० १०।१०] सूक्तके २, २७ और ३२ ये मन्त्र देखो। तथा इसी सूक्तका २२ वाँ मन्त्र भी देखो।

[२] प्रजया स वि क्रीणीते पशुभिश्चोप दस्यति ।
य आर्षेयेभ्यो याचद्भ्यो देवानां गां न दित्सति ॥ १७७ ॥

[यः याचद्भ्यः आर्षेयेभ्य] जो मांगनेवाले ऋषि संतान ब्राह्मणोंको [देवानां गां] देवोंकी इस गौका [न दित्सति] प्रदान नहीं करता, (सः) वह (प्रजया वि क्रीणीते) अपनी संतानोंको बेच खाता है, तथा (पशुभि च उपदस्यति) वह पशुओंसे क्षीण होता है।

ब्राह्मणके गौकी याचना करनेपर जो क्षत्रिय उस ब्राह्मणको गौका दान नहीं करता, वह क्षत्रिय अपनी संतानोंको बेच खाता और उसके पशु नष्ट होते हैं। अर्थात् वह दरिद्री बनता है।

इस मंत्रमें कहा है कि, [देवानां गां] गौ देवताओंकी है। यह गौ मानवोंकी नहीं । यह गौ देवताओंकी है, इसलिएही वह ब्राह्मणोंको दान करनी चाहिए। ब्राह्मणोंके मांगनेपर तो अवश्यही गौका दान करना चाहिये। ब्राह्मण तो गौके दूध घी आदिका देवोंके उद्देश्यसे हवन वा यज्ञ करते हैं, अथवा गौके दूधसे ब्रह्मचारियोंका पालन करते हैं। ये दोनों कार्य सार्वजनिक हितके है, इसलिए ब्राह्मणको गौओंका प्रदान अवश्य करना चाहिए।

[३] कूटयास्य सं शीर्यन्ते श्लोणया काटमर्दति ।
बण्डया दह्यन्ते गृहाः काणया दीयते स्वम् ॥ १७८ ॥

[कूटया अस्य स शीर्यन्ते] बिना सींगकी वृद्ध गौ दानमें देनेसे इस दाताके सब भोग क्षीण होते हैं, [श्लोणया काटं अर्दति] लगडी गौका दान करनेसे दाता गढेमें गिर जाता है। [बण्डया गृहाः दह्यन्ते] क्षीण गौका दान करनेसे दाताके घर जल जाते हैं, [काणया स्वं दीयते] कानी गौका दान करनेसे दाताका सर्वस्व छिना जाता है।

जो गौ अधिक दूध देती है, तरुण है, अच्छी है उसीका दान करना चाहिये। जो गौएं क्षीण और दुर्बल हो चुकी हों, उनका दान करनेसे दाताकी हानि हो जाती है, दाताको यश नहीं मिलता।

[४] विलोहितो अधिष्ठानाच्छक्नो विन्दति गोपतिम् ।
तथा वशायाः संविद्यं दुरदभ्ना ह्युच्यसे ॥ १७९ ॥

[शक्नः अधिष्ठानात्] गोबरके स्थानसे [विलोहितः] रक्तका क्षय करनेवाला ज्वर [गोपतिं विन्दति] गोपालकको प्राप्त होता है। [तथा वशायाः संविद्यं] वैसा वशा गौका जाननेयोग्य नाम है, [दुरदभ्ना हि उच्यसे] क्योंकि गौ ' न दबानेयोग्य ' है ऐसा कहा जाता है।

गाय बैल आदिके गीले गोबरमें धनुर्वातको उत्पन्न करनेवाले रोगजन्तु रहते है। अतः व्रणके साथ उस गोबर-का सम्बन्ध होनेसे व्रणधारीको उक्त रोग होता है। यह रोग असाध्यसा है। पावमें क्षत होगा और वह पांव गोबरपर गिरा, तो वह रोग हो सकता है। इसलिए सावधानी रखनी चाहिये। गाय, भैंस, घोडा, हाथीके गोबर से भी ऐसेही रोग होते है। इन रोगोंसे रोगीके शरीरसे रक्तकी लाल पेशियाँ घटती है।

वशा गौकी बडी प्रतिष्ठा है। वशा गौका विज्ञान प्राप्त करना चाहिये। यह गौ ' दु–अ–दभ्ना ' दबानेके अयोग्य है, वधके अयोग्य है, दुःख देनेके अयोग्य है, चुरानेके अयोग्य है, बलात् छीननेके अयोग्य है।

[५] पदोरस्या अधिष्ठानाद्विक्लिन्दुर्नाम विन्दति ।
अनामनात्सं शीर्यन्ते या मुखेनोपजिघ्रति ॥ १८० ॥

(अस्याः) इस गौपर (पदोः अधिष्ठानात्) दोनो पांवोंका अधिष्ठान करनेसे (वि–क्लिन्दुः नाम) सूखा नामका रोग (विन्दति) होता है। (मुखेन याः उपजिघ्रति) मुखसे जिन्हें यह गौ सूंघती है, उनके द्वारा गौकी ओर (अनामनात्) दुर्लक्ष्य होनेसे वे (सं शीर्यन्ते) विनष्ट हो जाते हैं।

गौको पांवसे स्पर्श करना नहीं चाहिये, लाथ नहीं मारनी चाहिये, अथवा गौपर दोनों पांव लगाकर बैठना भी नहीं चाहिये। उसी तरह, जब गौ पास आती है और सूंघती है, तब उसके उस कृत्यका तिरस्कार नहीं करना चाहिये। अर्थात् किसी तरह गौका अपमान नहीं करना चाहिये। गौका अपमान करनेवालेका नाश होता है।

[६] यो अस्याः कर्णावास्कुनोत्या स देवेषु वृश्चते ।
लक्ष्म कुर्व इति मन्यते कनीयः कृणुते स्वम् ॥ १८१ ॥

(यः अस्याः कर्णौ) जो इसके दोनों कानोंपर (आस्कुनोति) चिन्ह करनेके लिए कुरेदता है,

(स) वह मानो (देवेषु आ वृश्चते) देवोंमें खुरचता है। (लक्ष्म कुर्वे) चिन्ह करता हूं, ऐसा (इति मन्यते) समझता है, वह (स्वं कनीय कृणुते) अपना धन कम करता है।

गौके कानोंको खुरचना नहीं चाहिये। इसपर चिन्ह भी नही करना चाहिये। अर्थात् जिससे गौको कष्ट हों, ऐसा कोई कार्य नही करना चाहिये। गौको सर्वदा आनन्दमय और प्रसन्न रखना चाहिये।

[७] यदस्याः कस्मै चिद्भोगाय बालान्कश्चित्प्रकृन्तति।

तत: किशोरा म्रियन्ते वत्सांश्च घातुको वृकः ॥ १८२ ॥

(यत्) यदि (कस्मै चित् भोगाय) किसी विशेष भोगके लिए (अस्याः बालान्) इस गौकी दुमके लंबे बालोंको (कश्चित् प्रकृन्तति) कोई मनुष्य काटता है, तब (ततः किशोराः म्रियन्ते) उससे उसके बालक मर जाते हैं और (वृकः वत्सान् च घातुकः) भेडिया उसके बच्चोंका घात करता है।

अर्थात् अपने भोगके लिए गौके बाल भी काटना योग्य नहीं है।

[८] यदस्या गोपतौ सत्या लोम ध्वाङ्क्षो अजीहिडत् ।

ततः कुमारा म्रियन्ते यक्ष्मो विन्दत्यनामनात् ॥ १८३ ॥

(यत् अस्याः गोपतौ सत्याः) जब इस गौके गोपालकके साथ रहते हुए (ध्वाङ्क्षः लोम अजीहिडत्) कौवा गौके बालोंको उखाडता है, (ततः) उससे उसके (कुमारा म्रियन्ते) लडके मर जाते हैं और (अनामनात्) इस दुर्लक्ष्यसे (यक्ष्मः विन्दति) यक्ष्म-रोग उसके पास पहुँचता है।

गौका रक्षक गौके साथ रहनेपर भी यदि कोई कौवा गौको छेडेगा, तो उस ग्वालेके उस दुर्लक्ष्यके कारण उक्त कष्ट उस गौको होगा। इतनासा दुर्लक्ष्य होनेके कारण उस पालककी उक्त प्रकार हानि होगी। इससे स्पष्ट है कि, गौका पालन बडी दक्षताके साथ करना चाहिये। गौको किसी प्रकारके कष्ट न पहुँचे, इस बातका सब भार गोपाल-पर है।

[९] यदस्याः पल्पूलनं शकृद्दासी समस्यति ।

ततोऽपरूपं जायते तस्मादव्येष्यदेनसः ॥ १८४ ॥

(यत् अस्या) जब इस गौके (पल्पूलनं शकृत) मूत्र और गोबरको (दासी समस्यति) दासी इधर उधर फैंक देती है, (ततः) तब (अपरूप जायते) उसको विरूप सन्तान उत्पन्न होती है, क्योंकि (तस्मात् एनसः) उस पापसे (अव्येष्यत्) छुटकारा नहीं है।

गौका मूत्र और गोबर बडा धन है। इस धनको इधर उधर तितर-बितर नहीं करना चाहिये। धान्यकी वृद्धिके लिए, भूमिको उपजाऊ बनानेके लिए यह उत्तम खाद होता है। इसलिए इसका नाश करना योग्य नहीं। मूत्र और गोबरका नाश करना बडा पाप है।

[१०] जायमानाभि जायते देवान्त्सब्राह्मणान्वशा ।

तस्माद्ब्रह्मभ्यो देयैषा तदाहुः स्वस्य गोपनम् ॥ १८५ ॥

(जायमाना वशा) उत्पन्न होनेवाली वशा गौ (स-ब्राह्मणान् देवान् अभिजायते) ब्राह्मणोंके समेत देवोंके लिएही उत्पन्न होती है, (तस्मात्) इसलिए (एषा) यह गौ (ब्रह्मभ्यः देया) ब्राह्मणोंके लिए प्रदान करना योग्य है, (तत् स्वस्य गोपनं आहुः) वह दान अपनी रक्षाके लिएही है, ऐसा कहते हैं।

३६. अघ्न्या गावो घृतस्य मातरः । [प २।६३।५] = अवध्य गौवें घृतको पैदा करती हैं ।

३७. जीवन्त्वघ्न्याः । ता मे विषस्य दूषणी ।[पै० ४।२२।७] = अवध्य गौवें जीवित रहें वे मेरे विषको दूर करनेवाली हैं ।

३८ तीर्थे अवगाहन्ते अघ्न्या । [पै० ७।१३।११, १५।१५।१०] = तीर्थमें गौवें स्नान करती हैं ।

३९ तिरश्चीनां अघ्न्या रक्षतु । [पै० १०।८।५, १३।३।१६] = दुष्टोंसे अवध्य गौ हमारा रक्षण करे ।

४० तैर्युज्यन्तां अघ्निया । [तै० आ० ६।६।१] = उनके साथ अवध्य बैलोंको जोत दिया जावे ।

४१. अस्मासु अघ्निया यूयं दधाथ इन्द्रियं पयः । [तै० ब्रा० ३।७।१०।१] = हे अवध्य गौओं ! हमारे लिए इन्द्रियका बल बढानेवाला दूध तुम देती रहो ।

४२. गवां पतिः अघ्न्यः । [अथर्व० शौ० ९।४।१७, पै० १६।२५।७] = गौओंका पति बैल अवध्य है ।

४३. आप अघ्न्या । [अथर्व० शौ० १९।४४।९, ७।८८।२, पै० १५।३।९, वा० य० ६।२२, २०।१८, काण्व० ६।३०; २२।४; मै. ३।२।१८, काठ० ३।२७, ३८।६०, श० ब्रा० ३।८।५।१०, १२।९।२।४, ऐ० आ० १।३।५, **अघ्निया** । [तै० सं० १।३।११।१, तै० ब्रा० २।६।६।२, ३।२।१।४, कपि० २।१५] = जलको नहीं बिगाड़ना चाहिये ।

४४ अघ्न्यौ मा आरताम् । [ऋ० ३।३३।१३, अथर्व० १२।२।१६] = दोनों अवध्य बैल दुःखको न प्राप्त हों ।

४५. अघ्न्यस्य मूर्धनि । [ऋ० ११३०।१९] = अहिंसनीय पर्वतके शिखरपर ।

४६. अघ्न्ये ! आमूलाद् ब्रह्मज्यं अनुसंदह । [अथर्व० शौ० १२।५।६२-६३, पै० १६।१४४।१२] = हे अवध्य गौ ! दुराचारीको समूल जला दे ।

४७ पयो अघ्न्यासु । [मै० १।२।६, काठ० २।३७, ४।५०, कपि० १।१९] = **पयो अघ्नियासु** । [तै० सं० १।२।८।१; ६।१।११।३, तै० ब्रा० १।४।३।३, ३।७।४।२], **पयो अघ्न्यायां** । [ऐ० ब्रा० ५।२७; ७।३] = अवध्य गौओंमें दूध होता है ।

४८ अघ्नियां उपस्पेरताम् । [तै० ब्रा० ३।७।४।१३] = अवध्य गौकी सेवा करो ।

४९. माऽदुष्कृतौ व्येनसौ अघ्न्यौ शूलमारताम् । [ऋ० १।३३।१३, अथर्व० शौ० १४।२।१६] = उत्तम कर्म करनेवाले निष्पाप दोनों बैल क्षीण न हों । [दोनों जलप्रवाह न सूख जाय ।]

इस तरह वैदिक वाङ्मयमें १३७ बार ' अ-घ्न्या ' पद प्रयुक्त हुआ है । तैत्तिरीयोंके पाठमें ' अ-घ्नियाः । ' है । यह केवल बोलनेका ढंग है, अर्थकी दृष्टिसे दोनों पदोंका भाव एकही है । इनमें छः बार बैलके अर्थमें 'अघ्न्य' पद पुल्लिंगमें है । वैसेही पर्वत वाचक एक बार और जलप्रवाह-वाचक दो बार है, औषधिवाचक एक बार स्त्रीलिंगमें है । शेष १२७ बार स्त्रीलिंगमें गौ-वाचक ' अघ्न्या ' पद आया है । इनमें भी ३ बार धेनु और गौ पदका विशेषणरूप ' अघ्न्या ' पद है, शेष सब १२४ बार गौ वाचक ' अघ्न्या ' पद है । यह पद मंत्रोंमें वारवार पुनरुक्त होनेके कारण ऊपर केवल ४९ वचन दिये हैं, येही पुनरुक्त होकर १३७ मन्त्रोंमें ' अघ्न्या ' पद आया है ।

' अघ्न्या ' किंवा ' अघ्निया ' पदका अर्थ (not to be killed) अर्थात् ' जिसका वध न होना चाहिये ' है । सायनाचार्यने इसका अर्थ [केनापि न हन्यते] ' किसीके द्वारा जो मारी नहीं जाती ' ऐसा किया है, जो ऊपर दिया है । जब यह नामही गौका है, तब गौका वध सर्वथा निषिद्धही है, यह बात वैदिक वाङ्मयमें निश्चितही है ।

[१५] स्वमेतदच्छायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ।
यथैनानन्यस्मिन् जिनीयादेवास्या निरोधनम् ॥ १९० ॥

(यत् ब्राह्मणाः) जब ब्राह्मण (वशां अच्छ अभि आयन्ति) वशा गौके पास पहुचते हैं, मानो वे (स्वं) अपनेही धनके पास जाते हैं। (अस्या निरोधनं) अत इस गौको प्रतिबंध करना, अर्थात् ब्राह्मणको वह गौ न देना, मानो (एनान् अन्यस्मिन् जिनीयात्) इन ब्राह्मणोंको कष्ट देनाही है।

वशा गौ ब्राह्मणोंकी धरोहर निधि है, वह क्षत्रियों अथवा गोपालकोंके पास रखा होता है। जब ब्राह्मण मांगने आते हैं तब वे अपनीही धरोहर रखे धनको वापस लेनेके लिए आते हैं। इसलिए जिसकी जो धरोहर है वह उसको तत्काल देना चाहिये। धरोहर वापस न करना पाप है।

[१६] चरेदेवा त्रैहायणादविज्ञातगदा सती ।
वशां च विद्यान्नारद ब्राह्मणास्तर्ह्येष्याः ॥ १९१ ॥

(अविज्ञात-गदा सती) किसी ब्राह्मणसे जिसके लिए मांग नहीं आयी हो, जिसके गर्भ-धारणा न होनेसे रोगका निदान न हुआ हो, ऐसी गौ (आ त्रैहायणात् चरेत् एव) तीन वर्षोंतक उसी स्वामीके घर विचरती रहे। हे नारद! उसके बाद उस गौको (वशां विद्यात्) वह वशा है, ऐसा जानकर, (तर्हि) पश्चात् सुयोग्य (ब्राह्मणाः एष्याः) ब्राह्मणोंको ढूंढना योग्य है।

तीन वर्षोंतक किसी ब्राह्मणसे मांग न आयी, तो वशा गौके स्वामीको स्वयं किसी सुयोग्य ब्राह्मणकी खोज करना योग्य है। और उसको वह गौ प्रदान करना योग्य है। तीन वर्षोंमें वह गर्भवती होगी और प्रसूत भी होगी। प्रसूत होनेपर उस गौको कितना दूध है, वह वशमें रहनेवाली है या नहीं, इसका ज्ञान हो सकता है। निःसन्देह यह वशा है, ऐसा ज्ञान होनेपर किसी ब्राह्मणको बुलाकर उस गौका दान उस ब्राह्मणको करना चाहिये।

[१७] य एनामवशामाह देवानां निहितं निधिम् ।
उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ १९२ ॥

(देवानां निहितं निधिं) देवोंकी रखी निधिरूपी (एनां) इस वशा गौको (यः अवशां आह) जो यह वशा गौ नहीं है, ऐसा कहेगा, (तस्मै) उसके ऊपर दोनों भव और शर्व (परिक्रम्य इषुं अस्यतः) चारों ओरसे बाण फेंकते हैं।

गौ वशा जातिकी है, ऐसा जानकर जो उसको वशा जातिकी यह गौ नहीं है, ऐसा कहेगा और उस वशा गौको अपने लिएही रखेगा, वह देवोंके बाणोंका लक्ष्य बनता है।

[१८] यो अस्या ऊधो न वेदाथो अस्या स्तनानुत ।
उभयेनैवास्मै दुहे दातुं चेदशकद्वशाम् ॥ १९३ ॥

(यः अस्याः ऊधः न वेद) जो इसके ओझरको नहीं जानता, (अथो उत अस्याः स्तनान्) और जो इसके थनोंको भी जानता नहीं, ऐसी (वशां दातुं अशकत् चेत्) वशा गौको दान देनेमें यदि वह समर्थ हुआ, तो वह गौ (अस्मै) उस स्वामीके लिए (उभयेन एव दुहे) दोनों अर्थात् ओझर और थन इन दोनोंसे दूध देती है।

अपने पास वशा गौ होनेपर जो स्वामी उसके दुग्धाशयपर दृष्टि भी नहीं डालता, थनोंको स्पर्श भी नहीं करता और वैसीही वह गौ ब्राह्मणोंको दान देता है, उसको अन्य रीतिसे बहुतही लाभ होता है।

[१९] दुरदभ्नैनमा शये याचितां च न दित्सति।
नास्मै कामाः समृध्यन्ते यामदत्त्वा चिकीर्षति ॥ १९४ ॥

(याचितां न दित्सति) मांगनेपर भी जो वशा गौको ब्राह्मणोंको प्रदान नहीं करता, (एनं) इसके ऊपर यह (दु-अ-दभ्ना) न दबानेयोग्य गौ (आ शये) सोती है। क्रुद्ध होती है (अस्मै कामाः न समृध्यन्ते) इसके लिए इसकी वे आकांक्षाएँ फलीभूत नहीं होतीं, जिन कामनाओंको (या अदत्त्वा चिकीर्षति) जिस गौका प्रदान न करनेपर वह सफल करनेकी इच्छा करता है।

ब्राह्मणोंने वशा गौकी माग करनेपर भी जो उनको नहीं देता, उसके ऊपर उस गौका भार पडता है। उस गौको अपने घरमें रखनेसे अपनी जिन आकाक्षाओंको सिद्ध करनेकी इच्छा करता है, वे उसकी आकाक्षाएं सफल नहीं होतीं। इस तरह वह उदास और निराश बनता है।

[२०] देवा वशामयाचन्मुखं कृत्वा ब्राह्मणम्।
तेषां सर्वेषामददद्धेडं न्येति मानुषः ॥ १९५ ॥

[ब्राह्मणं मुखं कृत्वा) ब्राह्मणको अपना मुख बनाकर (देवाः वशां अयाचन्) देवोंने वशा गौकी मांग की है। (तेषां सर्वेषां हेडं) उन सबका क्रोध (अददत् मानुषः न्येति) अदाता मनुष्य प्राप्त करता है।

ब्राह्मण गौको मांगता है इसका यही अर्थ है कि देव गौको मागते हैं। देव ब्राह्मणको अपना मुख बनाकर गौकी माग करते हैं। अतः जो ब्राह्मणको गौ नहीं देता, वह देवोंके क्रोधको अपने ऊपर लाता है।

[२१] हेडं पशूनां न्येति ब्राह्मणेभ्योऽददद्वशाम्।
देवानां निहितं भागं मर्त्यश्चेन्निप्रियायते ॥१९६॥

[पशूनां हेडं न्येति] पशुओंके क्रोधको वह प्राप्त करता है, जो [ब्राह्मणेभ्यः वशां अ-ददत्] ब्राह्मणोंको वशा गौका प्रदान नहीं करता। क्योंकि (देवानां निहितं भाग) देवोंके रखे भागको (मर्त्यः चेत् निप्रियायते) वह मनुष्य अपने उपभोगके लिए रखता है।

देवोंका भाग देवोंकोही देना चाहिये। उसका उपभोग करना मनुष्यके लिए योग्य नहीं है। यदि किसी मनुष्यने देवोंके विभागका स्वय उपभोग किया, तो सब देव क्रोध करते हैं जिससे मनुष्यका अकल्याण होता है।

[२२] यदन्ये शतं याचेयुर्ब्राह्मणा गोपतिं वशाम्।
अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा ॥ १९७ ॥

[यत् अन्ये शतं ब्राह्मणाः) यदि दूसरे सैकडों ब्राह्मणोंने (गोपतिं वशां याचेयुः) गौके स्वामीके पास वशा गौकी मांग की, तो (अथ एनां देवाः एवं अब्रुवन्) इस गौके विषयमें देवोंने ऐसा कहा है कि (वशा विदुषः ह) निःसंदेह विद्वान् ब्राह्मणकी ही यह गौ है।

देवोंने घोषणा करके कहा है कि केवल जातिमात्र ब्राह्मणके मांगनेपर उसको वशा गौका प्रदान करना नहीं है, परंतु जो अत्यंत विद्वान् तथा सम्यक् ज्ञानी ब्राह्मण है, उसीको वशा गौका प्रदान करना योग्य है। यहा जातिमात्र ब्राह्मणकी निंदा है और श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकी प्रशंसा है। ऐसा ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मणही गौका दान लेनेका अधिकारी है और अपने आश्रमके लिए गौकी माग करनेका भी अधिकारी है। ऐसा ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण आ जाय और गौकी मांग करे, तो वह वशा गौ उस ब्रह्मज्ञानीको तत्काल देनी चाहिये। यही गोदान दाताके लिए लाभकारी है।

[२३] य एवं विदुषेऽदत्त्वाऽथान्येभ्यो ददद्वशाम् ।
दुर्गा तस्मा अधिष्ठाने पृथिवी सहदेवता ॥ १९८ ॥

(यः) जो (एवं विदुषे वशां अदत्त्वा) ऐसे विद्वान्को वशा गौका प्रदान न करते हुए (अन्येभ्यः ददत्) दूसरे अविद्वानोंको देता है, (तस्मै) उसके लिए (अधिष्ठाने) उसकेही रहनेके स्थानपर [सह-देवता पृथिवी दुर्गा] देवोंके साथ पृथ्वी दुर्गम हो जाती है ।

अविद्वान् ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे दाताकी सब प्रकारकी प्रगति रुक जाती है । यहां भी ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मणही गो-प्रदानका स्वीकार करनेका अधिकारी है, ऐसा पुनः कहा है । पूर्व मंत्रोंमें जहां जहां गौका दान कहा है, वहां वहां वह दान ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मणके लिएही करना चाहिये । अज्ञानी जातिमात्र ब्राह्मणको नहीं, ऐसा समझना उचित है ।

[२४] देवा वशामयाचन्यस्मिन्नग्रे अजायत ।
तामेतां विद्यान्नारदः सह देवैरुदाजत ॥ १९९ ॥

(यस्मिन् अग्रे अजायत) जिसके घरमें वशा गौ उत्पन्न हुई, उसके पास (देवाः वशां अयाचन्) देवोंने वशा गौकी याचना की । (नारदः एतां तां विद्यात्) नारदही उस गौको जानता है कि, वह गौ (देवैः सह उदाजत) देवोंके साथ ऊपर आ गयी है ।

गौमें सब देवताएं रहती हैं, गौमें दैवी सामर्थ्य है, यह बात ज्ञानीही जानता है । इस तरहकी अधिक दैवी शक्तिसे युक्त गौको देव ब्राह्मणके द्वारा मांगते हैं ।

[२५] अनपत्यमल्पपशुं वशा कृणोति पूरुषम् ।
ब्राह्मणैश्च याचितामथैनां निप्रियायते ॥ २०० ॥

(अथ ब्राह्मणैः याचितां) ब्राह्मणोंके याचना करनेपर भी जो (एनां निप्रियायते) इस गौको अपने लिए प्रिय मानकर अपने पास रख देता है, उस (पूरुषं) मनुष्यको (वशा) वशा गौ (अन्-अपत्यं अल्प-पशुं) संतानरहित और अल्प पशुवाला (कृणोति) कर देती है ।

[२६] अग्नीषोमाभ्यां कामाय मित्राय वरुणाय च ।
तेभ्यो याचन्ति ब्राह्मणास्तेष्वा वृश्चतेऽददत् ॥ २०१ ॥

अग्नि, सोम, काम, मित्र, वरुण इन देवताओंके लिए (ब्राह्मणाः याचन्ति) ब्राह्मण गौकी याचना करते हैं । अतः (अददत्) न देनेवाला (तेषु आ वृश्चते) उन देवोंसे अपना सम्बन्ध तोड देता है ।

[२७] यावदस्या गोपतिर्नोपशृणुयादृचः स्वयम् ।
चरेदस्य तावद्गोषु नास्य श्रुत्वा गृहे वसेत् ॥ २०२ ॥

(यावत् अस्याः गोपतिः) जबतक इस वशा गौका स्वामी (स्वयं ऋचः न शृणुयात्) स्वयं वेदमंत्रोंका श्रवण नही करता, (तावत् अस्य गोषु) तबतक इसकी गौओंमें वशा गौ (चरेत्) विचरती रहे, (श्रुत्वा) वेदमंत्रोंका श्रवण करनेके पश्चात् (अस्य गृहे) इसके घरमें वशा गौ (न वसेत्) न रहे । अर्थात् वह ब्राह्मणोंको दी जावे ।

इस मन्त्रसे यह स्पष्ट होता है कि, वेदवेत्ता ब्राह्मण गौके स्वामीके घरपर वेदमन्त्रोंका गान करते हुए आते है। वेदमन्त्रोंके तत्त्वज्ञानका उपदेश भी करते होंगे। ऐसे ब्राह्मणोंका वेदघोष सुननेतकही वशा गौको गोस्वामी अपने घरमे रख सकता है। जब ऐसे ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण घरपर आ जायेंगे, वेदघोष करते हुए सदुपदेश करेंगे, और गौको मागेंगे, तब उनको उस गौका प्रदान करनाही चाहिये। वेदघोष सुननेके पश्चात् यह गौ गोपतिके घर कदापि न रहे। यहां स्पष्ट हो जाता है कि, यदि ऐसे विद्वान् ब्राह्मण न होंगे, तो अज्ञानी जातिमात्र ब्राह्मणोंको गौका दान नहीं करना चाहिये।

[२८] यो अस्या ऋच उपश्रुत्याथ गोष्वचीचरत्।
आयुश्च तस्य भूतिं च देवा वृश्चन्ति हीडिताः ॥ २०३ ॥

(ऋचः उपश्रुत्य) वेदमंत्रोंके घोषका श्रवण करके (य) जो गोपाति (अस्याः गोषु अचीचरत्) इस गौको अपनी दूसरी गौओंमें विचरने देता है, (तस्य) उसकी (आयुः च भूतिं च) आयु और ऐश्वर्यको (हीडिता देवाः वृश्चन्ति) क्रोधित हुए देव छेद डालते है।

जो गोपति ब्राह्मणोंसे वेदघोष सुननेके बाद भी गौको अपने घर रहने देता है और गौका दान नहीं करता, उसकी आयु और वैभव नष्ट होते है।

[२९] वशा चरन्ती बहुधा देवानां निहितो निधिः।
आविष्कृणुष्व रूपाणि यदा स्थाम जिघांसति ॥ २०४ ॥

(बहुधा चरन्ती वशा) अनेक प्रकारसे विचरनेवाली वशा गौ (देवानां निहित निधि) देवोंका सुरक्षित खजाना है। वह (यदा स्थाम जिघांसति) जब अपने स्थानको पहुंचना चाहती है, तब (रूपाणि आविष्कृणुष्व) अपने रूपोंको प्रकट करती है।

वशा गौ यह गोपतिकी नहीं है, परन्तु देवोंकी है। जब यह अपने घर अर्थात् ब्राह्मणोंके आश्रममें जाना चाहती है, तब उसके रूप प्रकट होने लगते है अर्थात् वह गर्भवती होती है, उसका दुग्धाशय बडा होता है, उसकी कान्ति बढती है, प्रसूत होकर वह दूध देने लगती है। ये इस वशा गौके रूप प्रकट होतेही गोपतिको मालूम करना चाहिये कि यह अपने घर अर्थात् ब्राह्मणोंके घर जाना चाहती है, और वहा जाकर अपने दूध और घीसे देवोंको प्रसन्न करना चाहती है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ' वशा ' गौ वन्ध्या नही है। लौकिक संस्कृतमे ' वशा ' का अर्थ ' वन्ध्या गौ ' है, पर वेदमें ' वशा ' का अर्थ ' वशमें रहनेवाली, बहुत दूध देनेवाली, उत्तमसे उत्तम गौ है। '

[३०] आविरात्मानं कृणुते यदा स्थाम जिघांसति।
अथो ह ब्रह्मभ्यो वशा याञ्च्याय कृणुते मनः ॥ २०५ ॥

यह वशा गौ (यदा स्थाम जिघांसति) जब अपने स्थानको जाना चाहती है, उस समय (आत्मानं आविः कृणुते) अपने रूपोंको प्रकट करती है [पूर्व मन्त्रमें इसका स्पष्टीकरण देखिये।] तब [वशा] वशा गौ स्वयंही (ब्रह्मभ्य याञ्च्याय मनः कृणुते) ब्राह्मणोंमें अपनी याचना करवानेके लिए मनकी प्रवृत्ति बना देती है।

ब्राह्मण तब गौकी मांग करते है। इसलिए गौका दान ब्राह्मणोंको करना योग्य है। गौ देवोंकी है। देव ब्राह्मणोंके मुखसे गौकी मांग करते हैं। गौ देवोंकी है पर ब्राह्मणोंका घरही देवोंका निज घर है। अत ब्राह्मणोंका घरही गौका घर है। जब गौ अपने घर जाना चाहती है, तब वह गौ ब्राह्मणोंके मनमें प्रेरणा करती है। उस प्रेरणासे

प्रेरित होकर ब्राह्मण आते हैं और मांगते हैं। अतः ब्राह्मणोंकी मांग ब्राह्मणोंकी नहीं है अपितु वह मांग देवोंकी है और जब स्वयं गौही अपने घर जानेकी इच्छा करती है तब ब्राह्मण गौकी मांग करते हैं। इसीलिए विद्वान् ब्राह्मणके मांगनेपर गौको तत्कालही दान करना चाहिये।

[३१] मनसा सं कल्पयति तद्देवाँ अपि गच्छति।
ततो ह ब्रह्माणो वशामुपप्रयन्ति याचितुम्॥ २०६॥

यह वशा गौ (मनसा सं कल्पयति) अपने मनसे अपने घर जानेका संकल्प करती है, (तत् देवान् अपि गच्छति) वह देवोंके पासही जाना चाहती है, (ततः ह) उसके पश्चात्ही (ब्रह्माणः) वे ज्ञानी ब्राह्मण (वशां याचितुं उपप्रयन्ति) वशा गौकी याचना करनेके लिए आते हैं।

वशा गौ प्रथम 'मैं इस ब्राह्मणके घर जाऊंगी' ऐसा संकल्प करती है, वह संकल्प देवोंके पास पहुंचता है, देव ब्राह्मणोंको प्रेरणा करते है और पश्चात् ब्राह्मण गौ मांगनेके लिए आते है। इस कारण विद्वान् ब्राह्मणके मांगनेपर तत्काल गौका दान करना चाहिये।

[३२] स्वधाकारेण पितृभ्यो यज्ञेन देवताभ्यः।
दानेन राजन्यो वशाया मातुर्हेडं न गच्छति॥ २०७॥

(स्वधाकारेण पितृभ्यः) स्वधाकारसे पितरोंको, (यज्ञेन देवताभ्यः) यज्ञसे देवताओंको, (वशाया दानेन) वशा गौके दानसे तृप्त करता है, इसलिए (राजन्यः) क्षत्रिय (मातुः हेडं न गच्छति) गौ माताके क्रोधको नहीं प्राप्त होता।

स्वधा शब्दसे अन्नदानद्वारा पितरोंकी तृप्ति करता है, यज्ञके द्वारा देवताओंकी तृप्ति करता है, और गौके दानसे ब्राह्मणोंकी संतुष्टि करता है। इस तरह क्षत्रिय गौ माताके क्रोधसे बच जाता है। ब्राह्मण गौके दूध घृत आदिसे पितृयज्ञ और देवयज्ञ करते हैं, इस कारण पितरो और देवोंकी तुष्टि होती है, जिससे क्षत्रिय उक्त गौ माताके क्रोधसे अपने आपको बचाता है।

[३३] वशा माता राजन्यस्य तथा संभूतमग्रशः।
तस्या आहुरनर्पणं यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते॥ २०८॥

(राजन्यस्य माता वशा) क्षत्रियकी माता वशा गौ है। (तथा अग्रशः संभूतं) वैसाही पहिलेसे ठहरा है। (यत् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते) जो उस गौका दान ब्राह्मणोंको दिया जाता है, वह (तस्याः अनर्पणं आहुः) उस गौको दूर करना नहीं है।

क्षत्रियकी माता गौ है, यह पहिलेसे मानी हुई बात है। अब अपनी माताको दूसरेके पास सौंप देना अनुचित है, इसलिए ऐसा भी कहा जाता है कि, ब्राह्मणको गौका दान करना यह उस माताको अपने घर रखनेके समानही है।

[३४] यथाऽऽज्यं प्रगृहीतमालुम्पेत्स्रुचो अग्नये।
एवा ह ब्रह्मभ्यो वशामग्नय आ वृश्चतेऽददत्॥ २०९॥

(यथा आज्यं) जैसा घी (अग्नये प्रगृहीतं) अग्निको अर्पण करनेके हेतुसे लिया हुआ (स्रुचः आलुम्पेत्) चमससे अन्यत्रही गिर जाय, (एवा ह) वैसाही (ब्रह्मभ्यः वशां अददत्) ब्राह्मणोंको गायका दान न करना, मानो, (अग्नये आ वृश्चते) अग्निसे अपना सम्बन्ध तोड देनाही है।

ब्राह्मणको गाय देनेसे, उस गौके दूध घी आदिसे अग्नि आदि देवताओंकी तृप्ति होती है, इससे इसका सम्बन्ध देवताओंसे स्थिर रहता है। परन्तु ब्राह्मणको गौका प्रदान न करनेसे उक्त कारणही वह सम्बन्ध टूट जाता है।

[३५] पुरोडाशवत्सा सुदुघा लोकेऽस्मा उप तिष्ठति ।
साऽस्मै सर्वान्कामान्वशा प्रददुषे दुहे ॥ २१० ॥

(पुरोडाशवत्सा) अन्न और वत्ससे युक्त (सु-दुघा) उत्तम दूध देनेवाली गौ (लोके अस्मै उप तिष्ठति) इस लोकमें उस दाताके पास आकर ठहरती है, (सा) वह गा (अस्मै प्रददुषे) इस दाता-की (सर्वान् कामान् दुहे) सब कामनाओंको सफल कर देती है।

गौका दान करनेवाले दाताकी सब कामनाएँ गौकी कृपासे सफल होती है। 'वशा' गा वन्ध्या नहीं है क्योंकि उसको 'सु-दुघा' उत्तम दूध देनेवाली कहा है। इस गौके दूधसे देवयज्ञ और पितृयज्ञ सिद्ध होते हैं, इसलिए भी वशा गौ वन्ध्या नहीं है।

[३६] सर्वान्कामान्यमराज्ये वशा प्रददुषे दुहे ।
अथाहुर्नारकं लोकं निरुन्धानस्य याचिताम् ॥ २११ ॥

ब्राह्मणोंको देनेसे वह (वशा) वशा गौ (प्रददुषे) दाताके लिए (यमराज्ये) यमके राज्यमें (सर्वान् कामान् दुहे) सब कामनाओंकी पूर्ति करती है। परन्तु (याचितां निरुन्धानस्य) याचना करनेपर भी ब्राह्मणोंको गौका दान न करनेवालेके लिए (नारकं लोकं आहुः) नरक लोककी प्राप्ति होगी, ऐसा कहते हैं।

[३७] प्रवीयमाना चरति क्रुद्धा गोपतये वशा ।
वेहतं मा मन्यमानो मृत्योः पाशेषु बध्यताम् ॥ २१२ ॥

[प्रवीयमाना वशा] गर्भवती होनेपर गौ [गोपतये क्रुद्धा चरति] गोपतिके ऊपर क्रोधित होकर विचरती है। [मा वेहतं मन्यमानः] मुझे वन्ध्या अथवा गर्भस्राविणी माननेवाला [मृत्योः पाशेषु बध्यतां] मृत्युके पाशोंसे बांधा जाय अर्थात् मर जाय।

वशा गौ वन्ध्या नहीं है। यह गर्भवती होती है और बछडोंवाली होकर दूध भी देती है। इस गौको वन्ध्या कहनेसे क्रोध आता है और वन्ध्या कहनेवालेको शाप देती है कि वह मर जाय। 'वशा' का अर्थ लौकिक संस्कृतमे 'वन्ध्या' ऐसा है, पर इस मंत्रमें 'प्रवीयमाना वशा' कहा है, अर्थात् गर्भ-धारण करनेवाली वशा गौ है। जो गर्भवती होती है वह वन्ध्या नहीं कही जा सकती। गर्भवती होकर प्रसूत होनेपरही वह सवत्सा गौ दान करनेके लिए योग्य होती है।

[३८] यो वेहतं मन्यमानोऽमा च पचते वशाम् ।
अप्यस्य पुत्रान्पौत्रांश्च याचयते बृहस्पतिः ॥२१३॥

[यः वेहतं मन्यमानः] जो वन्ध्या मानकर [वशां अमा पचते] वशा गौको अपने घरमें पकाता है, अर्थात् उसके दूधको पकाता है [अस्य पुत्रान् पौत्रान् च अपि] उसके पुत्रों और पौत्रोंको बृह-स्पति [याचयते] भीख मंगवाता है। अर्थात् उनको इतना दारिद्र्य देता है कि, उनको भीख मांगकरही गुजारा करना पडता है।

किसी गौको वन्ध्या कहकर, उसका वध करके, उसके मांसको पकाकर खाना उचित नहीं है। जो ऐसा करेगा उसके संतानोंको बडी दरिद्रता प्राप्त होगी। ऐसा इस मंत्रका अर्थ ऊपर ऊपरसे दीखता है परंतु 'वशां अमा पचते' का अर्थ लुप्त-तद्धित-प्रक्रियासे 'वशा गौके दूधको अपने घरपर जो पकाते है' ऐसा होता है। अर्थात् उत्तम सुलक्षण-संपन्न गौ है ऐसा सिद्ध होनेपर उस गौका दान ब्राह्मणोंको करना चाहिये। उसको अपने घर रखना उचित नहीं है। उसके दूधका पाक अपने घरमें करनेसे पुत्र-पौत्र क्षीण हो जाते हैं। (देखो लुप्त-तद्धित प्र० पृ० ४७-५७)

[३९] महदेषाव तपति चरन्ती गोषु गौरपि ।
अथो ह गोपतये वशाऽददुषे विषं दुहे ॥२१४॥

(गोषु चरन्ती गौः अपि) गौओंमें विचरनेवाली (एषा) यह गौ अपने स्वामीके लिए (महत् अव तपति) बडा ताप देती है। और (अददुषे गोपतये) गौका दान न देनेवाले इस गोपतिके लिए (वशा) यह वशा गौ (विष दुहे) विष दुहती है ।

यदि वशा गौ ब्राह्मणोंको न दान की जाय, तो वह उस कंजूस गोपतिको बडे कष्ट पहुँचाती है । उस गौसे जो दूध मिलता है, मानो, वह विषही है । यहा वशा गौ दूध देती है ऐसा कहा है, इसलिए वशा गौ वन्ध्या नहीं है ।

[४०] प्रियं पशूनां भवति यद् ब्रह्मभ्यः प्रदीयते ।
अथो वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात् ॥२१५॥

(यत् ब्रह्मभ्य प्रदीयते) जब वह गौ ब्राह्मणोंको दी जाती है, तब [पशूनां प्रियं भवति] सब पशुओंका कल्याण होता है और वशा गौके लिए भी यह प्रिय होता है, जो उसका [यत् देवत्रा हविः स्यात्] देवोंके लिए हवि होगा।

उस गौके दूध घी आदिका देवोंके लिए हवि होना यह गायके लिए भी प्रिय है। इससे उसके जीवनकी सार्थकता होती है।

[४१] या वशा उदकल्पयन्देवा यज्ञादुदेत्य ।
तासां विलिप्त्यं भीमामुदाकुरुत नारदः ॥२१६॥

[यज्ञात् उदेत्य देवा] यज्ञसे उठकर देवोंने (याः वशाः उदकल्पयन्) जिन वशा गौओंको निर्माण किया था, (तासां भीमां विलिप्त्य) उनमेंसे भयानक विलिप्तिको [नारदः उदाकुरुत] नारदने अपने लिए पसंद किया।

' विलिप्ती ' गौ वह है जिसके दूधमें घीका अंश अधिक होता है और जिसका शरीर घी लगाया जैसा चिकना होता है । नारदके मतसे यह गौ सर्वोत्तम है । वह गौ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणको अवश्यही दान देनी चाहिये, इसका दान न देनेसे गोपतिको वह भयानक अर्थात् भय देनेवाली होती है ।

[४२] तां देवा अमीमांसन्त वशेया३मवशेति ।
तामब्रवीन्नारद एषा वशानां वशतमेति ॥ २१७ ॥

[देवाः तां अमीमांसन्त] देवोंने उस गौके विषयमें पृच्छा की कि [इयं वशा] क्या यह वशा है अथवा [अवशा इति] वशा नहीं है । [नारदः तां अब्रवीत्] नारदने उस गौके विषयमें कहा कि [एषा वशानां वशतमा इति] यह गौ वशा गौओंमें उत्तमोत्तम है ।

[४३] कति नु वशा नारद यास्त्वं वेत्थ मनुष्यजाः ।
तास्त्वा पृच्छामि विद्वांसं कस्या नाश्नीयादब्राह्मणः ॥ २१८ ॥

हे नारद ! [कति नु वशाः] कितनी आदिकी वशा गौवें हैं (याः मनुष्यजाः त्वं वेत्थ] जिनको तू मानवोंसे वंश सुधारकी योजनासे उत्पन्न हुई ऐसा जानता है । [विद्वांसं त्वा ताः पृच्छामि] तुझ ज्ञानीसे मैं उनके विषयमें पूछता हूं कि, [अब्राह्मणः कस्या न अश्नीयात्] जो ब्राह्मण नहीं है, ऐसा मानव किसका दूध आदि सेवन न करे ।

[मनुष्यजा. वशा] मानवोंके प्रयत्नसे उत्पन्न हुई दुधारू गौवें। मानव गौको विशेष उपायोंसे अधिकाधिक दूध देनेवाली बना सकता है। जो अधिक दूध देनेवाली और वशमें रहनेवाली गौ है, उसका नाम वशा गौ है। इन वशा गौओंमें जो अधिक घी देनेवाली अर्थात् जिसके दूधमें अधिक मात्रामें घी रहता है वह 'वशतमा' अथवा 'विलिप्ती' कही जाती है। ऐसी गौओंके दूध घी आदि पदार्थ ज्ञानी ब्राह्मणही सेवन करे और सेवन करनेसे पूर्व देवयज्ञ, पितृयज्ञ और भूतयज्ञ करे।

[४४] विलिप्त्या बृहस्पते या च सूतवशा वशा।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ २१९ ॥

हे बृहस्पते ! विलिप्ती, सूतवशा और वशा इन [तस्याः अब्राह्मणः न अश्नीयात्] गौओंसे उत्पन्न पदार्थ अब्राह्मण न खावे, [यः भूत्यां आशंसेत] जो ऐश्वर्यकी इच्छा करता हो।

(१) विलिप्ती= जिस गौके दूधमे घीकी मात्रा अधिक होती है, (२) सूतवशा= सूतके उपस्थित रहनेपर जो वशमें रहती है, अथवा जो वशा गौको उत्पन्न करती है, जिसकी बछडी वशा जातिकी हुई है। (३) वशा= जो बहुत दूध देती है और जो शान्त रहती तथा वशमें रहती है। (४) वशतमा= जिनमें वशा गौके लक्षण अधिक हैं। गौओंकी ये जातियां उत्तम हैं। ये ब्राह्मणोंके आश्रमोंमें रहनेयोग्य हैं, अतः इनके दूध घी आदि पदार्थ ब्राह्मण को छोडकर दूसरा कोई न खावे।

[४५] नमस्ते अस्तु नारदानुष्टु विदुषे वशा।
कतमासां भीमतमा यामदत्त्वा पराभवेत् ॥ २२० ॥

हे नारद ! तेरे लिए नमस्कार हो। [विदुषे वशा अनुष्टु] विद्वानके लिए वशा गा अनुकूलता-पूर्वक दी जावे। [आसां कतमा भीमा] इनमेंसे कौनसी अधिक भयानक है, [यां-अ-दत्त्वा पराभवेत्] जिसके दान न करनेसे पराभव होगा ?

[४६] विलिप्ती या बृहस्पतेऽथो सूतवशा वशा।
तस्या नाश्नीयादब्राह्मणो य आशंसेत भूत्याम् ॥ २२१ ॥

हे बृहस्पते ! विलिप्ती, सूतवशा और वशा ये तीन विभिन्न जातिकी गौवें हैं, इनसे उत्पन्न पदार्थ अब्राह्मण न खावे, जो अपना ऐश्वर्य बढानेका इच्छुक है।

(मंत्र ४४ वाँ देखो वही मन्त्र कुछ थोडेसे पाठभेदसे यहां पुनरुक्त हुआ है।)

[४७] त्रीणि वै वशाजातानि विलिप्ती सूतवशा वशा।
ताः प्र यच्छेद्ब्रह्मभ्यः सोऽनाव्रस्कः प्रजापतौ ॥ २२२ ॥

विलिप्ती, सूतवशा और वशा ये वशा गौओंकी तीन जातियां हैं। [ताः ब्रह्मभ्यः प्रयच्छेत्] ये गौवें ब्राह्मणोंको अर्पण करना चाहिये, [स प्रजापतौ अनाव्रस्कः] वह दाता, इन गौओंको दान देनेवाला प्रजापतिके क्रोधका शिकार कभी नहीं होता।

[४८] एतद्वो ब्राह्मणा हविरिति मन्वीत याचितः।
वशां चेदेनं याचेयुर्या भीमाऽददुषो गृहे ॥ २२३ ॥

[चेत् एनं वशां याचेयुः] यदि ब्राह्मण इनसे गौको मांगें, तो [याचितः मन्वीत] याचना की जानेपर वह ऐसा माने अथवा बोले कि 'ब्राह्मणो ! [एतत् वः हविः] यह आपके लिएही हवि है।' क्योंकि [या अददुषो गृहे भीमा] जो गौ अदाताके घरमें भयानक है।

[४९] देवा वशां पर्यवदन् नोऽदादिति हीडिताः ।
एताभिर्ऋग्भिर्भेदं तस्माद्वै स पराऽभवत् ॥ २२४ ॥

[हीडिता देवाः पर्यवदन्] क्रोधित देव क्रोधसे बोलते हैं कि, [नः वशां न अदात् इति] हमें वशा गौका दान इसने नहीं किया, [एताभिः ऋग्भिः भेदं] इन वचनोंसे उन्होंने भेदको, आपसके झगडेको, प्रेरित किया, [तस्मात् स पराऽभवत्] उस कारण वह क्षत्रिय पराभूत हुआ ।

कंजूसीसे आपसके झगडे उत्पन्न होते हैं, जिसके कारण क्षत्रियोंका पराभव होता है । ब्राह्मणोंको गौका दान करनेसे ब्राह्मण ज्ञानवृद्धि करते रहते हैं । वेही ब्राह्मण उपदेशद्वारा अन्त कलहको दूर करते हैं, इससे क्षत्रियकी शक्ति बढती है और वे पराभूत नहीं होते । अतः ब्राह्मणको गौओंका दान करना राष्ट्रका हित करनेवाला है ।

[५०] उतैनां भेदो नाददाद्वशामिन्द्रेण याचितः ।
तस्मात् तं देवा आगसोऽवृश्चन्नहमुत्तरे ॥ २२५ ॥

[भेदः] आपसका भेद, अन्त कलह, जहां उत्पन्न हुआ है उस क्षत्रियने [इन्द्रेण याचितः] इन्द्रके मांगनेपर भी [एनां वशां न अददात्] इस वशा गौको नहीं दिया । [तस्मात् आगसः] इस पापके लिए [अहमुत्तरे] युद्धमें [देवा तं अवृश्चन्] देवोंने उसको काट दिया । उसका पराभव हुआ ।

[५१] ये वशाया अदानाय वदन्ति परिरापिणः ।
इन्द्रस्य मन्यवे जाल्मा आ वृश्चन्ते अचित्त्या ॥ २२६ ॥

[ये परिरापिणः] जो बकवाद करनेवाले [वशाया अदानाय वदन्ति] वशा गौका दान करनेके प्रतिकूल बोलते हैं, वे [जाल्माः] मूढ लोग [अचित्त्या] अपने अविचारके कारण [इन्द्रस्य मन्यवे] इन्द्रके क्रोधकी [आ वृश्चन्ते] शिकार बनते हैं ।

[५२] ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मा ददा इति ।
रुद्रस्यास्तां ते हेतिं परि यन्त्यचित्त्या ॥ २२७ ॥

[ये गोपतिं परा-नीय] जो गौके स्वामीको दूर ले जाकर कहते हैं कि, [मा ददा इति] मत दो, [ते] वे [अ-चित्त्या] अविचारके कारण [रुद्रस्य आस्तां हेतिं परि यन्ति] रुद्रके फेंके शस्त्रके शिकार बनते हैं ।

[५३] यदि हुतां यद्यहुताममा च पचते वशाम् ।
देवान्त्सब्राह्मणानृत्वा जिह्मो लोकान्निर्ऋच्छति ॥ २२८ ॥

[यदि हुतां] यदि दान की हुई अथवा [यदि अहुतां] दान न की हुई [वशां अमा पचते] वशा गौको अपने घरपरही कोई पकाता है, वह [जिह्मः] कुटिल मनुष्य [स-ब्राह्मणान् देवान् ऋत्वा] ब्राह्मणों समेत देवोंके साथ विरोधी होकर [लोकान् निर्ऋच्छति] लोकोंमें दुर्दशाको प्राप्त होता है ।

यहां 'वशां पचते ' पद हैं । लुप्त-तद्धित-प्रक्रियासे ' वशा गौका दूध अपने घरमें पकाता है ' ऐसा इसका अर्थ है । गो अवध्य होनेसे यह लुप्त-तद्धितकाही उदाहरण मानना योग्य है । (देखो लुप्त तद्धित-प्रक्रिया पृ० ४७-५७)

वशा गौके सूक्तोंपर विचार

क्या वशा गौ वन्ध्या है ?

लौकिक संस्कृतमें वन्ध्या गौको ' वशा ' कहते हैं । यही अर्थ इन सूक्तोंमें लगाकर, ये वन्ध्या गौके सूक्त हैं,

ऐसा मानकर ऋषियोंने यहांतक माना है कि, वन्ध्या गौका वध करके, उसके अंग प्रत्यंगोंका हवन करना भी इन सूक्तोंद्वारा सिद्ध हुआ है ! हमारे मतसे यह अत्यधिक खींचातानी है, इसलिए हम पहिले यह देखना चाहते हैं कि, क्या ' वशा ' पद इन सूक्तोंमें वन्ध्या गौका दर्शक है या दुधारू गौका वाचक है । देखिए निम्नलिखित वाक्य क्या बताते हैं—

(अथर्व० १०।१०)

१ वशां सहस्रधारां आवदामसि ॥४॥
२ इराक्षीरा · वशा ॥६॥
३ ऊधस्ते भद्रे पर्जन्यः वशे ॥७॥
४ धुक्षे · क्षीरं · वशे त्वम् ॥८॥
५ ते पयः क्षीरं अहरद्वशे ॥१०॥
६ ते क्षीरं अहरद्वशे त्रिषु पात्रेषु रक्षति ॥११॥
७ सर्वे गर्भादवेपन्त · असूस्व' । ससूव हि तामाहुर्वशेति ॥२३॥
८ रेतोऽभवद्वशाया । अमृतं तुरीयम् ॥२९॥
९ वशाया दुग्धमपिबन् साध्या वसवश्च ये ॥३०॥
१० वशाया दुग्धं पीत्वा साध्या वसवश्च ये । ते ब्रध्नस्य विष्टपि पयो अस्या उपासते ॥३१॥
११ पत्नामेके दुह्रे घृतमेक उपासते ॥३२॥

(अथर्व० १२।४)

१२ उभयेन अस्मै दुहे ॥१८॥
१३ सुदुघा वशा दुहे ॥३५-३६॥
१४ प्रवीयमाना · वशा ॥३७॥
१५ गोपतये वशाऽददुषे विषं दुहे ॥३९॥
१६ वशायास्तत्प्रियं यद्देवत्रा हविः स्यात् ॥४०॥
१७ शतं कंसाः शतं दोग्धारः शतं गोप्तारो अधि पृष्ठे अस्याः ॥ (अथर्व० १०।१०।५)

इन दो सूक्तोंमें इतने मंत्र हैं, जो यहांकी वशा गौ वन्ध्या नहीं है, ऐसा कहते हैं । देखिये इनका अर्थ—

[१] हजारों धाराओंसे दूध देनेवाली वशा गौकी हम प्रशंसा करते हैं । [२] दूधरूपी अन्न देनेवाली वशा गौ है, [३] वशा गौका दुग्धाशय पर्जन्यका रूप है, [४] वशा गौ दूध देती है, [५] वशा गौके दूधका हरण किया, [६] वशा गौका दूध हरण करके तीन पात्रोंमें रख दिया है, [७] गर्भधारणा न करनेवाली गौको जब गर्भ-धारणा होती है, तब सबको भय होता है, [८] वशा गौका वीर्य अमृतरूप दूधही है, [९] साध्य और वसुदेव यज्ञमें वशा गौका दूध पीते हैं, [१०] वशा गौका दूध पीकर साध्य और वसुदेव स्वर्गमें इस दूधकीही प्रशंसा करते बैठते हैं, [११] इस गौका दूध एक निकालते हैं और दूसरे घृतके पास रहते हैं, [१२] यह गौ (ओसर और थन) दोनोंसे दूध देती है, [१३] वशा गौ दोहन करनेके लिए सुलभ है, [१४] वशा गौ गर्भवती होती है, [१५] दान न करनेवाले गौके स्वामीको यह वशा गौ मानो विषही दुहती है, [१६] वशा गौके लिए यह प्रिय है कि, जो इसके दूधका हवन हो जाय, [१७] इस वशा गौके पीछे सौ गोपालनकर्ता, सौ दोहन करनेवाले ओर सौ दूधके लिए बर्तन लिए खडे रहते हैं ।

यदि वशा गौ वन्ध्या होगी, तो उसका ऐसा वर्णन नहीं हो सकता । जो वशा गौ इन दोनों सूक्तोंमें वर्णित हुई है, वह गर्भवती होती है, प्रसूत होती है, सहस्रोंमें दूध देती है, अनेकोंके लिए पर्याप्त होवे इतना दूध देती है, यज्ञके

लिए दूध घी आदि समर्पण करती है। अतः वेदमंत्रोंमें जिस वशाका वर्णन किया गया है, वह वशा वन्ध्या गौ नहीं है। अतः इन वशा सूक्तोंसे वशा गौके अंग प्रत्यंगोंके हवनका भाव मानना अशुद्ध है।

वशा गौका दान।

वैदिक धर्ममें गौओंका दान करना लिखा है। एकसे लेकर सहस्रों गौओंका दान करनेका उल्लेख वेदमन्त्रोंमें हम देखते हैं। परन्तु प्रत्येक मनुष्य गौका दान लेनेका अधिकारी नहीं है। इस विषयमें वेदके आदेश देखनेयोग्य है-

कौन गौका दान लेवे ?

गौका दान लेना बडा कठिन कार्य है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखनेयोग्य हैं—

सा वशा दुष्प्रतिग्रहा। (अथर्व० १०।१०।२८)

वशा गौका दान लेना बडा कठिन कार्य है, अर्थात् प्रत्येक मनुष्य इसका दान लेनेका अधिकारी नहीं है। पहिले तो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये दान लेही नहीं सकते, परन्तु सबके सब ब्राह्मण भी वशा गौका दान लेनेके अधिकारी नहीं हैं। देखिये—

शतं ब्राह्मणा गोपतिं वशाम्। अथैनां देवा अब्रुवन्नेवं ह विदुषो वशा (अथर्व० १२।४।२२)

सैकडों ब्राह्मण गोपतिके पास वशा गौको मागनेके लिए आ जायेंगे, परन्तु अविद्वान् ब्राह्मणको उस गौका दान करना नहीं है। इस विषयमें देवोंने यह निश्चय किया है कि, ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणकीही वशा गौ है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि, जातिमात्र ब्राह्मणके लिए वशा गौका दान कदापि करना नहीं है। जो वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी प्रवचन करने तथा ज्ञानोपदेश देनेमें प्रवीण हो, उसीको वशा गौका दान करना योग्य है। इसेही क्यों दान दिया जावे ? इसका भी यहां विचार करना चाहिये। ब्राह्मणका घर विद्यालयही हुआ करता है। कई ब्रह्मचारी विना शुल्क यहां विद्याध्ययन करते रहते हैं। पढाईके लिए भी कुछ देना नहीं है, और ब्रह्मचारीके पोषणके लिए भी ब्रह्मचारीने कुछ देना नहीं है। इस तरह राष्ट्रके बालक गुरुकुलोंमें निःशुल्क विद्या प्राप्त करते थे और ब्रह्मज्ञानी बनते थे। ब्राह्मणने विद्या विना शुल्कही देनी चाहिये। इस तरह ब्राह्मण राष्ट्रकी संतानोंकी सुशिक्षासे सपन्नता करनेमें लगे रहते थे। अब प्रश्न यहां उठ खडा होता है कि इन आचार्योंका और ब्रह्मचारियोंका पालन-पोषण आदि कैसे हो ? इसके उत्तरमें हम कह सकते है कि, यह व्यवस्था वेदने ऐसी बांध दी थी कि, जिसके पास उत्तम गौ हो, वह गोपति अपनी गौको ऐसे विद्वान् ब्राह्मणके आश्रमके लिए अर्पण करे, और उस वशा गौके दूधसे आश्रमस्थ आचार्यों और ब्रह्मचारियोंका पालन होता रहे।

ब्राह्मणके घर विद्याके केन्द्र होते थे और वहा नि शुल्क विद्याकी पढाई होती थी इसीलिए ब्राह्मणोको गौ दी जाती थी, यह जानकरही ये वशा सूक्त पढने चाहिये। इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

(अथर्व० १०।१०)

१ शिरो यज्ञस्य यो विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २ ॥
२ य एवं विद्यात् स वशां प्रति गृह्णीयात् ॥ २७ ॥
३ य एवं विदुषे वशां ददुस्ते गतास्त्रिदिवं दिवः ॥ ३२ ॥ (ऋ० १०।३।५४।१)
४ ब्राह्मणेभ्यो वशां दत्त्वा सर्वान् लोकान् समश्नुते ॥ ३३ ॥

(अथर्व० १२।४)

५ ददामीत्येव ब्रूयाद् · वशां ब्रह्मभ्यो याचद्भ्य— ॥ १ ॥
६ ब्रह्मभ्यो देया एषा ॥ १० ॥

७ यथा शेवधिर्निहितो ब्राह्मणानां तथा वशा ॥ १४ ॥
८ स्वमेतदच्छायन्ति यद्वशां ब्राह्मणा अभि ॥ १५ ॥
९ वशां विद्यास् ब्राह्मणांस्तर्ह्येष्याः ॥ १६ ॥

(१) जिसको यज्ञके सिरका पता है अर्थात यज्ञमें मुख्य तत्त्व क्या है, इसे जो जानता है, वही वशा गौका दान ले, (२) जो इस ब्रह्मज्ञानको जानता है वह वशा गौका दान ले, (३) जो ऐसे ब्रह्मज्ञानी विद्वान्को वशा गौका दान करते हैं, वे स्वर्गको प्राप्त होते हैं, (४) जो ब्राह्मणोंको वशा गौका दान करते हैं, वे सब उत्तम लोकोंकी प्राप्ति करते हैं, (५) जिस समय ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण वशा गौकी माँग करनेके लिए आ जायँ, उस समय 'मैं गौका दान देता हूं' कहनाही योग्य है, (६) वशा गौ ब्राह्मणोंको अवश्यही दान करनी चाहिये, (७) जैसे कोई धरोहर रखी होती है, वैसीही यह वशा गौ ब्राह्मणोंकी धरोहरही है, (८) जो ब्रह्मज्ञानी विद्वान् ब्राह्मण किसीके पास वशा गौकी माग करनेके लिए जाते हैं, उस समय, मानो, वे अपनी धरोहरही वापस मांगनेके लिए जाते हैं, (९) यदि किसी गोपालके घर वशा गौ प्रसूत हो जाय, तो किसी ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मणको ढूंढकर उसे उस गौका दान करना चाहिये।

इस तरह अत्यंत विद्वान् ब्राह्मणकोही वशा गौका दान करना योग्य है ऐसा कहा है। जितना अधिक विद्वान् ब्राह्मण होगा, उतना उसके पास शिष्य-समुदाय अधिक होगा, और गौओंकी आवश्यकता उसके लिए उतनी अधिक होगी। इसीलिए वशा गौ प्रसूत होनेपर वह किसी विद्वान् ब्राह्मणके घरही पहुंचनी चाहिये, ऐसा ऊपर लिखा है। इस दानसेही गुरुकुल सब छात्रोंको विनामूल्य विद्याका दान करनेमें समर्थ होते थे। नयी पीढी सुदृढ होनेके लिए गौका दूध ब्रह्मचारियोंको अवश्य मिलना चाहिये।

किस गौका दान न हो ?

जो गौ बहुत दूध न देती हो, वृद्ध हुई हो, अन्य तरहके कष्ट देनेवाली हो, वैसी गौओंका दान देना उचित नहीं है, देखिये इस विषयके मन्त्र—

बिना सींगकी वृद्ध गौ दानमें देनेसे दाताके सब भोग नष्ट होते हैं, लंगडी लूली गौका दान करनेसे दाताका अधःपात होता है, अत्यन्त कृश गौका दान करनेसे घरबार नष्ट होते हैं, और कानी गौका दान करनेसे बडी हानि होती है। (अथर्व० १२।४।३ देखो पृ ६७ मं० १७८)

इस तरह दुर्बल गौओंका दान करना अयोग्य बताया है। कठ उपनिषद्के प्रारंभमें भी ऐसाही कहा है—

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥ (कठ उप० १।१।३)

'जो गौवें पानी पी नहीं सकतीं, घास खा नहीं सकतीं, जिनकी इन्द्रियां क्षीण हो चुकी हैं अतः जो दूध नहीं देतीं, ऐसी गौओंका दान करनेवाला सुखहीन लोकोंको प्राप्त होता है।'

यही बात ऊपरके वेदमंत्रमें कही है। गौका दान विद्वान् ब्राह्मणोंको अवश्यही करना चाहिये। दान न करनेसे अदाताकी बडी हानि होती है, देखिए इस विषयके मन्त्र—

गौका दान न करनेसे हानि।

जो देवोंकी गौको ब्राह्मणोंके लिए समर्पण नहीं करता, उसकी संतान और उसके पशु क्षीण होते हैं। (अथर्व० १२।४।२)

जो विद्वान् ब्राह्मणोंके माँगनेपर भी उनको अपने पासकी गौका दान नहीं करता, वह देवोंका क्रोध अपने ऊपर लाता है। (अथर्व० १२।४।१२)

जो अपनी गौका दान ब्राह्मणोंके मांगनेपर भी नहीं करता, उसकी बडी हानि होती है। (अथर्व० १२।४।१३)

जो गौका दान न करनेकी इच्छासे कहता है, यह गौ खराब है, और ऐसा कहकर जो गौका दान करना टाल देता है, देव उसका नाश करते है। (अथर्व० १२।४।१७)

ब्राह्मणोंके मागनेपर भी जो वशा गौका दान नही करता, उसके मनोरथ निष्फल होते हैं। [अथर्व १२।४।१९]

जो ब्राह्मणोको वशा गौका दान नहीं करता, वह देवोंके क्रोधको अपने ऊपर लाता है, क्योंकि वह गौ देवोंकी है। (अथर्व० १२।४।२१)

जो विद्वान् ब्राह्मणको गौका दान नहीं करता और अविद्वान्को दान करता है, उसके लिए इस पृथ्वीपर रहना कठिन होता है। [अथर्व० १२।४।२३]

ब्राह्मणके मागनेपर भी जो गौका दान नहीं करता, उसकी संतान और पशु नष्ट होते है। [अथर्व० १२।४।२५]

वशा गौको वन्ध्या करके जो गोपति उसका दान नहीं करता, और उसका दूध अपनेही घर पकाता और स्वयं खाता है, उसके पुत्र और पौत्र दरिद्री होते है। इस तरह दान न करते हुए जो गौका दूध स्वयं पीता है, वह मानों, विष-ही है। [अथर्व० १२।४।३७-३९]

जो गोपतिको एक ओर ले जाकर बहका देता है कि, वह गौका दान न करे, और इस तरह उसे दान करनेसे निवृत्त करता है, वह देवताके क्रोधसे विनष्ट होता है। [अथर्व० १२।४।५२ देखो पृ ६६-७८]

इस तरह गौका दान न करनेसे गोपतिकी हानि होती है, ऐसा कहा है। ये सब मन्त्र अर्थवादके हैं, जो गौका दान विद्वान् ब्राह्मणोंको करनेके लिए गोपतिकी प्रेरणा करनेके लिए हैं।

गौ मांगनेके लिए ब्राह्मण कब आते हैं?

गोपतिके पास गौकी मांग करनेके लिए ब्राह्मण कब आते हैं इस विषयमें निम्नलिखित मंत्र देखनेयोग्य हैं।

[१७] वशा गौ देवोंकी धरोहर गोपतिके पास रखी होती है, [२०] ब्राह्मणोंके मुखसे देव अपनीही रखी धरोहरको वापस मागते है, [२१] इसलिए देवोंकी धरोहरको जो देवताओंके प्रतिनिधिरूप ब्राह्मणोंको नही देता, वह देवोके क्रोधको अपने ऊपर लाता है, [२२] देवही वशा गौकी मांग करते हैं [जो ब्राह्मण मांगते हैं], [२६] अग्नि, सोम, मित्र, वरुण आदि देवताओंके उद्देश्यसेही ब्राह्मण गौकी माग करते हैं, [२७] जबतक विद्वान् ब्राह्मण वेद-मंत्र पढते हुए घर न आ जायँ, तबतक भलेही गोपति वशा गौको अपने घर रख ले, [२८] पर वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी-योंके ऋचाओंके शब्द सुननेपर यदि वह वशा गौको अपने घर रखेगा, तो वह देवोंके क्रोधको प्राप्त करेगा, [२९] जब गौ स्वयंही अपने घर अर्थात् ब्राह्मणोंके घर जाना चाहती है, तब उसके विशेष चिन्ह दिखाई देते हैं, [३०-३१] जब वह गौ अपने घर जाना चाहती है, तब वह देवोंको प्रेरणा करती है, वे ब्राह्मणोंको सूचित करते हैं, तब ब्राह्मण गौकी मांग करनेके लिए आते है। [अतः ब्राह्मणोंके मागनेपर गौका दान करनाही चाहिये, क्योंकि गौही अपने घर जाना चाहती है।] [अथर्व० १२।४ देखो पृ ७०-७४]

इस तरह ब्राह्मणका गौको मागनेके लिए आना, एक दैवी घटना है ऐसा मानकर गौका दान अवश्य और शीघ्रही करना चाहिये ऐसा यहा स्पष्ट कहा है।

इस तरह गौके दानके विषयमें कहा है और वह जातिमात्र ब्राह्मणका पक्षपात न करते हुए कहा है। विद्वान् आचार्य ब्रह्मज्ञानीके आश्रम चलानेके लिएही यह एक व्यवस्था है और वह उत्तम व्यवस्था है।

गौको कष्ट न देना।

गौका पालन बडे प्रेमके साथ करना चाहिये। गौको किसी तरह किसी प्रकारका कष्ट नहीं देना चाहिए, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्र देखिये—

(६) जो गौके कानोंपर खुरचकर चिह्न करता है, वह मानों देवोंके शरीरोंकोही खुरचता है, (७) जो गौके बालोंको काटता है, उसके बालबच्चे मरते हैं, (८) गोपतिके सामने यदि कोई कौवा गौको छेडेगा तो उस दुर्लक्ष्यसे गोपतिकी हानि होती है। (अथर्व० १२।४ देखो पृ १७-१८)

इन मन्त्रोंके मननसे पता लग सकता है, कि, कितने आदरसे गौका पालन करना चाहिये, और किस तरह ध्यानसे संभाल कर उस गौको कष्टोंसे बचाना चाहिये।

सूचना।

इस सूक्तमें जो लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके उदाहरण हैं, उन्हें ' लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया ' के प्रकरणमें देखो। इन वचनोंका अर्थ इसी प्रक्रियाके अनुसार न समझा जायगा, तो अर्थका अनर्थ हो सकता है। इसलिए ये वाक्य पृथक् निकाल कर एकही प्रकरणमें रख दिये हैं।

(२७) शतौदना गौ।

(अथर्व० १०।९।१-२७)

अथर्वा। शतौदना। अनुष्टुप्, १ त्रिष्टुप्, १२ पथ्या पङ्क्ति, २५ द्व्युष्णिग्गर्भानुष्टुप्, २६ पञ्चपदा बृहत्यनुष्टु-बुष्णिग्गर्भा जगती, २७ पञ्चपदातिजागतानुष्टुब्गर्भा शक्वरी।

[१] अघायतामपि नह्या मुखानि सपत्नेषु वज्रमर्पयैतम्।
इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना भ्रातृव्यघ्नी यजमानस्य गातुः॥ २२९॥

[अघायतां मुखानि अपि नह्य] पाप करनेवालोंके मुख बंद करके, [सपत्नेषु एतं वज्रं अर्पय] शत्रुओंपर इस वज्रको फेंक दो। [इन्द्रेण दत्ता प्रथमा शतौदना] इन्द्रने दी सौ मानवोंको अन्न देनेवाली यह पहली गौ है, जो [भ्रातृव्यघ्नी] शत्रुका नाश करके [यजमानस्य गातुः] यजमानको उन्नतिका मार्ग बताती है।

पापी लोगोंके मुख बंद करो, शत्रुओंको दूर करो और यज्ञका प्रारंभ करो। यह गौ सौ मानवोंको भोजन देती है, अपने दूधसे प्रतिदिन सौ मानवोंकी तृप्ति करती है। यह इन्द्रसे प्राप्त हुई है। यह शत्रुका नाश करती है और यजमानको उन्नतिकारक यज्ञका मार्ग बताती है।

सौ मनुष्योंके लिए आवश्यक चावलोंको अपने दूधमें पकानेवाली यह गौ है। इस गौके दूधमें सौ मनुष्योंके लिए आवश्यक चावल पकाते हैं। जब ' दूध पाक ' बनता है, तब वह सौ मानवोंको खिलानेवाली गौ ' शतौदना ' कहलाती है। मालपुवे भी चावलोंके साथ खिलाने होते हैं इसलिए चावल थोडे लगते हैं। इस विषयमें आगे विशेष वर्णन आनेवाला है।

[२] वेदिष्टे चर्म भवतु बर्हिर्लोमानि यानि ते।
एषा त्वा रशनाऽग्रभीद् ग्रावा त्वैषोऽधि नृत्यतु॥ २३०॥

(ते चर्म वेदिः भवतु) तेरा चर्म यज्ञकी वेदी बने, (ते यानि लोमानि बर्हिः) तेरे जो बाल हैं, वे आसन बनें, (एषा रशना त्वा अग्रभीत्) यह रस्सी तुझे पकड रही है, (एष ग्रावा त्वा अधि नृत्यतु) यह पत्थर तेरे ऊपर नाचता रहे।

गौका चर्म सोम रखनेके कार्यमें उपयोगी है, उसके बालोंकी कूँची स्वच्छ करनेके काममें आती है। चर्मपर सोम रखकर पत्थरोंसे कूटते और उसका रस निचोडते हैं। इस तरह गौके सब पदार्थोंका उपयोग होता है। कोई चीज व्यर्थ नहीं है। इस तरह सब प्रकारसे उपयोगी गौको इस रस्सीसे यहां बांधकर रखते हैं। ग्रावा त्वा अधि

नृत्यतु = पत्थर तेरे ऊपर नाचे। यह 'लुप्त-तद्धित' का उदाहरण है। गौके चर्मपर सोम रखते हैं उसको पत्थरसे कूटते हैं। उसका यह वर्णन है। पत्थर तेरे चर्मपर रखे सोमपर नाचे अर्थात् उसे कूटे यह इसका अर्थ है। ['लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया' नामक प्रकरण देखो पृ ४७-५७]।

[३] बालास्ते प्रोक्षणीः सन्तु जिह्वा सं मार्ष्ट्वघ्न्ये।
शुद्धा त्वं यज्ञिया भूत्वा दिवं प्रेहि शतौदने ॥२३१॥

[ते बालाः प्रोक्षणीः सन्तु] तेरे बाल साफ करनेवाली कूँचियाँ बनें, हे [अघ्न्ये] अवध्य गौ ! तेरी [जिह्वा] जीभ [सं मार्ष्टु] स्वच्छता करे, [त्वं शुद्धा यज्ञिया भूत्वा] तू शुद्ध और पवित्र होकर हे [शतौदने] सौ मानवोंका भोजन देनेवाली गौ ! [दिवं प्रेहि] स्वर्गको चली जा अर्थात् स्वर्गका मार्ग बता।

गौके बालोंकी कूँची बनती है जो स्वच्छ करनेके काममें आती है, विशेषतः जेवरोंको स्वच्छ करनेमें इसका उपयोग करते हैं। जिह्वाका चमडा साफ करनेके काममें आता है। गौ अपनी जिह्वासे चाट चाटकर सब शरीर स्वच्छ करती है। जिसको वह चाटती है, वह भी स्वच्छ होता है। किसी व्रण या फोडेको गौ चाटे तो वह शीघ्र ठीक होता है। इस तरह यह गौ शुद्ध और पवित्र है। इसकी सब चीजें उपयुक्त हैं। एक भी चीज व्यर्थ नहीं है। यह गौ प्रतिदिन अपने दूधसे सौ मानवोंको तृप्त करती है। यह इतनी उपयोगी होनेसे यह धेनु स्वर्गीयही है।

दिवं प्रेहि = हे गौ ! तू दिनके समय सूर्य-प्रकाशमें बाहर चरनेके लिए जा। [दिव् = दिन, स्वर्ग, प्रकाश] अर्थात् रात्रीके समय आश्रमके अन्दर रह और दिनमें प्रकाशमें संचार कर।

इस मंत्रमें 'अ-घ्न्या' नाम गौके लिए प्रयुक्त हुआ है। गौ अवध्य है यह इस नामसेही सिद्ध है, अतः गौकी अवध्यता मानकरही इस मंत्रका अर्थ करना योग्य है।

गौका वध करते समय 'तू स्वर्गको जा' ऐसा गौको कहा जाता था, ऐसा कुछ लोग मानते हैं, पर 'अघ्न्या' पदसे वैसी कल्पना करना असंभाव्य है यह स्पष्ट हो सकता है।

[४] यः शतौदनां पचति कामप्रेण स कल्पते।
प्रीता ह्यस्यर्त्विजः सर्वे यन्ति यथायथम् ॥२३२॥

[यः] जो [शत-ओदनां पचति] सौ मानवोंके लिए चावल गौके दूधमें पकाता है, [सः कामप्रेण कल्पते] उसकी सब कामनाएँ परिपूर्ण होती हैं, [अस्य सर्वे ऋत्विजः प्रीताः] इसके सब ऋत्विज संतुष्ट होते हैं और वे सब [यथायथं यन्ति] अपनी इच्छाके अनुसार प्रगति करते हैं।

यहां 'शतौदनां पचति' पद हैं (शत) सौ मानवोंके लिए (ओदन) भात जिस गौके दूधके साथ पकाया जाता है, वह शतौदना गौ है। वेदमें तथा वैद्यशास्त्रमें 'षाष्टिक' जातिके चावल खानेके लिए उत्तम बताये हुए हैं। बीज बोनेके दिनसे साठवें दिन ये धान तैयार होते हैं। इनको कूटकर चावल बनते हैं। ये चावल धोकर एक घण्टा पूर्व रखे जाते हैं, घीमें भूने जाते हैं, और दूधमें पकाये जाते हैं। इनकी पकानेकी यह पद्धति है। इस तरह पकानेके लिए सेर चावलोंके लिए डेढ दो सेर दूध चाहिये। साधारणतः १०० भोजकोंको एक समयके भोजनके लिए ३० सेर चावल अधिकसे अधिक लगेंगे, पर यह भोजन मालपूवोंके साथ होनेसे १२ सेर चावल पर्याप्त हैं। इनके पकानेके लिए २५ सेर दूध आवश्यक है। इतना दूध देनेवाली गौ शतौदना कही जायगी।

यही वह गौ है, जो ऊपरके मंत्रमें स्वर्गके लिए योग्य समझी गयी है। यह यज्ञीय गौ दिनमें तीन बार दुही जाती है। प्रातःसवन, माध्यंदिन-सवन और साय-सवन तीनों सवनोंमें गौ दुही जाती है। रात्रीमें भी और एकबार दोहनका प्रसंग होता है। मुख्य तीन बारके दोहनमें इतना दूध देनेवाली गौका नाम शतौदना है। यही गौ सब ऋत्विजोंको संतुष्ट कर देती है। यही कामदुघा कामधेनु है, क्योंकि यही चाहे जिस समय दूध देती है। कामना होतेही जिसका दोहन हो सकता है वह कामधेनु है।

'शतौदना पचति' का अर्थ 'गौकोही पकाता है' ऐसा कुछ लगाते है। परन्तु यह 'अ-घ्न्या शतौदना' (मं ३) है। इसलिए यह गौ अवध्य है। अवध्य होते हुएही इसका पाक होना है और उसके साथ [ओदन] भात भी पकता है। यह लुप्त-तद्धित प्रयोग है, अतः 'शतौदनां पचति' का अर्थ 'इस तरहकी गौके दूधका पाक करना' है। [लुप्त-तद्धित-प्रकरण देखो पृ० ५७]

[५] स स्वर्गमा रोहति यत्रादस्त्रिदिवं दिवः।
अपूपनाभिं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥२३३॥

[यत्र अद् त्रिदिवं दिव] जहां वह त्रिदिव नामक द्युलोक है, उस (स्वर्गं स आ रोहति) स्वर्गमें वह चढ जाता है, [यः] जो [अपूप-नाभिं कृत्वा शतौदनां ददाति] जिसके मध्यमें माल पूवे रखे जाते हैं, ऐसा सौ मानवोंके लिए भात जिसके दूधमें पकाया जाता है, ऐसी गौको जो दानमें देता है, अथवा मालपूवोंके साथ ऐसी दुधारू गौको जो दानमें देता है।

जिसके दिनभर दिये दूधमें सौके लिए चावल पकते हैं, उस गौका ब्राह्मणके लिए दान करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है, ऐसा यहां कहा है। इस दानका विधि यों है। पूर्वोक्त मंत्र ४ में कही विधिसे सौ ब्राह्मणोंके लिए दूध-पाक तैयार करना, बीचमें पर्याप्त मालपूवे पकाकर रखना, इस अन्नके साथ उक्त गौका दान सुयोग्य ब्राह्मणको देना। यह दान स्वर्ग देनेवाला है। मालपूवोंके साथ चावल सौ मानवोंके लिए १२ सेर भी पर्याप्त होंगे और २५ सेर दूध इनके पकानेके लिए पर्याप्त होगा।

जो गौ दिनमें २५ सेर दूध देती है वह शतौदना है, जो दान देनेयोग्य है।

[६] स तांल्लोकान्त्समाप्नोति ये दिव्या ये च पार्थिवाः।
हिरण्यज्योतिषं कृत्वा यो ददाति शतौदनाम् ॥२३४॥

(ये दिव्याः, ये च पार्थिवाः) जो स्वर्गीय तथा जो पार्थिव लोक हैं, (तान् लोकान् स समाप्नोति) उन लोकोंको वह भली भांति प्राप्त होता है, (यः) जो (शत-ओदनां हिरण्य-ज्योतिषं कृत्वा ददाति) सौको अन्न देनेवाली गौको सुवर्णसे अर्थात् सुवर्णके भूषणोंसे सुभूषित करके दान देता है।

इस मंत्रमें कहा है कि, ऐसी दुधारू गायका दान करनेसे उस दाताको न केवल स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है, प्रत्युत इस पृथ्वीपर जो भोग्य स्थान हैं, जो सुख और प्रतिष्ठाके स्थान हैं, वे भी उसको प्राप्त होते हैं। इस गौके दानकी विधि यों है —

गौके शरीरपर सुवर्णके आभूषण रखना, अर्थात् सींग सोनेसे वेष्टित करना, गलेमें नानाप्रकारके आभूषण डालना और सजावटके लिए जहां जितने आभूषण गौपर रखे जा सकते हैं उतने वहां रखना, और उस गौको सुवर्णकी तेजस्वितासे चमकीली बनाना और इन सब आभूषणोंके साथ गौका दान करना। यह दान दाताकी प्रतिष्ठा इस लोकमें और परलोकमें सुस्थिर करता है।

[७] ये ते देवि शमितारः पक्तारो ये च ते जनाः ।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति मैभ्यो भैषीः शतौदने ॥२३५॥

हे [देवि शतौदने] सौको अन्न देनेवाली गौ देवी ! [ये ते शमितार] जो तेरे लिए शान्ति सुख देनेवाले और [ये च ते पक्तारः जना'] जो तेरे दूधको पकानेवाले लोग हैं, (ते सर्वे) वे सब [त्वा गोप्स्यन्ति] तेरी रक्षा करेंगे । [एभ्यः मा भैषीः] इनसे तू मत डर ।

यह गौ स्वर्गीय देवता है, सौ मानवोंको अपने दूधके पक्वान्नसे सन्तुष्ट करनेवाली है [और ' अघ्न्या ' मंत्र ३, ११, २४ में कहे अनुसार] अवध्य भी है । इतने मानवोंकी प्रतिदिन तृप्ति कर सकनेवाली गौ कदापि वध्य नहीं हो सकती, यह तो साधारण व्यवहार जाननेवाले लोग भी जान सकते है। परन्तु परमार्थतः वैदिक धर्ममें सभी गौवें ' अ-घ्न्या ' अर्थात् अवध्य हैं, अतः गौके वधका प्रश्न वेदके धर्ममें आ नहीं सकता । तथापि यहांके ' ते शमितारः, ते पक्तारः जनाः ' ये पद संदेह उत्पन्न करनेवाले हैं, क्योंकि ' शमिता ' पदका लौकिक यज्ञ परिभाषामें अर्थ ' **वधकर्ता** ' है और ' पक्ता ' का अर्थ ' **पकानेवाला** ' है । इनके धात्वर्थ ये हैं—

शम् = उपशमे, शान्त रहना, शान्त करना, to be calm, to be pacified, to pacify

शम् = आलोचने to look at; to inspect, to show, to display देखना, निगरानी करना, बताना।

ये अर्थ ' शम् ' धातुके हैं । ' शान्त करने ' का आशय आगे जाकर ' वध करना ' हुआ है । परन्तु सर्वत्र ' शान्ति देने ' का अर्थ ' वध करना ' नहीं हो सकता, यह बात सबको मान्य हो सकती है । इसी तरह ' शमिता ' का अर्थ = शान्ति देनेवाला, शान्ति करनेवाला मुख्यत है, पश्चात् वध करनेवाला यह अर्थ हुआ है । इस समय यज्ञविधिमें ' शमिता ' का अर्थ वधकर्ताही है, परन्तु इसका अर्थ मूलमें ' शान्तिदाता ' है, यह ऊपरके प्रमाणोंसे सिद्ध है । कोषमें भी ये दोनों अर्थ दिये हैं—

शमितृ = One who keeps his mind calm, one who gives rest, a killer, slaughterer जो अपना मन शान्त रखता है, जो दूसरेको विश्राम देता है, जो वध करता है ।

अपना मन शान्त रखना और दूसरोंको शान्ति देना, ये इस पदके यौगिक अर्थ होनेसे मुख्य हैं और गौण वृत्तिसे ' वधकर्ता ' अर्थ बनाया गया है । यदि गौ ' अघ्न्या ' अर्थात् ' अवध्य ' है तब तो निःसन्देहही ' शमिता ' का अर्थ ' गौको विश्रान्ति देनेवाला ' ऐसा मूल धात्वर्थके अनुकूल है, वही होना युक्ति-युक्त है । क्योंकि आगे इसी मन्त्रमें (एभ्यः मा भैषीः) इनसे तुझे भय नहीं है, ऐसा स्पष्ट कहा है । वधकर्तासे गौको भय नहीं होगा, ऐसा मानना युक्ति-युक्त नहीं है, क्योंकि वधकर्म निःसंदेह क्रूर और भयंकर कर्म है । अतः वधकर्तासे भय होगाही । इसलिए यहांका ' शमिता ' विश्रांति देनेवालाही निःसन्देह है। गौका पालन ऐसा करना चाहिये, जिससे उसको किसी तरह भय न हो । वह शांतिसे आश्रममें विचरती रहे । जिसको ऐसी निर्भयतायुक्त शांति मिलेगी, वही अधिक दूध देगी । गौके साथ क्रूर व्यवहार करना सर्वथा निषिद्ध है। यहांके शमिता (शांति देनेवाले) ऐसे है, जिनसे गौको किसी तरहका भय नहीं होगा । प्रत्युत गौको शान्ति सुख मिलता रहेगा ।

अब ' ते पक्तारः जनाः '= तेरा पाक करनेवाले लोग, कहा है उसका अर्थ भी गौ अवध्य है, इसके संदर्भसे ' तेरे दूधका पाक करनेवाले लोग ' मानना उचित है । यदि गौकाही पाक माना जाय, तो ' अघ्न्या ' (अवध्य) गौका पाक किस तरह हो सकता है ? वेदमें ' लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया ' है अर्थात् मूल नामसेही तद्धित अर्थ व्यक्त होता है । ' गोभिः श्रीणीत मत्सरं । ' (ऋ० ९।४६।४) का अर्थ गौके दूधके साथ सोमका रस मिलाते हैं, ऐसा होता है । इस अर्थके अनुसार ' ते पक्तारः ' का अर्थ ' तेरे दूधको पकानेवाले '

ऐसा सरल है। (इस विषयमें ' लुप्त-तद्धित-प्रक्रिया ' का प्रकरणही (पृ. ५७ पर) पाठक देखें, वहा इस तरहके अनेक उदाहरण दिये हैं।) इससे इस मन्त्रका अर्थ इस तरह स्पष्ट हो जाता है।—

हे देवि शतौदने ! ते शमितारः पक्तारः जनाः त्वा गोप्स्यन्ति एभ्यः (मा भैषीः)= हे स्वर्गीय गौ ! हे सौ मानवोंको अन्न देनेवाली गौ ! तुझे शान्तिसुख देनेवाले और तेरे दूधसे सौ मानवोंको लिए दूध पाक सिद्ध करनेवाले लोगही तेरी उत्तम रक्षा करेंगे, इनसे तू न घबरा, क्योंकि इनसे तुझे कोई भय नही। '

यह मन्त्र विरोधाभास अलंकारका उत्तम उदाहरण हो सकता है।

यहा क्षणमात्र मान लीजिए कि, उक्त मन्त्रभागका स्पष्ट दीखनेवाला अर्थही सत्य अर्थ है जैसा— " हे [शत-ओदने देवि] सौ मानवोंके लिए अन्न देनेवाली गौ ! तेरे जो [शमितारः] वधकर्ता हैं और तेरे मासको जो [ते पक्तारः] पकानेवाले [जनाः] लोग है, वे सब [ते गोप्स्यन्ति] तेरी सुरक्षा करेंगे, अत [एभ्य मा भैषी] इनसे तू मत घबरा। " यह अर्थ देखतेही असबद्ध प्रतीत होता है क्योंकि—

(१) इस अर्थसे ' अ-घ्न्या, अ-दिति ' आदि पदोंसे सिद्ध होनेवाली गौकी अवध्यता नष्ट होती है, तथा गोवध निषेधक वाक्य भी व्यर्थ होते है।

(२) सौ मानवोंको अपने दूधसे सतुष्ट करनेवाली गौका वध करना मूढताकाही कार्य है।

(३) गौका वध करके उसके मासको पकानेवाले यदि गौकी रक्षा करेंगे, तो गौकी रक्षा न करना किसका नाम होगा ?

(४) गौका वध करके उसके मासका पाक करनेवाले (गोप्स्यन्ति) उस गौकी रक्षा करेंगे, इस वाक्यका कुछ भी तात्पर्य नही, क्योंकि गौका वध होनेके बाद उसकी रक्षा होनेकी सभावनाही नही है, गौकी रक्षा होनेके समय उस गौके जीवित रहनेकी तो निःसन्देह आवश्यकता है।

(५) यदि ' वध ' के पश्चात् ' रक्षा ' होनेकी सभावना मानी जाय तो इससे अधिक परस्पर विरोधी भाषण करना असंभवही है।

अत. गोवधपरक ऊपर ऊपर दीखनेवाला अर्थ इस मन्त्रका सत्य अर्थ नही है, परन्तु जो ऊपर यौगिक अर्थ दिया है वही इस मंत्रका सत्य अर्थ है। क्योंकि वही अर्थ पूर्वापर प्रकरणसे सुसगत है।

[८] वसवस्त्वा दक्षिणत उत्तरान्मरुतस्त्वा।
आदित्याः पश्चाद्गोप्स्यन्ति साऽग्निष्टोममति द्रव ॥ २३६ ॥

वसु तेरी दक्षिणसे, मरुत् उत्तरसे और आदित्य पीछेसे (गोप्स्यन्ति) तेरी रक्षा करेंगे, ऐसी सब देवोंसे सुरक्षित हुई तू गौ (सा अग्नि-स्तोमं अति द्रव) अग्निष्टोम यज्ञका अतिक्रमण करके आगे बढ। अर्थात् अग्निष्टोम यज्ञको सिद्ध करनेके पश्चात् अन्य यज्ञ सिद्ध करनेके लिए सुरक्षित रह।

आठ वसु पृथिवी, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा और नक्षत्र हैं। मरुत् दैवी सैनिक है, ये कमसे कम ४९ की संख्यामें रहते है, प्रत्येक पंक्तिमें ७ ऐसी सात पंक्तियोंमें मिलकर ४९ मरुत् होते है। प्रति पंक्तिमें दोनों ओरके दो पार्श्वरक्षक मिलकर ७ पक्तियोंके लिए १४ पार्श्वरक्षक होते हैं। ४९ मरुत् और १४ पार्श्व रक्षक मिलकर ६३ मरुतोंका एक छोटेसे छोटा गण होता है, गौको माता माननेवाले मरुत् हैं, इसलिए वे गोरक्षा करते हैं। आदित्य बारह है— धाता, मित्र, अर्यमा, रुद्र, वरुण, सूर्य, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और विष्णु। आठ वसु, बारह आदित्य और तिरसठ मरुत् इतने देव चारों ओरसे गौकी रक्षा करते हैं। इनकी रक्षासे सुरक्षित हुई गौ अग्निष्टोम नामक यज्ञको यथासाग समाप्त करके आगे भी दूसरे यज्ञ करनेके लिए

सुरक्षित रहती है। इस मन्त्रमें 'अग्निष्टोमं अति द्रव' ये पद हैं। अग्निष्टोमसे आगे बढ़ (Do thou run beyond अग्निष्टोम) इसका अर्थ यह है कि, यह गौ अग्निष्टोम यज्ञ समाप्त करके दूसरे यज्ञ करनेके लिए और भी जीवित रहे।

इससे भी सिद्ध होता है कि इस यज्ञमें गौका वध नहीं है, प्रत्युत इस गौके दूधका पाक करना है।

[९] देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये।
ते त्वा सर्वे गोप्स्यन्ति साऽतिरात्रमति द्रव ॥ २३७ ॥

हे गौ! देव, पितर, मनुष्य, गन्धर्व और अप्सराएं (ते गोप्स्यन्ति) तेरी सुरक्षा करेंगे, तू (अतिरात्रं अति द्रव) अतिरात्र यज्ञके परे दौडती जा। अर्थात् अतिरात्र यज्ञको सिद्ध करके पश्चात् दूसरे यज्ञ करनेके लिए सुरक्षित रह।

सब देव, सब पितर, सब मनुष्य, सब गन्धर्व और सब अप्सराएं गौकी रक्षा कर रही हैं। इनके संरक्षणसे सुरक्षित हुई गौ अतिरात्र यज्ञको यथायोग समाप्त करके उसके पश्चात् करनेके यज्ञोंके लिए आनन्दसे विचरती रहे।

इन दोनों मंत्रोंमें कहा है कि, आठ वसु, तिरसठ मरुत, बारह आदित्य, इनके अतिरिक्त सब देवगण, तथा पितर, मानव, गन्धर्व, अप्सरागण ये सब गौकी रक्षा करते हैं। अर्थात् इनमे गोवध करनेवाला कोई नहीं है। इतने गौके रक्षक होनेपर गौका वध कैसे होगा? इन दो मन्त्रोंके सदर्भसेही मं० ७ का तात्पर्य समझना योग्य है, जो उस मंत्रके नीचे यौगिक अर्थके द्वारा हमने बताया है।

[१०] अन्तरिक्षं दिवं भूमिमादित्यान्मरुतो दिशः।
लोकान्त्स सर्वानाप्नोति यो ददाति शतौदनाम् ॥ २३८ ॥

(यः शत-ओदनां ददाति) जो सौ मानवोंको अन्न देनेवाली गौका दान देता है, वह पृथ्वी, अन्तरिक्ष, द्यु, आदित्य, मरुत्, दिशा इन सब लोकों (में यशके स्थान) को प्राप्त करता है।

इस मन्त्रमें [य शतौदनां ददाति] शतौदना गौका दान करनेका उल्लेख स्पष्ट है। इस गौका दान करनेसे तीनों लोकोंकी प्राप्ति होती है, अर्थात् तीनों लोकोंमें यशका स्थान मिलता है। मन्त्र ७ में भी गौके दानका उल्लेख है। इन दोनों मन्त्रोंके बीचमें आनेवाले तीनो मंत्रोंमें 'गोप्स्यन्ति' पद है, जो गोरक्षाका साक्षात् विधान करता है। गौका दान करना है, इसलिए उसकी सुरक्षा करनी चाहिये। गौका वध होनेपर गौका दान कैसे होगा? इसलिए सातवें मंत्रमें वधकी कल्पना करना असंभव है।

[११] घृतं प्रोक्षन्ती सुभगा देवी देवान् गमिष्यति।
पक्तारमघ्न्ये मा हिंसीर्दिवं प्रेहि शतौदने ॥२३९॥

[घृतं प्रोक्षन्ती] घीका प्रवाह देनेवाली [सुभगा देवी] भाग्यवाली देवी गौ [देवान् गमिष्यति] देवोंके पास जायगी। हे [अ-घ्न्ये] अवध्य गौ! [पक्तारं मा हिंसीः] पकानेवालेकी हिंसा न कर। हे [शतौदने] सौ मानवोंके लिए अन्न देनेवाली गौ! [दिवं प्रेहि] स्वर्गको जा। अर्थात् हमें स्वर्गका मार्ग बता।

यह गौ घी देती है, तथा उत्तम भाग्यवाली है। यह घी देवोंको अर्पण किया जाता है, इस घृतका नाम भी गौ-ही है, अतः घृतरूपसे यह गौ प्रतियज्ञमें देवोंके पास पहुंचती रहती है। दूध और घीका पाक करनेवालेके लिए किसी तरह कष्ट न हों, और घीके रूपसे देवोंके पास पहुंचकर तू देवोंके स्वर्गस्थानमेंही पहुंचती है। यदि घृताहुति

से गौ देवोंके पास पहुंचती है, तब तो वह स्वर्गमेंही पहुंचती है, क्योंकि सब देव स्वर्गमेंही रहते हैं। देवोंके पास पहुचना और स्वर्गमें पहुचना एकही बात है। ऐसा कइयोंका विचार है कि, इस मंत्रका उत्तरार्ध गौके मांसका पाक करनेका भाव बताता है। परन्तु पूर्वापर मंत्रोंका आशय देखनेसे वह भाव दूर हो सकता है। 'देवान् गमिष्यति' = अपने घीके रूपमें गौ देवोंको प्राप्त होती है। [गौका अर्थ = दूध, घी, दूधपाक आदि है जो देवोंको दिये जाते है। 'पक्तारं' का अर्थ म ७ में देखिये। 'दिवं प्रेहि' का अर्थ म ३ में देखिये]। इस विषयमें आगेका मंत्र देखिये--

[१२] ये देवा दिविषदो अन्तरिक्षसदश्च ये ये चेमे भूम्यामधि।
तेभ्यस्त्वं धुक्ष्व सर्वदा क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥२४०॥

(ये दिवि-सदः देवा) जो द्युलोकमें देव रहते हैं, (ये अन्तरिक्ष-सदः) जो देव अन्तरिक्षमें रहते हैं, और जो (इमे भूम्यां अधि) भूमिपर रहते हैं, हे गौ! (तेभ्यः) उन सब देवोंके लिए (मधु क्षीरं अथो सर्पि) मधुर दूध और घी (सर्वदा धुक्ष्व) सर्वकाल दुहती रह।

सब देवताओंके लिए यज्ञमें अर्पण करनेके हेतुसे गौ मीठा दूध और मीठा घी सदा देती रहे। इससे वह देवोंको प्राप्त होती रहती है, और स्वर्गमें पहुचती रहती है। (क्षीरं) मीठे दूधको पकाना, उसका दही बनाना, दहीसे मक्खन निकालना, उसको पकाकर घी बनाना, ये सब क्रियाएं (पक्तारः) पाक करनेवालोंको करनी होती है। इन क्रियाओंमें किसी प्रकार त्रुटि हुई तो वह पदार्थ बिगडता है। इस तरह पकानेमें यदि दोष हुआ, तो गौको क्रोध न आवे और पकानेवालोंको वह गौ शाप न दे, यह आशय (पक्तारं मा हिंसीः। मं० ११) पकानेवालेकी हिंसा न कर इस वाक्यमें स्पष्ट दीखता है। गौकी सफलता उत्तम घीके देवताको समर्पणसे होनेवाली है। इसमें विफलता करनेवालेपर गौका क्रोध होना स्वाभाविक है। वह क्रोध न हो यह इच्छा उक्त मंत्रभागमें स्पष्ट है।

[१३] यत्ते शिरो यत्ते मुखं यौ कर्णौ ये च ते हनू।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४१ ॥

[१४] यौ त ओष्ठौ ये नासिके ये शृङ्गे ये च तेऽक्षिणी।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४२ ॥

[१५] यत्ते क्लोमा यद्धृदयं पुरीतत् सहकण्ठिका।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४३ ॥

[१६] यत्ते यकृद्ये मतस्ने यदान्त्रं याश्च ते गुदाः।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४४ ॥

[१७] यस्ते प्लाशिर्यो वनिष्ठुर्यौ कुक्षी यच्च चर्म ते।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४५ ॥

[१८] यत्ते मज्जा यदस्थि यन्मांसं यच्च लोहितम्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४६ ॥

[१९] यौ ते बाहू ये दोषणी यावंसौ या च ते ककुत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४७ ॥

[२०] यास्ते ग्रीवा ये स्कन्धा याः पृष्टीर्याश्च पर्शवः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४८ ॥
[२१] यौ त ऊरू अष्ठीवन्तौ ये श्रोणी या च ते भसत्।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २४९ ॥
[२२] यत्ते पुच्छं ये ते बाला यदूधो ये च ते स्तनाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २५० ॥
[२३] यास्ते जङ्घा याः कुष्ठिका ऋच्छरा ये च ते शफाः ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २५१ ॥
[२४] यत्ते चर्म शतौदने यानि लोमान्यघ्न्ये ।
आमिक्षां दुह्रतां दात्रे क्षीरं सर्पिरथो मधु ॥ २५२ ॥

(यत् ते शिरः) जो तेरा सिर है, (यत् ते मुखं) जो तेरा मुख है, (यौ कर्णौ) जो तेरे दोनों कान हैं, और (यत् च ते हनू) जो तेरी ठोडी है (१३), जो तेरे दोनों होंठ, नाक, सींग और आंख हैं (१४), (यत् ते क्लोमा) जो तेरे फेंफडे, हृदय और कण्ठके साथवाले सब अवयव हैं (१५), जो तेरा यकृत्, मूत्राशय, आंतें और जो तेरी गुदाके भाग हैं (१६), जो तेरे पेटका भाग और उसके नीचेका आमाशय है, जो तेरी कोखें हैं, जो तेरा चमडा है (१७), जो तेरी मज्जा, हड्डी, मांस और रक्त है (१८), जो तेरे बाहु, वहांके पुट्ठे, कंधे और कुवड हैं (१९), जो तेरी गर्दन, कंधे, पीठ और पसलियां हैं, (२०), जो तेरी जांघें, घुटने, वहांके पुट्ठे और चूतड हैं (२१), जो तेरी दुम, तेरे बाल, औझर और थन हैं (२२), जो तेरी पिंडरियां, वहांकी संधियां, जोड और खुर हैं (२३), जो तेरा चर्म, और जो तेरे लोम हैं, हे (अ-घ्न्ये शत--ओदने) अवध्य और सौ मानवोंको अन्न देनेवाली गौ ! तेरे ये सब भाग (दात्रे) दाताके लिए (मधु क्षीरं) मीठा दूध (आमिक्षां) दही (अथो सर्पिः) और घी (दुह्रतां) दुहकर देते रहें (२४), अर्थात् गौके सम्पूर्ण अवयवोंके बलके साथ दूध आदि पदार्थ दाताको पर्याप्त प्रमाणमें मिलते रहें । दाताके लिए किसी खाद्य वस्तुकी न्यूनता न रहे ।

[२५] क्रोडौ ते स्तां पुरोडाशावाज्येनाभिघारितौ ।
तौ पक्षौ देवि कृत्वा सा पक्तारं दिवं वह ॥२५३॥

[आज्येन अभिघारितौ] घीसे सिंचित हुए [पुरोडाशौ] दोनों पुरोडाश [ते क्रोडौ स्तां] तेरे दोनों छातीके भाग जैसे हों, हे [देवि] दिव्य गौ ! [तौ पक्षौ कृत्वा] उनको दो पंखोंके समान बनाकर [सा] वह तू [पक्तारं दिवं वह] पकानेवालेको स्वर्गको पहुंचा ।

यहां ' पक्तारं दिवं वह ' पकानेवालेको भी स्वर्गको पहुंचा देनेका कार्य गौको करनेको कहा है । ' दिवं प्रेहि ' [मं ३, ११] इन दो मंत्रोंमें गौको कहा है कि, ' तू स्वयं स्वर्गको चली जा । ' यदि स्वर्गको जानेका मतलब मरकर स्वर्गधामको जाना है, तब तो वह स्वर्ग पकानेवालेको भी तत्काल मिलता है । अर्थात् गौका वध कर उसका मांस पकानेवालेको भी गौ स्वयं अपने साथही स्वर्गको ले जायगी ' यह तो एक भयानक समस्या हुई !!! इस तरह गोमेध करतेही तत्काल यजमानके साथ [पक्तार.] पकानेवाले सभी ऋत्विज गौके साथही स्वर्गको

जायँगे, अर्थात् यहां मरेंगे। यजमानके लिए यह एक भयप्रद बात होगी। क्योंकि यज्ञसे पुरोडाशके पंख बनकर वे पकानेवालोंको उडावेंगे और स्वर्गको ले जायँगे। ऐसा होने लगा तो गोमेध करनेवालोंपर भयानक विपत्तिही आ पडेगी और यह यज्ञ करनेके लिए कोई तैयारही नहीं होगा।

इसलिए इन मन्त्रोंमे जो 'स्वर्गमे जाना और स्वर्गको पहुंचानेका कार्य' है वह तत्काल होनेवाला नही है। यदि यजमान और पकानेवाले ऋत्विजोंको यज्ञकी समाप्ति होनेके बाद भी जीवित रहने देना है और उनको '**पक्तारं दिवं वह**' कहनेपर भी तत्काल स्वर्गमें पहुचाना नही है, तब तो '**दिवं गच्छ**' कहनेपर भी गौको तत्कालही स्वर्गको जानेकी आवश्यकता नहीं।

हमारा विचार है कि, यहा गौको मारकर उसके मासके पकानेका निर्देशही नही है। यहां उस गोके दूध और घीके पकानेका निर्देश है। इसीलिए गौका वध करनेकी साक्षात् आज्ञा यहा या अन्यत्र किसी स्थानपर नहीं है। गौका वध न होते हुए जो दुग्ध घृतादि पदार्थ प्राप्त होते है, उनको पकानेका कार्य ऋत्विज करते हैं। इन पदार्थोंके हवनसे देवोंको ये लोग सतुष्ट करते है, जिससे ये सब स्वर्गके अधिकारी बनते हैं, इसी तरह गौ भी दूध आदि हवनीय पदार्थ देनेके कारण स्वर्गकी अधिकारिणी होती है। ये सब मृत्युके पश्चात् स्वर्गधामको पहुंचेंगे। कोई यजकर्ता तत्काल यज्ञ करतेही स्वर्गको नही जाता, मरनेके पश्चात् जाता है। इसी तरह यहां समझना उचित है। यहां केवल स्वर्गके अधिकारकी सिद्धि हुई इतनाही समझना उचित है। 'पक्तार' का अर्थ मन्त्र ४, ७, ११ में देखिये।

[२६] उलूखले मुसले यश्च चर्मणि यो वा शूर्पे तण्डुलः कणः।
यं वा वातो मातरिश्वा पवमानो ममाथाग्निष्टद्धोता सुहुतं कृणोतु ॥ २५४ ॥

[उलूखले मुसले] ओखली और मुसल, जो चर्म है, जो छाजमें चावल तथा चावलोंके टुकडे रहते है, [यं मातरिश्वा वातः पवमानः ममाथ] जिनको वायुने उडाकर फेंक दिया था, [होता अग्निः] होता अग्नि [तत् सुहुतं कृणोतु] उन सबको उत्तम हवनीय बना दे।

अर्थात् यह यज्ञ यथाभाग संपूर्णतया सिद्ध हो जावे। किसी तरहकी न्यूनता इस यज्ञमें न रहे। यहाके ओखली, मुसल, छाज आदिसे चावल बनाये जाते हैं। इन्ही चावलोंका पाक गौके दूधमें किया जाता है। सौ मनुष्योंके लिए चावल और मालपूवे बनाये जाते हैं। गौके दूधमें चावल पकते है और गौके घीमें मालपुवे तले जाते है। यहां '**शत-ओदना गौ**' का आशय स्पष्ट हो गया है। शत मानवोंके लिए चावल पकाने है, इसलिए उन चावलोंको तैयार करनेकी यह तैयारी इस मन्त्रमें कही है। चावल स्वयं बनाकरही ऋत्विजोंको पकाना है। यह दूध पाक तैयार होनेपर (सुहुतं) उसका उत्तम हवन करके पश्चात् हुतशेष सबको भक्षण करना है।

[२७] अपो देवीर्मधुमतीर्घृतश्चुतो ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक्सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहं तन्मे सर्वं सं पद्यतां वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥२५५

[देवीः आपः] यह दिव्य जल [मधुमतीः घृतश्चुतः] मीठा और घीके समान चूनेवाला अर्थात् नीचे गिरनेवाला है। इसकी धाराको मैं [ब्रह्मणां हस्तेषु] ब्राह्मणोंके हाथोंमें [प्रपृथक् सादयामि] प्रत्येकके हाथमें पृथक् पृथक् समर्पण करता हू। [यत्कामः इदं वः अहं अभिषिञ्चामि] जिसकी इच्छा करता हुआ मैं यह दानका जल तुम ब्राह्मणोंके हाथोंमें सिञ्चन करता हूं, [मे तत् सर्वं संपद्यताम्] मेरा वह सब सिद्ध होवे। [वयं] हम सब [रयीणां पतयः स्याम] धनोंके स्वामी बनें।

ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकके हाथमें पृथक् पृथक् दानका उदक देना है। शतौदना गौकाही यह दान है।

१ इन्द्रेण प्रथमा शतौदना दत्ता= इन्द्रने यह शतौदना गौ सबसे प्रथम मानवोंको दी थी। [मं० १]

२ शतौदनां ददाति= यजमान शतौदना गौका दान करता है। [मं० ५, ६, १०],

३ ब्रह्मणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि= ब्राह्मणोंके हाथोंमें प्रत्येकके लिए पृथक् पृथक् दान देना चाहिये।

इस तरह यह दानका सूक्त है। शतौदना गौका दान देना है। इस गौके दूधमें सौ ब्राह्मणोंके भोजनके लिए चावल पकाना और घीमें मालपूवे बनाना है। इन ब्राह्मणोंको बुलाना, इस अन्नके अंशका हवन करना, पश्चात् हुतशेष सब अन्न ब्राह्मणोंको अर्पण करना और सुवर्णालिकारोंसे सजाकर गौका दान करना [मं० ६]। संक्षेपसे यह विधि है। इस तरह दान दी गौ दाताको स्वर्गका सुख देती है।

(२८) ब्रह्मगवी।

(अथर्व० ५।१८।१-१५)

मयोभूः। ब्रह्मगवी। अनुष्टुप्, ४ भुरिक् त्रिष्टुप, ५, ८-९, १३ त्रिष्टुप्।

[१] नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे।
मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम् ॥ २५६ ॥

हे [नृपते] राजन्! [ते देवा] उन देवोंने [तुभ्य अत्तवे एतां न ददु] तेरे खानेके लिए इस गायको नहीं दिया है, इसलिए हे [राजन्य] क्षत्रिय! [ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां] ब्राह्मणकी न खानेयोग्य गायको [मा जिघत्सः] मत खा।

इस मन्त्रमें कहा है कि—

१ हे नृपते! देवाः गां अत्तवे न ददुः= हे राजन्! देवोंने गौको तेरे भक्षण करनेके लिए नहीं दिया है।

२ हे राजन्य! ब्राह्मणस्य अनाद्यां गां मा जिघत्स = हे क्षत्रिय! ब्राह्मणकी गौ न खानेयोग्य है, इसलिए उसके खानेकी इच्छा न कर, उसका भक्षण न कर।

इस सूक्तमें ब्राह्मणकी गौका वर्णन है। ब्राह्मणकी गौको क्षत्रिय न खावे। राजाके पास जो गौ देवोंने दी है, वह राजाके खानेके लिए नहीं है। इस मन्त्रमें यह स्पष्ट हुआ कि—

१ देवा नृपते गां अददु = देवोंने राजाके पास गौ दी है। अर्थात् अनेक गौवें दी हैं।

२ एतां ते अत्तवे न अददु = इस गौको तुझ क्षत्रियके खानेके लिए तुम्हारे पास देवोंनें नहीं दिया है।

३ ब्राह्मणस्य गां = यह ब्राह्मणकी गौ है [जो तुझ क्षत्रियके पास देवोंने दी है, अर्थात् क्षत्रिय इसकी रक्षा करे और ब्राह्मणको दान देवे]।

४ हे राजन्य! अनाद्यां गां मा जिघत्स = अत हे क्षत्रिय! तू इस अभक्ष्य गौको स्वयं मत खा। तू इसको ब्राह्मणको दे डाल।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि, क्षत्रिय अर्थात् राजन्य, राष्ट्रका राजा, गौओंकी पालना करे और उनका दान ब्राह्मणोंको दे। वशा जातिकी गौवें ब्राह्मणोंको देनेके लिए हैं।

यहां दो प्रश्न उत्पन्न होते हैं- [१] 'ब्राह्मणकी गौ' का अर्थ क्या है? और [२] ब्राह्मणकी गौको क्षत्रिय न खावें इसका अर्थ क्या है? यदि क्षत्रिय न खावे तो वैश्य और शूद्र खावे? अथवा ब्राह्मणही खा जावे? क्षत्रियकेही खानेका निषेध क्यों है? क्या गौ चारों वर्णोंको खानेयोग्य नहीं है? गौ तो 'अघ्न्या' है [अघ्न्या, अदिति, अनाद्य, अ-दाभ्य] अवध्य होनेसे वह खायी कैसी जाय? ये प्रश्न यहां विचार करनेयोग्य हैं। इनका विचार हम इन दोनों सूक्तोंके शब्दार्थ करनेके पश्चात् करेंगें [इसी सूक्तका मन्त्र ४ देखिये]।

[२] अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्मपराजितः।

स ब्राह्मणस्य गामद्यादद्य जीवानि मा श्वः ॥२५७॥

[अक्ष-द्रुग्धः पापः] आंखसे भी द्रोह करनेवाला पापी [आत्म-पराजित] अपने दुष्कृत्योंसेही पराभूत हुआ (राजन्य) क्षत्रिय राजा [सः ब्राह्मणस्य गां अद्यात्] वह यदि ब्राह्मणकी गायको खा जाय, तो वह [अद्य जीवानि] कदाचित् आज जीवित रहे, परंतु (मा श्वः) कल तो निःसंदेह नहीं रह जायेगा।

इसमें कहा है कि अति पापी राजा ब्राह्मणकी गायको मारकर खायगा, तो चिरकालतक जीवित नहीं रह सकेगा।

[३] आविष्टिताऽघविषा पृदाकूरिव चर्मणा।

सा ब्राह्मणस्य राजन्य तृष्टैषा गौरनाद्या ॥२५८॥

हे [राजन्य] राजकार्य चलानेवाले क्षत्रिय ! [एषा ब्राह्मणस्य गौ] यह ब्राह्मणकी गौ [अन्-आद्या] खानेयोग्य नहीं है। क्योंकि [सा चर्मणा आविष्टिता] वह चमडेसे ढकी हुई [तृष्टा पृदाकूः इव] प्यासी नागिनके समान (अघविषा) भयंकर विषसे भरी रहती है।

जो इस नागिनके पास पहुंचेगा वह काटा जायगा, जिससे वह मर जायगा। इसलिए ब्राह्मणकी गौको सुरक्षित रखनाही क्षत्रियको उचित है।

[४] निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चोऽग्निरिवारब्धो वि दुनोति सर्वम्।

यो ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स विषस्य पिबति तैमातस्य ॥ २५९ ॥

पापी क्षत्रियका वह दुष्कर्म (क्षत्र निर्नयति) उसके क्षत्रियत्वका नाश करता है, (वर्चः हन्ति) तेजकी हानि करता है और (आरब्धः अग्नि इव सर्वं वि दुनोति) जलानेवाले अग्निके समान उसके सब ऐश्वर्यको जला देता है। (य ब्राह्मण अन्न एव मन्यते) जो ब्राह्मणको अपना अन्न मानता है, (सः तैमातस्य विषस्य पिबति) वह सांपका विषही पीता है।

इस मन्त्रमें (यः ब्राह्मण अन्न मन्यते) जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना अन्न मानता है, ऐसा कहा है। अर्थात् इसका अर्थ यही है कि, किसी क्षत्रियको उचित नहीं कि, वह अपने बलसे ब्राह्मणकी संपत्तिका उपभोग लेनेका यत्न करे। इसका अर्थ ब्राह्मणको मारकर उसका मांस खानेका तात्पर्य यहां निःसन्देह नहीं है। जो राजा ब्राह्मणकी सम्पत्ति छीनकर उसका स्वयं उपभोग करता है, वह राजपदसे पदच्युत होता है, उसकी चारों ओर निंदा होती है, और उसकी सब प्रकारकी हानि हो जाती है। यहां ब्राह्मणको अन्न माननेका जो तात्पर्य है, वही पूर्व (१-३) मन्त्रोंमें ब्राह्मणकी गायको खानेका तात्पर्य है। उस गौसे जो दूध आदि भोग्य पदार्थ मिलते हैं, उनका स्वयं भोग करना और ब्राह्मणको वञ्चित रखना, इतनाही अर्थ पूर्व मन्त्रोंका करना उचित है।

[५] य एनं हन्ति मृदुं मन्यमानो देवपीयुर्धनकामो न चित्तात्।

सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥ २६० ॥

(यः देव-पीयुः धनकामः) जो देवोंका द्रोही धनका लोभी दुष्ट राजा (एनं मृदुं मन्यमान) इस ब्राह्मणको नरम अर्थात् अशक्तसा जानकर (न चित्तात्) अनजान अवस्थामें भी (हन्ति) नष्ट कर देता है, (तस्य हृदये) उसके अन्तःकरणमें (इन्द्रः अग्निं सं इन्धे) इन्द्र स्वयं अग्निको प्रदीप्त करता है, उसके अन्तरात्मामें भयानक जलन उत्पन्न होती है, और (उभे नभसी) दोनों लोक-द्युलोक और अन्तरिक्षलोक दोनों- (एनं चरन्तं द्विष्टः) जब यह घूमने लगता है, तब उसका निरादर करते हैं।

यहां भी (एनं हन्ति) इस ब्राह्मणका वध करता है ऐसा वचन है, परन्तु इसका अर्थ ब्राह्मणका अपमान करके उसको लूटनाही है। क्योंकि धन लोभी दुष्ट राजाही धनकी प्राप्तिके लिए यह कुकर्म करता है। ब्राह्मणको मारकर उसका मांस खानेका भाव यहां निःसन्देह नहीं है। अपमान करनाही ज्ञानीका वध है। ब्राह्मणका अपमान करके उसको लूटना यहां अभीष्ट है। विशेषतः उसकी गौवोंको बलात ले जानाही यहांके कथनका तात्पर्य प्रतीत होता है।

[६] न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः प्रियतनोरिव ।
सोमो ह्यस्य दायाद इन्द्रो अस्याभिशस्तिपाः ॥२६१॥

(ब्राह्मण न हिंसितव्यः) ब्राह्मणका अपमान, अथवा उसकी हिंसा करना योग्य नहीं है। (प्रिय-तनोः अग्निः इव) प्रिय शरीरके पास अग्नि लानेके समान यह भयानक कर्म है। (हि) क्योंकि (अस्य सोमः दायादः) इसका सोम अंशहर है और (अस्य अभिशस्ति-पाः इन्द्रः) इसको विनाशसे बचानेवाला स्वयं इन्द्र प्रभुही है।

राष्ट्रमें ब्राह्मणका अपमान नहीं होना चाहिये और ब्राह्मणकी गौ आदि संपत्ति सुरक्षित रहनी चाहिये। क्योंकि ब्राह्मणही ज्ञानका प्रचार करके राष्ट्रकी आंखें खोलनेवाले हैं, इसलिए राष्ट्रमें ब्राह्मण सुरक्षित रहने चाहिये और उसकी संपत्ति भी सुरक्षित रहनी चाहिये।

[७] शतापाष्ठां नि गिरति तां न शक्नोति निःखिदन् ।
अन्नं यो ब्राह्मणां मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥२६२॥

वह दुष्ट क्षत्रिय [शत-अपाष्ठां नि गिरति] सैकडों शल्योंसे चुभानेवाली गौको निगल जाता है, परन्तु [तां निः खिदन् न शक्नोति] उसको वह पचा नहीं सकता। [यः मल्व ब्रह्मणां अन्नं] जो मलिन हृदयवाला क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना अन्न समझता है और [स्वादु अद्मि इति मन्यते] मीठे स्वादके साथ खाऊंगा ऐसा मानता है। [वह अपना नाश करता है।]

यहां ' ब्राह्मणके गौ आदि सब धनोंका हरण करनेवाले क्षत्रियको बडे कष्ट होंगे ' यही तात्पर्य है। (नि गिरति) निगल जाना, [निः खिदन्] चबाचबाकर खाना, [स्वादु अद्मि] स्वादके साथ खाना, ये शब्द प्रयोग यद्यपि गोमांस अथवा ब्राह्मणका नरमांस खानेकी ध्वनि निकाल रहे हैं, परन्तु पूर्वापर संबंधसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मणके गोधनादिके अपहरणकाही यहां स्पष्ट संबंध है। अतः ये शब्द केवल अलंकारिक हैं। ब्राह्मणके भोगोंको ब्राह्मणसे छीनकर उन भोगोंका स्वयं उपभोग करना किसीको उचित नहीं है। ' जापानने चीनको खा लिया ' इस वाक्यसे कोई भी मांस खानेका भाव नहीं निकालता, परन्तु हडप कर जानेकाही भाव प्रकट होता है, वही भाव यहां लेना योग्य है।

[८] जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्नाडीका दन्तास्तपसाऽभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्मा विध्यति देवपीयून् हृद्बलैर्धनुर्भिर्देवजूतैः ॥२६३॥

इस ब्राह्मणकी [जिह्वा ज्या भवति] जिह्वा प्रत्यञ्चा होती है, [वाक् कुल्मलं] उसका शब्द बाणकी नोक बनता है, (दन्ताः तपसाऽभिदिग्धाः नाडीकाः) उसके दांत तपसे भरे बाणके सरकण्डे होते हैं। [ब्रह्मा] वह ब्राह्मण [तेभिः देवजूतैः हृद्बलैः धनुर्भिः] उन देवोंद्वारा प्रेरित हृदयके बलसे बलिष्ठ किये हुए धनुष्योंसे [देवपीयून् विध्यति] देव द्रोहियोंको बींध डालता है।

अर्थात् ये ब्राह्मणके शब्दरूप शस्त्र क्षत्रियके लोहेके बाणोंसे अधिक प्रखर रहते हैं। ज्ञानी पुरुष क्षत्रियके पाशवी बलके सामने शान्ति धारण करता है, पर वह शान्तिही क्षत्रियके विनाशका कारण बनती है।

[९] तीक्ष्णेषवो ब्राह्मणा हेतिमन्तो यामस्यन्ति शरव्यां२ न सा मृषा ।
अनुहाय तपसा मन्युना चोत दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥ २६४ ॥

(तीक्ष्ण- इषवः हेतिमन्तः ब्राह्मणाः) तीक्ष्ण बाणोंवाले शस्त्रोंसे युक्त ब्राह्मण (यां शरव्यां अस्यन्ति) जिन शाब्दिक बाणोंको फेंकते हैं, वह शरसंधान (न सा मृषा) निष्फल नहीं होता। (मन्युना तपसा अनुहाय) क्रोध और तपके द्वारा शत्रुका पीछा करके (एनं) इसको (दूरात् भिन्दन्ति) दूरसेही भेदन करते है ।

ये ब्राह्मण अपने तपके सामर्थ्यसे जो शाब्दिक शरसंधान करते है, वह दुष्टोंका समूल नाश करता है । इसलिए कोई क्षत्रिय कभी ब्राह्मणकी गौ आदि धनका अपहरण न करे ।

[१०] ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत ।
ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराऽभवन् ॥ २६५ ॥

[ये दश-शता आसन्] जो एक सहस्र थे [उत] और जिन्होंने [सहस्रं अराजन्] सहस्रों-पर राज्य किया था, वे [वैतहव्याः] वीत-हव्यके पुत्र [ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा] ब्राह्मणकी गायको खाकर [पराऽभवन्] पराभूत हुए ।

' वीतहव्य ' (आङ्गिरस) नामक ऋषि ऋ० ६।१५ सूक्तका ऋषि है । इसके अथवा किसी अन्य वीतहव्यके पुत्र नरेश थे । महाभारत अनुशासन पर्व १९५२-१९७७ में वैतहव्योंका उल्लेख है । ये युद्धमें मारे गये ऐसा वहां लिखा है ।

ब्राह्मणकी गायको खानेसे इतने राजाओंका नाश हुआ ऐसा यहां कहा है । यहां गौका हरण करनेहीसे तात्पर्य है ।

[११] गौरेव तान् हन्यमाना वैतहव्यॉं अवातिरत ।
ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजामपेचिरन् ॥ २६६ ॥

[हन्यमाना गौः इव] ताडन की गयी गौही [तान् वैतहव्यान् अवातिरत्] उन वीतहव्यके पुत्रोंको पदभ्रष्ट करनेमें समर्थ हुई । क्योंकि [ये] उन वैतहव्योंने [केसर-प्राबन्धायाः चरम-अजां अपेचिरन्] केसरप्राबंधाकी अन्तिम बकरीको भी पकाया था ।

केसर प्राबधा नामक कोई ब्राह्मण स्त्री थी । उसकी सब गौवें और बकरियां वैतहव्य राजाओंने खा ली, इस कारण वे राजा अथवा वे क्षत्रिय पदभ्रष्ट हो गये । इसका तात्पर्य इतनाही है कि, ब्राह्मणोंका गोधन हरण करनेसे क्षत्रियका पतन होता है । जैसा गौ धन है, उसी तरह बकरी भेड आदि भी धनही है ।

चरम-अजां अपेचिरन्— अन्तिम बकरीको पकानेका उल्लेख यहां है । बकरीके दूधको पकानेसे यहां तात्पर्य है। (लुप्त-तद्धित-प्रकरण देखिए पृ० ५७) बकरी आदिको हडप करनेका भाव यहां है ।

[१२] एकशतं ता जनता या भूमिर्व्यधूनुत ।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराऽभवन् ॥ २६७ ॥

[ता एकशतं जनता] वह एक सौ एक राजा लोक [या भूमिः व्यधूनुत] जिनको भूमिने उठाकर फेंक दिया था । उन्होंने [ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा] ब्राह्मण प्रजाकी हिंसा की थी, इसलिए वे [असंभव्यं पराऽभवन्] अकल्पित रीतिसे पराभूत हुए ।

भूमि दुष्ट राजाओंको उखाडकर फेंक देती है । इस तरह ये राजा दुष्ट थे । इन्होंने ब्रह्मज्ञानियोंको बहुत सताया, इसलिए वे, किसीको कल्पना नहीं हो सकती, ऐसी विलक्षण रीतिसे पराभूत हुए । ज्ञानियोंको जिस राज्यमें क्लेश

होते हैं, उस राज्यका ऐसाही नाश होता है।

[१३] देवपीयुश्चरति मर्त्येषु गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्।
यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥ २६८ ॥

[देवपीयु मर्त्येषु चरति] देवोंका द्रोही मानवोंके बीचमें भ्रमण करता है, वह [गर-गीर्ण अस्थिभूयान् भवति] विष पिया हुआ केवल अस्थिमात्र रह जाता है। अर्थात् वह इतना क्षीण होता है। [य. देव-बन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति] जो देवोंके बन्धु ब्राह्मणकी हिंसा करता है [सः पितृयाण लोक अपि न एति] वह पितृयाण लोकको भी नहीं जाता।

ब्राह्मणोंको कष्ट देनेवाले क्षत्रिय कभी उन्नत नहीं हो सकते।

[१४] अग्निर्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते।
हन्ताऽभिशस्तेन्द्रस्तथा तद्वेधसो विदुः ॥ २६९ ॥

(अग्निः वै नः पदवायः) अग्नि हमारा मार्गदर्शक है, (सोमः दायादः उच्यते) सोम हमारे भागको हरण करनेवाला है, (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्र हमारे घातकोंका नाश करता है, (वेधस. तत् तथा विदुः) ज्ञानी लोग, यह ऐसाही सत्य है, ऐसा जानते हैं।

सन्मार्गमें रहनेवाले ब्रह्मज्ञानियोंके सहायकर्ता ये देव हैं, इसलिए ये ब्राह्मण निर्भय होकर अपने सत्य मार्गका विस्तार करते जाते हैं। अत जो उनका द्रोह करता है, वही उन्मत्त क्षत्रियादिक मारा जाता है।

[१५] इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकुरिव गोपते।
सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः ॥ २७० ॥

हे (गोपते नृपते) गौओंके पालन-कर्ता और मानवोंके पालन करनेहारे क्षत्रिय ! (ब्राह्मणस्य इषुः घोरा) ब्राह्मणका बाण भयंकर है, (सा दिग्धा इषु इव) वह विषैले बाणके समान विषैला और (पृदाकु. इव) सांपिनके समान घातक है, (तया पीयतः विध्यति) उस विषैले बाणसे वह ब्राह्मण द्रोहकर्ताको वींधता है।

यहां यह प्रथम सूक्त समाप्त होता है। अगला सूक्त भी इसी ऋषि देवताका है, इसलिए उसका शब्दार्थ ऐसाही करते हैं और दोनोंका मिलकर अन्तमें स्पष्टीकरण करेंगे।

(अथर्व० ५।१९।१-१५)

मयोभूः। ब्रह्मगवी। अनुष्टुप्, २ विराट् पुरस्ताद्बृहती; ७ उपरिष्टाद्बृहती।

[१] अतिमात्रमवर्धन्त नोदिव दिवमस्पृशन्।
भृगुं हिंसित्वा सृञ्जया वैतहव्याः पराऽभवन् ॥ २७१ ॥

वे [अतिमात्रं अवर्धन्त] अत्यन्त बढ गये थे, [दिवं न उदस्पृशन् इव] केवल उन्होंने द्युलोकको ही स्पर्श नहीं किया था। ऐसे वे [सृञ्जया वैतहव्या.] वीतहव्यके पुत्र सृञ्जय नामके क्षत्रिय [भृगुं हिंसित्वा] भृगु ऋषिकी हिंसा करनेसे [पराऽभवन्] पराभूत हुए।

[२] ये बृहत्सामानमाङ्गिरसमार्पयन् ब्राह्मणं जनाः।
पेत्वस्तेषामुभयादमविस्तोकान्यावयत् ॥ २७२ ॥

[ये जना] जिन लोगोंने [आङ्गिरसं बृहत् सामानं ब्राह्मणं] आङ्गिरस कुलोत्पन्न बृहत्साम ब्राह्मणको

[आर्पयन्] अर्पण किया, सताया [तेषां] उन लोगोंके [तोकानि] संतानोंको [उभयादम् = उभयादन् आवि पेत्वः] दोनों और दांतवाला भेडा [आवयत्] खा गया, अर्थात् भेडेने उन क्षत्रियके संतानोंका नाश किया।

जिन लोगोंने, जिन क्षत्रियोंने आङ्गिरस कुलके किसी ब्राह्मणकी हिंसा की उनके संतानोंका नाश हुआ।

[३] ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन् ये वाऽस्मिञ्छुल्कमीषिरे।
अस्नस्ते मध्ये कुल्यायाः केशान् खादन्त आसते ॥२७३॥

[ये ब्राह्मणं प्रत्यष्ठीवन्] जो लोग ब्राह्मणके ऊपर थूकते हैं। [ये वा अस्मिन् शुल्कं ईषिरे] अथवा जो उसपर थूक फेंकनेकी इच्छा करते हैं, [ते] वे [अस्नः कुल्यायाः मध्ये] रक्तकी नदीमें केशान् खादन्तः आसते] केशोंको चबाते रहते हैं।

अर्थात् मरणके पश्चात्का यह फल है। इस देहपातके अनन्तर और दूसरा देह मिलनेके पूर्व संभवतः यह फल प्राप्त होगा, ऐसा यहां प्रतीत होता है।

[४] ब्रह्मगवी पच्यमाना यावत्साऽभि विजङ्गहे।
तेजो राष्ट्रस्य निर्हन्ति न वीरो जायते वृषा ॥२७४॥

(पच्यमाना ब्रह्मगवी) पकी जानेवाली ब्राह्मणकी गौ (यावत् सा अभि विजङ्गहे) जबतक वह पहुंच सकती है, परिणाम कर सकती है, तबतक (राष्ट्रस्य तेज निर्हन्ति) उस राष्ट्रके तेजका नाश करती है और उस राष्ट्रमें (वृषा वीरः न जायते) बलवान् वीरपुत्र नहीं जन्मता।

[५] क्रूरमस्या आशसनं तृष्टं पिशितमस्यते।
क्षीरं यदस्याः पीयते तद्वै पितृषु किल्बिषम् ॥२७५॥

[अस्याः आशसनं क्रूरं] इस गौका वध करना क्रूरताका कर्म है, [तृष्टं पिशितं अस्यते] इसका मांस खाया जाता हो तो वह बडा प्यास बढानेवाला कर्म है, (यत् अस्याः क्षीरं पीयते) इसका जो दूध पिया जाता है [तत् वै पितृषु किल्बिषं] वह निःसंदेह पितरोंके संबंधमें पापही है।

ब्राह्मणकी गौका कोई दूसरा दूध पीये तो वह भी बडा पापकारक है, फिर उस ब्राह्मणकी गौका वध करना और मांस खाना तो निःसन्देह बडे घोर और क्रूर पाप है। जो ऐसे क्रूर कर्म करेंगे उनका निःसंदेह नाश होगा।

[६] उग्रो राजा मन्यमानो ब्राह्मणं यो जिघत्सति।
परा तत् सिच्यते राष्ट्रं ब्राह्मणो यत्र जीयते ॥२७६॥

[यः राजा उग्रः मन्यमानः] जो राजा अपने आपको बडा शूर मानता हुआ, [ब्राह्मणं जिघत्सति] ब्राह्मणकी हिंसा करता है, [तत् राष्ट्रं परा सिच्यते] वह राष्ट्र दूर जाकर गिर जाता है, (यत्र ब्राह्मणः जीयते) जहां ब्राह्मणको कष्ट पहुंचते हैं।

[७] अष्टापदी चतुरक्षी चतुःश्रोत्रा चतुर्हनुः।
द्व्यास्या द्विजिह्वा भूत्वा सा राष्ट्रमव धूनुते ब्रह्मज्यस्य ॥ २७७ ॥

[सा] वह गौ आठ पावोंवाली, चार आंखोंवाली, चार कानोंवाली, चार ठोडियोंवाली, दो मुखोंवाली, दो जिह्वाओंवाली होकर [ब्रह्मज्यस्य राष्ट्रं] ब्राह्मणकी हिंसा करनेवालेके राष्ट्रको [अव धूनुते] हिला देती है।

गर्भवती गौ आठ पावोंवाली आदि होती है। उसकी हिंसा करनेसे वह राष्ट्रको हिला देती है। यहां हिंसाका अर्थ कष्ट देना है।

[८] तद्वै राष्ट्रमा स्रवति नावं भिन्नामिवोदकम्।
ब्रह्माणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना॥ २७८॥

[उदकं भिन्नां नावं इव] फटी नौकामें पानी भरनेके समान [तत् राष्ट्रं आ स्रवति वै] उस राष्ट्रमें दुःख भरने लगते हैं। [यत्र ब्रह्माणं हिंसन्ति] जहां ब्राह्मणकी हिंसा की जाती है, [तत् राष्ट्रं दुच्छुना हन्ति] उस राष्ट्रपर दुर्दशा आघात करती है।

यहां ब्राह्मणकी हिंसाका अर्थ ब्राह्मणको दुःख देना है।

[९] तं वृक्षा अप सेधन्ति छायां नो मोपगा इति।
यो ब्राह्मणस्य सद्धनमभि नारद मन्यते॥ २७९॥

(न छायां मा उपगा इति) हमारी छायामें मत आ, (वृक्षाः तं अप सेधन्ति) वृक्ष उसका ऐसा निषेध करते हैं। हे नारद! (यः ब्राह्मणस्य धनं सत्) जो ब्राह्मणका धन होनेपर भी उसका (अभि मन्यते) अभिमानसे अभिलाष करता है।

यहां ब्राह्मणके धन [ब्राह्मणस्य धनं] का उल्लेख है। यहाँ सर्वत्र आशय है कि ब्राह्मणका धन कोई क्षत्रिय हड़प न जाय। धनमें गौ, घर, भूमि आदि सब वस्तुएँ आती हैं।

[१०] विषमेतद्देवकृतं राजा वरुणोऽब्रवीत।
न ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे जागार कश्चन॥ २८०॥

(एतत् देवकृतं विषं) यह देवोंद्वारा बनाया विष है ऐसा राजा वरुणने (अब्रवीत्) कहा है, (ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) ब्राह्मणकी गौको खाकर (राष्ट्रे कश्चन न जागार) उस राष्ट्रमें कोई भी जागता नहीं। उस राष्ट्रमें सुरक्षा नहीं रहती जहां ब्राह्मणका धन सुरक्षित नहीं रहता।

यहां ब्राह्मणकी गौको खानेका उल्लेख है, वह गौ आदि धनके हरण करनेका भाव बता रहा है।

[११] नवैव ता नवतयो या भूमिर्व्यधूनुत।
प्रजां हिंसित्वा ब्राह्मणीमसंभव्यं पराऽभवन्॥ २८१॥

[नव नवतयः एव ताः] निन्यानवे वे क्षत्रिय थे [याः भूमिः व्यधूनुत] जिनको भूमिने हिलाकर फेंक दिया था। [ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा] ब्राह्मण प्रजाकी हिंसा करनेसे [असंभव्यं पराऽभवन्] अनहोनी रीतिसे वे पराभूत हो चुके।

[१२] यां मृतायानुबध्नन्ति कूद्यं पदयोपनीम्।
तद्वै ब्रह्मज्य ते देवा उपस्तरणमब्रुवन्॥ २८२॥

हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मणकी हिंसा करनेवाले! (यां पदयोपनीं मृताय अनुबध्नन्ति) जो पांवोंका आच्छादन करनेवाला वस्त्र मुर्देपर बांध देते हैं, वह (कूद्यं) निंदनीय वस्त्र (देवाः ते उपस्तरणं अब्रुवन्) देवोंने कहा है कि, तेरे ओढनेके लिए मिलेगा।

ब्राह्मणकी हिंसा करनेवालेको वह निंदनीय वस्त्र ओढना पडेगा, ऐसी दुर्दशा उसकी होगी।

[१३] अश्रूणि कृपमाणस्य यानि जीतस्य वावृतुः।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥ २८३ ॥

हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मणकी हिंसा करनेवाले! (कृपमाणस्य जीतस्य) हिंसित होनेके कारण रोनेवालेके (यानि अश्रूणि वावृतु) जो आंसू नीचे गिरते हैं, (तं अपां भाग) वह जलका भाग (ते वै) निःसंदेह तेरे लिए हैं, ऐसा (देवाः अधारयन्) देवोंने धर रखा है।

[१४] येन मृतं स्नपयन्ति श्मश्रूणि येनोन्दन्ते।
तं वै ब्रह्मज्य ते देवा अपां भागमधारयन्॥ २८४ ॥

हे (ब्रह्मज्य) ब्राह्मणकी हिंसा करनेवाले! (येन मृतं स्नपयन्ति) जिससे मुर्देको स्नान कराते हैं, (येन श्मश्रूणि उन्दन्ते) जिससे बालोंको गीला करते हैं (तं अपां भागं) उस जलके भागको (ते) तेरे लिए (देवाः अधारयन्) देवोंने धर रखा है।

वह मुर्देके स्नानका जल ब्राह्मण घातकको पीनेके लिए मिलेगा।

[१५] न वर्षं मैत्रावरुणं ब्रह्मज्यमभि वर्षति।
नास्मै समितिः कल्पते न मित्रं नयते वशम्॥ २८५ ॥

[ब्रह्मज्यं] ब्राह्मणकी हिंसा करनेवालेके ऊपर [मैत्रावरुण वर्षं न अभिवर्षति] मित्रावरुणोंसे होनेवाली वृष्टि नहीं होती, [समितिः अस्मै न कल्पते] राष्ट्रसभा उसकी सहायता नहीं करती, तथा (मित्रं वशं न नयते) मित्रको वह वशमें नहीं रख सकता। अर्थात् ब्राह्मणकी हिंसा करनेवालेके लिए कोई सहायक नहीं रहता।

(अथर्व० १२।५।१-७३)

(कश्यप. ?) अथर्वाचार्यः। ब्रह्मगवी। (सप्त पर्यायाः) (१-६) [प्रथमः पर्यायः ॥ १ ॥],
१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्; २,६ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्, ३ चतुष्पदा स्वराडुष्णिक्, ४ आसुर्यनुष्टुप्; ५ साम्नी पङ्क्ति।

(१) श्रमेण तपसा सृष्टा, ब्रह्मणा वित्तर्ते श्रिता॥ २८६ ॥
(२) सत्येनावृता, श्रिया प्रावृता, यशसा परीवृता॥ २८७ ॥
(३) स्वधया परिहिता, श्रद्धया पर्यूढा, दीक्षया गुप्ता, यज्ञे प्रतिष्ठिता, लोको निधनम्॥२८८॥
(४) ब्रह्म पदवायं, ब्राह्मणोऽधिपतिः॥ २८९॥
(५) तामाददानस्य ब्रह्मगवीं जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य॥ २९० ॥
(६) अप क्रामति सूनृता वीर्यं१ पुण्या लक्ष्मीः॥ २९१ ॥

यह गौ [श्रमेण तपसा सृष्टा] परिश्रम और तपसे उत्पन्न की है, [ब्रह्मणा वित्ता] ब्राह्मणसे प्राप्त की, [ऋते श्रिता] सचाईसे सुरक्षित हुई है॥ १॥

(सत्येन आवृता) सत्यसे रक्षित, (श्रिया प्रावृता) ऐश्वर्यसे घिरी (यशसा परीवृता) यशसे वेष्टित॥ २॥

[स्वधया परिहिता] अपनी धारणशक्तिसे आवृत, (श्रद्धया पर्यूढा) श्रद्धासे ढकी, (दीक्षया गुप्ता) दीक्षासे रक्षित, (यज्ञे प्रतिष्ठिता) यज्ञमें प्रतिष्ठित, (लोको निधनं) यह लोक इसका विश्राम लेनेका स्थान है॥ ३॥

[ब्रह्मपदवायं] ब्राह्मण इसका मार्गदर्शक है, [ब्राह्मण अधिपति] ब्राह्मणही इसका अधिपति है ॥ ४ ॥

(तां ब्रह्मगवीं आददानस्य) उस ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले और (ब्राह्मणं जिनत क्षत्रियस्य) ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले क्षत्रियके (सूनृता) सुख, (वीर्यं) शौर्य, (पुण्या लक्ष्मीः) उत्तम ऐश्वर्य सब (अप क्रामति) दूर होते हैं ॥ ५-६ ॥

गौकी उत्पत्ति बडे परिश्रमसे हुई है, अर्थात् वंश शुद्धि तथा योग्य संगोपन आदि करनेसे उत्तम गौ निर्माण होती है। ब्राह्मण अपने ज्ञानसे इसको अधिक उन्नत करता है। यह गौ धन, यश और सुख देती है। [स्वधा] अन्न अर्थात् दूध, दही, घी आदि देती है। यज्ञमें दीक्षा, श्रद्धा, तप आदिसे इसकी सुरक्षा होती है। ब्राह्मण इसका पालक है और वही इसका स्वामी है। ऐसे ब्राह्मणकी गौको, यह गौ उत्तम है इसी कारण जो छीनना चाहता है और अपना भोग बढाना चाहता है और इसी तरह जो ब्राह्मणको कष्ट पहुंचाता है, उस क्षत्रियके सब सुख, सब पराक्रम, सब ऐश्वर्य और सब सुकृत विनष्ट होते हैं।

(७-११) [द्वितीयः पर्यायः ॥२॥] ७-९ आर्च्यनुष्टुप् (भुरिक्),
१० उष्णिक् (७—१० एकपदा); ११ आर्ची निचृत्पङ्क्तिः।

(७) ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च ॥ २९२ ॥

(८) ब्रह्म च क्षत्रं च राष्ट्रं च विशश्च त्विषिश्च यशश्च वर्चश्च द्रविणं च ॥ २९३ ॥

(९) आयुश्च रूपं च नाम च कीर्तिश्च प्राणश्चापानश्च चक्षुश्च श्रोत्रं च ॥ २९४ ॥

(१०) पयश्च रसश्चान्नं चान्नाद्यं चर्तं च सत्यं चेष्टं च पूर्तं च प्रजा च पशवश्च ॥ २९५ ॥

(११) तानि सर्वाण्यप क्रामन्ति ब्रह्मगवीमाददानस्य जिनतो ब्राह्मणं क्षत्रियस्य ॥ २९६ ॥

(ओजः) शारीरिक सामर्थ्य, (तेजः) तेजस्विता, (सहः) शक्ति, (बलं)(बल, वाक्) वक्तृत्व (इन्द्रियं) इन्द्रिय-शक्ति, (श्रीः) ऐश्वर्य, (धर्मः) सदाचार ॥ ७ ॥

(ब्रह्म) ज्ञान, (क्षत्रं) पराक्रम, (राष्ट्रं) राज्य, (विशः) प्रजा, (त्विषिः) शोभा, (यशः) यश, (वर्चः) सम्मान, (द्रविणं) धन ॥ ८ ॥

(आयु) दीर्घायु, (रूपं) सौंदर्य, (नाम) नाम, (कीर्तिः) कीर्ति, (प्राणः अपान) प्राण और अपान, (चक्षुः श्रोत्र) आंख और कान ॥ ९ ॥

(पय रसः) दूध और रस, (अन्नं अन्नाद्यं) अन्न और खाद्य, (ऋतं सत्यं) सरलता और सत्य, (इष्टं पूर्तं) इष्ट और पूर्त, (प्रजाः पशवः) संतान और पशु, ये ३४ शुभगुण (ब्रह्मगवीं आददानस्य) ब्राह्मणकी गौको छीननेवाले और (ब्राह्मणं जिनतः क्षत्रियस्य) ब्राह्मणको कष्ट पहुंचानेवाले क्षत्रियसे दूर चले जाते हैं ॥ १०-११ ॥

अर्थात् ब्राह्मणको कष्ट देनेवाला क्षत्रिय सब तरहसे पतित, क्षीण और विनष्ट होता है।

(१२-२७) [तृतीय पर्यायः ॥३॥] १२ विराड् विषमा गायत्री, १३ आसुर्यनुष्टुप्, १४,२६ साम्नी उष्णिक्, १५ गायत्री; १६-१७, १९-२० प्राजापत्याऽनुष्टुप्, १८ याजुषी जगती २१,२५ साम्न्यनुष्टुप्; २ साम्नी बृहती, २३ याजुषी त्रिष्टुप्, २४ आसुरी गायत्री, २७ आर्च्युष्णिक्।

(१२) सैषा भीमा ब्रह्मगव्य१घविषा, साक्षात्कृत्या कूल्बजमावृता ॥ २९७ ॥

(१३) सर्वाण्यस्यां घोराणि, सर्वे च मृत्यवः ॥ २९८ ॥

(१४) सर्वाण्यस्यां क्रूराणि, सर्वे पुरुषवधाः ॥ २९९ ॥

(१५) सा ब्रह्मज्यं देवपीयुं ब्रह्मगव्यादीयमाना मृत्योः पड्बीश आ द्यति ॥ ३०० ॥

(१६) मेनिः शतवधा हि सा, ब्रह्मज्यस्य क्षितिर्हि सा ॥ ३०१ ॥

(१७) तस्माद्वै ब्राह्मणानां गौर्दुराधर्षा विजानता ॥ ३०२ ॥

(१८) वज्रो धावन्ती, वैश्वानर उद्वीता ॥ ३०३ ॥

(१९) हेतिः शफानुत्खिदन्ती, महादेवो३ऽपेक्षमाणा ॥ ३०४ ॥

(२०) क्षुरपविरीक्षमाणा वाश्यमानाऽभि स्फूर्जति ॥ ३०५ ॥

(२१) मृत्युर्हिङ्कृण्वत्युग्रो देवः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥ ३०६ ॥

(२२) सर्वज्यानिः कर्णौ वरीवर्जयन्ती राजयक्ष्मो मेहन्ती ॥ ३०७ ॥

(२३) मेनिर्दुह्यमाना शीर्षक्तिर्दुग्धा ॥ ३०८ ॥

(२४) सेदिरुपतिष्ठन्ती मिथोयोधः परामृष्टा ॥ ३०९ ॥

(२५) शरव्या३ मुखेऽपिनह्यमान ऋतिर्हन्यमाना ॥ ३१० ॥

(२६) अघविषा निपतन्ती, तमो निपतिता ॥ ३११ ॥

(२७) अनुगच्छन्ती प्राणानुप दासयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य ॥ ३१२ ॥

(सा एषा ब्रह्मगवी भीमा) वह इस ब्राह्मणकी गौ भयंकर है, (अघ-विषा) भयंकर विषैली (कूल्बजं आवृता साक्षात् कृत्या) घोर परिणामको ढककर रखनेवाली साक्षात् मारक कृत्या जैसीही है ॥ १२ ॥

(अस्यां सर्वाणि घोराणि) इस गौमें सब भयंकर बातें हैं, (सर्वे च मृत्यवः) सब मृत्यु इसमें हैं ॥ १३ ॥

(सर्वाणि क्रूराणि) इसमें सब क्रूरताएँ हैं (सर्वे पुरुषवधाः) सब पुरुषोंके वध हैं ॥ १४ ॥

(सा ब्रह्मगवी आदीयमाना) यह ब्राह्मणकी गौ छीनी जानेपर (ब्रह्मज्य देवपीयुं) ब्राह्मणको कष्ट देनेहारे देवद्रोही क्षत्रियको (मृत्यो पड्बीशे आ द्यति) मृत्युकी शृंखलासे बांध देती है ॥१५॥

निश्चयसे (ब्रह्मज्यस्य) ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले क्षत्रियके लिए (सा शतवधा मेनिः क्षितिः) वह सैकडों प्रकारोंसे वध करनेवाला शस्त्र है, निःसंदेह वह उसका विनाशही है ॥ १६ ॥

इसलिए (विजानता) ज्ञानी क्षत्रियके लिए (ब्राह्मणानां गौः दुराधर्षा) ब्राह्मणोंकी गौ छीनना अयोग्य है ॥ १७ ॥

[धावन्ती वज्रः] जब वह गौ दौडने लगती है, वज्र बनती है, [उद्वीता वैश्वानरः] हाँकी जानेपर वह अग्निरूप बनती है ॥ १८ ॥

(शफान् उत्खिदन्ती हेतिः) खुरोंसे भूमिको उखाडने लगी तो वह वज्रसी बनती है, (अपेक्षमाणा महादेवः) जब वह देखने लगती है तब वही महादेव-रुद्ररूपसी होती है ॥ १९ ॥

(ईक्षमाणा क्षुरपाविः) जब वह आंखें घूरकर देखती है तब तीक्ष्ण शस्त्र जैसी बनती है (वाश्यमाना अभिस्फूर्जति) जब वह मुख खोलकर शब्द करती है तब वह गर्जती विद्युत् बनती है ॥ २० ॥

वह (हिंकृण्वती मृत्यु) हिनहिनाती हुई मृत्यु बनती है, (पुच्छं पर्यस्यन्ती उग्र· देव) जब वह पूँछ इधर उधर घुमाती है तब उग्र देव, घातक देव बनती है ॥ २१ ॥

(कर्णौ वरी वर्जयन्ती सर्वज्यानिः) जब दोनों कानोंको हिलाती है तब वह सर्वस्वका नाश करती है, (मेहन्ती राजयक्ष्म·) मूतने लगती है तो वही राजयक्ष्मा रोग बनती है ॥२२॥

(दुह्यमाना मेनिः) दूध निकालनेपर वह शस्त्ररूप बनती है, (दुग्धा शीर्षक्तिः) दुही जानेपर सिरदर्द बनती है ॥२३॥

[उप तिष्ठन्ती सेदिः] समीप आने लगी तो क्षीणता बनती है और [परामृष्टा मिथोयोधः] जब उसे क्रूरतासे धक्का दिया जावे, तो वह आपसी लडाई निर्माण करती है ॥२४॥

(मुखे अपि नह्यमाना शरव्या) मुखमें बांधी जानेपर बाण जैसी, भाला जैसी, बनती है और (हन्यमाना ऋतिः) कष्ट दी जानेपर दुर्दशा बनती है ॥२५॥

(निपतन्ती अघविषा) नीचे गिर जानेपर अति विषैली, (निपतिता तम·) भूमिपर गिर जानेपर अन्धकाररूप हो जाती है ॥२६॥

(अनुगच्छन्ती) जब वह पीछे पीछे चलने लगती है तब (ब्रह्मगवी) ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यस्य प्राणान् उप दासयति) ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले क्षत्रियके प्राणोंका नाश करती है ॥२७॥

(२८-३८) [चतुर्थः पर्याय ॥४॥] २८ आसुरी गायत्री, २९, ३७ आसुर्यनुष्टुप्, ३० साम्न्यनुष्टुप्,
३१ याजुषी त्रिष्टुप्, ३२ साम्नी गायत्री, ३३-३४ साम्नी बृहती, ३५ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्,
३६ साम्न्युष्णिक्, ३८ प्रतिष्ठा गायत्री ।

(२८) वैरं विकृत्यमाना, पौत्राद्यं विभाज्यमाना ॥३१३॥

(२९) देवहेतिर्ह्रियमाणा, व्यृद्धिर्हृता ॥३१४॥

(३०) पाप्माऽधिधीयमाना, पारुष्यमवधीयमाना ॥३१५॥

(३१) विषं प्रयस्यन्ती, तक्मा प्रयस्ता ॥३१६॥

(३२) अघं पच्यमाना, दुष्वप्न्यं पक्वा ॥३१७॥

(३३) मूलबर्हणी पर्याक्रियमाणा, क्षितिः पर्याकृता ॥३१८॥

(३४) असंज्ञा गन्धेन शुगुद्ध्रियमाणा, ऽऽशीविष उद्धृता ॥३१९॥

(३५) अभूतिरुपह्रियमाणा, पराभूतिरुपहृता ॥३२०॥

(३६) शर्वः क्रुद्धः पिश्यमाना, शिमिदा पिशिता ॥३२१॥

(३७) अवर्तिरश्यमाना, निर्ऋतिरशिता ॥३२२॥

(३८) अशिता लोकाच्छिनत्ति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यमस्माच्चामुष्माच्च ॥३२३॥

गौ [विकृत्यमाना वैरं] कटी जानेपर वैररूप होती है, [विभाज्यमाना पौत्राद्यं] टुकडे किये जानेपर वह अपनेही पुत्रपौत्रोंको खानेके समान होती है ॥२८॥

[ह्रियमाणा देवहेति:] छिनी जानेपर शस्त्र बनती है, [हृता व्यृद्धिः] ली जायी जाय तो वह दारिद्र्यरूप हो जाती है ॥२९॥

[अधि धीयमाना पाप्मा] धारण करनेपर पापरूपा होती है और [अव धीयमाना पारुष्यं] पकडनेपर वह कठोरता बनती है ॥३०॥

[प्रयस्यन्ती विषं] गरम होनेपर विष बनती है, [प्रयस्ता तक्मा] उष्ण बन जानेपर वह ज्वररूप बनती है ॥३१॥

[पच्यमाना अघं] पकनेकी अवस्थामें वह पापरूप बनती है, [पक्वा दुष्वप्न्यं] पक जानेपर दुष्ट स्वप्नके समान कष्ट देती है ॥३२॥

[पर्याक्रियमाणा मूलबर्हणी] घुलानेसे वह जडोंको उखाडनेवाली होती है, [पर्याकृता क्षितिः] घुली जानेपर वह विनाशरूप बनती है ॥३३॥

[गन्धेन असज्ञा] उसकी गन्धसे मूर्च्छासी बनती है, [उद्ध्रियमाणा शुक्] ऊपर उठाते समय शोकरूप बनती है, [उद्धृता आशीविषा] और उठाई गयी तो वह विषरूप बनती है ॥३४॥

[उपह्रियमाणा अभूतिः] परोसनेको हो तो विपत्ति बनती है, [उपहृता पराभूतिः] परोसनेपर वह पराभवरूप बनती है ॥३५॥

[पिश्यमाना क्रुद्ध शर्व] सिद्ध करनेकी स्थितिमें क्रुद्ध रुद्र जैसी और [पिशिता शिमिता] सिद्ध होनेपर भयानक दुर्गति बनती है ॥३६॥

[अपश्यमाना अवर्तिः] खाई जानेपर विनाश बनती है, और [अशिता निर्ऋतिः] खानेपर दुर्दशारूप बनती है ॥३७॥

[ब्रह्मगवी] यह ब्राह्मणकी गौ [आशिता] खाई जानेपर [ब्रह्मज्यं] ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेको [अस्मात् च अमुष्मात् लोकात्] इस और उस लोकसे [छिनत्ति] स्थानभ्रष्ट कर देती है ॥३८॥

(३९-४६) [पञ्चम. पर्यायः ॥५॥] ३९ साम्नी पंक्तिः, ४० याजुष्यनुष्टुप्, ४१, ४६ भुरिक्साम्न्यनुष्टुप्, ४२ आसुरी बृहती, ४३ साम्नी बृहती, ४४ पिपीलिकमध्याऽनुष्टुप्, ४५ आर्ची बृहती।

(३९) तस्या आहननं कृत्या, मेनिराशसनं, वलग ऊबध्यम् ॥३२४॥

(४०) अस्वगता परिह्णुता ॥३२५॥

(४१) अग्निः क्रव्याद्भूत्वा ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं प्रविश्यात्ति ॥३२६॥

(४२) सर्वास्याङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति ॥३२७॥

(४३) छिनत्त्यस्य पितृबन्धु परा भावयति मातृबन्धु ॥३२८॥

(४४) विवाहान् ज्ञातीन्त्सर्वानपि क्षापयति ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य क्षत्रियेणापुनर्दीयमाना ३२९

(४५) अवास्तुमेनमस्वगमप्रजसं करोत्यपरापरणो भवति क्षीयते ॥३३०॥

(४६) य एवं विदुषो ब्राह्मणस्य क्षत्रियो गामादत्ते ॥३३१॥

[तस्या आहननं कृत्या] उस गौका वध एक घातक प्रयोग है, [आशसनं मेनिः] उस गौका टुकडे करना साक्षात् मारक शस्त्राघात है, [ऊबध्यं वलगः] उसकी आंतोंमें जो रहता है वह सब गुप्त मारक मन्त्रही है ॥३९॥

[परिह्णुता अस्वगता] जब यह गौ प्रतिबंधमें रखी जाती है तब वह अपने सर्वस्वके नाशका रूप बनती है ॥४०॥

यह [ब्रह्मगवी] ब्राह्मणकी गौ [क्रव्याद् अग्नि भूत्वा] मांसभक्षक अग्नि बनकर [ब्रह्मज्यं प्रविश्य अत्ति] ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेमें प्रविष्ट होकर उसीको खा जाती है ॥४१॥

[अस्य सर्वा अङ्गा पर्वा मूलानि वृश्चति] इसके सब अंग, अवयव, संधि और सब जड़ें काटती है ॥४२॥

[अस्य पितृबन्धु छिनत्ति] उसके पिताके संबंधियोंको काट देती है और [मातृबन्धु परा भावयति] माताके बांधवोंका पराभव कराती है ॥४३॥

(क्षत्रियेण अपुनर्दीयमाना) क्षत्रियके द्वारा पुनः वापस न दी हुई (ब्रह्मगवी) ब्राह्मणकी गौ (ब्रह्मज्यस्य सर्वान् विवाहान् ज्ञातीन्) ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेके सब विवाहों और ज्ञातियोंको (अपि क्षापयति) विनष्ट कर देती है ॥ ४४ ॥

वह (एनं) इसको (अ-वास्तु) गृहहीन, (अ-स्वं) निर्धन, (अ-प्रजसं) प्रजाहीन, (करोति) करती है, (अ-परापरण भवति) वह इसको निर्वंश कर देती है अत वह (क्षीयते) विनष्ट होता है ॥ ४५ ॥

जो (एवं विदुषः) ऐसी ज्ञानी (ब्राह्मणस्य गां) ब्राह्मणकी गौको (क्षत्रिय आदत्ते) क्षत्रिय छीनता है, उसकी ऐसी दुर्दशा होती है ॥ ४६ ॥

(४७—६१) [षष्ठ. पर्याय ॥३॥] ४७, ४९, ५१—५३, ५७—५९, ६१ प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ४८ आर्च्यनुष्टुप्, ५० साम्नी बृहती, ५४—५५ प्राजापत्योष्णिक्, ५६ आसुरी गायत्री, ६० गायत्री ।

(४७) क्षिप्रं वै तस्याहनने गृध्राः कुर्वत ऐलबम् ॥ ३३२ ॥

(४८) क्षिप्रं वै तस्यादहनं परि नृत्यंति केशिनीराघ्नानाः पाणिनोरसि कुर्वाणाः पापमैलबम् ३३३

(४९) क्षिप्रं वै तस्य वास्तुषु वृकाः कुर्वत ऐलबम् ॥ ३३४ ॥

(५०) क्षिप्रं वै तस्य पृच्छन्ति यत्तदासी३दिदं नु ता३दिति ॥ ३३५ ॥

(५१) छिन्ध्या च्छिन्धि प्र च्छिन्ध्यपि क्षापय क्षापय ॥ ३३६ ॥

(५२) आददानमाङ्गिरसि ब्रह्मज्यमुप दासय ॥ ३३७ ॥

(५३) वैश्वदेवी ह्यु१च्यसे कृत्या कूल्बजमावृता ॥ ३३८ ॥

(५४) ओषन्ती समोषन्ती ब्रह्मणो वज्रः ॥ ३३९ ॥

(५५) क्षुरपविर्मृत्युर्भूत्वा वि धाव त्वम् ॥ ३४० ॥

(५६) आ दत्से जिनतां वर्च इष्टं पूर्तं चाशिषः ॥ ३४१ ॥

(५७) आदाय जीतं जीताय लोके३ऽमुष्मिन् प्र यच्छसि ॥ ३४२ ॥

(५८) अघ्न्ये पदवीर्भव ब्राह्मणस्याभिशस्त्या ॥ ३४३ ॥

(५९) मेनिः शरव्या भवाघादघविषा भव ॥ ३४४ ॥

(६०) अघ्न्ये प्र शिरो जहि ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ३४५ ॥

(६१) त्वया प्रमूर्णं मृदितमग्निर्दहतु दुश्चितम् ॥ ३४६ ॥

(तस्य आहनने) उस हिंसककी मृत्यु होनेपर (गृध्राः क्षिप्रं) गीध तत्कालही (ऐलबं कुर्वत) बडा शब्द करते हैं ॥ ४७ ॥

[क्षिप्रं वै] तत्कालही [तस्य आदहनं] उसकी चिता जलनेके स्थानपर [पाणिना उरसि आघ्नानाः] छातीपर पीट पीट कर [पापं ऐलबं कुर्वाणाः] बहुत बुरा शब्द करती हुई [केशिनीः परि नृत्यन्ति] बाल बिखेरी हुई स्त्रियां चारों ओर नाचती हैं ॥ ४८ ॥

शीघ्रही [तस्य वास्तुषु] उसके घरमें [वृकाः ऐलबं कुर्वते] भेडिये बुरा शब्द करने लगते हैं ॥४९॥

शीघ्रही [तस्य पृच्छन्ति] उसके विषयमें पूछते हैं [यत् तत् आसीत्] वह कौन था [इदं नु तत्] क्या यह वही था ? ॥ ५० ॥

[छिन्धि, आ छिन्धि] उसको काटो, चारों ओरसे काटो, [प्र छिन्धि] सब ओरसे काटो, [क्षापय, अपि क्षापय] नाश करो, विनाश करो ॥ ५१ ॥

हे [आङ्गिरसि] अङ्गिरसोंकी गौ ! [आददानं ब्रह्मज्यं] तुझे छीननेवाले ब्राह्मण-घातीको [उप दासय] समाप्त कर ॥ ५२ ॥

हे गौ ! तू [वैश्वदेवी उच्यसे] सर्व देवोंसे संयुक्त है ऐसा कहते हैं, [कूल्बजा आवृता कृत्या] तू विनाशको प्रकट न करनेवाला घातक प्रयोग हो ॥ ५३ ॥

[ओषन्ती सं ओषन्ती] यह गौ जलाती है और जला देती है जैसा [ब्रह्मणः वज्रः] ब्रह्मका वज्र ॥ ५४ ॥

[त्वं क्षुरपविः मृत्युः भूत्वा] तू उस्तरेके समान मृत्युरूप वज्र होकर [वि धाव] उसपर लपक ॥ ५५ ॥

[जिनतां वर्चः इष्टं पूर्तं आशिषः] घातकी लोगोंका तेज इष्ट पूर्त और आशीर्वाद [आ दत्से] तू ले चलती है ॥ ५६ ॥

[जीतं आदाय] हिंसकके शुभको लेकर वह शुभ [जीताय अमुष्मिन् लोके प्र यच्छसि] हिंसित-को उस परलोकमें प्रदान करती है ॥ ५७ ॥

हे [अघ्न्ये] अवध्य गौ ! तू [अभिशस्त्या ब्राह्मणस्य पदवीः भव] विनाशसे बचनेका मार्ग ब्राह्मणको दर्शानेवाली हो ! ॥ ५८ ॥

[शरव्या मेनिः भव] तू घातक शस्त्र बन, तथा [अघात् अघविषा भव] तू विषरूप पाप जैसा शस्त्र बन ॥ ५९ ॥

हे [अघ्न्ये] अवध्य गौ ! [ब्रह्मज्यस्य कृतागसः] ब्राह्मण-घाती पापी [देवपीयोः अराधसः] देवद्रोही कंजूसका [शिरः प्र जहि] सिर काट दे ॥ ६० ॥

[त्वया प्रमूर्णं मृदितं] तेरे द्वारा चूर्णित और विनष्ट हुए [दुश्चितं अग्निः दहतु] दुष्ट मनवालेको अग्नि जला देवे ॥ ६१ ॥

(६२—७३) [सप्तमः पर्यायः ॥ ७ ॥] ६२—६४, ६६, ६८—७० प्राजापत्याऽनुष्टुप्, ६५ गायत्री, ६७ प्राजापत्या गायत्री, ७१ आसुरी पङ्क्तिः, ७२ प्राजापत्या त्रिष्टुप्, ७३ आसुर्युष्णिक् ।

(६२) वृश्च, प्र वृश्च, सं वृश्च, दह, प्र दह, सं दह ॥ ३४७ ॥

(६३) ब्रह्मज्यं, देव्यघ्न्य, आ मूलादनुसंदह ॥ ३४८ ॥

(६४) यथायाद्यमसादनात् पापलोकान् परावतः ॥ ३४९ ॥

(६५) एवा त्वं देव्यघ्न्ये ब्रह्मज्यस्य कृतागसो देवपीयोरराधसः ॥ ३५० ॥
(६६) वज्रेण शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना ॥ ३५१ ॥
(६७) प्र स्कन्धान प्र शिरो जहि ॥ ३५२ ॥
(६८) लोमान्यस्य सं छिन्धि त्वचमस्य वि वेष्टय ॥ ३५३ ॥
(६९) मांसान्यस्य शातय स्नावान्यस्य सं वृह ॥ ३५४ ॥
(७०) अस्थीन्यस्य पीडय मज्जानमस्य निर्जहि ॥ ३५५ ॥
(७१) सर्वाऽस्याङ्गा पर्वाणि वि श्रथय ॥ ३५६ ॥
(७२) अग्निरेनं क्रव्यात् पृथिव्या नुदतामुदोषतु वायुरन्तरिक्षान्महतो वरिम्णः ॥ ३५७ ॥
(७३) सूर्य एनं दिवः प्र णुदतां न्योषतु ॥ ३५८॥

[वृश्च, प्र वृश्च, सं वृश्च] काट ले, अच्छी तरह काट ले, ठीक तरह काट ले । [दह, प्र दह, सं दह] जला, अच्छी तरह जला, ठीक तरह जला ॥ ६२ ॥

हे [अघ्न्ये देवि] अवध्य गौ देवि ! [ब्रह्मज्यं] ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेको [आमूलात् अनुसंदह] जड मूलसे भलीभाँति दहन कर ॥ ६३ ॥

[यथा] जिससे यह पापी [यमसादनात्] यमके स्थानसे [परावतः पापलोकान्] दूर स्थानके पाप स्थानोंको [अयात्] जावे ॥ ६४ ॥

(एवा) इस तरह हे (अघ्न्ये देवि) अवध्य गौ देवि ! (कृतागसः देवपीयो) पापी और देवद्रोही (अराधसः ब्रह्मज्यस्य) कंजूस ब्राह्मण घातकीके (स्कन्धान् शिर) कंधोंको और सिरको (शतपर्वणा तीक्ष्णेन क्षुरभृष्टिना वज्रेण) सौ पर्वोंवाले तीखे उस्तरे जैसे तीक्ष्ण वज्रसे (प्र प्र जहि) काट दे ॥६५-६७॥

(अस्य लोमानि) इसके बालोंको (सं छिन्धि) काट दे, (अस्य त्वचं वि वेष्टय) इसकी चमडीको उधेड दे ॥६८॥

(अस्य मांसानि शातय) इसकी बोटी बोटी काट दे, (अस्य स्नावानि सं वृह) इसके पुट्ठोंके टुकडे कर दे ॥६९॥

(अस्य अस्थीनि पीडय) इसकी हड्डियोंको पीडा दे, (अस्य मज्जानं निर्जहि) इसकी मज्जाओंको तोड दे ॥७०॥

(अस्य सर्वा अंगा पर्वाणि) इसके सब अंगों और जोडोंको (वि श्रथय) शिथिल कर दे ॥७१॥

(एनं) इस दुष्टको (क्रव्यात् अग्निः) मांस खानेवाला अग्नि (पृथिव्याः नुदतां) पृथ्वीसे हटा दे, (उत् ओषतु) इसको जला दे । (वायुः) वायुदेव (महत वरिम्णः अन्तरिक्षात्) बडे महिमावाले अन्तरिक्षसे हटा दे ॥७२॥

सूर्य इसे (दिवः प्र णुदतां) द्युलोकसे हटा दे। और इसको (न्योषतु) जला दे ॥७३॥

ब्राह्मण सब जनताको ज्ञान देते हैं, नवयुवकोंको पढाते हैं, राष्ट्रपर सुसंस्कार करते हैं, इस कारण ब्राह्मणोंको कष्ट देना बहुत बडा पाप है । जिस राष्ट्रमें ज्ञानी ब्राह्मणोंको ऐसे कष्ट पहुंचते हैं वह राष्ट्र गिर जाता है और वहांके क्षत्रिय पतित होते हैं । गौ सब प्रकारसे अवध्य है । जिस राज्यमें गौका वध होगा, वह राज्य भी अधोगतिको

पहुँचेगा। इसलिए गौकी सुरक्षा करना राजाका कर्तव्य है और ज्ञानी ब्राह्मणोंके आश्रमोंको सुरक्षित रखना भी उनका एक कर्तव्यही है।

ब्राह्मणकी गौ।

ब्राह्मणकी गौके विषयमें इन तीन (अर्थात् अथर्व० ५।१८, ५।१९ और १२।५ इन) सूक्तोंमें कई ऐसे वचन हैं जो संदेह उत्पन्न करनेवाले हैं, इसलिए उन वचनोंका विशेष विचार करना आवश्यक है। वही विचार अब नीचे दर्शाया है।

इन सूक्तोंमें कई ऐसे वचन है, जिनके अर्थसे गौको काटने, पकाने और खानेका भाव स्पष्ट दीखता है। वे वचन प्रथम नीचे दिये जाते हैं—

(अथर्व० ५।१८)

१ हे नृपते ! देवाः तुभ्यं एतां अत्तवे न अदुः। हे राजन्य ! ब्राह्मणस्य गां मा जिघत्सः। [१]
२ आत्मपराजित पाप ब्राह्मणस्य गां अद्यात्। स अद्य जीवानि, मा श्वः [२]
३ ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराऽभवन्। [१०]
४ हन्यमाना गौरेव तान् वैतहव्यान् अवातिरत्। [११]

(अथर्व० ५।१९)

५ पच्यमाना ब्रह्मगवी राष्ट्रस्य तेजः निर्हन्ति। [४]
६ अस्याः आशसनं क्रूरं, पिशितं तृष्टं, क्षीरं पीयते तत् किल्बिषम्। [५]
७ ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा राष्ट्रे कश्चन न जागार। [१०]

(अथर्व० १२।५)

८ अशिता ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यं अमुष्मात् लोकात् छिनत्ति। [३८]

इन तीन सूक्तोंमें इतने वाक्य हैं, जो गौके काटने, पकाने और खानेका भाव बता रहे हैं। (अत्तवे) खानेके लिए, (जिघत्सः) खानेकी इच्छा कर, (अद्यात्) खावे, (जग्ध्वा) खाकर, (हन्यमाना) काटी जानेवाली, (पच्यमाना) पकायी जानेवाली, (अशिता) खाई गयी, (आशसनं) खाना, (पिशितं तृष्टं) रक्त पीनेसे प्यास लगती है, (क्षीरं पीयते, तत् किल्बिषं) दूध पीया जाता है वह पाप है। ये मन्त्रस्थ पद गौको काटने, पकाने, खाने, रक्त पीनेका भाव बताते हैं। दूध पीनेका स्वतंत्र निर्देश है जो मांसभक्षणको पृथक् करता है। इस कारण सन्देह होता है कि, क्या इनमें गोमांस भक्षणका निर्देश है ? इसके विचार करनेके समय निम्नलिखित मन्त्रभागपर ध्यान देना चाहिये—

(अथर्व० ५।१८)

१ यः ब्राह्मणं अन्नं मन्यते। [४]
२ ब्राह्मणो न हिंसितव्यः। [६]
३ ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा पराऽभवन्। [१२]
४ यः ब्राह्मणं हिनस्ति स गर्भिणो भवति। [१३]

(अथर्व० ५।१९)

५ भृगुं हिंसित्वा सृञ्जयाः वैतहव्याः पराऽभवन्। [१]
६ ये जनाः ब्राह्मणं आर्पयन्, तेषां लोकानि आवयत्। [२]
७ यः राजा ब्राह्मणं जिघत्सति तद्राष्ट्रं परा सिच्यते यत्र ब्राह्मणः जीयते [६]
८ ब्रह्मज्यस्य राष्ट्रं अव धूनुते। [७]
९ ब्राह्मणं यत्र हिंसन्ति तद्राष्ट्रं हन्ति दुच्छुना। [८]

इन मन्त्रभागोंका विचार करनेसे ' ब्राह्मणकी हिंसा ' का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। [१] ' जो क्षत्रिय ब्राह्मणको अपना अन्न मानता है । ' यह मन्त्र अथर्व ५।१८।४ में है। क्या इससे कोई ऐसा अनुमान कर सकता है कि, ' क्षत्रिय लोग ब्राह्मणकोही काटकर उसके मांसको पकाकर खाते थे। ' ऐसा अनुमान करना कठिन है, क्योंकि नरमांस-भक्षणकी प्रथा चातुर्वर्ण्य सिद्ध होनेपर मानना कठिन है, असंभव है। अतः यहां आलंकारिक भावही स्वीकार करना चाहिये। ब्राह्मणको लूटकर उसके धनका उपभोग क्षत्रिय सहजहीसे कर सकता है। यही ब्राह्मणको खा जाना है। आगेके मन्त्रभागोंमें ' ब्राह्मणं हिनस्ति ' ब्राह्मणं जिघत्सति, ' आदि प्रयोग ब्राह्मणकी हिंसा करनेका अर्थ बतानेवाले हैं। यहां भी यही भाव है। क्षत्रियको उचित नहीं है कि, वह ब्राह्मणको लूटे और उसके धनका स्वयं उपभोग करे।

राजा विश्वामित्रने वसिष्ठका आश्रम लूटनेका यत्न किया था, कार्तवीर्यने जमदग्निका आश्रम लूटा था। यही ब्राह्मणोंकी हिंसा है। इसी तरह अन्यान्य राजाओंने किया था। ब्राह्मणोंके आश्रम बडे समृद्ध धनधान्यैश्वर्ययुक्त होते थे, इसलिए उन्मत्त क्षत्रिय उन आश्रमोंको लूटते थे और उस धनका उपभोग करते थे। परन्तु ऐसा करनेवाले क्षत्रियोंका नाश होता था। अस्तु, यहां ब्राह्मणकी हिंसाका अर्थ ब्राह्मणका अपमान, ब्राह्मणकी लूटमार इतनाही अर्थ है। इस अर्थका निम्नलिखित मन्त्रभाग प्रमाणित करता है—

१ एनं मृदुं मन्यमानः धनकामः । [अथर्व० ५।१८।५]

' ब्राह्मणको शक्तिहीन माननेवाला धनलोभी क्षत्रिय ' इस मन्त्रमें क्षत्रिय [धन-काम] धनकी इच्छासे ब्राह्मणपर हमला करता है, ऐसा स्पष्ट है। हमलेमें किसी ब्राह्मणका वध भी होगा तो होगा, परन्तु वह वध ' ब्राह्मणका मांस ' खानेके लिए निःसन्देह नहीं है। परन्तु ब्राह्मणका धन लूटनेके लिएही होगा। इसी विषयमें और देखिए—

२ य ब्राह्मणस्य धनं आभि मन्यते। तं वृक्षा अप सेधन्ति मा छायां मा उपगा ॥ [अथर्व० ५।१९।९]

' जो क्षत्रिय अपनी शक्तिके अभिमानसे ब्राह्मणका धन छीनना चाहता है, अथवा छीन लेता है, उसे वृक्ष कहते हैं ' हमारी छायाके अन्दर न आ। '

यहां भी ब्राह्मणके धनको छीननाही क्षत्रियका उद्देश्य बताया है।

३ ब्रह्माणां अन्नं स्वादु अद्मीति मन्यते स मल्वः । [अथर्व० ५।१८।७]

' ब्राह्मणोंके अन्नको मैं बडी चावसे खा जाऊंगा, जो क्षत्रिय ऐसा मानता है वह मूढ है, वह मलिन आचारवाला है। ' इस मन्त्रमें भी ब्राह्मणसे गौ आदि अन्न छीनना और उसका उपभोग करना इतनाही भाव स्पष्ट है। इसी तरह ब्राह्मणकी गौको खानेके वर्णनके विषयमें समझना उचित है। ' अघ्न्या ' अर्थात् अवध्य गौ है। यह नियम या आज्ञा तो चारों वर्णोंके लिए समानही है। वैश्य तो गो-पालन करतेही थे। क्षत्रियके शस्त्र भी गौके पालनमेंही लगने चाहिये ऐसी स्पष्ट आज्ञाएँ हैं। इसके अतिरिक्त—

४ ब्राह्मणस्य गौः अनाद्या । [अथर्व० ५।१८।१]

' ब्राह्मणकी गौ खानेके लिए, भक्षण करनेके लिए अयोग्य है। ' ऐसा स्पष्ट कहा है। सर्वथा गौ अवध्य है यह बात ' अ-घ्न्या ' पदसे सिद्ध हो चुकी है। ' ब्राह्मणकी गौ खानेयोग्य नहीं है ' ऐसा क्यों कहा? इस शंकाका उत्तर यही है कि, गौ तो सर्वथा अवध्य होही गयी, परन्तु ब्राह्मणकी गौको पकडकर, उसका वध न करते हुए, उसका पालन करके, उसका दूध, दही, घी आदि खानेका तो प्रतिबंध ' अ-घ्न्या ' पदसे नहीं होता। इसलिए ब्राह्मणकी गौके दूध आदि लेनेका भी निषेध यहां किया है। क्षत्रिय अपने बलसे ब्राह्मणकी गौ न छीने, न उसका वध करे, न उसके दूधका सेवन करे, न उसके दही, घी आदिका भोग करे। इस तरह क्षत्रियके लिए ब्राह्मणकी गौका किसी तरह उपभोग लेना उचित नहीं है।

अस्तु। इस तरह यहां ' अनाद्य ' (खानेके लिए अयोग्य) कहनेका अर्थ उसका कोई पदार्थ खानेके लिए अयोग्य ऐसा समझना उचित है।

यहांतक दिये सभी मंत्र गौकी अवध्यता सुरक्षित रखकरही लगाना उचित है। खानेके अर्थमें जितने भी मंत्रस्थ पद इन सूक्तोंमें आये हैं उन सबका आशय गौसे उत्पन्न दूध आदिका उपभोग लेनेके अर्थमें समझना उचित है। बलात् ब्राह्मणकी गौको छीनना अथवा ब्राह्मणका अपमान करना यह क्षत्रियके लिए बहुत बुरा है, देखिये—

(अथर्व० ५।१९)

१ ये प्रत्यष्ठीवन् ते केशान् खादन्त आसते। (३)

२ ब्रह्मज्य ! मृताय अनुबध्नन्ति तत् ते उपस्तरणम्। [१२]

३ ब्रह्माज्य ! अश्रूणि ते अपां भाग। [१३]

४ मृत स्नपयन्ति तं अपां भाग ते । [१४]

५ ब्रह्मज्य वर्ष न अभि वर्षति। अस्मै समितिः न कल्पते। [१५]

(अथर्व० १२।५)

६ ब्रह्मगवी आददानस्य लक्ष्मी अप क्रामति। (५-६, ११)

७ ब्रह्मगवी ब्रह्मज्यस्य प्राणान् उप दासयति। [२७]

८ ब्रह्मज्यस्य शिरः जहि। [६०]

९ अघ्न्ये ! ब्रह्मज्यं मूलात् अनुसदह। [६३]

[१] जो ब्राह्मणके ऊपर थूकते हैं वे बाल खाते रहते हैं। [२] हे ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले ! प्रेतपर जो कपडा बांधते हैं वह तेरे ओढनेके लिए मिलेगा। [३-४] आंसुओंका जल और प्रेतको स्नान कराते हैं वह जल तुझे पीनेके लिए मिलेगा। [५] ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले क्षत्रियके राष्ट्रपर मेघ नहीं वर्षता। [६] ब्राह्मणकी गायको छीननेवाले क्षत्रियकी धनसंपदा सब दूर होती है, अर्थात् वह दरिद्री होता है। (७) ब्राह्मणकी गौ ब्राह्मणको कष्ट देनेवाले क्षत्रियके प्राणोंका नाश करती है। (८-९) हे अवध्य गौ ! ब्राह्मणको कष्ट देनेवालेका सिर काट डाल और उसको जडसे जला दे।

इस तरह न ब्राह्मणका अथवा न गायका वध यहां अभीष्ट है, परन्तु ब्राह्मणका अपमान करना और अपने बलके अभिमानसे ब्राह्मणको लूटना और उसके धनका स्वयं उपभोग करनेका भाव यहां है, जो कर्म क्षत्रियके लिए किसी अवस्थामें शोभा नहीं देता।

इन सूक्तोंमें ब्राह्मण और गौका वध करने, उसको काटने, पकाने और खानेके वाचक जो जो पद हैं वे सबके सब आलंकारिक अर्थमें प्रयुक्त हैं जैसा आज भी कहते हैं कि ' जापानने चीनको खाया ' वैसाही यहां है। गौ सर्वथा अवध्य है, यह समझकरही इन पदोंके अर्थ लगाने चाहिएं।

(२९) जुडवे बछडे देनेवाली गौका दान।

(अथर्व० ३।२८।१—६)

ब्रह्मा। यमिनी। अनुष्टुप्, १ अतिशक्वरीगर्भा चतुष्पदातिजगती, ४ यवमध्या विराट् ककुप्, ५ त्रिष्टुप्, ६ विराड्गर्भा प्रस्तारपङ्क्तिः।

[१] एकैकयैषा सृष्ट्या सं बभूव यत्र गा असृजन्त भूतकृतो विश्वरूपाः।
यत्र विजायते यमिन्यपर्तुः सा पशून् क्षिणाति रिफती रुशती ॥ ३५९ ॥

(यत्र भूत-कृतः गाः विश्वरूपाः असृजन्त) जहां सृष्टिनिर्माताने गौवें अनेक रंगरूपवाली

बनायी हैं, उनमें यह गौ (एषा एकैकया सृष्ट्या सं बभूव) एक समय एक बछडा उत्पन्न करनेके लिएही बनायी गयी है। (यत्र अप-ऋतुः यमिनी विजायते) जिस समय इस ऋतु नियमको छोडकर यह गौ जुडवे बछडे पैदा करती है, (सा रिफती रुशती पशून् क्षिणाति) वह घातपात करनेवाली बनकर पशुओंका नाश करती है।

गौ एक समय एकही बच्चा देती है। गौके सन्तानधर्ममें यही नियम है। परन्तु यदि वह एक समय दो बछडे देवे, तो वह अनिष्ट है, ऐसा समझना चाहिये। इससे गो–शालाके अन्य पशु मर जाते हैं।

[२] एषा पशून्त्सं क्षिणाति क्रव्याद्भूत्वा व्यद्वरी।
उतैनां ब्रह्मणे दद्यात् तथा स्योना शिवा स्यात ॥ ३६० ॥

[एषा पशून् सं क्षिणाति] यह जुडवे बछडे देनेवाली गौ पशुओंका नाश करती है, [व्यद्वरी क्रव्यात् भूत्वा] वह मांसाहारी और सर्वभक्षक जीवके समान विनाशक बनती है। [उत एनां ब्रह्मणे दद्यात्] इस गौका दान ब्राह्मणको करना योग्य है, [तथा स्योना शिवा स्यात्] जिससे वह सुखकारिणी और शुभ बन जाय।

जुडवे बच्चे देनेवाली गौ पशुओंका नाश करती है, इसलिए वह गौ ब्राह्मणको देनी चाहिये। जिससे वह नाश नहीं करती।

[३] शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवाऽस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥ ३६१ ॥

हे गौ! मनुष्य, गौवे, घोडे और यह सब जो है, उसके लिए तू कल्याण करनेवाली बन, सब खेतोंके लिए हितकारिणी बन और कल्याणकारिणी होकर तू यहां आ।

[४] इह पुष्टिरिह रस इह सहस्रसातमा भव। पशून् यमिनि पोषय ॥ ३६२ ॥

हे (यमिनि) जुडवें बछडे देनेवाली गौ! (पशून् पोषय) पशुओंका पोषण कर। (इह सहस्रसातमा भव) यहां सहस्रों प्रकारके पोषक पदार्थ देनेवाली हो, (इह पुष्टि) यहां पोषण होता रहे, (इह रसः) यहां गोरस मिलता रहे।

[५] यत्रा सुहार्दः सुकृतो मदन्ति विहाय रोगं तन्वः स्वायाः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ३६३ ॥

(स्वायाः तन्वः रोगं विहाय) अपने शरीरके रोगको दूर करके (यत्र सुहार्दः सुकृतः मदन्ति) जहां उत्तम हृदयवाले सदाचारी लोग आनन्दसे रहते हैं, हे (यमिनि) जुडवे बछडोंको जन्म देनेवाली गौ! (तं लोकं अभिसंबभूव) उस लोकमें जाकर रहो, (सा) वह गौ (नः पुरुषान् पशून् मा हिंसीत्) हमारे मनुष्यों और पशुओंकी हिंसा न करे।

जुडवे बछडेको जन्म देनेवाली गौ सदाचारी ब्राह्मणोंको दानमें देना योग्य है। वह वहां रहकर किसीका नाश न कर पायगी।

[६] यत्रा सुहार्दां सुकृतामग्निहोत्रहुतां यत्र लोकः।
तं लोकं यमिन्यभिसंबभूव सा नो मा हिंसीत् पुरुषान् पशूंश्च ॥ ३६४ ॥

(यत्र लोकः) जो प्रदेश (सुहार्दां सुकृतां) उत्तम मनवाले, सदाचारी और (अग्नि-होत्र-हुतां)

अग्निहोत्र करनेवालोंका है, हे जुडवे बछडे देनेवाली गो ! तू उस प्रदेशमें जा। यहां हमारे पुरुषों और पशुओंका नाश न कर।

अर्थात् जुडवे बछडे देनेवाली गौ उन ब्राह्मणोंको दानमें देनी चाहिये, जो अग्निहोत्र आदि यज्ञ करते हैं।

गावः ।

(अथर्व० ६।५२।२)

नि गावो गोष्ठे असदन् । (ऋ० १।१९१।४)

(गावः गोष्ठे नि असदन्) गौने गोशालामें अच्छी तरह बैठ गयी है।

अघ्न्या ।

(अथर्व० ६।७०।३)

एवा ते अघ्न्ये मनोऽधि वत्से नि हन्यताम् ॥ ३ ॥

हे (अघ्न्ये) अवध्य गौ ! तेरा मन अपने बछडेपर लगा रहे।

अन्न देनेवाली इडा ।

मेधातिथि । इडा । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।२७।१)

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः ।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ ३६५ ॥

[इडा अस्मान् अनु वस्तां] गौ यहां हमारे साथ रहे, [यस्याः पदे व्रतेन] जिसके स्थानमें नियमसे रहनेवाले [देवयन्तः] देवत्वकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले साधक [पुनते] पवित्र होते हैं। यह [घृतपदी] पद पदमें घी देनेवाली, [शक्वरी] सामर्थ्य उत्पन्न करनेवाली [सोम-पृष्ठा] सोमका सेवन करनेवाली [वैश्वदेवी] सब देवोंको प्राप्त होनेवाली गौ [यज्ञं उप अस्थित] हमारे यज्ञमें आकर रही है।

' इडा ' का अर्थ ' अन्न देनेवाली ' (इरा, इला, इडा, इळा= अन्न) यह दिव्य गौ सब प्रकारसे हमारे यज्ञमें सहायक होती है। यह गौ यज्ञकी सब प्रकारसे सहायता करती है।

गावः ।

ब्रह्मा । गावः । त्रिष्टुप्; २-४ जगती । (अथर्व० ४।२१।१-७)

[१] आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ ३६६ ॥ [ऋ० ६।२८।१]

(गावः आ अग्मन्) गौवें आ गयी हैं, (भद्रं अक्रन्) उन्होंने कल्याण किया है, (गोष्ठे सीदन्तु) ये गोशालामें रहें तथा (अस्मे रणयन्तु) हमारे साथ सन्तुष्ट होती रहें। (प्रजावतीः) बहुत प्रजावाली, (पुरुरूपा इह स्युः) अनेक रंगरूपवाली ये गौवें यहां हों। (इन्द्राय पूर्वीः उषसः दुहानाः) इन्द्रके लिए उषःकालके पूर्वही दूध देती रहें।

[२] इन्द्रो यज्वने गृणते च शिक्षत उपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ ३६७ ॥ [ऋ० ६।२८।२]

(यज्वने गृणते) याजक और स्तोताके लिए (शिक्षते च) तथा शिक्षा पानेवाले शिष्यके लिए

भी इन्द्र (इत् उप ददाति) धन देताही रहता है, (स्वं न मुषायति) जो धन उसके पास रहता है, उसमैंसे कभी छीनता नही । (अस्य रयिं भूय भूयः वर्धयन्) इसके गौरूपी धनको वारंवार बढाता हुआ यह इन्द्र (देव-यु) देवताके साथ युक्त होनेवाले उपासकको (अ-भिन्ने खिल्ये) अटूट भूमिपर (नि दधाति) रख देता है ।

उपासकको इन्द्र सब धन देता है, उसको किसी प्रकारकी न्यूनता रहने नही देता । इसका गोधन वह बढाता है और अटूट भूमिका स्वामी उसको बना देता है ।

[३] न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३६८ ॥ [ऋ० ६।२८।३]

उनकी [ताः न नशन्ति] वे गौवें नष्ट नही होती, [तस्करः न दभाति] उनको चोर दबाता नही, [आसां अमित्र व्यथिः न आदधर्षति] इनको शत्रु अथवा रोग भय नहीं दिखाता । [याभिः देवान् यजते] जिन गौओंके दुध आदिसे वह देवोंका यजन करता है, और [ददाति च] दान देता है, [ज्योक् इत्] निःसंदेह बहुत देरतक वह [गोपतिः] गोपालक [ताभिः सचते] उन गौओंसे मिलकर रहता है । अर्थात् उसके साथ पर्याप्त गौयें रहती हैं ।

[४] न ता अर्वा रेणुककाटोऽश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ३६९ ॥ [ऋ० ६।२८।४]

[रेणुककाटः अर्वा ताः न अश्नुते] धूली उडानेवाला घोडा उन गौओंके पास नही पहुंचता, [ताः संस्कृतत्रं न अभि यन्ति] वे गौवें वधस्थानको नहीं पहुंचती, [तस्य यज्वन मर्तस्य] उस याजक मनुष्यके [उरुगायं अभय] विस्तृत निर्भय यज्ञस्थानमें [ताः गावः अनु वि चरन्ति] वे गौवें अनुकूलतासे विचरती रहती हैं ।

धूली उडाते हुए आनेवाले कोई दुष्ट घुडसवार उन गौओंको नही पकड सकता । ये गौवें वधस्थानमें अथवा मांस पकानेके स्थानतक नही पहुंचती, अर्थात् इनका वध नहीं होता और नाही इनका मांस पकाया जाता । अतः ये याजकके पास निर्भयतासे रहती और उसके खेतमें आनंदसे विचरती है ।

यहा पता लगता है कि गोघात अर्थात् गौका वध करनेवाले, वेदका धर्म न माननेवाले अवैदिक लोग घोडेपर चढकर गौवें पकडनेके लिए आते थे और पकडकर गौवोंका वध करते और उनके मासका पाक करते थे । याजक लोग गौओंकी रक्षा करते थे । याजकोंकी गौवें वे अवैदिक लोग चुरा जाते, उनसे पुन गौवें वापस लायी जाती थी और सुरक्षित रखी जाती थी । इन्द्र, मरुत् आदि वीर शत्रुओंको पकडते और उनको परास्त करके गौवें वापस लाते तथा जिनकी गौवें होती थी, उनको लौटा देते ।

[५] गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ३७० ॥ [ऋ० ६।२८।५]

[गावः भग] गौवें धन है, [इन्द्र मे गावः इच्छात्] इन्द्र मेरे लिए गौएं देनेकी इच्छा करे, [सोमस्य प्रथम भक्षः गावः] सोमका पहिला भक्ष गौका दूधही है । [इमाः या गाव] ये जो गौवें हैं, हे [जनासः] लोगो ! मानो [स इन्द्र] वे इन्द्रही हैं, ऐसे [इन्द्रं चित् हृदा मनसा इच्छामि] इन्द्रको मैं अपने हृदय और मनसे अपने पास रखना चाहता हूं ।

गौवें धनरूप है, गौवें इन्द्ररूप है, गौओंका दूध सोमरसमें मिलाकर उत्तम अन्न, उत्तम पेय, बनाया जाता है। हे लोगो! जानो कि जो गौवें है, वे इन्द्रही की शक्ति है। अत. मुझे दिलसे इच्छा है कि, मेरे पास पर्याप्त गौवें रहें।

[६] यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ३७१ ॥ [ऋ० ६।२८।६]

हे [गाव] गौओ! [यूयं कृशं मेदयथा] तुम दुबलेको मोटा कर देती हो। [अश्रीरं चित्] कुरूपको तुम [सुप्रतीक कृणुथा] सुंदर बना देती हो। हे [भद्र-वाच] कल्याणकारक शब्द-वाली गौओ! तुम [गृहं भद्र कृणुथ] घरको कल्याणमय करती हो। [व वय सभासु बृहत उच्यते] तुम्हारे दूध आदि अन्नकी प्रशसा सभाओमें बहुतही की जाती है।

[७] प्रजावतीः सूयवसे रुशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः।
मा व स्तेन ईशत माऽघशंसः परि वो रुद्रस्य हेतिर्वृणक्तु ॥ ३७२ ॥

[ऋ० ६।२८।७, वा० य० ३।१, १६।५०]

[सूयवसे रुशन्ती] उत्तम घासके खेतमें सुहानेवाली [प्रजावती] बच्चोंवाली गौवें [सु-प्र-पाणे शुद्धा अप पिबन्ती] उत्तम पीनेके स्थानमें जाकर शुद्ध जल पीती हैं। हे गौओ! [स्तेन व मा ईशत] चोर तुम्हें वशमें न करे, [अघशंस मा] पापी तुम्हे वशमें न करे। [रुद्रस्य हेति वः परि वृणक्तु] रुद्रका हथियार तुम्हें बचा देवे।

मन्त्र ४ की टिप्पणीमें लिखी बातको यह मन्त्र सिद्ध कर रहा है। चोर, दस्यु, पापी गौओंको चुराते हैं वे गौओंकी हिंसा करते हैं। इनसे गौओंका बचाव करना याजकोंका कर्तव्य है। इन याजकोंकी सहायता इन्द्र करता है।

गोष्ठः।

[अथर्व० ३।१४।१-६]

ब्रह्मा। गोष्ठः, अह, २ अर्यमा, पूषा, बृहस्पति, इन्द्रः, १-६ गाव, ५ गोष्ठश्च। अनुष्टुप्, ६ आर्षी त्रिष्टुप्।

[१] सं वो गोष्ठेन सुषदा सं रय्या सं सुभूत्या।
अहर्जातस्य यन्नाम तेना वः सं सृजामसि ॥३७३॥

हे गौओ! [सुषदा गोष्ठेन व सं सृजामसि] उत्तम बैठनेयोग्य गोशालासे तुम्हें हम संयुक्त करते हैं, [रय्या सं] धनसे तथा [सुभूत्या स] उत्तम ऐश्वर्यसे संयुक्त करते हैं। [अह. जातस्य यत् नाम] दिनमें जो भी कुछ यशस्वी बनता है, [तेन वः सं सृजामसि] उससे तुम्हें हम संयुक्त करते हैं।

गौओंको अपने पासके उत्तमसे उत्तम साधनोंसे सुखी करना चाहिये। किसी तरह उनको कष्ट न पहुंचे, इस विषयमें सावधानी रखनी चाहिये।

[२] सं वः सृजत्वर्यमा सं पूषा सं बृहस्पतिः।
समिन्द्रो यो धनंजयो मयि पुष्यत यद्वसु ॥३७४॥

अर्यमा, पूषा और बृहस्पति [वः संसृजतु] तुम्हें यशसे संयुक्त करें। [धनंजयः यः इन्द्र.] धनको जीतनेवाला जो इन्द्र है, वह (यत् वसु) जो भी धन हैं, उसको [मयि पुष्यत] मुझमें पुष्ट करे, बढावे।

ये सब देवताएं गौओंकी पुष्टि करनेमें मेरी सहायता करें।

[३] संजग्माना अबिभ्युषीरस्मिन् गोष्ठे करीषिणीः।

बिभ्रतीः सोम्यं मध्वनमीवा उपेतन ॥३७५॥

[सं-जग्मानाः] मिलकर रहनेवाली, [अ-बिभ्युषीः] न डरती हुई, [करीषिणी] उत्तम गोबर देनेवाली, [सोम्यं मधु बिभ्रती] सोमके सत्त्वसे युक्त मधुर दूधको धारण करनेवाली (अन्-अमीवा) तुम नीरोग रहकर (अस्मिन् गोष्ठे) इस गोशालामें (उपेतन) आओ और बढो।

गौएं इन गुणोंसे युक्त हों।

[४] इहैव गाव एतनेहो शकेव पुष्यत।

इहैवोत प्र जायध्वं मयि संज्ञानमस्तु वः ॥३७६॥

हे (गावः) गौओ! (इह एव एतन) यहीं आओ। (इह शका इव पुष्यत) यहां शकोंके समान पुष्ट बनो। (इह एव उत प्र जायध्वं) यहीं प्रजाएं उत्पन्न करो और (वः संज्ञानं मयि अस्तु) तुम मुझे पहचानती रहो।

गौएं और गोपालक परस्परको पहचानें, एक दूसरेसे परिचित रहें।

[५] शिवो वो गोष्ठो भवतु शारिशाकेव पुष्यत।

इहैवोत प्र जायध्वं मया वः सं सृजामसि ॥३७७॥

(गोष्ठ वः शिवः भवतु) गोशाला तुम्हारे लिए कल्याणकारी हो। [शारिशाका इव पुष्यत] धानके पौधेके समान यहां पुष्ट हो। (इह एव उत प्र जायध्वं) यहीं प्रजाएं उत्पन्न करो। (मया वः सं सृजामसि) मेरे साथ तुम सबको हम संयुक्त करते हैं।

[६] मया गावो गोपतिना सचध्वमयं वो गोष्ठ इह पोषयिष्णुः।

रायस्पोषेण बहुला भवन्तीर्जीवा जीवन्तीरुप वः सदेम ॥३७८॥

हे [गावः] गौओ! [मया गोपतिना सचध्वं] मुझ गौओंके स्वामीके साथ प्रेमसे संबन्धित होओ। (वः गोष्ठः इह पोषयिष्णुः) तुम्हारी यह गोशाला तुम्हारा पोषण करनेवाली बने। [रायः पोषेण बहुला भवन्तीः] धनके पोषणके साथ बहुत बनती हुई, (जीवन्तीः वः) जीवित रहनेवाली तुम्हारे पास (जीवाः उप सदेम) जीवित रहकर हम सब प्राप्त हों।

(३०) वेदमें भैंस और भैंसा।

सौ महिषोंको पकाना।

बार्हस्पत्यो भरद्वाजः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।१७।११)

वर्धान् यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम्।

पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन् वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ ३७९ ॥

(विश्वे सजोषाः मरुतः) सभी इकट्ठे होकर कार्य करनेवाले वीर मरुतोंने (यं) जिसकी (वर्धान्) शक्ति बढायी, उस हे इन्द्र! (तुभ्यं शतं महिषान् पचत्) तेरेलिए सौ महिषोंको पकाया, तथा (पूषा विष्णुः) पूषा और विष्णुने (अस्मै) इसके लिए (वृत्रहणं मदिरं अंशुं) वृत्र वध करनेहारे एवं आनन्दजनक तेजस्वी सोमके (त्रीणि सरांसि धावन्) तीन तालाब तीन बर्तन प्रवाहित किये।

इकट्ठे होकर कार्य करनेवाले मरुद्वीरोंने जिसका सामर्थ्य बढाया, उस इन्द्रके लिए सौ भैंसोंको पकाया और आनन्दवर्धक सोमरसके तीन तालाब अर्थात् बडे पात्र भरे रखे हैं। यहां ' महिष ' पदका अर्थ ' महिष कन्द ' प्रतीत होता है।

१०० महिषोंको खाना।

कुरुसुति काण्व । इन्द्र । बृहती । (ऋ० ८।७७।१०)

विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः।
शतं महिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्र एमुषम्॥ ३८०॥

हे इन्द्र ! [उरुक्रमः] विशाल आक्रमण करनेवाला और [त्वा इषित] तुझसे प्रेरित होकर विष्णु [ता विश्वा इत्] उन सभी वस्तुओंको, अर्थात् [शतं महिषान्] सौ महिषोंको, [क्षीरपाक ओदनं] दूधमें पकाये हुये अन्नको और [एमुषं वराह] भयानक वराहको [आ भरत्] ले आया।

यहांका ' वराह ' पद मेघवाचक है। इन्द्रने सौ भैंसे, दूधमें पकाये चावल और भयकर दीखनेवाला मेघ तयार किये और जलपानके लिए वृष्टि की। यहां भी दूधमिश्रित चावलोंके साथ ' शतं महिषान् ' का अर्थ ' सौ महिष कन्द ' अर्थ होना स्वाभाविक है।

३०० महिषोंका पाक।

गौरिवीति शाक्त्य। इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।२९।७)

सखा सख्ये अपचत् तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम्॥ ३८१॥

[सखा] मित्र [सख्ये] मित्रकी जैसी सहायता करता है उस तरह अग्निने [अस्य क्रत्वा] इस इन्द्रके लिए कुशलताके साथ [त्री शतानि] तीन सौ [महिषा तूय अपचत्] महिषोंको तुरन्त पका दिया, उधर इन्द्रने (वृत्रहत्याय) वृत्रका वध करनेके लिए (मनुष) मनुके तैयार किये (त्री सरांसि सुतं सोम] तीन तालाब भर जायें इतने निचोडे हुये सोमरसको [साक पिबत्] एक साथही पी लिया।

अग्निने ३०० भैंसे पकाये और इन्द्रने तीन बर्तनोंमें भरा सोमरस पीया।

गौरिवीति शाक्त्य। इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।२९।८)

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान॥ ३८२॥

[यत् मघवा] जब ऐश्वर्यवान् इन्द्रने [त्री शता महिषाणां मा] तीन सौ महिषोंके मांस अथवा उडदको [अघः] भक्षण कर लिया और [त्री सोम्या सरांसि अपा] तीन सोमरसके तालावोंको पी लिया तो [विश्वे देवा] सभी देवोंने, [भरं कारं न] भरणक्षम एवं कार्यशील पुरुषको जैसा बुलाते हैं, वैसेही [इन्द्राय अह्वन्त] इन्द्रके लिए बुलाना शुरू किया [यत्] क्योंकि उसने [अहिं जघान] शत्रुका वध किया था।

इन्द्रने ३०० भैंसोंका मांस खाया और तीन तालाब सोमरस पीया और पश्चात् शत्रुका वध किया। तब सब देव उसकी प्रशंसा करने लगे। ' मा. ' शब्द का अर्थ उडद भी है।

१००० महिषोंका भक्षण करना ।

पर्वत काण्व । इन्द्र । उष्णिक् । (ऋ० ८।१२।८)

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः । आदित् त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ३८३ ॥

हे (प्रवृद्ध सत्पते) मोटे एवं सज्जनोंके पालक इन्द्र ! (यदि) अगर कहीं तू (सहस्रं महिषान् अघः) हजारों महिषोंका भक्षण कर लेता, (आत् इत्) तो उसके उपरान्तही [ते इन्द्रियं] तेरा शारीरिक तत्त्व [महि प्र वावृधे] अत्यन्त महान होनेके लिए बढ गया होता।

ऊपरके मन्त्रोंमें १००, ३०० तथा १००० महिषोंके मासका भक्षण इन्द्र करता था, ऐसा लिखा है। किसी एक वीरके पेटमें इतने भैंसोंका मास जाता होगा, ऐसी कल्पना करना असंभव है। संभव है इन्द्रके साथ अन्य वीर हों। यहा ' महिष ' पद पुल्लिंगमे है, इसलिए भैंसके दूधकी कल्पना हो नही सकती। ' महिष ' नामक एक वनस्पति है, उसके कन्दको ' महिष ' पदसे लिया जा सकता है। इस कन्दका वर्णन इस तरह मिलता है—[कटु रुच्य, मुख जाड्यहर वातश्लेष्मामयापह] कडुआ, रुचिकर, मुख जाड्यनाशक तथा वातश्लेष्मा रोगोंको दूर करनेवाला यह कन्द है। दूसरा ' महिषी कन्द ' है, जिसके गुण ये है—

' कटूष्ण कफवातरोगघ्न रोचनः मुखजाड्यघ्नश्च । ' [रा नि व ७]

कडुआ, कफवातरोगनाशक, रुचिकारक, मुखकी जडता दूर करनेवाला। ' महिष ' नामकी एक वल्ली भी है। ' रसवीर्यविपाकेषु सोमवल्ली समा । ' [रा नि व ३] रसवीर्यविपाकमें यह सोमवल्लीके समान है। ' महिषी ' पदका अर्थ भी एक ऐसीही औषधि है।

इस तरहके औषधियोंके कन्द आलू जैसे होते है। बडे रुचिकर और पुष्टिप्रद होते हैं। अतः इनका पक्वान्न बनाकर खाना असम्भवसा नहा। सोमके नामोंमे ' बेल ' वाचक पद हमने देखे हैं। इसी तरहके भैंसेके वाचक नामोंमें ये औषधिवाचक पद दीख रहे हैं।

यहा महिषका अर्थ चाहे जो हो, पर यहा भैंसके दूधका सबध नहीं, यह बात सत्य है।

भैंसे वनमें रहते हैं।

त्रित आप्त्य । पवमान सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।३३।१)

प्र सोमासो विपश्चितोऽपां न यन्त्यूर्मयः । वनानि महिषा इव ॥ ३८४ ॥

[विपश्चितः सोमासः] विद्वान् सोम, [अपां ऊर्मयः न] जलोंकी तरंगोंकी नाईं और [महिषा वनानि इव] भैंसे वनोंमे जिस तरह झुंडके झुंड घुस जाते है, उसी तरह [प्र यन्ति] प्रकर्षसे चले जाते हैं।

महिषा वनानि इव [प्र यन्ति]= भैंसे जगलोंमें जैसे जाते है। वैसे सोमरसकी धाराएँ पीनेवालेके पेटमें जाती है। यहा ' सोम ' से ' महिष ' की उपमा दी है।

भैंसेके समान सुहाना।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । पवमान. सोम. । जगती । (ऋ० ९।६९।३)

अव्ये वधूयुः पवते परि त्वचि श्रथ्नीते नप्तीरदितेर्ऋतं यते ।
हरिरक्रान् यजतः संयतो मदो नृम्णा शिशानो महिषो न शोभते ॥ ३८५ ॥

[वधू-यु] वधुओंकी कामना करनेवाला सोम [अव्ये त्वचि] भेडोंके बालोंकी चर्मकीसी बनी

छलनीमेंसे [परि पवते] पूर्णतया टपकता है और [ऋत यते] यज्ञकी ओर जानेवालेके लिए [अदितेः नप्ती] अन्न देनेवाली भूमिकी मानों सन्तानसी वनस्पतियोंको [अश्नीते] रसयुक्त करता है, वह [हरि यजतः] हरे रंगवाला पूजनीय [सयतः मदः] वर्तनोंमें रखा हुआ तथा आनन्दजनक सोमरस [अक्रान्] अब प्रवाहित हो रहा है और [नृम्णा शिशानः] अपने बलोंको बढाता हुआ [महिषः न शोभते] भैंसेके तुल्य सुहाता है।

माहिषः न नृम्णा शिशानः शोभते= भैंसेकी नाईं बल बढाता हुआ [सोम] शोभायमान दीख पडता है। यहां सोमका वर्णन करते हुए ' महिष ' की उपमा दी है।

वधूयुः= वधूकी इच्छा करनेवाला सोम, अर्थात् गाके दूधके साथ मिलनेकी इच्छा करनेवाला सोम।

अव्ये त्वचि परि पवते= (सोमरस) भेडोंके बालोंसे बने कंबलमेंसे छाना जाता है।

अदितेः नप्तीः अश्नीते= भूमिकी पुत्री वनस्पति और उसकी पुत्री कलिकाको सोम उत्तेजित करता है। अदिति गौ, उसकी पुत्री दुग्धधारा, उसकी पुत्री दहीकी धारा, इसको रसयुक्त करता है, उसमें मिलता है।

महिषः= भैंसा अथवा प्रचंड वीर।

वनमें बैठनेवाला भैंसा (सोम)।

कश्यपो मारीचः। पवमान सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९२।६)

परि सद्मेव पशुमान्ति होता राजा न सत्यः समितीरियानः।
सोमः पुनानः कलशाँ अयासीत् सीदन्मृगो न महिषो वनेषु ॥ ३८६ ॥

[वनेषु सीदन्] वनोंमें बैठे [महिषः मृगः न] भैंसेके तुल्य [होता पशुमान्ति सद्म इव] हवनकर्ता जिस तरह गोधनसे भरे हुए घरोंके समीप रहता है और [समितीः इयानः सत्यः राजा न] समितियोंमें जाते हुए सच्चे राजाके समान यह [पुनानः सोमः] विशुद्ध होता हुआ सोम [कलशान् परि अयासीत्] कलशोंके समीप चारों ओरसे चला गया।

यहां वनोंमें भैंसा बैठता है वैसा पात्रोंमें सोम रहता है ऐसी उपमा दी है। भैंसा बलवान् है वैसा सोमरस भी बलवर्धक है यह साम्य यहां है।

रोका हुआ भैंसा।

इन्द्र ऋषिः। वसुको देवता। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।२८।१०)

सुपर्ण इत्था नखमा सिषायावरुद्धः परिपदं न सिंहः।
निरुद्धश्चिन्महिषस्तर्ष्यावान् गोधा तस्मा अयथं कर्षदेतत् ॥ ३८७ ॥

[अवरुद्धः सिंहः परिपदं न] रोका हुआ सिंह जिस तरह पैर जमाता है, वैसेही [सुपर्णः नखं] अच्छे पंखवाले गरुडने नखोंको [इत्था आ सिषाय] इस ढंगसे सोम वनस्पतिमें गडा दिया और इन्द्र भी [निरुद्धः महिषः चित्] रोके हुए भैंसेकी तरह [तर्ष्यावान्] सोमरस पीनेके लिए प्यासा हुआ था, तब [गोधा] गौ वाणीको धारण करनेवाली गायत्रीने [तस्मै] उस इन्द्रके लिए [अयथ एतत् कर्षत्] विना प्रयत्नके अर्थात् सुगमतासे इस वनस्पतिको खींच लिया।

यहां भी ' महिष ' शब्द उपमाके लिए आया है।

पानीमें बारबार स्वच्छ होनेवाला भैंसा।

प्रस्कण्वः काण्वः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९५।४)

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ३८८॥

[तं उक्षणं गिरि-ष्ठां] उस सेचन-समर्थ और पर्वतमें रहनेवाले सोमको, जो कि [मर्मृजानं महिषं न] बारबार स्वच्छ होते हुए महिषके समान है और [अंशुं] दीप्त किरणवाला है, [सानौ दुहन्ति] उच्च स्थलमें दुहते हैं, निचोडते हैं। [वावशानं तं] इच्छा करते हुए उस सोमको [मतयः सचन्ते] मननपूर्वक बनाये हुए स्तोत्र प्राप्त होते हैं, तथा उसे (त्रितः समुद्रे वरुणं बिभर्ति) समुद्रमें वरुणको धारण करता है।

भैंसा पानीमें बारबार डुबकी लगाकर स्वच्छ होता है, वैसाही सोम बारबार धोया जाता है। यह सोमके साथ भैंसेका साम्य है।

भैंसे जलाशयके पास जाते हैं।

श्यावाश्व आत्रेयः। अश्विनौ। उपरिष्टाज्ज्योतिः। (ऋ० ८।३५।७)

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ३८९ ॥

हे अश्विनौ ! [वना उप इत्] वनों या जलोंके समीपही तुम दोनों [हारिद्रवा इव पतथः] दो पंछियोंके समान उडकर चले आते हो और [सुतं सोमं] निचोडकर रखे हुए सोमरसके समीप [महिषा इव अवगच्छथ] जलाशयके पास जाते हुए, दो भैंसोंकी तरह तुम चले जाते हो, तथा उषा और सूर्यके साथ [सजोषसा] युक्त होकर [वर्तिः त्रिः यातं] घरके समीप तीन बार जाओ।

जैसे भैंसे जलाशयके पास जाते हैं वैसे अश्विदेव सोमरसके पास पहुंचते हैं। यह उपमा है।

प्याऊके निकट भैंसोंका खडा रहना।

भूतांश काश्यप। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१०६।२)

उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माऽप स्थातं महिषेवावपानात् ॥ ३९० ॥

हे अश्विनौ ! (फर्वरेषु) स्तुतियों तथा हविर्भागोंसे पूरी तरह तृप्त करनेवाले लोगोंमें तुम दोनों (उष्टारा इव श्रयेथे) इच्छा करनेवालोंके तुल्य आश्रय लेते हो और (श्वात्र्या प्रायोगा इव) शीघ्र चलनेवाले तथा जोते जानेवाले घोडों या बैलोंके समान (शासुः आ इथः) प्रशंसा करनेवालेके पास जाते हो, (जनेषु) जनतामें (यशसा) यश प्राप्त होनेके कारण (दूता इव हि स्थः) दूतोंके समान खडे रहते हो, इसलिए (अवपानात् महिषा इव) जलाशयसे भैंसोंके तुल्य (मा अप स्थातं) हमसे दूर न खडे रहो, याने सदैव हमारे निकटही रहो, जैसे हमेशा प्याऊके निकट भैंसे रहते हैं।

जलस्थानके पास जैसे भैंसे खडे रहते हैं, वैसे सोमरसके स्थानके पास अश्विदेव रहते हैं। यह उपमा है।

मृगोंमें भैंसा प्रभावी।

प्रतर्दनो दैवोदासिः। पवमान सोम.। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९६।६)

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषिर्विप्राणां महिषो मृगाणाम्।
श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्रमत्येति रेभन् ॥ ३९१ ॥

यह सोम देवोंमें ब्रह्माके तुल्य, कवियोंमें पद जोडनेवाला, ब्रह्मज्ञानयुक्त लोगोंमें ऋषितुल्य, मृगोंमें भैंसेके समान, गिद्ध पंछियोंमें बाजकी तरह, (वनानां स्वधितिः) हिंसा करनेवालोंमें कुल्हाडीके समान है और (रेभन्) गरजता हुआ, पवित्रको लाँघकर, चला जाता है, छाना जाता है।

पशुओंमें, मृगोंमें भैंसा बलिष्ठ रहता है, वैसाही सोम सब वनस्पतियोंमें बलवान् होता है। यह समानता यहां है।

भैंसोंके समान भिडना।

बन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायना । असमातिः । गायत्री । (ऋ० १०।१०।३)

यो जनान् महिषाँ इवातितस्थौ पवीरवान्। उतापवीरवान् युधा ॥ ३९२ ॥

जो असमाति [पवीरवान् उत अपवीरवान्] तलवार लेकर या बिना तलवारकेही (युधा) युद्ध करनेके तरीकेसे (महिषान् इव जनान् अतितस्थौ) भैंसोंके तुल्य सामर्थ्यवान् सैनिकोंका पराभूत कर सका।

जैसा भैंसा शत्रुको परास्त करता है, वैसाही असमाति राजा शत्रुके सैनिकोंको परास्त करता है। यहां भैंसेकी उपमा है।

तीखे सींगवाला भैंसा।

उशना काव्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।८७।७)

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ३९३ ॥

(एषः पवित्रे परि सुवानः सोमः) यह पवित्रमें पूर्णतया निचोडा जाता हुआ सोम (तिग्मे शृङ्गे शिशानः महिषः न) तीक्ष्ण सींगोंको हिलाते हुए भैंसे जैसा, (गा गव्यन् शूरः न) गायोंकी संख्या बढानेकी इच्छा करते हुए वीरसदृश (सत्वा अर्वा) बैठनेवाला तथा गतिशील सोम (सृष्टः सर्गः न अभि अदधावत्) छोडे हुए घोडेके समान सामने दौडने लगा।

यहां सोम भैंसेके जैसा बलवान् है, यह उपमा है।

सोम गाः अभि अदधावत् = सोम गौओंके पास दौडने लगा। अर्थात् सोमरस गौके दूधमें मिलाया जाने लगा।

यहांतकके इस मन्त्रोंमें भैंसेसे उपमाएँ हैं। कई मन्त्रोंमें सोमका बलवर्धक गुण बतानेके लिए यह उपमा है और कई मन्त्रोंमें अन्य कारणसे।

महिषः सोमः।

निम्नलिखित मन्त्रोंमें 'महिष' पद सोमरसका विशेषण है—

वसुर्भारद्वाजः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।८२।३)

पर्जन्यः पिता महिषस्य पर्णिनो नाभा पृथिव्या गिरिषु क्षयं दधे।
स्वसार आपो अभि गा उतासरन्त्सं ग्रावभिर्नसते वीते अध्वरे ॥ ३९४ ॥

(पर्णिनः महिषस्य पिता पर्जन्यः) पत्तोंवाली महान् सामर्थ्य बढानेवाली सोम वनस्पतिका

पिता मेघ है और वह (पृथिव्या नाभा) भूमिके केन्द्रस्थान [गिरिषु क्षयं दधे] पहाडोंमें निवास करता है, [स्वसार] बहनोंके तुल्य या स्वयही कामोंमें बढनेवाली उँगलियाँ [आप. उत गा. अभि असरन्] जलों तथा गौओंकी ओर सरकने लगी और यह सोम (वीते अध्वरे) कान्तिमय अहिंसापूर्ण यज्ञमे [ग्रावभि ज नसते] सोम वनस्पतिको कूटनेवाले पत्थरोंके संपर्कमें आता है।

पर्णिन महिषस्य = पर्णोंवाला भैसा अर्थात् पत्तोंवाला, भैसेके समान बलवान् सोम।

[अकृष्टामाषादय] त्रयः। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।८६।४०)

उन्मध्व ऊर्मिर्वनना अतिष्ठिपदपो वसानो महिषो वि गाहते ।
राजा पवित्ररथो वाजमारुहत् सहस्रभृष्टिर्जयति श्रवो बृहत ॥ ३९५ ॥

[मध्व ऊर्मि] मधुरिमासे भरे हुए सोमकी लहर [वनना उदातिष्ठिपत्] स्वीकरणीय वाणियोंको जगाती है और [महिष अप वसान वि गाहते] महान् सोम जलोंको पहनता हुआ उनमें घुस जाता है, वह [सहस्रभृष्टि पवित्र रथ राजा] हजारों हथियार धारण करनेवाले और पवित्र रथपर बैठे राजाके समान सोम (वाज आरुहत्) युद्धमें जानेके लिए रथपर चढता है, तथा (बृहत् श्रव. जयति) बडा यश जीत लेता है।

महिषः अपः वसान = भैसा जलोंमें स्नान करता है, अर्थात् सोम जलमें मिलाया जाता है, सोम जलमें धोया जाता है।

प्रतर्दनो दैवोदासि। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९६।१८)

ऋषिमना य ऋषिकृत्स्वर्षाः सहस्रणीथः पदवीः कवीनाम् ।
तृतीयं धाम महिषः सिषासन्त्सोमो विराजमनु राजति ष्टुप् ॥ ३९६ ॥

(य कवीनां पदवी) जो क्रान्तदर्शियोंमें पद जोडनेमें कुशल, (सहस्र-नीथ) हजारोंको ले चलनेवाला (स्व सा) अपने तेजको देनेवाला और (ऋषिमनाः ऋषिकृत्) ऋषिके मनसे युक्त एवं ऋषियोंका बनानेवाला (महिषः सोमः) महान् बलवर्धक सोम है, वह (तृतीयं धाम सिषासन्) तृतीय स्थानको देना चाहता हुआ (स्तुप्) प्रशंसित होकर (विराजं अनु राजति) विशेषतया दीप्त इन्द्रके पीछे जगमगाने लगता है।

महिषः सोम. = भैसे जैसा बलवर्धक सोम। बहुत अन्न देनेवाला (महा-इष) सोम। सोमरस एक अच्छा अन्नही है।

प्रतर्दनो दैवोदासि.। पवमानः सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ ९।९६।१९)

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ३९७ ॥

(चमूसत्) चमसोंमें (यज्ञपात्रोंमें) बैठनेवाला, (श्येन शकुनः) बाज और चील पंछीके तुल्य, (आयुधानि बिभ्रत्) हथियार धारण करनेवाला और (विभृत्वा) विशेष रूपसे भरण करनेवाली (गो-विन्दुः) गायोंको प्राप्त करनेवाला (अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः द्रप्स) जलोंकी तरंगोंसे पूर्ण समुद्रसे मिलनेवाला सोमरस बिन्दु जो (महिष) महान् बलवर्धक है, (तुरीयं धाम विवक्ति) चौथे स्थानका सेचन करता है।

महिषः द्रप्स = बलवर्धक रस, सोमरस

पराशर शाक्त्यः। पवमान सोम । त्रिष्टुप्) (ऋ ९।९७।४१)

महत्तत्सोमो महिषश्चकारापां यद्गर्भोऽवृणीत देवान् ।

अदधादिन्द्रे पवमान ओजोऽजनयत्सूर्ये ज्योतिरिन्दुः ॥ ३९८॥

(महिषः सोमः) बडी सामर्थ्य बढानेवाले सोमने [तत् महत् चकार] वह बडा भारी कार्य किया [यत्] जब कि [अपां गर्भः देवान् अवृणीत] जलोंके गर्भरूपी सोमने देवोंका स्वीकार किया, [पवमानः इन्दुः] पवित्र होते हुए सोमने इन्द्रमें ओजगुण [अदधात्] रख दिया और सूर्यमें ज्योति [अजनयत्] बसा डाली।

महिषः सोम = बलवर्धक सोम। बडे अन्नके रस जैसा सोमरस है। सोमरस एक प्रकारका अन्न है, जिसके सेवनसे भैंसे जैसी सामर्थ्य प्राप्त होती है।

महिष = बडा मेघ।

निम्नलिखित चार मन्त्रोंमें ' महिष ' शब्दका अर्थ मेघ है—

प्रियमेध आङ्गिरस । इन्द्र । अनुष्टुप्। (ऋ० ८।६९।१५)

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।

स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥३९९॥

[अर्भकः कुमारकः न] छोटे बालककी नाईं [नव रथं अधि तिष्ठन्] नये रथपर बैठता हुआ (सः) वह इन्द्र [विभुक्रतुं] विशेष भासमान कार्योंको करनेवाले [मृगं महिषं] ढूंढनेयोग्य महान् मेघको [पित्रे मात्रे] मातापितातुल्य द्यावापृथिवीके हितके लिए [पक्षत्] प्राप्त करता रहा।

कश्यपो मारीचः। पवमान सोमः। पङ्क्तिः। (ऋ० ९।११३।३)

पर्जन्यवृद्धं महिषं तं सूर्यस्य दुहिताऽभरत् ।

तं गन्धर्वाः प्रत्यगृभ्णन्तं सोमे रसमादधुरिन्द्रायेन्दो परि स्रव ॥ ४०० ॥

(तं पर्जन्यवृद्धं महिषं) उस वृष्टिके लिए बढनेवाले महान् मेघको सूर्यकी दुहिता ले आयी। मेघको सूर्यकिरणोंने उत्पन्न किया। गन्धर्वोंने (तं प्रत्यगृभ्णन्) उसे ले लिया, उस जलरूप रसको (सोमे) सोमवल्लीमें (आ अदधुः) रख दिया, हे सोम ! तू इन्द्रके लिए बहता रह।

सूर्यके किरणोंद्वारा जलकी भाफ होकर मेघ बने, मेघोंसे वृष्टि हुई, वह जल सोमवल्लीमें रसके रूपमें जाकर ठहरा। वह इन्द्रके लिए है।

वसुकर्णो वासुक्रः । विश्वे देवाः । जगती । (ऋ० १०।६६।१०)

धर्तारो दिव ऋभवः सुहस्ता वातापर्जन्या महिषस्य तन्यतोः ।

आप ओषधीः प्र तिरन्तु नो गिरो भगो रातिर्वाजिनो यन्तु मे हवम् ॥ ४०१ ॥

[दिवः धर्तारः] द्युलोकके धारणकर्ता, [सुहस्ताः ऋभवः] अच्छे हाथवाले कुशल ऋभु [महिषस्य तन्यतोः] बडे शब्दके निर्माणकर्ता मेघकी [वाता-पर्जन्या] पवन एवं मेघ, [आपः ओषधीः] जल और वनस्पतियोंके साथ [नः गिरः प्र तिरन्तु] हमारी वाणियों द्वारा प्रशंसा करें, तथा [रातिः भगः वाजिनः] दानी भग तथा अर्यमा आदि बलिष्ठ आदित्य [मे हवं यन्तु] मेरी प्रार्थनाको सुनकर इधर चले आयें।

वत्सप्रिर्भालन्दन । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।४५।३,)

समुद्रे त्वा नृमणा अप्स्व१न्तर्नृचक्षा ईधे दिवो अग्न ऊधन् ।
तृतीये त्वा रजसि तस्थिवांसमपामुपस्थे महिषा अवर्धन् ॥ ४०२ ॥

अग्ने ! (समुद्रे अप्सु अन्त) समुद्रमें जलोंके भीतर, [नृचक्षा नृमणाः] मानवोंको देखनेहारा और मानवोंके मनको अपनी ओर खींचनेवाला [दिव ऊधन्] द्युलोकके लेवेके समान सूर्यमें [त्वा ईधे] तुझको प्रज्वलित करता है, (तृतीये रजसि तस्थिवांसं त्वा) तीसरे लोकमें ठहरनेवाले तुझको [अपां उपस्थे] जलोंके निकट [महिषा अवर्धन्] बडे मेघ बढा रहे हैं।

इन चार मंत्रोंमें ' महिष ' शब्दका अर्थ मेघ है, (महा-इषः) बडे अन्नरसको देनेवाला अर्थात् मेघ ।

महिष = महान् इन्द्र ।

निम्नलिखित पांच मन्त्रोंमें ' महिष ' पद इन्द्रका विशेषण है।

गृत्समद शौनक । इन्द्रः । अष्टि । (ऋ० २।२२।१)

त्रिकद्रुकेषु महिषो यवाशिरं तुविशुष्मस्तृपत्सोममपिबद्विष्णुना सुतं यथाऽवशत् ।
स ईं ममाद महि कर्म कर्तवे महामुरुं सैनं सश्चद्देवो देवं सत्यमिन्द्रं सत्य इन्दुः ॥४०३॥

(तुविशुष्मः महिषः) बडे बलवाला और महान् सामर्थ्यवाला इन्द्र (विष्णुना सुतं) विष्णुके निचोडे हुए (यवाशिरं तृपत् सोमं) जौका आटा मिलाये हुए तृप्तिकारक सोमरसको त्रिकद्रुकोंमें (अपिबत्) पी चुका, तब उस रसने इस इन्द्रको (महि कर्म कर्तवे) बडे कार्य करनेके लिए (ममाद) हर्षित किया और (सत्यः इन्दु देवः) सच्चा, पिघलनेवाला, द्युतिमान वह सोम (एनं महां उरुं सश्चत्) इस महान् विशाल इन्द्रको प्राप्त हुआ।

विश्वामित्रो गाथिन । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।४६।२)

महाँ असि महिष वृष्ण्येभिर्धनस्पृदुग्र सहमानो अन्यान् ।
एको विश्वस्य भुवनस्य राजा स योधया च क्षयया च जनान् ॥४०४॥

हे (महिष) बडे इन्द्र ! तू (वृष्ण्येभिः) अपने अन्दर विद्यमान सामर्थ्योंसे (महान् असि) बडा है और (अन्यान् सहमान) दूसरे शत्रुओंके या पराये लोगोंके आघातोंको सहता हुआ (उग्र धनस्पृत्) उग्र स्वरूपवाला एवं धन दिलानेवाला है, तू (विश्वस्य भुवनस्य) समूचे संसारका एक राजा) एकमात्र राजा है, इसलिए (जनान्) शत्रुदलके लोगोंको (स योधय च) भलीभाँति लडा ले और (क्षयय च) विनष्ट कर दे।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।१८।११)

उत माता महिषमन्ववेनदमी त्वा जहति पुत्र देवाः ।
अथाब्रवीद् वृत्रमिन्द्रो हनिष्यन्त्सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व ॥ ४०५ ॥

[उत] और [माता] माताने [महिषं अनु अवेनत्] अपने बडी सामर्थ्यवाले पुत्र इन्द्रके पीछे आकर याचना की, ' (पुत्र ! त्वा अमी देवाः जहति) बेटा इन्द्र ! तुझे ये देव छोडते हैं, ' [अथ] पश्चात् (वृत्रं हनिष्यन्) वृत्रका वध करने चले जानेहारा (इन्द्रः अब्रवीत्) इन्द्र बोल उठा कि '(सखे विष्णो) हे मित्र विष्णु ! [वितरं वि क्रमस्व] बहुत बडी मात्रामें पराक्रम करना शुरू कर। '

त्रिशिरास्त्वाष्ट्रः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।८।१)
अथर्वा । यम । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १८।३।६५)

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ४०६ ॥

अग्नि (बृहता केतुना) बडे भारी झण्डेको साथ लेकर (प्र याति) प्रकर्षसे चला जाता है और वह (वृषभः रोदसी आ रोरवीति) बलवान होकर द्युलोक एवं भूलोकमें खूब गर्जना करता है, (दिवः अन्तान् चित् उपमान्) द्युलोकके अंतिम छोरमें भी एवं निकटवर्ती स्थानमें (अपां उपस्थे) जलोंके समीप (महिषः ववर्ध) महान् होकर बढ गया।

बृहदुक्थो वामदेव्य । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।५४।४)

चत्वारि ते असुर्याणि नामादाभ्यानि महिषस्य सन्ति ।
त्वमङ्ग तानि विश्वानि वित्से येभिः कर्माणि मघवञ्चकर्थ ॥ ४०७ ॥

हे (मघवन्) ऐश्वर्यसम्पन्न इन्द्र ! (महिषस्य ते) बडे होनेसे तेरे जो (चत्वारि अदाभ्यानि नाम) चार न दबनेवाले नाम हैं, (तानि विश्वानि) उन सबोंको (अंग ! त्व वित्से) हे प्रिय ! तू जानता है (येभिः कर्माणि चकर्थ) जिनसे तू कर्म कर चुका है।

इन पांच मन्त्रोंमें इन्द्रको ' महिष ' कहा है और इस पदसे इन्द्रकी प्रचण्ड सामर्थ्य बतायी है।

महिष= महान् अग्नि।

निम्नलिखित चार मन्त्रोंमें ' महिष ' पद अग्निका विशेषण है और वह उसकी बडी सामर्थ्य बता रहा है।

कुत्स आङ्गिरस । अग्नि ,औपसोऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९५।९)

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम ।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥ ४०८ ॥

[महिषस्य ते] तू महान् है और तेरा [विरोचमानं धाम] जगमगाता हुआ स्थान जो कि [बुध्नं] मूलभूत है उसके चारों ओर [उरु ज्रयः परि एति] विशाल जयिष्णु तेज चला आता है अतः हे अग्ने ! [विश्वेभिः स्वयशोभिः] सभी अपने यशोंसे तू [इद्धः] प्रज्वलितसा होकर [अस्मान्] हमें [अदब्धेभिः पायुभिः पाहि] न दबनेवाले संरक्षणक्षम सामर्थ्योंसे बचाता रह।

दीर्घतमा औचथ्यः । अग्नि । जगती । (ऋ० १।१४१।३)

निर्यदीं बुध्नान्महिषस्य वर्पस ईशानासः शवसा क्रन्त सूरयः ।
यदीमनु प्रदिवो मध्व आधवे गुहा सन्तं मातरिश्वा मथायति ॥ ४०९ ॥

(ईशानासः सूरयः) प्रभु बने हुए विद्वान् (यत् ईं) जब इस अग्निको (शवसा) बलसे (बुध्नात्) मूलसे (महिषस्य वर्पसः) महान् सामर्थ्यवानके दर्शनके लिए (निः क्रन्त) पूर्णतया बना चुके और (यत् ईं) जब इस (गुहा सन्तं) गुहामें रहनेवाले अग्निको (प्रदिवः मध्वः आधवे) प्रकृष्ट द्युलोकसे मधुके रखनेके स्थानमें (मातरिश्वा अनु मथायति) वायु ठीक प्रकार मथ लेता है।

त्रित आप्त्यः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।५।२)

समानं नीळं वृषणो वसानाः सं जग्मिरे महिषा अर्वतीभिः ।
ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति गुहा नामानि दधिरे पराणि ॥४१०॥

[वृषणः महिषाः] सामर्थ्यवाले महान् अग्नि [समानं नीळं वसानाः] एकही स्थानमें रहते हैं । [अर्वतीभिः सं जग्मिरे] घोड़ियोंसे युक्त हुए [कवयः ऋतस्य पदं नि पान्ति] विद्वान् लोग यज्ञके स्थानको सुरक्षित रखते हैं और [पराणि नामानि गुहा दधिरे] श्रेष्ठ नामोंको गुहामें गुप्त, गूढ़ जगह रखते हैं ।

पावकोऽग्निः । अग्निः । उपरिष्टाज्ज्योतिः । (ऋ० १०।१४०।६)

ऋतावानं महिषं विश्वदर्शतमग्निं सुम्नाय दधिरे पुरो जनाः ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं त्वा गिरा दैव्यं मानुषा युगा ॥ ४११ ॥

(विश्वदर्शत) सबके लिए देखनेयोग्य [महिष ऋतावानं] महान् सामर्थ्ययुक्त तथा यज्ञके रक्षक अग्निको [जनाः सुम्नाय पुरः दधिरे] लोगोंने सुख बढानेके लिए आगे धर दिया है, हे अग्ने ! [मानुषा युगा] मानवी युगल [दैव्य] दिव्य [श्रुत्कर्णं सप्रथस्तम त्वा] प्रार्थनाकी ओर कान देकर सुननेवाले और अत्यन्त विशाल तुझे [गिरा] वाणीसे प्रशंसित करते हैं ।

इन चार मन्त्रोंमें ' महिष ' पद अग्निका विशेषण है, और वह उसकी बडी सामर्थ्य बता रहा है ।

महिष देव सूर्य ।

निम्नलिखित दो मन्त्रोंमें ' महिष ' पद सूर्यके वर्णन करनेके लिए प्रयुक्त है । इसका देवता आदित्यही है-

ब्रह्मा । अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम् । पञ्चपदोष्णिग्बृहतीगर्भाऽतिजगती । (अथर्व० १३।२।१०)

रोचसे दिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः ।
उभा समुद्रौ रुच्या व्यापिथ देवो देवासि महिषः स्वर्जित् ॥४१२॥

हे [पतङ्ग] उड़ते हुए जानेवाले सूर्य ! [दिवि, अन्तरिक्षे, पृथिव्यां, अप्सु अन्तः रोचसे] द्युलोक, अन्तरिक्ष, भूमि तथा जलोंके भीतर तू जगमगाता है, तू हे द्युतिमान ! [स्वः जित् महिष देवः] स्वर्गको जीतनेवाला महान् देवता है, अतः [रुच्या उभा समुद्रौ व्यापिथ] कान्तिसे दोनों समुद्रोंको व्याप्त करता है ।

ब्रह्मा । अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम् । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १३।२।३२)

चित्रश्चिकित्वान् महिषः सुपर्ण आरोचयन् रोदसी अन्तरिक्षम् ।
अहोरात्रे परि सूर्यं वसाने प्रास्य विश्वा तिरतो वीर्याणि ॥४१३॥

[सुपर्ण चित्र महिष] अच्छे पर्णवाला अच्छे किरणवाला अनूठा एवं महान् सूर्य जो [चिकित्वान्] चिकित्सक या ज्ञान देनेवाला है [रोदसी अन्तरिक्ष आरोचयन्] द्युलोक एवं भूलोकको तथा अन्तरिक्षको प्रकाशित करता है । [अहोरात्रे] दिन और रात सूर्यको [परि वसाने] चारों ओरसे घेरते हुए [अस्य विश्वा वीर्याणि प्र तिरतः] इसके सारे बलोंको खूब बढाते हैं ।

ब्रह्मा। अध्यात्म, रोहितादित्यदैवत्यम्। त्रिष्टुप्। (अथर्व० १३।२।३२)

तिग्मो विभ्राजन् तन्वं१ शिशानोऽरंगमासः प्रवतो रराणः।

ज्योतिष्मान् पक्षी महिषो वयोधा विश्वा आऽस्थात् प्रदिशः कल्पमानः ॥ ४१४ ॥

[तिग्म] प्रखर तेजवाला, [तन्व शिशानः] अपने शरीरको तीक्ष्ण करनेवाला [ज्योतिष्मान पक्षी महिष वयोधा] ज्योतिर्मय पक्षवाला, किरणवाला महान एवं बल धारण करनेवाला, सूर्य [अरंगमास प्रवत रराण] पर्याप्त गतिवाला उच्च स्थानपर रमनेवाला [विश्वा प्रदिश कल्पमान आऽस्थात्] सभी दिशाओंमें सामर्थ्यवान होता हुआ स्थिर रहता है।

ब्रह्मा। अध्यात्मं, रोहितादित्यदैवत्यम। त्रिष्टुप। (अथर्व० १३।२।४०)

आरोहञ्छुक्रो बृहतीरतन्द्रो द्वे रूपे कृणुते रोचमानः।

चित्रश्चिकित्वान् महिषो वातमाया यावतो लोकानभि यद्विभाति ॥ ४१५ ॥

[शुक्र अतन्द्र रोचमान] तेजस्वी, निद्रारहित एवं जगमगानेवाला सूर्य [बृहती आरोहन्] बड़ी दिशाओंमें ऊपर चढता हुआ [द्वे रूपे कृणुते] दो रूपोंका सृजन करता है, [यत चित्र चिकित्वान् महिष] जब अनूठा एवं ज्ञान देनेवाला महान सूर्य [वात आया] वायुको प्राप्त होता है, तब [यावत लोकान अभि विभाति] जितने लोक हैं उनपर जगमगाने लगता है।

ब्रह्मा। अध्यात्म, रोहितादित्यदैवत्यम्। जगती। (अथर्व० १३।२।४३)

अभ्य१न्यदेति पर्यन्यदस्यतेऽहोरात्राभ्यां महिषः कल्पमानः।

सूर्यं वयं रजसि क्षियन्तं गातुविदं हवामहे नाधमानाः ॥ ४१६ ॥

[अहोरात्राभ्यां कल्पमान महिष] दिन एवं रात बनानेवाला महान् सूर्य [अन्यत् अभि एति] एक भागके समीप जाता है, तब [अन्यत् परि अस्यते] दूसरा भाग प्रकाशसे खाली होता जाता है, [गातु-विद् रजसि क्षियन्तं सूर्य] मार्गदर्शक तथा अन्तरिक्षमें निवास करनेवाले सूर्यकी [वयं नाधमानाः हवामहे] हम संकटग्रस्त होनेपर स्तुति करते हैं।

ब्रह्मा। अध्यात्म, रोहितादित्यदैवत्यम्। जगती। (अथर्व० १३।२।४४)

पृथिवीप्रो महिषो नाधमानस्य गातुरदब्धचक्षुः परि विश्वं बभूव।

विश्वं संपश्यन्त्सुविदत्रो यजत्र इदं शृणोतु यदहं ब्रवीमि ॥ ४१७ ॥

[महिषः पृथिवी-प्र] बहुत बड़ा, पृथ्वीको पूर्ण करनेवाला [अदब्ध-चक्षु] न दबी आँखसे निरीक्षण करनेवाला [नाधमानस्य गातु] याचकको मार्ग दर्शानेवाला सूर्य [विश्वं परि बभूव] संसारपर विराजता है, वह [सुविदत्र] ज्ञानी एवं [यजत्र] पूजनीय है और [विश्वं संपश्यन्] विश्वका पूर्ण निरीक्षण करता हुआ [यत् अहं ब्रवीमि] मैं जो कहता हूं, [इदं शृणोतु] इसे सुन ले।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज। इन्द्रो विश्वे देवा वा। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१२१।२)

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः।

अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥४१८॥

[सः ऋभुः] वह अत्यधिक भासमान होता हुआ [द्यां] आकाशको [स्तम्भीत् ह] स्थिर कर

चुका है और [गोः नरः] किरणोंका नेता बनकर [वाजाय] अन्नके उत्पादनके लिए [द्रविणं] जिसके समीप सभी प्राणी दौडे चले जाते हैं, और जो [धरुणं] धारक-शक्तिसे युक्त है, उसकी उसने [पुपोष] पुष्टि की है, [महिष] महान् वह सूर्य [स्व-जां वां अनुचक्षत] अपनेसे उत्पन्न उषाके पश्चात् दृष्टिपात करने लगा और [अश्वस्य मेनां] अश्वकी स्त्रीको [गोः मातरं परि] गौकी माताको संवर्धित किया।

महिष = महनीय (Magnanimous) सूर्य।

सार्पराज्ञी। आत्मा, सूर्यो वा। गायत्री। (ऋ० १०।१८९।२, वा० य० ३।७)

अन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥४१९॥

(अस्य रोचना) इसकी दीप्ति (प्राणात् अपानती) प्राण अपानका कार्य करती हुई (अन्तः चरति) अन्दर अन्दर संचार करती है (महिषः दिवं वि अख्यत्) इस महान् सूर्यने द्युलोकको विशेष प्रकाशित किया।

यम। स्वर्गः, ओदन, अग्निः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० १२।३।२८)

उपास्तरीरकरो लोकमेतमुरुः प्रथतामसमः स्वर्गः।

तस्मिञ्छ्रयातै महिषः सुपर्णो देवा एनं देवताभ्यः प्र यच्छान् ॥४२०॥

(एतं लोकं) इस लोकको तूने (उप अस्तरीः अकरः) व्यवस्थित बनाकर सृजन किया है, इसलिए (असमः स्वर्गः) अनुपम स्वर्ग [उरुः प्रथतां] विशाल हो फैल जाए [तस्मिन् महिषः सुपर्णः श्रयातै] उसमें बडा सुन्दर पर्णोंवाला अर्थात् किरणोंवाला सूर्य आश्रय लेता है, [देवताभ्यः एनं] देवताओंके लिए इसे (देवाः प्र यच्छान्) देवोंने दे डाला।

यहाँका 'सुपर्ण' पद पहिले आया हुआ है, अ० १३।२।३३ के मन्त्रमें 'पक्षी' पद है। ये दोनों पद सूर्यकेही वाचक हैं।

ब्रह्मा। सविता। द्विपदा प्राजापत्या बृहती। (अथर्व० ५।२६।२)

युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा ॥४२१॥

(महिषः देव सविता) महान् सामर्थ्यवान, प्रकाशमान एवं सबका उत्पादनकर्ता सूर्य देव [प्रजानन्] विशेष ढंगसे जानता हुआ (अस्मिन् यज्ञे युनक्तु) इस यज्ञमें जोड दे।

इन दस मंत्रोंमें 'महिष' पद सूर्यके वर्णनमें आया है।

महिष विश्वकर्मा।

निम्नलिखित ११ मन्त्रोंमें 'महिष' पद विश्वकर्मा ईश्वर, वरुण, देव, मरुत, वेन, कण्व, यजमान, ऋत्विज आदिके वर्णनमें प्रयुक्त हुआ है, वहां 'सामर्थ्यवान' ही इसका अर्थ है।

अङ्गिराः। विश्वकर्मा। भुरिक् त्रिष्टुप्। (अथर्व० २।३५।४)

घोरा ऋषयो नमो अस्त्वेभ्यश्चक्षुर्यदेषां मनसश्च सत्यम्।

बृहस्पतये महिष द्युमन्नमो विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान् ॥ ४२२ ॥

(ऋषयः घोराः) ऋषि उग्ररूपवाले तेजस्वी हैं, इसलिए (एभ्यः नमः अस्तु) इनके लिए नमन हो (यत्) क्योंकि (एषां मनसः सत्यं च चक्षुः) इनका मनोगत सत्य तथा दृष्टि विख्यात है, हे (महिष विश्वकर्मन्!) महान् विश्वकर्मा! बृहस्पतिके लिए (द्युमत् नमः) द्युतिमान नमन हो, तथा तुम्हें प्रणाम हो, (अस्मान् पाहि) हमारी रक्षा कर।

इस मन्त्रमें ' विश्वकर्मा ' परमेश्वरको ' महिष ' शब्द कहा है। महान् सामर्थ्यवान यही अर्थ यहां अभिप्रेत है।

महिष वरुण।

वसुकर्णो वासुकः। विश्वे देवा। जगती। (ऋ० १०।६५।८)

परिक्षिता पितरा पूर्वजावरी ऋतस्य योना क्षयतः समोकसा।
द्यावापृथिवी वरुणाय सव्रते घृतवत् पयो महिषाय पिन्वतः॥ ४२३॥

[परि-क्षिता] चारों ओर रहनेवालीं, [पूर्वजावरी पितरा] पूर्वकालमें उत्पन्न और पालन करनेवाली द्यावापृथिवी [स-ओकसा] एक घरमें रहनेवालीं बनकर [ऋतस्य योना क्षयत] यज्ञके मूलमें निवास करती हैं, वे [स-व्रते] समान व्रतवाली होकर [महिषाय वरुणाय] महान् सामर्थ्यवाले वरुणके लिए [घृतवत् पयः पिन्वतः] घृततुल्य दुग्ध यथेष्ट रूपमें दे डालती हैं।

यहां ' वरुण देव ' को 'महिष' कहा है।

महिष देव सोम।

कुत्स आङ्गिरस। पवमान सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।५७)

इन्दुं रिहन्ति महिषा अदब्धाः पदे रेभन्ति कवयो न गृध्राः।
हिन्वन्ति धीरा दशभिः क्षिपाभिः समञ्जते रूपमपां रसेन॥ ४२४॥

[अदब्धाः महिषाः] न दबे महान् देव [इन्दुं रिहन्ति] सोमरसको चाटते हैं, सोमरसका पान करते हैं और [गृध्राः कवयः न] धन चाहनेवाले कवियोंके समान [पदे रेभन्ति] यज्ञ-स्थानमें गरजते हैं; [दशभिः क्षिपाभिः] दस उँगलियोंसे [धीराः हिन्वन्ति] धीर पुरुष इसे प्रेरित करते हैं और [अपां रसेन] जलोंके रससे [रूप समञ्जते] स्वरूपको सँवार लेते हैं।

यहांका ' महिषाः ' पद सब देवोंकी सामर्थ्य वर्णन कर रहा है।

विहव्य आङ्गिरसः। विश्वे देवाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१२८।८)

उरुव्यचा नो महिषः शर्म यंसदस्मिन् हवे पुरुहूतः पुरुक्षुः।
स नः प्रजायै हर्यश्व मृळयेन्द्र मा नो रीरिषो मा परा दाः॥ ४२५॥

(अस्मिन् हवे) इस यज्ञमें (पुरुहूतः पुरुक्षुः) बहुतोंसे प्रार्थना किया हुआ और सब स्थानोंमें निवास करनेवाला (उरुव्यचा महिष) विशालव्यापक शक्तिवाला, महान् इन्द्र (नः शर्म यंसत्) हमें सुख दे; हे (हर्यश्व इन्द्र) हरण करनेकी शक्तिसे युक्त घोडोंवाले इन्द्र! (नः प्रजायै मृळय) हमारी सन्तानको सुख दे, (नः मा रीरिष) हमारी क्षति या हिंसा न कर और (मा परा दा) हमारा त्याग न कर।

आगेके मन्त्रमें ' महिषाः ' पद बहुवचनमें है और वह मरुतोंका विशेषण है।

महिषाः मरुतः।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य। वैश्वानरोऽग्निः। जगती। (ऋ० ६।८।४)

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम्।
आ दूतो अग्निमभरद् विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः॥ ॥ ४२६॥

[महिषाः] महान् सामर्थ्यवान मरुतोंने [अपां उपस्थे] अन्तरिक्षमें जलोंके समीपही

[अगृभ्णत] इस अग्निका ग्रहण किया, पश्चात् [ऋग्मियं राजानं उप] पूजनीय राजाके निकट [विशः तस्थुः] प्रजाजन रहने लगे. [परावतः] दूर देशसे [वृत्र मातरिश्वा] वृत्रसदृश पवन [विवस्वतः] सूर्यके पाससे इस वैश्वानर अग्निको [आ अभरत्] इस लोकतक ले आया। तबसे अग्नि यहां विराजता है।

यहांके ' महिषा ' पदने महतोंकी विशेष सामर्थ्यका वर्णन किया है।

महिष वेन।

वेनो भार्गव । वेन । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१२३।४)

जानन्तो रूपमकृपन्त विप्रा मृगस्य घोषं महिषस्य हि ग्मन्।
ऋतेन यन्तो अधि सिन्धुमस्थुर्विदद्गन्धर्वो अमृतानि नाम ॥ ४२७ ॥

[महिषस्य मृगस्य घोषं] महनीय या बडे और ढूँढनेयोग्य वेनके शब्दके समीप [विप्राः ग्मन् हि] विद्वान् लोग गये थे, अत उसके [रूप जानन्त] स्वरूपको जानते हुए वे उसकी [अकृपन्त] स्तुति करने लगे, [ऋतेन यन्त] यज्ञके साथ जाते हुए वे [सिन्धु अधि अस्थुः] नदीतटपर ठहर गये, तब [गन्धर्वः अमृतानि नाम विदत्] गन्धर्वने अमरपनसे युक्त यज्ञ जान लिए। अर्थात् यज्ञसे अमरपन प्राप्त किया।

महिष कण्व।

भृगु । सविता । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।१५।१)

तां सवितः सत्यसवां सुचित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्ववाराम्।
यामस्य कण्वो अदुहत् प्रपीनां सहस्रधारां महिषो भगाय॥ ४२८ ॥

हे (सवितर्) प्रेरणकर्ता उत्पादनकर्ता ! (तां सुचित्रां) उस अनूठी, (सत्य-सवां विश्ववारां) सत्यका सृजन करनेवाली एवं सबको स्वीकरणीय (सुमतिं) अच्छी बुद्धिको (आ वृणे) मैं स्वीकारता हूँ (या) जिसे (महिषः कण्वः) महान् सामर्थ्यवाले कण्वने (अस्य भगाय) इसका भाग्योदय हो जाए इसलिए (प्रपीनां सहस्रधारां अदुहत्) परिपुष्ट, हजारों धाराओंसे दूध देने-वाली गौका दोहन कर लिया।

यहां विद्वान् कण्वका विशेषण ' महिष ' आया है।

महिष यजमान।

हैमवर्चि । अग्निसरस्वतीन्द्राः । (वा० य० १९।३२)

सुरावन्तं बर्हिषदं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति महिषा नमोभिः।
दधानाः सोमं दिवि देवतासु मदेमेन्द्रं यजमानाः स्वर्काः ॥४२९॥

(महिषाः) बडे यजमान लोग (नमोभिः) नमनोंसे (बर्हि-षदं सुरावन्तं सुवीरं यज्ञं हिन्वन्ति) कुशासनपर बैठनेवाले और जल साथ रखनेवाले अच्छे वीर यज्ञको प्रेरित करते हैं। (दिवि देवतासु) द्युलोकमें देवोंमें (सोमं दधानाः) सोम रखते हुए (स्वर्काः यजमानाः) अच्छे अर्चनीय स्तोत्रोंसे युक्त हम यजमान इन्द्रको हर्षित करें।

यहांका ' महिषाः ' पद यजमानोंका वर्णन करता है। यजमान पर्याप्त अन्नादिसे युक्त हैं, यही इसका अर्थ है।

महिषाः = बलवान लोग।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। दधिक्राः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।४४।५)

आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥४३०॥

(ऋतस्य पन्थां अनु एतवै) यज्ञके मार्गपर अनुकूल ढगसे चलना संभव हो, इसलिए (नः पथ्यां) हमारे मार्गको (दधिक्रा आ अनक्तु) दधिक्रावा पूर्णतया स्निग्ध कर दे, (अग्निः नः दैव्यं शर्धः शृणोतु) अग्नि हमारे दिव्य बलके बारेमें सुन ले तथा (विश्वे अमूराः महिषाः शृण्वन्तु) सभी अ-मूढ अर्थात् ज्ञानी तथा महान् लोग भी सुन लें।

यहां ' ज्ञानी ' लोगोंके वर्णनमें ' महिषाः ' पद बहुवचनमें आया है।

महिषाः = बड़े ऋत्विज।

पवित्र आंगिरसः। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।७३।२)

सम्यक् सम्यञ्चो महिषा अहेषत सिन्धोरूर्मावधि वेना अवीविपन्।
मधोर्धाराभिर्जनयन्तो अर्कमित् प्रियामिन्द्रस्य तन्वमवीवृधन् ॥४३१॥

[महिषाः सम्यञ्चः] महान् ऋत्विज इकट्ठे होकर [सम्यक् अहेषत] बराबर सोमरसको निचोडने लगे और [वेनाः] सुहाते हुए ऋत्विज [सिन्धोः ऊर्मौ अधि] सिन्धुके तरंगोंपर [अवीविपन्] उसे हिलाने लगे, [अर्कं जनयन्तः इत्] अर्चनीय स्तोत्रका सृजन करते हुए उन्होंने [इन्द्रस्य प्रियां तन्वं] इन्द्रके प्यारे शरीरको [मधोः धाराभिः अवीवृधन्] मधुकी धाराओंसे बढाया।

अर्थात् ऋत्विजोंने सोमको नदीके जलसे धोया, अच्छी तरह स्वच्छ किया, हिलाहिलाकर धोया, सोमको चमकीला होने तक धोया, पश्चात् रस निकाला जो कि इन्द्रको अत्यन्त प्रिय है, वह रस मधुके साथ, शहदके साथ, तथा दूधके साथ मिला दिया और तैयार किया। यहांका 'महिषा ' पद बहुवचनमें है और यह ऋत्विजोंकी सामर्थ्यका वर्णन कर रहा है।

महिषाः = बड़े महात्मा।

पृश्नयोऽजा। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।८६।२५)

अव्ये पुनानं परि वार ऊर्मिणा हरिं नवन्ते अभि सप्त धेनवः।
अपामुपस्थे अध्यायवः कविमृतस्य योना महिषा अहेषत ॥ ४३२ ॥

[अव्ये वारे] भेडीके बालोंसे बनी छलनीपर [परि पुनानं हरिं] पूर्णतया विशुद्ध होते हुए हरे पत्तोंवाले सोमके समीप [सप्त धेनवः] सात गौएँ [ऊर्मिणा अभि नवन्ते] तरंगोंसे चली आती हैं, [ऋतस्य योना] यज्ञके स्थानमें तथा [अपां उपस्थे] जलोंके निकट [महिषाः आयवः] महान् मानवोंने [कविं अधि अहेषत] क्रान्तदर्शी अग्निको प्रेरित किया है। अर्थात् अग्निसिद्ध करके यज्ञका प्रारंभ किया।

सोमका रस छाननीसे छाना, उसमें गौका दूध मिलाया, जल भी उसमें मिलाया और हवन भी किया। यहांका ' महिषा ' बहुवचनान्त पद ऋत्विजोंकी सामर्थ्य बता रहा है।

इस तरह ये ' महिष ' पद ' बडी सामर्थ्य ' का वर्णन करनेके लिए यहां इन मन्त्रोंमें प्रयुक्त हुए हैं।

महिषी = रानी ।

पतिवेदनः । अग्नीषोमौ । त्रिष्टुप् । (अथर्व० २।३६।३)

इयमग्ने नारी पतिं विदेष्ट सोमो हि राजा सुभगां कृणोति ।
सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति गत्वा पतिं सुभगा वि राजतु ॥ ४३३ ॥

हे अग्ने ! [इयं नारी] यह महिला [पतिं विदेष्ट] पतिको प्राप्त करे, क्योंकि राजा सोम [सुभगां कृणोति] इसे अच्छे ऐश्वर्यवाली बनाती है और [पुत्रान् सुवाना] पुत्रवती होनेपर [महिषी भवति] महिषी पट्ट रानी हो जाती है, अतः यह [सुभगां पतिं गत्वा वि राजतु] ऐश्वर्यसंपन्न बनकर पतिके निकट जाकर विराजमान हो जाए।

इस मन्त्रमें ' महिषी ' पदका अर्थ रानी है ।

वसूयव आत्रेयाः । अग्निः । अनुष्टुप् । (ऋ० ५।२५।७; वा० य० २६।१२)

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो । महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥ ४३४ ॥

हे (बृहत्-अर्च विभावसो) बडी ज्वालाओंवाले तथा विशेष भास्वर धनवाले अग्ने ! (यत् वाहिष्ठं तत्) जो अत्यन्त सामर्थ्ययुक्त है वह स्तोत्र अग्निके लिए अर्पण हो (महिषी इव) रानीके समान (त्वत् वाजाः) तुझसे अन्न तथा (त्वत् रयिः) तुझसे धन (उदीरते) प्रकट होता है ।

जैसे सब प्रकारका जेवर रानीके पास रहता है वैसेही सब अन्न तथा धन अग्निके पास रहता है और उससे सबको मिलता है । यहां ' महिषी ' पदका अर्थ ' रानी ' है ।

वृशो जानः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।२।२)

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥ ४३५ ॥

हे (युवते) युवति नारी ! तू (पेषी) पीसनेवाली है और (कं एतं कुमारं बिभर्षि) किस इस शिशुको धारण कर लेती है, क्योंकि इस अग्निको (महिषी) बडी रानी अर्थात् अरणीने (जजान) उत्पन्न किया है, सर्वत्र (गर्भः) गर्भरूपसे रहनेवाला यह (पूर्वीः शरदः ववर्ध हि) बहुतसे वर्षों-तक बढताही रहा और (यत् माता असूत) जब मातारूप अरणीने इसे उत्पन्न किया तो (जातं अपश्यं) पैदा हुए इस अग्निको मैंने देखा ।

इस मंत्रमें ' महिषी ' पदका अर्थ ' रानी ' है । अग्निकी माता रानी है, जो अरणीही है ।

भौमोऽत्रिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।३७।३)

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात् पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ४३६ ॥

[इयं वधूः] यह नारी [पतिं इच्छन्ती एति] पतिको चाहती हुई आती है, [य ईं इषिरां महिषीं] जो इसका पति है वह अपनी इच्छा करनेवाली रानीको, अपनी धर्मपत्नीको [वहाते] प्राप्त करना चाहता है । [अस्य रथः आ श्रवस्यात्] इसका रथ यशस्वी हो और [आ घोषात्] यह धर्मकी घोषणा करे, यह रथ [पुरू सहस्रा परि वर्तयाते] बारबार हजारों प्रदक्षिणा करे । अर्थात् विजय पाता हुआ पृथ्वीपर भ्रमण करे । यहां ' महिषी ' शब्दका अर्थ ' रानी, धर्मपत्नी ' पत्नी, है ।

बलवर्धक अन्न (महिषः)।

प्रजापतिः । यजमानः । (वा० य० १२।१०५)

इषमूर्जमहमित आदमृतस्य योनिं महिषस्य धाराम् ।
आ मा गोषु विशत्वा तनूषु जहामि सेदिमनिराममीवाम् ॥४३७॥

[इषं ऊर्जं ऋतस्य योनिं] यह अन्न और यह दुग्धादि पेय यज्ञके स्थानमें [महिषस्य धारां] अग्निको अर्पण करनेयोग्य घृतकी धाराएं यह सब [अहं इतः आदम्] मैं समाप्तिपर भक्षण करता हूं, यह शेषका सेवन करता हूं । यह [तनूषु आ विशतु] हमारे शरीरोंमें प्रवेश करे [मा गोषु आ] मेरी गौओंमें यह अन्न प्रविष्ट हो, मैं [अमीवां अनिरां सेदिं] रोग उत्पन्न करनेवाले नीरस अन्नसे होनेवाली क्षीणता (जहामि) छोड देता हूं । इस योग्य अन्नसे मैं पुष्ट होता हूं ।

यहां ' महिष ' शब्दका अर्थ ' शक्ति बढानेवाला अन्न ' है । पेय भी हो सकता है । ' सोमरस ' भी अर्थ हो सकता है ।

भैंसा।

प्रजापतिः । मन्त्रं । (वा० य० २४।२८)

आलभते महिषान् बृहस्पतये ॥४३८॥

[बृहस्पतये महिषान् आ लभते] बृहस्पति-देवताके लिए तीन भैंसोंको देता है ।

(अथर्व० २०।१२८।१०-११)

परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥४३९॥
वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।
श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ॥ ४४० ॥

इन दोनों मन्त्रोंमें ' परिवृक्ता, वावाता, महिषी ' ये पद राजाकी रानियोंके वाचक हैं ।

इस तरह यहां ' भैंस और भैंसे ' का प्रकरण समाप्त हुआ है । यहां करीब ४२ मन्त्र दिये हैं इतनेही मन्त्र वेदोंमें हैं जिनमें महिष और महिषीका प्रयोग हुआ है । यहां प्राय पुल्लिंगमें प्रयोग है । और प्रायः वे भैंसेके समान ' सामर्थ्यवान ' ऐसा अर्थ बताते है । ५-६ मन्त्रोंमें ' महिषी ' पद है, परन्तु वह ' राजाकी रानी ' का वाचक है । ' भैंस ' का वाचक पद वेदमन्त्रोंमें नहीं है । और कहीं हुआ भी तो उसके दूधका उपयोग करनेका वर्णन तो कहीं भी नहीं है ।

भैंस और भैंसे तो वेदकालमें थे, परन्तु उनका दूध खानेपीनेके कार्यमें नहीं लाया जाता था, यही इससे सिद्ध होता है । यज्ञके लिए तो सर्वदा गायकाही दूध, घी आदि वर्ता जाता था ।

' गो-ज्ञान-कोश ' में भैंस और भैंसे ' का प्रकरण इसलिए रखा है कि, इससे पाठकोंको पता लग जाय कि, *वैदिक कालमें भैंसका अस्तित्व होनेपर भी भैंसके दूधका उपयोग नहीं होता था । कमसे कम वेदमन्त्रोंमें तो भैंसके* दूध, दही, घी आदिके उपयोगका वाचक एक भी वाक्य नहीं है । वेदमन्त्रोंमें सर्वत्र गौके दूध, दही, घीकाही वर्णन है ।

वैदिक समयमें गोदुग्धका प्रचार था और भैंसके दूधका नामतक नहीं लिया जाता था, यह बतानेके लिएही यह भैंस-प्रकरण इस ' गो-ज्ञान-कोश ' में जान बूझकर रखा है ।

(३१) कल्याण करनेवाली गौवें।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। गावः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।२८।१, अथर्व० ४।२१।१)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥४४१॥

[गावः आ अग्मन्] गायें आ गयी हैं और [उत भद्रं अक्रन्] उन्होंने कल्याण किया है [गोष्ठे सीदन्तु] वे गौवें गोशालामें बैठें, तथा [अस्मे रणयन्] हमें सुख दें, [इह प्रजावतीः पुरुरूपाः स्युः] यहाँ उत्तम बच्चोंसे युक्त और बहुत रूपवाली हो जायें। [इन्द्राय उषसः पूर्वीः दुहानाः] इन्द्रके लिए उषःकालके पूर्व दूध देनेवाली बनें।

गावः भद्रं अक्रन्= गायें कल्याण करती हैं। 'भद्र' शब्दका अर्थ है कल्याण, जो सब प्रकारकी उच्च अवस्थाकी सूचना देनेवाला पद है। गौवें अपनी गोशालामें रहें और उषःकालके पूर्व उनका दूध दुहा जाय। अर्थात् ताजा धारोष्ण दूध प्रतिदिन उषःकालमें मिले। घरकी गौओंका धारोष्ण दूध मिलना चाहिये। यही दूध कल्याणकारी है। गौका घर-घरमें पालन होता रहे, तब गौ कल्याण कर सकती है।

मृगार। द्यावापृथिवी। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ४।२६।५)

ये उस्रिया बिभृथो ये वनस्पतीन्ययोर्वां विश्वा भुवनान्यन्तः।
द्यावापृथिवी भवतं मे स्योने ते नो मुञ्चतमंहसः ॥४४२॥

(ये उस्रियाः ये वनस्पतीन् बिभृथः) जो तुम दोनों गौओं तथा पेडलताओंको धारण करती हो [ययोः वां अन्तः विश्वा भुवनानि] जिन तुम दोनोंके मध्यमें सारे भुवन रखे हैं, ऐसी तुम द्यावा-पृथिवी [मे स्योने भवतं] मेरेलिए सुखकारक बनो और [नः अंहसः मुञ्चतं] हमें पापसे बचाओ।

पृथ्वीपर गौवें हैं इसलिए सुख है। 'द्यावा-पृथिवी' देवता 'पति पत्नी' की सूचक देवता है। द्यौ पिता है, द्युपितर, ज्युपितर ये पद द्यौः पिताके सूचक पद हैं। पृथिवी द्युपिताकी धर्मपत्नी है। 'द्यावा-पृथिवी' यह एक घर है। पृथ्वीसे लेकर द्युलोकपर्यंत यह घर बडा विशाल है। इस घरमें, ये द्यावा-पृथिवी संपूर्ण जगत्‌के माता-पिता अपने इस घरमें, [ये उस्रिया बिभृथ] गौओंकी पालना और पोषणा करते हैं। मन्त्रमें 'उस्रियाः' पद गौओंका वाचक है, और वह मन्त्रमें सबसे प्रथम आया है। इसलिए घरमें सबसे प्रथम गौओंकी पालना करनी चाहिये। विवाहमें कन्याके साथ 'गौ' इसीलिए दी जाती है। घरवाले आबालवृद्ध गौओंका दूध पीयें और हृष्ट-पुष्ट हों। इस गौके पश्चात् 'वनस्पति' पद है जो गौकी पालनाके लिए है। घरकी गाय हो और घरके घासपर पली जाय और उसके दूधपर घरके लोग हृष्टपुष्ट हों। यही जीवन सुखदायी है।

ब्रह्मा। वशिनी। अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।२८।३)

शिवा भव पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवाऽस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि ॥४४३॥

[पुरुषेभ्य शिवा भव] पुरुषोंके लिए हितप्रद हो, [गोभ्यः अश्वेभ्यः शिवा] गायों और घोडोंके लिए कल्याणकारक हो, [अस्मै सर्वस्मै क्षेत्राय] इस सारे क्षेत्रके लिए [शिवा] कल्याण करने-वाली होकर [नः शिवा एधि] हमारे लिए सुख देनेवाली बनो।

जुडवे बच्चे देनेवाली गौ यमिनी कहलाती है। यह गौ मनुष्यो, अन्य गायों और घोडोंके लिए शुभदायक हो यहां ' मनुष्य, गायें और घोडे ' ऐसा क्रम है। मनुष्यके पश्चात् गायका स्थान है, अर्थात् मनुष्यको सबसे प्रथम ' गौ ' चाहिये। क्योंकि वह कल्याण करनेवाली है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्रवायू। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।९०।६)

ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः।

इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥४४४॥

[ये ईशानासः] जो प्रभु होते हुए [नः] हमें [गोभिः अश्वभिः] गायों तथा घोडों [वसुभिः हिरण्यैः] धन एवं सुवर्णोंसे [स्वः दधते] सुख देते हैं, वे [सूरयः] विद्वान् लोग, हे इन्द्र और वायु ! [विश्वं आयुः] सारे जीवनभर [पृतनासु] शत्रुसेनाओंमें [अर्वद्भिः वीरैः] घोडों तथा वीरोंकी सहायतासे [सह्युः] विरोधी दलका पराभव कर दें।

गोभिः स्वः दधते = गायोंसे सुख मिलता है। गायें, घोडे, वसु और सुवर्ण ये सुख देनेवाले पदार्थ हैं। इनमें गायें मुख्य हैं, इसलिए मन्त्रमें उनका प्रथम स्थान है। [विश्व आयुः] सब आयुभर सुख चाहिये, युद्धोंमें विजय चाहिये, तो प्रथम (ईशानासः) प्रभु बनना चाहिये, स्वामी अथवा शासक बनना चाहिये और घरमें गौओंका पालन करना चाहिये।

अथर्वा। रात्रिः। अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।१०।२)

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥४४५॥

[यां उपायतीं रात्रिं धेनुं] जिस आनेवाली रात्रि जैसी रममाण करनेवाली धेनुको देखकर [देवाः प्रतिनन्दन्ति] देव आनन्दित होते हैं, [या संवत्सरस्य पत्नी] जो वर्षकी पत्नीरूप है, [सा नः सुमङ्गली अस्तु] वह हमारे लिए अच्छी मंगल करनेवाली हो।

धेनुः नः सुमङ्गली = गौ हम सबको उत्तम सुख देती है। जैसी रात्रि सुख देनेवाली है वैसीही धेनु अर्थात् गौ सुख देनेवाली है। रात्रिके समय विश्रामके लिए सब लोग घरमें आते हैं, विश्राम पाते हैं, सुखसे सोते हैं और आनन्द प्रसन्न होते हैं। इसी तरह गौसे पालना और पुष्टि मिलती है, यहां ' सुमङ्गली गौ ' है जो घरवालोंको सुख देती है।

(३२) गौमें तेज।

अथर्वा (वर्चस्कामः)। त्विषिः, (बृहस्पतिः)। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ६।३८।२)

या हस्तिनि द्वीपिनि या हिरण्ये त्विषिरप्सु गोषु या पुरुषेषु।

इन्द्रं या देवी सुभगा जजान सा न ऐतु वर्चसा संविदाना ॥ ४४६ ॥

[या त्विषिः] जो तेज [हस्तिनि द्वीपिनि] हाथी और बाघमें हैं [या हिरण्ये, अप्सु, गोषु, पुरुषेषु] जो आभा, सुवर्ण, जल, गौ तथा पुरुषोंमें है, [या सुभगा देवी] जो भाग्ययुक्त दैवी तेज [इन्द्रं जजान] इन्द्रको उत्पन्न कर चुका, [सा वर्चसा संविदाना] वह अन्न तथा बलसे युक्त होकर [नः ऐतु] हमारे समीप आ जाए।

गोषु त्विषिः= गौओंमें तेज है। गौके दूध दही तथा घृतमें (त्विषि) एक विशेष प्रकारका तेज है, जो इनके सेवनसे मनुष्यमें आता है और बढता है। इसलिए सतत गौओंके दूध आदिका सेवन करनेवाला ' त्विषिमान् ' कहलाता है।

सूर्या सावित्री । आत्मा । अनुष्टुप् । (अथर्व० १४।१।३५)

यच्च वर्चो अक्षेषु सुरायां च यदाहितम् ।
यद् गोष्वश्विना वर्चस्तेनेमां वर्चसाऽवतम् ॥ ४४७ ॥

हे अश्विनौ ! [यत् वर्चः अक्षेषु] जो तेज आंखोंमें होता है और [यत् सु-रायां आहितम्] जो संपत्तिमें रखा होता है [यत् च वर्चः गोषु] और जो तेज गायोंमें है [तेन वर्चसा इमां अवतं] उस तेजसे इसकी रक्षा करो।

(अथर्व० १४।२।३६)

येन महानघ्न्या जघनमश्विना येन वा सुरा ।
येनाक्षा अभ्यषिच्यन्त तेनेमां वर्चसाऽवतम् ॥ ४४८ ॥

हे अश्विनौ ! [येन महानघ्न्या जघनं] जिससे बडी गौका जघन [येन वा सुरा] जिससे संपत्ति [येन अक्षाः अभ्यषिच्यन्त] जिससे आँखें भरपूर रहती हैं [तेन वर्चसा इमां अवत] उस तेजसे इस वधूकी रक्षा करो।

(अथर्व० १४।२।५३-५८)

बृहस्पतिनावसृष्टां विश्वे देवा अधारयन् । वर्चो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥४४९॥
" " " । तेजो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥४५०॥
" " " । भगो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥४५१॥
" " " । यशो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥४५२॥
" " " । पयो गोषु प्रविष्टं यत्तेनेमां सं सृजामसि ॥४५३॥
" " " । रसो गोषु प्रविष्टो यस्तेनेमां सं सृजामसि ॥४५४॥

बृहस्पतिने [अवसृष्टां] रची हुई इस दीक्षाको [विश्वे देवाः अधारयन्] सभी देवोंने धारण किया है, [यत् वर्चः... तेजः . भगः . . यशः .. पयः . रस गोषु प्रविष्टः] जो बल, तेज, भाग्य, यश, दूध और रस गौओंमें प्रविष्ट हो चुके हैं [तेन इमां सं सृजामसि] उससे इसको संयुक्त करते हैं।

गौओंमें तेज हैं, इसलिए गोरसका सेवन करनेवाले तेजस्वी होते हैं। यहां 'अक्ष' और 'सुरा' पद विचारणीय हैं। इनके प्रसिद्ध अर्थ क्रमशः 'जूवेके पास' और 'शराब' हैं। पर इन मंत्रोंमें ये अर्थ नहीं है ऐसा हमारा मत है। यहां 'अक्ष' पद नेत्रवाचक है क्योंकि शरीरमें नेत्रही अधिक तेजस्वी है और 'सुरा' पद 'सुर-ऐश्वर्ये' धातुसे उत्पन्न होनेके कारण सुरा पद ऐश्वर्यवाचक है। विशेष ऐश्वर्य, विशेष धन, विशेष संपत्तिमें भी एकप्रकारका तेज रहता है। जिसके पास ऐश्वर्य होता है वह भी तेजस्वी होता है। यह तेज गौ, गौका दूध तथा गौका घृत आदिमें रहता है। यह तेज मुझे प्राप्त हो अर्थात् मैं इस तेजसे तेजस्वी बनूं।

(३३) गौ और बैल हमारे समीप रहें।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । मरुतः । जगती । (ऋ० १।१६८।२)

वम्रासो न ये स्वजाः स्वतवस इषं स्वरभिजायन्त धूतयः ।
सहस्रियासो अपां नोर्मय आसा गावो वन्द्यासो नोक्षणः ॥ ४५५ ॥

[ये] जो वीर [वम्रासः न] सुरक्षित स्थानके तुल्य सबका संरक्षण करते हैं और जो [स्व-जाः]

अपनी प्रेरणासे कार्य करते है, तथा [स्व-तवसः] अपने बलसे युक्त होनेके कारण [धूतयः] शत्रुओंको विकंपित कर डालते हैं, [ते] वे [इषं] अन्न-प्राप्तिके लिए और [स्वः] उजेला पानेके लिएही [अभिजायन्त] जन्मे पाते हैं, वे [अपां ऊर्मयः न] जलके तरंगोंके समान [सहस्रियासः। सहस्रोंकी संख्यामें विद्यमान होते हुए [गावः उक्षण न] गायों तथा बैलोंके समान [वन्द्यासः आसा] वन्दनीय हो हमारे समीप रहें।

गाव उक्षण वन्धासः आसा— गौवें और बैल वन्दनीय हैं, ये हमारे घरमें रहें। ये सहस्रोंकी संख्यामें हमारे पास रहें। अर्थात् सहस्रों गौवोंकी पालना करनेकी सामर्थ्य हमारेमें हो, जिससे अपने अन्दर (स्वजाः) निजी प्रेरणा रहेगी, (स्वतवस) अपने अन्दर बल रहेगा और (धूतयः) शत्रुको स्थानसे भ्रष्ट कर देनेकी शक्ति भी रहेगी। गौओंसे यह बल प्राप्त हो सकता है।

(३४) नौ या दस गौएँ साथ रखनेवाले।

नोधा गौतमः। इन्द्र। त्रिष्टुप। (ऋ० १।६२।४)

स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३ नवग्वैः।
सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशग्वैः ॥ ४५६ ॥

[नवग्वै दशग्वैः] नौ महिनोंमें और दस महिनोंमें यज्ञ संपूर्ण करनेहारे [सरण्युभिः विप्रैः] योग्य ढंगसे कार्य करनेहारे ज्ञानी [सप्त] सात अंगिरसोंने [सुष्टुभा स्वरेण] मोहक स्वरसे जिनके [स्तुभा स्वर्यः] स्तोत्रोंका गायन किया, [शक्र इन्द्र] हे बलवान इन्द्र ! ऐसे तूने [फलिगं अद्रिं वलं] फलके समीप पहुँचानेवाले पर्वतपर होनेवाले वल राक्षसको केवल [रवेण] आवाजसेही [दरयः] फाड दिया।

अंगिरसोंने इन्द्रके सामोंका गायन किया और उस इन्द्रने पहाडी दुर्गके सहारे रहनेवाले वल दैत्यको मात्र अपनी गर्जनाहीसे परास्त किया।

नवग्व— नौ गायें समीप रखनेवाले (या नौ महिनोंमें समाप्त होनेवाला यज्ञ करनेवाले।)
दशग्व— दस गौओंका पालन करनेहारे (या दस मासतक प्रचलित रहनेवाले यज्ञको निभानेवाले।)
' नव-गु ' और ' दश-गु ' ये पद नौ और दस गौओंकी पालना करनेवालोंके वाचक हैं।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। इन्द्र। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।३३।६)

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन् ॥ ४५७ ॥

[अन्-अवद्यस्य] दोषरहित इन्द्रकी [सेनां अयुयुत्सन्] सेनासे जूझनेके लिए उसके शत्रु इच्छा दर्शाने लगे, तब [नवग्वाः क्षितयः] नौ गायें रखनेवाले लोगोंने इन्द्रको [अयातयन्त] प्रोत्साहित किया, शत्रुवध करनेके लिए सचेष्ट बन जानेका हौसला बढा दिया। उसके पश्चात् [निरष्टाः] इन्द्रके द्वारा परास्त हुए वे शत्रु [चितयन्त] चिंता करने लगे और वे [प्रवद्भिः] नीचेके मार्गोंसे [इन्द्रात् आयन्] इन्द्रसे दूर भाग गये। इस समय इनकी दशा [वृषायुधः] बलवान्से लडनेवाले [वध्रयः न] नपुंसकोंके तुल्य हुई, अर्थात् उनका पराभव पूरी तरह हो गया।

यहाँपर ' नव-ग्वाः ' पद है और अर्थ है, (१) नौ गायोंका परिपालन करनेवाले, (२) नयीं गायें रखनेवाले (३) नौ महिनोंतक दीर्घ सत्र करनेहारे। नौ गौओंका पालन करनेवाले लोगोंका सहाय्यक इन्द्र होता है, कमसे

कम घरमें नौ गायें अवश्यही रहें। इस पदका वास्तविक अर्थ है नौ मासतक होनेवाला यज्ञ निभानेवाला। अन्य अर्थ लाक्षणिक समझने चाहिये। नौ मासतक चलनेवाला सत्र जो करते हैं उनके पास नौ गौवें तो अवश्यही चाहिये। परन्तु उनको इससे कई गुना अधिक भी गौवें लगती होंगी।

सरमा देवशुनी ऋषिका। पणयो देवता। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१०८।८)

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः।
त एतमूर्वं वि भजन्त गोनामथैतद्वचः पणयो वमन्नित् ॥ ४५८॥

(इह) इधर (सोमशिता) सोमपानसे तीक्ष्ण बने हुए (नवग्वा अंगिरसः) नौ गाय रखनेवाले अंगिरस नामक ऋषि, जिनमें अयास्य प्रमुख हैं, (आ गमन्) आयेंगे, (एतं गोनां ऊर्वं) गायोंके इस विशाल समूहको (ते वि भजन्त) वे आपसमें बाँट लेंगे (अथ) बादमें, हे पणिओ! (एतत् वचः वमन् इत्) यह जो तुम्हारा कथन है उसे तुम छोड दोगे।

नवग्वाः गोनां ऊर्वं वि भजन्त= नौ मास चलनेवाला सत्र करनेवाले अंगिरस ऋषियोंने गौओंके समूहको आपसमें बाट लिया। 'नवग्व' पद प्रथम नौ गौओंकी पालना करनेवालोंका वाचक था, पश्चात् दीर्घ सत्र करनेवालोंका वाचक हुआ और तत्पश्चात् अंगिरसोंकी एक शाखाका वाचक माना गया है। ये नवग्व गौपालनमें बडे कुशल थे।

(३५) गौओंसे परिपूर्ण होना।

अथर्वा। सावित्री, सूर्यः, चन्द्रमा। आस्तारपङ्क्तिः। (अथर्व० ७।८१।४)

दर्शोऽसि दर्शतोऽसि समग्रोऽसि समन्तः।
समग्रः समन्तो भूयासं गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ४५९ ॥

(दर्शः असि) तू दर्शनीय है, तू (दर्शतः असि) दर्शनके लिए योग्य है। (सं अन्तः समग्रः असि) तू सब अन्तोंसे समग्र है, (गोभिः अश्वैः प्रजया पशुभिः गृहैः धनेन) गौवें, घोडे, संतान, पशु, घर तथा धनसे मैं (समन्तः समग्रः भूयासं) अन्ततक पूर्ण हो जाऊं।

गोभिः समन्तः समग्रः भूयासं= गौओंसे चारों ओरसे परिपूर्ण होकर मैं समग्र हो जाऊं। 'समग्र' होनेका अर्थ है सम्पूर्ण अथवा परिपूर्ण होना। जिसमें किसी तरहकी न्यूनता नहीं है उसे 'समग्र' कहते हैं। गौवें, घोडे, संतान, पशु, घर और धनसे मनुष्य समग्र होता है। इन सबमें 'गौवों' का स्थान प्रथम है। यदि अन्य कुछ भी न हो तो न सही, परन्तु गौवें तो अवश्यही रहें यह भाव इस मंत्रमें स्पष्ट है।

(३६) गायोंके साथ बढना।

अथर्वा। सावित्री, सूर्य, इन्द्र। सम्राडास्तारपङ्क्तिः। (अथर्व० ७।८१।५)

योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तस्य त्वं प्राणेना प्यायस्व।
आ वयं प्याशिषीमहि गोभिरश्वैः प्रजया पशुभिर्गृहैर्धनेन ॥ ४६० ॥

[यः अस्मान् द्वेष्टि] जो अकेला हम सबका द्वेष करता है, [यं वयं द्विष्मः] जिस अकेलेका हम सब द्वेष करते हैं [तस्य प्राणेन आ प्यायस्व] उसके प्राणसे तू बढ जा, [वयं] हम [गोभिः अश्वैः प्रजया, पशुभिः गृहैः धनेन आ प्याशिषीमहि] गायों, घोडों, प्रजा, पशुओं, घरों तथा धनसे हम बढेंगे।

वयं गोभिः आ प्यांशिषीमहि = हम गायोंके साथ उन्नतिको प्राप्त हो जायेंगे। यहां भी पूर्व मन्त्रकी तरह गौओंको प्रथम स्थान है। मानवकी उन्नति गौवे, घोडे, संतान, पशु, घर और धनसे होती है। पर इन सबमें गौवें मुख्य हैं।

(३७) अल्प बुद्धिवाला मानवही गायको दूर करेगा।

जमदग्निर्भार्गव । गौ. । त्रिष्टुप् । (ऋ० ८।१०१।१६)

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम् ।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥ ४६१ ॥

(विश्वाभिः धीभिः) सभी बुद्धियों और कर्मोंसे (उपतिष्ठमाना) सेवित, (देवी) देवतारूपी (वचो विदं वाचं उदीरयन्तीं) भाषण जाननेयोग्य वाणीको कहती हुई (देवेभ्यः परि आ ईयुषी) देवोंके निकट जानेवाली (मा आ) मेरे पास आनेवाली (गां) गायको (दभ्रचेताः मर्त्यः) अल्प बुद्धिवाला मानव (अवृक्त) दूर छोड देगा।

दभ्रचेताः मर्त्यः गां अवृक्त= अल्प बुद्धिवाला मानवही समीप आनेवाली गायको दूर करेगा। कोई बुद्धिवान कभी गायको अपने पाससे दूर नहीं करेगा। क्योंकि गाय सब प्रकारसे मानवोंकी उन्नति करनेवाली है। गायको दूर करनेका अर्थ उन्नतिकोही दूर करना है। भला कौन सुविचारी मानव अपनी उन्नतिकोही दूर करनेकी चेष्टा करेगा ? कोई नहीं करेगा।

(३८) यज्ञ और गौएँ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्र, ऋतं वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।२३।९)

ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति पुरूणि चन्द्रा वपुषे वपूंषि ।
ऋतेन दीर्घमिषणन्त पृक्ष ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः ॥४६२॥

(वपुषे) सुदृढ शरीरवालेके लिए (ऋतस्य पुरूणि) ऋतके बहुतसे (चन्द्रा) आनन्द देनेवाले (धरुणानि) धारक शक्तिसे युक्त (वपूंषि सन्ति) शरीर होते हैं, (दीर्घं पृक्षः) विशाल अन्नको (ऋतेन इषणन्तः) यज्ञसे पाना चाहते हैं, (गाव ऋतेन) गौएँ यज्ञसे पाना चाहते हैं, (गावः ऋतेन) गौएँ यज्ञके साथ (ऋतं आ विवेशुः) यज्ञमें प्रविष्ट हो चुकी हैं।

यज्ञ करनेसे गौवें प्राप्त होती और बढती है। सब गौवें यज्ञके लिएही समर्पित होती है। सब यज्ञ गौओंसेही सिद्ध होते हैं, यज्ञसे मनुष्यकी उन्नति होती है। इसलिए गौओंको पास रखना मनुष्यके हितके लिए अत्यंत आवश्यक है।

(३९) गायकी संगति।

पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।४४।१)

तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥४६३॥

हे अश्विनौ ! [वां तं रथं] तुम दोनोंके उस रथको, जो [पृथुज्रयं] विख्यात वेगवाला [पुरुतमं] अत्यन्त विशाल, [वसूयुं] धनसे युक्त [गिर्वाहसं] भाषणोंको दूरतक पहुँचानेवाला तथा [गोः संगतिं] गायोंको एक स्थानमें इकट्ठा करनेवाला है और [यः वन्धुरायुः] सुन्दर या सुदृढ लठवाला होकर [सूर्यां वहति] सूर्य कन्याको ढोता है, उसे [वयं अद्य हुवेम] हम आज बुलाते हैं।

गो॰ संगाति = गौओंको इकट्ठा करना। गौओंको चरनेके समय इकट्ठा चरने देना चाहिये। गोशालामें सबको एक स्थानपर रखना चाहिये। गौओंको तितर-बितर होने न देना। इससे गौओंकी पालना करनेमें सुविधा रहती है और सब गौओंपर अच्छी तरह निगरानी भी रहती है।

(४०) दस धेनुओंसे इन्द्रको मोल देना।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। अनुष्टुप्। (ऋ० ४।२४।१०)

क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः। यदा वृत्राणि जङ्घनदथैनं मे पुनर्ददत् ॥४६४॥

[मम इम इन्द्र] मेरे इस इन्द्रको [कः] भला कौन [दशभि धेनुभि] दस गौएँ देकर [क्रीणाति] मोल लेता है ? [यदा] जब वह [वृत्राणि जङ्घनत्] वृत्रोंको मार डालता है, (अथ) तब (एनं मे) इसे मुझे [पुनः ददत्] फिर दे डाले।

दशभि धेनुभि मम इमं इन्द्रं कः क्रीणाति = दस गौओंसे मेरे इस इन्द्रको कौन खरीदता है ? (यहां इन्द्रकी मूर्तिका खरीदना प्रतीत होता है। ' मम इन्द्रं ' = मेरे इन्द्रको अर्थात् मेरी इन्द्रकी मूर्तिको कौन भला दस गौएं देकर खरीद सकता है ?) इन्द्रकी मूर्तिका मूल्य यहां दस गौएँ है। वन्हाडमें गौओंको ' धन या धण ' कहते हैं। अर्थात् गौवें धन है जिससे वस्तुओंका क्रय और विक्रय होता है। गौवें क्रयविक्रयका साधन थी वह बात इससे सिद्ध होती है।

(४१) उत्तम गौओंसे सुवीर्यकी प्राप्ति।

प्रस्कण्वः काण्वः। उषा। सतोबृहती। (ऋ० १।४८।१२)

विश्वान् देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम्।
साऽस्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥४६५॥

हे उषादेवी ! (त्वं अन्तरिक्षात्) तू अन्तरिक्षमेंसे (विश्वान् देवान्) समूचे देवोंको (सोमपीतये) सोमपानके लिए हमारे यज्ञमें [आ वह] ले आ। [हे उषः] हे उषादेवी ! (सा त्वं) ऐसा कार्य करनेहारी तू [गोमत् अश्वावत्] गौओं तथा घोडोंसे युक्त तथा (सुवीर्यं उक्थ्यं) उत्तम वीरोंसे पूर्ण स्तोत्र या यश (अस्मासु धाः) हममें रख दे।

यशके साथही साथ वीर संतान, गौएँ तथा घोडे भी हमें मिल जायँ।

गोमत् सुवीर्यं अस्मासु धाः = गौओंसे युक्त वीर्य हम सबमें रहे। गौओंसे युक्त सुवीर्य चाहिये। गायका दूध ' सद्यः शुक्रकरं ' तत्काल शुक्र उत्पन्न करनेवाला है, इससे अतिशीघ्र वीर्य उत्पन्न होता है। इसलिए सुवीर्यकी प्राप्तिके लिए गौओंकी पालना घरमें अवश्य करनी चाहिये, जिससे घरके लोग धारोष्ण दूध पीयेंगे और सुवीर्यसे संपन्न होंगे।

(४२) गाय दूधसे वृद्धि करती है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।६८।९)

एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४६६॥

(सुमन्मा एष स्यः कारुः) अच्छी बुद्धिवाला यह वही विख्यात कार्यशील पुरुष (उषसां अग्रे बुधानः) पौफटनेके पहले जागता हुआ (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे स्तुति करता है, (तं) उसे

(इषा पयोभिः) अन्नसे और दूधसे (अघ्न्या वर्धत्) अवध्य गाय वृद्धिंगत करे। तुम कल्याणकारक साधनोंसे हमेशा हमारा पालन करो।

अघ्न्या पयोभिः तं वर्धत्= अवध्य गौ दूधसे उसकी वृद्धि करती है। दूधसे शरीरकी पुष्टि होती है, यह शरीरकी वृद्धि है। जैसी गायके दूधसे शरीरकी वृद्धि होती है, वैसी किसी अन्य अन्नसे नहीं हो सकती, इतना महत्त्वपूर्ण पोषक द्रव्य गायके दूधमें है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।२१।१)

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥ ४६७ ॥

(गोऋजीकं देवं अन्धः) गायोंके दूधसे मिश्रित दिव्य अन्न (असावि) उत्पन्न किया है, (ई इन्द्रः) यह इन्द्र (जनुषा अस्मिन् नि उवोच) जन्मसे इसमें मन लगाये बैठे रहता है, हे (हर्यश्व) हरे घोडोंको साथ रखनेवाले वीर ! (त्वा यज्ञैः बोधामसि) तुझे यज्ञोंसे हम सचेत करते हैं, इसलिए (अन्धसः मदेषु) अन्नसेवनसे उत्पन्न आनन्दातिशयमें (नः स्तोमं बोध) हमारे स्तोत्रको समझ ले।

गो-ऋजीकं देवं अन्धः असावि = गायोंके दूध आदिसे मिश्रित दिव्य अन्न अर्थात् सोमरस है। सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है और पश्चात् उसका पान होता है। इसको इस कारण दिव्य अन्न कहते हैं। देवोंके लिए यह अत्यन्त प्रिय होता है।

(४३) गाय संपत्तिका घर है।

ब्रह्मा । ओदनः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ११।१।३४)

यज्ञं दुहानं सदमित् प्रपीनं पुमांसं धेनुं सदनं रयीणाम् ।

प्रजामृतत्वमुत दीर्घमायू रायश्च पोषैरुप त्वा सदेम ॥ ४६८ ॥

(यज्ञं दुहानं प्रपीनं सदं इत्) यज्ञ करनेवाला सदा समृद्ध, (रयीणां सदनं धेनुं) संपत्तिका घर गौ है, उसे (त्वा पुमांसं) तुझ पुरुषके पास (पोषैः प्रजाऽमृतत्वं उत दीर्घं आयुः) पुष्टियोंसे प्रजाकी पुष्टि और उनकी दीर्घ आयु (रायः च उप सदेम) तथा धन लेकर आते हैं।

रयीणां सदनं धेनुं उप सदेम = संपत्तियोंका घरही यह गाय है, इसे हम प्राप्त करते हैं। सब प्रकारकी संपत्ति गौके आश्रयसे रहती है, इसलिए गौको ' रयीणां सदनं ' संपत्तियोंका घर कहा है, यह गौ संतान, पुष्टि, दीर्घायु, धन आदि सब देती है।

(४४) गोधन।

शंयुर्बार्हस्पत्यः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।४४।१२)

उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।

त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वाऽदामान आ दभन् मघोनः ॥४६९॥

[स्तनयन् अभ्राणि इव] गरजता हुआ मेघ बादलोंको जिस तरह उमडाता है, उसी प्रकार इन्द्र [अश्व्यानि गव्या राधांसि] घोडों एवं गायोंके झुण्डके रूपमें धनोंको [उत् इयर्ति] उठा उठा कर दे डालता है, हे इन्द्र ! [त्वं प्रदिवः कारुधायाः असि] तू प्रकर्षसे द्युतिमान तथा स्तोताओंका धारणकर्ता है, कहीं [त्वा] तुझे [मघोनः अदामानः] ऐश्वर्यसंपन्नपर दान न देनेवाले लोग [मा आ दभन्] न दबा बैठें।

गव्या राधांसि= गोरूप धन है। गोसमूह यह बडा भारी धन है। गायोंके आश्रयसे अनेक प्रकारके धन रहते हैं।

सत्यश्रवा आत्रेय. । उषा । पङ्क्तिः । (ऋ० ५।७९।७)

तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह ।

ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ४७० ॥

हे [सुजाते उष] सुन्दर उषा ! [मघोनी] तू ऐश्वर्यसंपन्न है, इसलिए [ये सूरय] जो विद्वान् लोग [नः] हमें [अश्व्या राधांसि भजन्त] घोडों तथा गायोंके झुण्डसे युक्त धनोंको दे डालते है, [तेभ्य] उन्हें [बृहत् यशः] बडा यश [द्युम्नं आ वह] तथा धन दे दो ।

गव्या राधांसि = गौरूपी धन ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । वायु । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।९२।३)

प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।

नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥ ४७१ ॥

हे वायो ! [याभिः नियुद्भिः] जिन घोडियोंको साथ लेकर तू [दाश्वांसं अच्छ] दानीके प्रति [दुरोणे इष्टये] घरमें इष्टि करनेके लिए [प्र यासि] चला आता है, उन्हें साथ लेकर [नः] हमें [सुभोजसं रयिं] उत्तम भोगवाले धन एवं [वीरं गव्य अश्व्यं राधः च] वीरतायुक्त गायों और घोडोंसे परिपूर्ण संपत्तिको भी [नि युवस्व] दे दे ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्राग्नी । गायत्री । (ऋ० ७।९४।९)

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ ४७२ ॥

हे इन्द्र और अग्नि ! [यत् वां] जो तुम दोनोंसे [गोमत् अश्वावत्] गायों और घोडोंसे युक्त [हिरण्यवत् वसु ईमहे] सुवर्णसे पूर्ण धनकी याचना करते हैं [तत् वनेमहि] उसे हम प्राप्त करें।

गव्यं राधः नि युवस्व= गोरूप धन हमें दे दे ।

गोमत् वसु वनेमहि= गौओंसे युक्त धन हम प्राप्त करेंगे ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।६७।९)

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।

प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥ ४७३ ॥

[ये राया] जो धनसे संपन्न होते हैं और उसी कारण [मघदेयं जुनन्ति] ऐश्वर्यका दान प्रेरित करते हैं और [गव्या अश्व्या मघानि पृञ्चन्त.] गायों तथा घोडोंसे पूर्ण धनोंको बाँटते हुए [बन्धुं] बांधवको [सूनृताभि प्र तिरन्ते] सच्ची वाणियोंसे ऊर्जित करते हैं, उन [मघवद्भ्यः असश्चता हि भूतं] ऐश्वर्यसंपन्न लोगोंके लिए अन्य किसी स्थानपर आसक्त न होनेवाले बनो ।

गव्या मघानि पृञ्चन्तः= गायोंके रूपमें धनोंको बाँटते हैं । धन अपने पासही संगृहीत करके नहीं रखने चाहिये, परन्तु उनको जनतामें बाँटना चाहिये, ताकि सब लोग उससे अधिकसे अधिक लाभ उठा सकें ।

नारद काण्व । इन्द्र । उष्णिक् । (ऋ० ८।९३।२२)

कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शंतमः । कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥४७४॥

हे [गिर्वणः] प्रार्थनीय इन्द्र ! [ते स्तोता कदा शंतमः भवाति ?] तेरी स्तुति करनेहारा भला

किस समय अत्यन्त सुखवान बन जाता है? और [कदा] भला कब [न गव्ये अश्व्ये वसौ दध] हमें गायों और घोडोंसे पूर्ण धनमें रख देगा?

न गव्ये वसौ दध = हमें गौरूप धनके साथ रखो।

पर्वत काण्वः। इन्द्र । उष्णिक्। (ऋ० ८।१२।३३)

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः। होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ४७५ ॥

हे इन्द्र! [पूर्वचित्तये] पहलेही विदित होनेके लिए [अध्वरे होता इव] हिंसारहित कार्यमें दानी पुरुषके तुल्य [नः] हमें [सुगव्य] अच्छी गायोंसे युक्त [सु-अश्व्य सुवीर्य] अच्छे घोडोंसे पूर्ण एवं अच्छी वीरतासे युक्त धन [प्र दद्धि] खूब दे दो।

न सुगव्य सवीर्यं प्र दद्धि= हमें उत्तम गौरूप धन तथा उत्तम वीरता दे दो। धनके साथ वीरता चाहिये। वीरता न हो तो केवल धन शत्रुद्वारा छीना जायगा। इसलिए वेदमें धनके साथ वीरताका सम्बन्ध जोडा गया है।

देवातिथि काण्व.। इन्द्र, पूषा वा। सतोबृहती। (ऋ० ८।४।१६)

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।

त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥४७६॥

हे (विमोचन) दुःखसे छुडानेवाले इन्द्र! (भुरिजोः क्षुरं इव) हाथमें थामे हुए उस्तरेके समान (नः सं शिशीहि) हमें ठीक तरहसे तीक्ष्ण कर और [रायः रास्व] धनसंपदाका दान कर (नः तत् उस्रियं वसु) हमारा वह प्रसिद्ध गायोंके स्वरूपका धन (यं त्वं) जिसे तू (मर्त्यं हिनोषि) मानवके प्रति भेज देता है, (त्वे तत् सुवेदं) तुझमेंही भली प्रकार पानेयोग्य है।

उस्रियं वसु मर्त्यं हिनोषि = गौरूप धन प्रभु मानवोंको देता है।

दीर्घतमा औचथ्यः। अश्व । त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१६२।२२)

सुगव्यं नो वाजी स्वश्व्यं पुंसः पुत्राँ उत विश्वापुषं रयिम्।

अनागास्त्वं नो अदितिः कृणोतु क्षत्रं नो अश्वो वनतां हविष्मान् ॥४७७॥

(वाजी) यह घोडा (नः सु गव्य) हमें उत्तम गायोंसे युक्त तथा (विश्व-पुष रयिं) सबका पोषण करनेहारा धन दे डाले, (उत नः सु-अश्व्य) और हमें बढिया घोडोंसे युक्त धन दे दे, (पुंसः) पुरुषोंको तथा (पुत्रान्) बालबच्चोंको (अ-दिति) अवध्य गाय (अनागः त्वं कृणोतु) निष्पाप बना दे। [हविष्मान् अश्वः) हविष्यान्न ढोकर लानेवाला घोडा (नः क्षत्रं वनतां) हमें क्षात्रबल दे डाले, हमारा बल बढाये।

सुगव्यं विश्वपुषं रयिं कृणोतु = उत्तम गायें, जो सबका पोषण करती हैं, वह धन हमारे लिए करे, मिले।
अदितिः अनागाः कृणोतु = अवध्य गौ हमें निष्पाप बना दे।

श्यावाश्व आत्रेय । मरुतः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।५७।७)

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः।

प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥४७८॥

हे वीर मरुतो! [गोमत् अश्वावत्] गायों और घोडोंसे युक्त, [रथवत् चन्द्रवत्] रथ तथा सुवर्णसे भरपूर [सुवीरं राधः] और अच्छे वीर पुत्रोंसे युक्त धन [नः दद] हमें दे डालो।

[रुद्रियासः] तुम महावीरके पुत्र हो, अत [नः प्रशस्ति कृणुत] हमारी समृद्धि कर दो, ताकि [वः दैव्यस्य अवसः भक्षीय] तुम्हारे दिव्य संरक्षणसे हम सुखपूर्वक रहें ।

गोमत् सुवीरं राध न दद = गौओंसे भरपूर, उत्तम वीर जिसके साथ रहते हैं, ऐसा धन हमें दे दो । धनके साथ उत्तम वीर उसकी सुरक्षाके लिए अवश्य चाहिये ।

वत्स काण्व । इन्द्र । गायत्री । (ऋ० ८।६।९)

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥४७९॥

हे इन्द्र ! हम [तं गोमन्त अश्विनं] उस गोधनयुक्त घोडोंवाली [रयिं] धनसंपदाको और [पूर्वचित्तये ब्रह्म] दूसरोंसे पहले ज्ञान प्राप्त करनेके लिए ब्रह्मको [प्र नशीमहि] प्रकर्षसे प्राप्त करें ।

गोमन्त रयिं प्र नशीमहि = गौओंसे युक्त धनको हम प्राप्त करें ।

तिरश्चीरांगिरसः । इन्द्र । अनुष्टुप् । (ऋ० ८।९५।४)

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।

सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥४८०॥

हे इन्द्र ! [यः त्वा सपर्यति] जो तेरी पूजा करता है, उस [तिरश्च्याः हवं श्रुधि] तिरश्चीकी पुकारको सुन ले, क्योंकि तू [महान् असि] बडा है, इसलिए [सुवीर्यस्य गोमत रायः] अच्छी वीर संतानसे युक्त और गायोंसे [पूर्धि] पूर्ण धनसंपदाके दानसे हमें पूर्ण कर ।

गोमतः राय पूर्धि = गायोंसे युक्त धनोंसे हमें परिपूर्ण कर । हमारे पास उत्तम गोधन रहे ।

प्रस्कण्वः काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।४९।९)

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।

यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥४८१॥

हे [मघवन् इन्द्र], ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र ! [ते एतावत गोमत सुम्नस्य ईमहे] तेरे इतने गोधन-युक्त सुखको हम चाहते हैं, [यथा] जैसे [मेध्यातिथिं प्र अव] मेध्यातिथिको तूने अच्छी तरह सुरक्षित रखा, [यथा नीपातिथिं धने] जैसे नीपातिथिको धन पानेके लिए बचाया था, वैसेही हमारे लिए भी कर ।

गोमत. सुम्नस्य ईमहे = गायोंसे सुख मिलता है ।

कृष्ण आङ्गिरसः । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।४२।७)

आराच्छत्रुमप बाधस्व दूरमुग्रो यः शम्बः पुरुहूत तेन ।

अस्मे धेहि यवमद्गोमदिन्द्र कृधी धियं जरित्रे वाजरत्नाम् ॥४८२॥

हे (पुरुहूत इन्द्र) बहुतोंद्वारा बुलाये हुए इन्द्र ! (य उग्रः शंबः) जो भीषण वज्र है (तेन शत्रुं) उससे शत्रुको (आरात्) हमारे समीपसे (दूरं अप बाधस्व) दूर हटा दे, (अस्मे) हमें (यवमत् गोमत् धेहि) जौ एवं गौओंसे युक्त धन दे दो, और (जरित्रे वाजरत्नां धियं कृधि) प्रशंसकके लिए रमणीय अन्नवाले कर्मका निर्माण करो अथवा वैसी सुबुद्धि दे दो ।

गोमत् अस्मे धेहि = गौओंसे परिपूर्ण धन हमें दो ।

सुकक्ष आङ्गिरसः । इन्द्र । गायत्री । (ऋ० ८।९३।३)

स न इन्द्रः शिवः सखाऽश्वावद्गोमद्यवमत् । उरुधारेव दोहते ॥४८३॥

(नः) हमारा (सः शिवः सखा) वह कल्याणकारी मित्र (उरुधारा इव) मानों बडी विशाल

धारा या प्रवाहके पास हो, इस तरह (अश्वावत् गोमत् यवमत् दोहते) घोडा, गायों और जौसे पूर्ण धनसंपदाका दोहन करता है।

गोमत् दोहते = गौओंसे परिपूर्ण धनसंपदाका वह दोहन करता है, गोधनको प्राप्त करता है।

प्रस्कण्वः काण्वः। इन्द्रः। सतोबृहती। (ऋ० ८।४९।१०)

यथा कण्वे मघवन् त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे।

यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥४८४॥

हे [मघवन् इन्द्र] ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र! [यथा] जिस प्रकार कण्व, त्रसदस्यु तथा [दशव्रजे] दस गायोंकी गोठें रखनेवाले पक्थको और उसी प्रकार ऋजिश्वा एवं [गोशर्ये] जीर्ण गाय रखनेवाले शर्युको [गोमत् हिरण्यवत्] गाय एवं सुवर्णसे युक्त धन [असनोः] तू दे चुका, वैसेही हमें भी दे डाल।

गोमत् हिरण्यवत् असनो = गौओं और सुवर्णसे युक्त ऐश्वर्य तू दे चुका है। हमें भी वही चाहिये।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। बृहस्पतिः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१९०।८)

एवा महस्तुविजातस्तुविष्मान् बृहस्पतिर्वृषभो धायि देवः।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥४८५॥

(महः) महात्मा, (तुविजातः) बहुत लोगोंका हितकर्ता, (तुविष्मान्) शक्तिसंपन्न, (वृषभ देव) बलवान तथा तेजस्वी बृहस्पति है, उसीका (एव धायि) ध्यान कर रहे हैं; (सः स्तुतः) वह प्रशंसित होनेपर (नः) हमें (वीरवत् गोमत्) वीरों और गौओंसे पूर्ण (धातु) बना दे, हम (इषं) अन्न (वृजन) बल तथा (जीरदानुं) दीर्घ जीवन (विद्याम) प्राप्त करें।

गोमत् वीरवत् धातु = गौओंसे तथा वीरोंसे युक्त धन हमें प्राप्त हो।

मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।२।२४)

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः। वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥४८६॥

[यः स्तोतृभ्यः जरितृभ्यः] जो स्तोताओं और प्रशंसकों [अव्यथिषु] तथा दुःखी न होनेवालोंको [अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं वेदिष्ठ] घोडों तथा गायोंसे युक्त अन्नको खूब पहुँचाता है।

गोमन्तं वाजं = गायोंसे युक्त धन वा अन्न हमें प्राप्त हो।

द्युम्नो विश्वचर्षणिरात्रेयः। अग्निः। अनुष्टुप्। (ऋ० ५।२३।२)

तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर।

त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥ ४८७ ॥

हे अग्ने! [सहस्वः] बलवन्! [तं पृतनाषहं] उस शत्रुसेनाके पराभवकर्ता [रयिं आ भर] धन ला दे, क्योंकि [त्वं हि] तू तो [गोमतः वाजस्य दाता] गौओंसे युक्त अन्नका दाता एवं [सत्यः अद्भुतः] सच्ची और अनोखी सामर्थ्यसे पूर्ण है।

गोमतः वाजस्य दाता = गायोंसे युक्त धन, बल या अन्नका दाता अग्नि है। गायोंसे दूधरूपी अन्न मिलता है, इस अन्नसे बल बढता है और बल होनेसे धन मिलता है। यह सब गौसे होता है।

विश्वमना वैयश्वः। मित्रावरुणौ। उष्णिक्। (ऋ० ८।२५।२०)

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः। ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ ४८८ ॥

(दीर्घप्रसद्मनि) बहुत लंबे, ऊँचे स्थानमें (वचः) स्तुतिमय भाषण करो, क्योंकि वह (गोमत

वाजस्य ईशे) गोधनयुक्त अन्नका स्वामी है और (अविषस्य पित्व दावने हि ईशे) विषरहित अर्थात् निर्दोष, पुष्टिकारक अन्नके दानमें भी प्रभुत्व रखता है।

गोमत वाजस्य ईशे = गौओंसे युक्त धनका तथा अन्नका वह स्वामी है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । उषा । सतोबृहती । (ऋ० ७।८१।६)

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः ।

चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥ ४८९ ॥

[सूरिभ्यः अमृतं वसुत्वनं श्रव) विद्वानोंके लिए, अमृत, धनसे युक्त अन्न (अस्मभ्यं गोमतः वाजान्) हमें गायोंसे युक्त अन्न दे दे; (मघोन चोदयित्री) धनवानोंको प्रेरणा करती हुई, (सूनृतावती उषा) सत्य एवं प्रिय वाणीसे युक्त उषा (स्रिध अप उच्छत्) शत्रुओंको दूर हटा दे।

गोमत वाजान् चोदयित्री = गायोंसे युक्त अन्न अर्थात् दूध, दही, घी आदिसे मिश्रित अन्न देनेवाली उषा है। उष कालमें गायें दुही जाती हैं इसलिए गोरसकी प्रेरणा करनेवाली उषा है।

उत्कील कात्य । अग्निः । बृहती । (ऋ० ३।११।१)

अयमग्निः सुवीर्यस्येशे महः सौभगस्य ।

राय ईशे स्वपत्यस्य गोमत ईशे वृत्रहथानाम् ॥ ४९० ॥

(अयं अग्निः) यह अग्नि (मह सुवीर्यस्य सौभगस्य) बडे पराक्रमी भाग्यका (ईशे) अधिपति है, उसी प्रकार (गो-मतः सु-अपत्यस्य) गायोंसे युक्त उत्कृष्ट सन्तानवाले (राय) धनका (ईशे) प्रभु है और (वृत्र-हथानां ईशे) शत्रुका विनाश करनेकी क्षमता रखता है।

गोमत सु-अपत्यस्य रायः ईशे = वह प्रभु गौओंसे युक्त और उत्तम संतानसे युक्त धनका स्वामी है। गौओंसे उत्तम दूध मिलता है, दूधसे पुष्टि होती है, बल बढता है, इस कारण उत्तम संतान होती है। यह सब देनेवाली गौही है।

वसुश्रुत आत्रेय । अग्नि । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४।११)

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।

अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥ ४९१ ॥

हे [जातवेद, अग्ने] उत्पन्न वस्तुओंको बतलानेहारे अग्ने ! [यस्मै सुकृते] जिस शुभ कार्यकर्ताके लिए [त्वं] तू [स्योन लोकं कृणवः] सुखकारक लोकको निर्माण करता है, [स] वह [स्वस्ति] सकुशल [अश्विनं गोमन्तं] घोडोंसे तथा गायोंसे पूर्ण [वीरवन्तं पुत्रिणं रयिं] वीरोंसे युक्त और संतानसे भरे धनको [नशते] प्राप्त करता है।

स गोमन्तं वीरवन्तं पुत्रिणं रयिं नशते = वह गौओंसे युक्त वीरोंसे युक्त तथा पुत्रोंसे युक्त धनको प्राप्त करता है। गौओंसे दूध, दूधसे पुष्टि, पुष्टिसे बल, बलवीर्यसे उत्तम पुत्र, उत्तम पुत्रही वीर बनते हैं और उनसे धन प्राप्त होता है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।२३।६)

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।

स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४९२ ॥

(वज्रबाहुं) हाथमें वज्र धारण करनेहारे (वृषणं इन्द्रं एव) बलवान इन्द्रकोही (वसिष्ठास-

अर्कैः अभि अर्चन्ति) वसिष्ठ-वंशके लोग अर्चन करनेयोग्य स्तोत्रोंसे पूजा करते हैं, (सः स्तुतः) वह इन्द्र प्रशंसित होनेपर (नः वीरवत् गोमत् धातु) हमें वीर संतान तथा गायोंसे परिपूर्ण धन दे दे और (यूय) तुम (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें कल्याणकारक साधनोंसे हमेशा सुरक्षित रखो।

सः नः गोमत् धातु = वह प्रभु हमें गौओंसे युक्त धन दे।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। इन्द्र। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।२७।५)

नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय।

गोमदश्वावद्रथवत् व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ४९३॥

हे इन्द्र! (मघाय ते मनः आ ववृत्याम) ऐश्वर्यका दान करनेके लिए तेरे मनको हम प्रवृत्त करते हैं, इसलिए (नु) तुरन्तही (नः राये) हमें धन मिल जायँ इस हेतुसे (वरिवः कृधि) धनका सृजन कर; (यूयं) तुम (गोमत् अश्वावत् रथवत् व्यन्तः) गाय, घोडे, रथसे पूर्ण धनको देते हुए (नः स्वस्तिभिः सदा पात) हितकारक साधनोंसे हमेशा हमारी रक्षा करो।

यूय गोमत् व्यन्तः नः पात = तुम गौओंसे युक्त धन देकर हमारा संरक्षण करो।

ब्रह्मातिथिः काण्व। अश्विनौ। गायत्री। (ऋ० ८।५।९—१०)

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा। वि पथः सातये सितम्॥ ४९४॥

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम्। वोळ्हमश्वावतीरिषः॥ ४९५॥

हे अश्विनौ! [अहर्विदा] तुम दोनों दिनको जाननेहारे हो, [उत नः] और हमें [गोमतीः इषः] गायोंसे पूर्ण अन्न-सामग्रियाँ [उत सातीः] एवं बाँटनेयोग्य धन दे दो। [सातये पथः वि सितं] धनप्राप्तिके लिए मार्ग विशेष रूपसे निर्माण करो।

[नः] हमारे लिए [गोमन्तं सुवीरं] गायोंसे पूर्ण वीरसंतानयुक्त [सुरथं रयिं आ] अच्छे रथसे सहित धनसंपदाको दे दो और [अश्वावती इषः वोळ्हं] घोडोंसे पूर्ण अन्न हमें पहुँचा दो।

गोमती इषः। गोमन्तं सुवीरं रयिं। = गौओंसे युक्त अन्न तथा उत्तम वीर जहां होते हैं, ऐसा धन हमें दो।

विश्वमना वैयश्व। अग्नि। उष्णिक्। (ऋ० ८।२३।२९)

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः। महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि॥ ४९६॥

हे अग्ने! [त्वं सुप्रतूः हि असि] तू अच्छा दान देनेवाला है, इसलिए [त्वं] तू [गोमतीः इषः] गायोंसे युक्त अन्नसामग्रियाँ और [महः रायः सातिं] बडे भारी धनकी देनको [नः अपा वृधि] हमारे लिए खोलकर रख दे।

गोमतीः इषः रायः नः अपा वृधि = गायोंसे युक्त अन्न और धनसंपदा हमें दे।

ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पतिः। विराड् जगती। (अथर्व० ३।१२।२)

इहैव ध्रुवा प्रति तिष्ठ शालेऽश्वावती गोमती सूनृतावती।

ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वत्युच्छ्रयस्व महते सौभगाय॥ ४९७॥

हे घर! [अश्वावती गोमती सूनृतावती] घोडों, गायों एवं मधुर भाषणोंसे युक्त होकर तू [इह एव ध्रुवा प्रति तिष्ठ] इधरही स्थिर रह और [ऊर्जस्वती घृतवती पयस्वती] अन्न, घृत एवं दूधसे पूर्ण हो, [महते सौभगाय उच्छ्रयस्व] बडे सौभाग्यके लिए ऊंचा बनकर खडा रह।

गोमती पयस्वती घृतवती (शाला)= घर ऐसा हो कि जिसमें गौएँ बहुत हों, दूध और घी पर्याप्त मात्रामें रहे।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अश्विना । त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।७२।१)

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।

अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥ ४९८ ॥

हे सत्ययुक्त अश्विनो ! [गोमता अश्वावता] गायों तथा घोडोंसे युक्त [पुरुश्चन्द्रेण रथेन आ यात] बहुत धनवाले रथपरसे इधर आओ, [स्पार्हया श्रिया] स्पृहणीय शोभा तथा [तन्वा शुभाना] शरीरसे शोभायमान [वां] तुम्हे [विश्वा नियुतः अभि सचन्ते] सारी स्तुतियाँ प्राप्त होती हैं।

गोमता आ यात = गोधनके साथ आओ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि । उषा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।७५।८)

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।

मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ४९९ ॥

हे उषे ! [नः नु] हमें अभी तुरन्त [गोमत् अश्वावत्] गायों तथा घोडोंसे युक्त [वीरवत् पुरुभोज रत्न] वीर संतानसे पूर्ण, विविध भोगोंवाले रमणीय धन [अस्मे धेहि] हममें रख दे। [नः बर्हिः] हमारे यज्ञको [पुरुषता निदे मा कः] पुरुषोंमें निन्दनीय न कर और [यूयं नः] तुम हमें [स्वस्तिभिः सदा पात] कल्याणोंसे हमेशा सुरक्षित रख।

गोमत् रत्नं अस्मे धेहि = गायोंसे युक्त धन हमें दो।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि उषाः । त्रिष्टुप । (ऋ० ७।७७।५)

अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्र तिरन्ती न आयुः ।

इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥ ५०० ॥

हे [विश्व-वारे उषः देवि] सबसे वरणीय उषादेवी ! [न आयु प्रतिरन्ती] हमारे जीवनको सुदीर्घ बनाती हुई [श्रेष्ठेभिः भानुभि] उच्च कोटिके किरणोंसे [अस्मे वि भाहि] हमारे लिए विशेषतया प्रकाशमान हो और [न] हमें [गोमत् अश्वावत् रथवत् राधः च इष च] गायों तथा घोडों एवं रथसे पूर्ण धन और अन्न [दधती] धारण करती हुई चली आ।

गोमत् राध नः दधती = गौओंसे युक्त धन हमें दे।

• नाभानेदिष्ठो मानव । विश्वे देवा, अङ्गिरसो वा । जगती । (ऋ० १०।६२।२)

य उदाजन् पितरो गोमयं वस्वृतेनाभिन्दन्परिवत्सरे वलम् ।

दीर्घायुत्वमङ्गिरसो वो अस्तु प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः ॥ ५०१ ॥

(ये पितरः) जो पितर (गो-मयं वसु) गौओंसे पूर्ण धन- गोधन (उत् आजन्) अँधेरेसे ऊपर उठा चुके और (परिवत्सरे वलं) पूर्ण वर्षमें वलको (ऋतेन अभिन्दन्) ऋतके आधारसे तोड चुके, ऐसे हे अंगिरसो ! (व दीर्घायुत्व अस्तु) तुम्हें दीर्घ जीवन प्राप्त हो और (सुमेधस) अच्छी बुद्धि-वाले तुम (मानव प्रति गृभ्णीत) मानवका स्वीकार करो।

गोमयं वसु = गायें जहां विपुल है ऐसी संपदा भी उत्तम धन है। अथवा 'गोमयं' गोबर भी धनही है। इस खादसे विपुल धान्य उत्पन्न होता है, इसलिए इसे धन कहा है।

पणयोऽसुरा । सरमा-देवता । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१०८।७)

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्न्यृष्टः ।

रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्थ ॥५०२॥

हे सरमे ! (अद्रिबुध्नः) पहाड़ोंसे बँधा हुआ (गोभिः अश्वेभिः वसुभिः) गायों, घोड़ों तथा धनसे (नि-ऋष्टः) पूर्णतया भरा हुआ (अयं निधिः) यह धन-भण्डार है, (तं) उसे (ये सुगोपाः पणयः) जो अच्छे रक्षक पणि हैं, (रक्षन्ति) बचाते हैं, इसलिए (रेकु पदं) सशङ्कित स्थानतक तू (अलकं आ जगन्थ) व्यर्थही आ गयी है।

गोभिः वसुभिः अयं निधिः, सुगोपाः रक्षन्ति = गौरूप धनसे परिपूर्ण धन भण्डार है, उसका रक्षक इसकी रक्षा कर रहे हैं।

इन्द्रो मुष्कवान् । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १०।३८।२)

स नः क्षुमन्तं सदने व्यूर्णुहि गोअर्णसं रयिमिन्द्र श्रवाय्यम् ।

स्याम ते जयतः शक्र मेदिनो यथा वयमुश्मसि तद्वसो कृधि ॥५०३॥

हे [शक्र इन्द्र] शक्तिमन् इन्द्र ! [नः सदने] हमारे घरमें [गो-अर्णसं श्रवाय्यं रयिं] गायोंसे भरपूर तथा सुननेयोग्य धनको जो कि [क्षुमन्तं] अन्नसे पूर्ण हो, [सः] वह विख्यात तू [वि ऊर्णुहि] विशेष ढगसे ढक दे। [जयतः ते] जयिष्णु तेरे लिए [मेदिनः स्याम] हम आनन्दवर्धक हों, हे [वसो] बसानेहारे ! [यथा वयं उश्मसि] जैसा हम चाहते हैं, [तत् कृधि] वह बना दे।

गोअर्णसं रयिं वि ऊर्णुहि = गौओंसे भरपूर धन दे।

त्रित आप्त्य । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।७।२)

इमा अग्ने मतयस्तुभ्यं जाता गोभिरश्वैरभि गृणन्ति राधः ।

यदा ते मर्तो अनु भोगमानड्वसो दधानो मतिभिः सुजात ॥५०४॥

[सुजात ! वसो ! अग्ने !] सुन्दर ढगसे उत्पन्न ! सबको बसानेहारे अग्ने ! [इमाः मतयः] ये बुद्धियाँ [तुभ्यं जाताः] तेरे लिए उत्पन्न हुई हैं, [गोभिः अश्वैः राधः अभि गृणन्ति] गायों तथा घोड़ोंके साथ दिया हुआ धन प्रशंसित करते हैं। [यदा ते भोगं] जब तेरे भोगको [मर्तः अनु आनट्] मानव प्राप्त करता है, तब [मतिभिः दधानः] बुद्धियोंके आधारसे उन्हें धारण करता हुआ रहता है।

मतयः गोभिः राधः अभिगृणन्ति = हमारी बुद्धियाँ गायोंसे युक्त धनकी प्रशंसा करती हैं, गायोंसे युक्त धन चाहती हैं।

दीर्घतमा औचथ्य । द्यावापृथिवी । जगती । (ऋ० १।१५९।५)

तद्राधो अद्य सवितुर्वरेण्यं वयं देवस्य प्रसवे मनामहे ।

अस्मभ्यं द्यावापृथिवी सुचेतुना रयिं धत्तं वसुमन्तं शतग्विनम् ॥५०५॥

[सवितुः देवस्य प्रसवे] सारे संसारके प्रसविता सूर्यके उदयके समय [अद्य तत् वरेण्यं राधः] आज वह श्रेष्ठ धन [वयं मनामहे] हम पानेकी इच्छा करते हैं, [द्यावा-पृथिवी सुचेतुना] द्युलोक एवं भूलोक उत्तम बुद्धिपूर्वक [अस्मभ्यं] हमें [वसुमन्तं शतग्विनं] विपुल धनसे युक्त तथा सैकड़ों गौओंसे युक्त [रयिं धत्तं] संपदा दे दो।

शत-ग्विनं रयिं धत्तं = सैकड़ों गायोंसे युक्त धन दे दो।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।८३।४)

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया ।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥५०६॥

[ये सुकृत्यया शम्या इद्धाग्नयः] जो उत्तम साधनोंसे तथा अच्छे कर्मोंसे अग्निको प्रज्वलित कर चुके, उन [अङ्गिराः] अंगिरसोंने [प्रथमं वयः दधिरे] पहले अन्न पा लिया और [आत्] पश्चात् उन [नरः] नेताओंने [पणेः] पणिकी [अश्वावन्तं आ पशुं सर्वं भोजनं] घोडे, गाय, पशु तथा सभी तरहके उपभोगके लिए योग्य संपत्ति [सं अविन्दन्त] ठीक प्रकार प्राप्त की ।

शत्रुके समीप जो गायें, घोडे, एवं पशु इत्यादि संपत्ति हो उसे वे वीर प्राप्त करते थे ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । द्यावापृथिव्यौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१८५।३)

अनेहो दात्रमदितेरनर्वं हुवे स्वर्वदवधं नमस्वत् ।
तद्रोदसी जनयतं जरित्रे द्यावा रक्षतं पृथिवी नो अभ्वात् ॥५०७॥

[अदितेः] गौकी कृपासे [अनेहः] पापशून्य [अनर्वं] क्षीण न होनेवाला [स्वर्वत्] तेजस्वी [अ-वधं] अवध्य [नमस्वत्] अन्नरूपी [दात्रं] धन [हुवे] हम चाहते हैं । हे [रोदसी] भूलोक एवं द्युलोक ! [जरित्रे] स्तोताके लिए [तत्] उसे [जनयतं] तुम निर्माण करो, [द्यावापृथिवी] हे आकाश एवं भूमण्डल [नः] हमें [अभ्वात्] पापसे [रक्षतं] बचाओ ।

अदितेः अनेहः अनर्वं स्वर्वत् दात्रं हुवे = गौसे निष्पाप अक्षय धनसंपदायुक्त दानके योग्य धन प्राप्त करते हैं ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।७१।१)

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥५०८॥

[स्वसुः उषसः] बहन उषासे [नक् अप जिहीते] रात्रि दूर हट जाती है, [कृष्णीः] काली रात [अरुषाय पन्थां रिणक्ति] लाल रंगवाले सूर्यके लिए मार्ग खुला कर देती है, इसलिए हे [अश्वामघा गोमघा] घोडे तथा गायरूपी धनवाले अश्विनौ ! [वां हुवेम] तुम्हें हम बुलाते हैं, [अस्मत् दिवानक्तं शरुं युयोतं] हमसे अपने दिनरात हिंसक हथियारको दूर हटा दो ।

गोमघा = गौरूपी धनको अपने पास रखनेवाले अश्विनौ देवता हैं ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र । इन्द्र । गायत्री । (ऋ० १।९।७)

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत् । विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥५०९॥

हे इन्द्र ! [गोमत् वाजवत्] गौओं एवं अन्नोंसे परिपूर्ण [विश्वायु अक्षितं] जीवन बढानेवाले तथा क्षीणता हटानेवाले [पृथु बृहत् श्रवः] पर्याप्त एवं बहुतसा धन या यश [अस्मे सं धेहि] हमें दे दो ।

इस मंत्रमें प्रभु एवं परम पिता परमात्मासे प्रार्थना की है, कि गौ, अन्न, दीर्घ जीवन और आरोग्य देनेवाला धन या यश वह हमें दे । [गौ] गायका दूध [वाज] उत्तम बलवर्धक अन्न है और वह [विश्वं आयु] दीर्घ जीवन, बल और [अक्षितं] निरोगिता प्रदान करता है, यह बात यहां बतलायी है । ' गौ ' शब्दसे वे सभी पौष्टिक अन्न, जैसे दूध, दही, मक्खन, घृत, छाँछ आदि गौसे मिलनेवाले पदार्थ, लेने चाहिये ।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्र पश्चाद्) भार्गव शौनक । अग्नि । जगती । (ऋ० २।१।१६)

ये स्तोतृभ्यो गोअग्रामश्वपेशसमग्ने रातिमुपसृजन्ति सूरयः ।

अस्माञ्च तांश्च प्र हि नेषि वस्य आ बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥५१०॥

हे अग्ने ! (ये सूरयः) जो बुद्धिमान् लोग (स्तोतृभ्य) उपासकोंको (गोऽग्रां) जिसके अग्रभागमें गौएँ हैं ऐसा, (अश्वपेशस) घोडोंके कारण रमणीय प्रतीत होनेवाला (रातिं) धन (उपसृजन्ति) वे देते हैं, (तान् च) उन्हें और (अस्मान् च) हमे (वस्यः) बसनेके योग्य ऐसे श्रेष्ठ स्थानमे तू (आ प्र हि नेषि) लेकर पहुँचाता है, इसीलिए हम (सुवीरा) अच्छे वीरोंसे युक्त होकर यज्ञमें बडे बडे स्तोत्र (वदेम) बोलते हैं।

गोऽग्रां रातिं उपसृजन्ति = गौएँ जहा प्रमुख हैं, ऐसा धन देता है ।

गृत्समद [आंगिरस शौनहोत्र पश्चाद्] भार्गव शौनकः । ब्रह्मणस्पतिः । जगती । (ऋ० २।२५।२)

वीरेभिर्वीरान् वनवद्वनुष्यतो गोभी रयिं पप्रथद् बोधति त्मना ।

तोकं च तस्य तनयं च वर्धते यं यं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५११॥

(यं यं) जिसे जिसे ब्रह्मणस्पति अपना (युजं कृणुते) मित्र करता है, (वीरेभि) वीरोंकी सहायतासे (वनुष्यत वीरान्) उसके शत्रुओंके वीरोंको (वनवत्) मार डालता है, (गोभिः रयिं पप्रथत्) गौओंकी सहायतासे संपत्ति बढाता है, (त्मना बोधति) स्वयही सब जान सकता है और (तस्य तोकं तनयं च) उसके पुत्र और पौत्रको (वर्धते) वृद्धिशील बना देता है।

गोभिः रयिं पप्रथत् = गौओंसे धनकी वृद्धि होती है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । गाव । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ४।२१।५, ऋ० ६।२८।५)

गावो भगो गाव इन्द्रो म इच्छाद्गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।

इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामि हृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५१२॥

[गाव भगः] गौएँ धन है, [इन्द्र मे गाव इच्छात्] इन्द्र मेरे लिए गौएँ देनेकी इच्छा करे, [गाव प्रथमस्य सोमस्य भक्षः] गौएँ पहिले सोमरसमें मिलानेका अन्न हैं। [इमाः याः गावः] ये जो गौएँ हैं, हे [जनासः] लोगो ! [स इन्द्र] वही इन्द्र है। [हृदा मनसा चित् इन्द्रं इच्छामि] हृदयसे और मनसे निश्चयपूर्वक मैं इन्द्रको प्राप्त करनेकी इच्छा करता हूँ।

गौएँही मनुष्यका धन, बल और उत्तम अन्न है, इसलिए मै सदा गौओंकी उन्नति हृदय और मनसे चाहता हूँ।

गावः भगः = गौएँही ऐश्वर्य है।

सवरणः प्राजापत्यः । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।३३।१०)

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।

मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥५१३॥

[त्ये लक्ष्मण्यस्य ध्वन्यस्य] वे लक्ष्मणपुत्र ध्वन्यके घोडे, [मा जुष्टा] मुझे दानके रूपमें दिये हुए [सुरुचा यतानाः] उत्तम शोभासे युक्त तथा हलचल करनेवाले हैं, [संवरणस्य ऋषेः] संवरण ऋषिकी [मह्ना] महनीयतासे [प्रयताः रायः गावः व्रजं न] दी हुई धनसंपदारूप गौएँ गोशालामें जैसे प्रवेश करती हैं, वैसेही [अपि ग्मन्] मेरे स्थानमें चले गये।

गावः रायः व्रजं अपि ग्मन् = गौरूपी धन गोशालामें प्रविष्ट हो।

नरो भारद्वाजः । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।३५।४)

स गोमघा जरित्रे अश्वश्चन्द्रा वाजश्रवसो अधि धेहि पृक्षः ।
पीपिहीषः सुदुघामिन्द्र धेनुं भरद्वाजेषु सुरुचो रुरुच्याः ॥५१४॥

हे इन्द्र ! [सः] ऐसा विख्यात वह तू [जरित्रे] स्तोताके लिए [गोमघाः अश्वचन्द्राः] गोरूपी ऐश्वर्यसे संपन्न, घोड़ोंके कारण आनन्द देनेवाली [वाजश्रवसः] बलकी वजहसे श्रवणीय [पृक्षः] अन्नसामग्रियाँ [अधि धेहि] दे डाल, [इषः सुदुघां धेनुं] अन्न एवं सुखपूर्वक दुहनेयोग्य गायको [पीपिहि] पुष्ट कर और [भरद्वाजेषु] दूसरोंको अन्नदान करनेवालोंमें [सुरुचः रुरुच्याः] उन्हें अच्छी कान्तिवाले बनाकर प्रदीप्त कर।

१ गोमघाः अधिदेहि = गौरूप धन दे डाल ।

२ सुदुघां धेनुं पीपिहि = उत्तम सुखसे दुहनेयोग्य गौको पुष्ट कर, अधिक दूध देनेवाली बना ।

गौ बड़ा भारी धन है । इससे पुष्टि, बल, वीर्य, ओज, सामर्थ्य, संतान, वीरता, धन, दीर्घायुकी वृद्धि होती है । इस विषयके उल्लेख यहांतक दिये मन्त्रोंमें पर्याप्त है ।

(४५) राष्ट्रमें गौओंकी संख्या बढाओ ।

दीर्घतमा औचथ्यः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१५३।४)

उत वां विक्षु मद्यास्वन्धो गाव आपश्च पीपयन्त देवीः ।
उतो नो अस्य पूर्व्यः पतिर्दन् वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥५१५॥

हे मित्र एवं वरुण ! [अन्धः] अन्न, [देवी गावः] तेजस्वी गौएँ [आपः च] और जल, [वां मद्यासु विक्षु] तुम्हें आनन्द देनेवाली प्रजाओंमें तुम [पीपयन्त] समृद्ध करो [उतो] और [नः अस्य] हमारे इस यज्ञका [पूर्व्यः पतिः] पुरातन अधिपति अग्नि हमें ऐश्वर्य [दन्] दे दे । तुम यह अन्न [वीतं] भक्षण करो तथा [उस्रियायाः पयसः पातं] गायके दूधका पान करो ।

प्रजाओंमें गायोंकी संख्या बढाओ ।

देवीः गावः विक्षु पीपयन्त = दिव्य गायोंको प्रजाजनोंमें बढाओ । देशमें अथवा राष्ट्रमें गौओंकी संख्या बढायी जाय । राष्ट्रहितके लिए गोसंवर्धन अत्यंत आवश्यक है ।

उस्रियायाः पयसः पातं = गौका दूध पीओ । प्रत्येक मनुष्य गायका दूधही पीवे । क्योंकि यही उत्कृष्ट अन्न है ।

(४६) गौके दूधसे बुद्धि बढती है ।

सव्य आंगिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।५३।४)

एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना ।
इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥५१६॥

हे इन्द्र ! [एभिः द्युभिः एभिः इन्दुभिः] इन तेजस्वी अन्नोंसे और इन सोमरसोंसे तुम संतुष्ट होकर [गोभिः अश्विना] गाय तथा घोड़ोंके साथ धन देकर हमारी [अमतिं निरुन्धानः] दुर्बुद्धि विनष्ट कर, क्योंकि तूही [सुमनाः] उत्तम मनसे युक्त है, [इन्दुभिः] सोमरसोंसे संतुष्ट हुए [इन्द्रेण] इन्द्रके साथ रहकर [दस्युं दरयन्तः] शत्रुका वध करनेवाले हम [युत-द्वेषसः] शत्रुओंको दूर करते हुए स्वयं प्राप्त किये हुए [इषा] अन्नसे [सं रभेमहि] सुखी बन जायँ ।

वस्वुं दारयन्तः = यह बडाही महत्त्वपूर्ण वाक्य है, जिसका अभिप्राय है शत्रुओंको फाड देनेवाले। हम शत्रु-विध्वंसके कार्यमें प्रभुकी सहायता माँग रहे हैं अर्थात् स्वयं सचेष्ट रहते हुए प्रभुसे सहायता मिले ऐसी अपेक्षा रखते हैं। हम अपने शत्रुका नाश करनेका कार्य करें और पश्चात् प्रभुकी सहायताकी इच्छा करें।

यहां इच्छा दर्शायी है कि गौओंके साथ धन मिले।

गोभि अमतिं निरुन्धान = गौओंको प्राप्त करके बुद्धिहीनताको हम दूर करते हैं। अर्थात् गौओंके दूध, दही, घी आदिसे बुद्धि बढती है, और अज्ञान दूर होता है। इसीलिए पूर्व मन्त्रमें कहा है कि राष्ट्रके प्रजाजनोंमें गौओंका संख्या बढाओ। ताकि घरघरमें गौवें रहें, घरघरके मनुष्य गौका दूध पीयें और प्रत्येकका अज्ञान दूर होवे और प्रत्येक मनुष्य सुमतियुक्त हो जावे।

(४७) दूध और घीके अर्पणसे धनका लाभ।

अथर्वा। सिन्धव, (धाताः पत्तन्त्रिण)। अनुष्टुप्। (अथर्व० १।१५।४)

ये सर्पिषः संस्रवन्ति क्षीरस्य चोदकस्य च।
तेभिर्मे सर्वैः संस्रावैर्धनं सं स्रावयामसि ॥५१७॥

[ये सर्पिष क्षीरस्य उदकस्य च] जो घृत, दुग्ध तथा जलकी धारायें [संस्रवन्ति] इकट्ठी हो बहती हैं, [तेभि सर्वै संस्रावै] उन सभी बहनेवाली धाराओंसे [मे धनं स स्रावयामसि] मेरे पास धनको मिलाकर बहा लाते हैं। मेरे पास धनको इकट्ठा होने देती है।

दूध और घीके प्रदानसे धनका लाभ होता है। दूध और घीके यज्ञसे सब प्रकारकी उन्नति होती है।

(४८) साठ हजार गायोंके झुंडरूप धन।

देवातिथिः काण्व। कुरुङ्गः। सतोबृहती। (ऋ० ८।४।२०)

धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥५१८॥

[वाजिन काण्वस्य] अन्नयुक्त काण्वपुत्रके [अभिद्युभि प्रियमेधै] द्युतिमान् एवं यज्ञको चाहनेवाले लोगोंने [धीभि सातानि] कर्मोंद्वारा दिये हुए [षष्टिं सहस्रा गवां यूथानि] साठ हजार गायोंके झुंडोंके धन जो कि [निर्मजां] साफसुथरे रखे गये थे, उन्हें ऋषि [अनु निः अजे] पश्चात् पूर्णतया प्राप्त कर सका।

षष्टिं सहस्रा गवां यूथानि = साठ सहस्र गायोंके झुण्डरूपी धन ऋषिने प्राप्त किये। यह धन ऋषियोंको दानमें प्राप्त हुआ। गौओंके ऐसे दान होते थे।

(४९) दहीके घडे घरमें हों।

ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पतिः। आर्षी अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।१२।७)

एमां कुमारस्तरुण आ वत्सो जगता सह।
एमां परिस्रुतः कुम्भ आ दध्नः कलशैरगुः ॥५१९॥

[इमां कुमार] इस घरके समीप बालक आवे, [तरुणः आ] युवक आवे [जगता सह वत्सः आ] चलनेवालोंके साथ बछडा भी आए, [इमां परिस्रुतः कुम्भः] इसके पास मीठे रससे भरा हुआ घडा [दध्नः कलशैः आ अगुः] दहीके घडोंके साथ आ जाए।

कुम्भ दध्नः कलशैः आ अगुः = मीठे सोमरसका घडा दहीके कलशोंके साथ आ जाए। अर्थात् घरमें

सोमरसके कलश भरे हुए लाये जायँ और दहीके भी घड़े घरमें भरे हों। घरमें दूध, घी, दही आदि भरपूर हों, जिसको पीकर घरके लोग हृष्टपुष्ट हों।

(५०) घीसे भरपूर घर हों।

सङ्कुसुको यामायनः। पितृमेध। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।१८।१२)

उच्छ्वञ्चमाना पृथिवी सु तिष्ठतु सहस्रं मित उप हि श्रयन्ताम्।

ते गृहासो घृतश्चुतो भवन्तु विश्वाहास्मै शरणाः सन्त्वत्र ॥५२०॥

[पृथिवी] भूमि [उत् श्वंचमाना सु तिष्ठतु] ऊपर उठती हुई ठीक तरह रहे [मितः सहस्रं हि उप श्रयन्तां] मेघ हजारोंकी संख्यामें समीप आ जाएँ, [ते गृहासः] वे घर [घृतश्चुत भवन्तु] घीको टपकानेवाले हों, [अस्मै विश्वाहा] इसके लिए हमेशा [अत्र शरणाः सन्तु] यहाँपर शरण देनेवाले हों।

गृहासः घृतश्चुतः भवन्तु = घर घी टपकानेवाले हो, अर्थात् घरोंमें घी भरपूर रहे। घरके प्रत्येक मनुष्यको खानेके लिए भरपूर घी मिले।

ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पति। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ३।१२।१)

इहैव ध्रुवां नि मिनोमि शालां क्षेमे तिष्ठाति घृतमुक्षमाणा।

तां त्वा शाले सर्ववीराः सुवीरा अरिष्टवीरा उप सं चरेम ॥५२१॥

(ध्रुवां शालां) सुदृढ शालाको (इह एव नि मिनोमि) इसी जगह बनाता हूँ, जो (घृतं उक्षमाणा) घीका सेचन करती हुई (क्षेमे तिष्ठाति) हमारे सुखके लिए ठहरेगी। हे घर! (सर्व-वीरा अरिष्टवीरा सुवीरा) हम सब वीर विनष्ट न होते हुए (तां त्वा उप सं चरेम) ऐसे प्रसिद्ध तेरे चारों ओर संचार करते रहेंगे।

शाला घृतं उक्षमाणा = घर घीका सिंचन करनेवाला हो अर्थात् घरमें घी भरपूर रहे।

ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पति। त्रिष्टुप। (अथर्व० ३।१२।४)

इमां शालां सविता वायुरिन्द्रो बृहस्पतिर्नि मिनोतु प्रजानन्।

उक्षन्तूद्ना मरुतो घृतेन भगो नो राजा नि कृषिं तनोतु ॥५२२॥

(इमां शालां) इस घरको सविता, वायु, इन्द्र, बृहस्पति (प्रजानन् नि मिनोतु) जानता हुआ बनावे, (मरुतः उद्ना घृतेन उक्षन्तु) वीर मरुत् सैनिक जल एवं घीसे सींचे (भगः राजा नः कृषिं नि तनोतु) भाग्यवान राजा हमारे लिए कृषिको बढावे।

इमां शालां घृतेन उक्षन्तु = इस घरपर घीकी वृष्टि होती रहे, इस घरमें भरपूर घी रहे।

भृगुः। वरुणः, सिन्धुः, आपः। विराड् जगती। (अथर्व० ३।१३।५)

आपो भद्रा घृतमिदाप आसन्नग्नीषोमौ बिभ्रत्याप इत्ताः।

तीव्रो रसो मधुपृचामरंगम आ मा प्राणेन सह वर्चसा गमेत् ॥५२३॥

(आपः भद्राः) जल हितकारक है, (आपः इत् घृतं आसन्) जल निःसन्देह घृत है, (ताः आप इत् अग्नीषोमौ बिभ्रतः) वे घृतही अग्नि एवं सोम धारण करते हैं, (मधुपृचां अरंगमः तीव्रः रसः) मधुरतासे परिपूर्ण तृप्ति करनेवाला तीव्र रस (प्राणेन वर्चसा सह) जीवन और तेजके साथ (मा आगमेत्) मुझे प्राप्त हो।

घृत आप आसन्= घी एक प्रकारका जलही है। अर्थात् जलके समान प्रवाही घीका सेवन करना चाहिये।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। द्यावापृथिवी। जगती। (ऋ० ६।७०।२)

असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥५२४॥

(असश्चन्ती भूरिधारे) पृथक् रहनेपर भी यथेष्ट धाराओंसे युक्त (पयस्वती) दूधसे युक्त (सुकृते शुचिव्रते) उत्कृष्ट कार्य करनेवाली और विशुद्ध व्रतवाली (घृतं दुहाते) घृतका दोहन करती हैं (अस्य भुवनस्य) इस भुवनकी (रोदसी) द्यावापृथिवी (राजन्ती) चमकती हुई (यत् मनुः हित) मानवोंके हितके लिए आवश्यक (रेत अस्मे सिञ्चतं) जलको हमारे लिए छिडका है।

रोदसी पयस्वती घृतं दुहाते= द्युलोक और भूलोक ये दोनों दूध दे और घीका प्रदान करें।

(५१) घीसे भरा घडा लाओ और धारासे घी परोस दो।

ब्रह्मा। शाला, वास्तोष्पति। भुरिक्। (अथर्व० ३।१२।८)

पूर्णं नारि प्र भर कुम्भमेतं घृतस्य धाराममृतेन संभृताम्।
इमां पातॄनमृतेना समङ्ग्धीष्टापूर्तमभि रक्षात्येनाम् ॥५२५॥

हे (नारि) स्त्री! (एतं पूर्णं कुम्भ) इस भरे हुए घडेको और (अमृतेन सभृतां घृतस्य धारां) अमृतसे भरी हुई घीकी धाराको (प्र भर) अच्छी तरह भरकर ला, (पातॄन् अमृतेन सं अङ्ग्धि) पीनेवालोंको अमृतसे भले प्रकार भर दे, (इष्टापूर्तं एनां अभि रक्षाति) यज्ञ तथा अन्नदान इस घरकी रक्षा करते हैं। अन्नदान घरकी रक्षा करता है।

१ **हे नारि! अमृतेन सभृतां घृतस्य धारां प्र भर=** *हे स्त्री! अमृत रस जैसे मधुर घीसे यह घडा भरकर घरमें रख।*

२ **पातॄन् अमृतेन सं अङ्ग्धि=** पीनेवालोंको अमृत जैसे दूधके साथ घी भी परोस डालो।

घरमें दूध, दही और घीके घडे भरे हों और उन घडोंसे ये पदार्थ खाने पीनेवालोंके लिए परोसे जायँ। घी परोसनेमें कभी कंजूसी न हो। भरपूर, जितना चाहिये उतना, दूध, दही, घी परोसा जाय।

(५२) प्रवासमें दूध और घी भरपूर मिलें।

अथर्वा (पण्यकामः)। विश्वे देवाः, इन्द्राग्नी। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ३।१५।२)

ये पन्थानो बहवो देवयाना अन्तरा द्यावापृथिवी संचरन्ति।
ते मा जुषन्तां पयसा घृतेन यथा क्रीत्वा धनमाहराणि ॥५२६॥

(ये देवयानाः बहवः पन्थानः) जो देवोंके जानेयोग्य बहुतसे मार्ग (द्यावापृथिवी अन्तरा संचरन्ति) द्युलोक तथा भूलोकके बीच ठीक ठीक चलते हैं, (ते मा मा पयसा घृतेन जुषन्तां) वे मुझे दूध घीसे तृप्त करें, (यथा क्रीत्वा धनं आहराणि) जिससे क्रयविक्रय करके मैं धन प्राप्त कर लूँ।

ते पन्थानः पयसा घृतेन मा जुषन्ताम्= वे मार्ग दूध और घीके साथ मेरी सेवा करें अर्थात् प्रवासमें उत्तम दूध और घी प्राप्त हो।

(५३) तपा शुद्ध घृत ।

वामदेवो गौतम । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।१।६)

अस्य श्रेष्ठा सुभगस्य संदृग्देवस्य चित्रतमा मर्त्येषु ।

शुचि घृतं न तप्तमघ्न्यायाः स्पार्हा देवस्य मंहनेव धेनोः ॥५२७॥

[अघ्न्यायाः] अवध्य गौके [तप्तं घृत न] तपाये हुए घृतके समान [शुचि] विशुद्ध ओर [देवस्य] दानी पुरुषके [धेनोः मंहना इव] गोदानकी तरह [स्पार्हा] स्पृहणीय [अस्य सुभगस्य देवस्य] इस अच्छे ऐश्वर्ययुक्त देवकी [श्रेष्ठा संदृक्] उच्च कोटिकी चितवन [मर्त्येषु चित्रतमा] मानवोंमें अत्यंत विचित्र है ।

१ अघ्न्यायाः तप्तं घृतं शुचि = गौका तपा घी शुद्ध है ।

२ धेनोः मंहना स्पार्हा = गौकी दूधरूपी देन बडी प्रशंसायोग्य है ।

(५४) घृतकी वृद्धि ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । द्यावापृथिवी । जगती । (ऋ० ६।७०।४)

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।

उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥५२८॥

(घृतश्रिया) घृतसे शोभित होनेवाली (घृतपृचा) घृतसे भरपूर (घृतावृधा) घृतको बढानेवाली द्यावापृथिवी (घृतेन अभीवृते) घृतसे लिपटी हुई हैं, वे दोनों (उर्वी) विशाल (पृथ्वी) फली हुई, (होतृवूर्ये) होताओंसे पुरस्कृत तथा (पुरोहिते) आगे रखी हुई हैं, (विप्रा) ज्ञानी लोग (सुम्न इष्टये) सुख एवं इष्टिके लिए (ते इत् ईळते) उन्हींकी सराहना करते हैं ।

द्यावापृथिवी मानो घृतकी समृद्धि करती हैं । इनमें सर्वत्र भरपूर घी प्राप्त हो ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । सविता । जगती । (ऋ० ६।७१।१)

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।

घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥५२९॥

(स्य सविता देवः) वह विख्यात द्युतिमान उत्पादक देव (सुक्रतु) अच्छे कार्य करनेवाला होकर (सवनाय) सोमसवनके लिए (हिरण्यया बाहू) सुवर्णमय अपने दोनों हाथोंको (उत् अयंस्त) ऊपर उठाता हैं । (मख) महत्त्वपूर्ण, (युवा सुदक्षः) युवक एवं अच्छी शक्तिसे युक्त वह (रजसः विधर्मणि) लोकोंके विशेष धारण करनेमें (पाणी) अपने हाथोंको (घृतेन अभि प्रुष्णुते) घीसे पूर्ण कर प्रेरित करता है ।

अपने हाथोंसे, अपने किरणोंसे, सूर्य घृतसे सबको भरपूर कर देता है ।

(५५) गायके दूधसे रोगनिवारण ।

कण्वो घौर । रुद्र । गायत्री । (ऋ० १।४३।२)

यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् ॥५३०॥

(अ-दितिः) अवध्य गाय (न) हमारे लिए (रुद्रिय) औषधोपचार (यथा करत्) जैसा करेगी वैसेही वह (नृभ्य) नेता वीरोंके लिए कर ले (यथा तोकाय) जैसे पुत्र आदिको लाभ दे, उसी प्रकार वह (पश्वे गवे) पशुपक्षी गौको भी मिले ।

गौ ' अ-दिति ' है याने वह वधके लिए अयोग्य है, ' अ-घ्न्या ' पदके समानही ' अदिति ' पद अवध्यता सूचित करता है । ' दो '- अवखण्डने, धातुसे अदिति शब्दका अर्थ अवध्य होता है ।

दूसरा अदिति शब्द ' अद-भक्षणे ' धातुसे सिद्ध होता है, जिसका अर्थ हो सकता है, खाद्य पदार्थोंको देनेवाली अर्थात् दूध, घृत, दही जैसे सेवन करनेयोग्य चीजोंकी पूर्ति करनेवाली है । गौका दूध औषधिगुणधर्मोंसे युक्त है । गाय ओषधिवनस्पतियोंका भक्षण करती है, अतः उसका दूध भी उन गुणोंसे युक्त होता है । इस मन्त्रमें प्रार्थना की है, वह गाय अपने दूधको औषधिगुणयुक्त बनाकर दे दे, ताकि हमारे वीरों तथा पशुओंके रोग दूर हो जायँ ।

श्यावाश्व आत्रेय । मरुत । सतोबृहती । (ऋ० ५।५३।१४)

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।

वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥५३१॥

हे वीर मरुतो ! [स्वस्तिभिः] कल्याणपूर्वक [हित्वा अवद्य] पापको छोडकर [अरातीः निदः तिरः] कृपण तथा निन्दकोंको तिरस्कृत कर [अति इयाम] हम आगे बढें, [वृष्ट्वी] तुम्हारी वर्षा हो चुकनेपर [शं योः आपः] शान्ति, पापका हटाना, जल और [उस्रि भेषज] गो दुग्धरूप औषध हमें मिल जाएँ तथा [सह स्याम] सब मिलकर निवास करें ।

उस्रि भेषज = गौसे दूधरूपी औषध हमें प्राप्त हो । गौओंको औषधियां खिलाकर उनका दूध पीनेसे वह दूधही औषध बनता है ।

(५६) दूध औषधियोंका रस है ।

ब्रह्मा । ऋषभ । त्रिष्टुप । (अथर्व० ९।४।५)

देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य ।

सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥५३२॥

[एष देवानां उपनाहः भागः] यह देवोंका समीपस्थित भाग है, [अपां ओषधीनां घृतस्य रसः] यह दूध, जलों, ओषधियों तथा घृतका यह रस है [सोमस्य भक्ष शक्र अवृणीत] यही सोमका रस इन्द्रने प्राप्त किया, इसका [यत् शरीर बृहत् अद्रिः अभवत्] जो शरीर था, वही बडा मेघ या पर्वत बना है ।

अपां ओषधीनां घृतस्य रसः एष अभवत् = जल, औषधि और घीका यह रस है, अर्थात् यह गौका दूध है वह जल, औषधियोंका सत्व और घीका सार है । इसीलिए गुणकारी है ।

(५७) हृदयरोग और पाण्डुरोग लाल रंगकी गौके दूधसे दूर करो ।

ब्रह्मा । सूर्यो, हरिमा हृद्रोगश्च । अनुष्टुप् । (अथर्व० १।२२।१)

अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा च ते ।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परि दध्मसि ॥५३३॥

(सूर्यं अनु) सूर्योदयके होतेही (ते हृद्द्योत हरिमा च) तेरा हृदयदाही रोग और हरापन (उदयतां) उठ जाय, (रोहितस्य गो वर्णेन) लाल वर्णवाली गौके रंगसे (त्वा परि दध्मसि) तुझे हम घेरे रखते हैं ।

लाल रंगवाली गौके दूध, दही मक्खन तथा घीके सेवनसे हृदयका रोग तथा पाण्डुरोग (हरिमा) दूर होता है । लाल रंगवाली गायके दूध, दही तथा घीके सेवनसे पाण्डुरोग, पीलापन, दूर होता है । यहां गोदुग्धसे

वर्णचिकित्साकी सूचना मिलती है। अनेक रंगोंकी गायका दूध विभिन्न रोगोंके शमनके लिए उपयोगी होना संभव है। रोगशमन करनेवाले दूधका अनुभव करें। इस कार्यके लिए घरमें अनेक गौवें रहनी चाहिये और जिसको जैसा दूध देना चाहिये उसको वैसा दूध दिया जावे। इस प्रयोगके लिए गाय भी चाहे उस समय दूध देनेवाली होनी चाहिये।

यदि वर्णचिकित्साका अनुभव आता है, तो विभिन्न रंगवाली गौके दूधसे भी कुछ न कुछ परिणाम होना संभव होगा।

(५८) निर्विष दूध पीओ।

ब्रह्मा। आयु। उपरिष्टाद्बृहती। (अथर्व० ८।२।१९)

यदश्नासि यत् पिबसि धान्यं कृष्याः पयः।
यदाद्यं१ यदनाद्यं सर्वं ते अन्नमविषं कृणोमि ॥५२४॥

[यत् कृष्या धान्य अश्नासि] जो कृषिसे उत्पन्न होनेवाला धान्य तू खाता है, और [यत् पयः पिबसि] जो दूध तू पीता है, [यत् आद्य यत् अनाद्य] जो खानेयोग्य और जो न खानेयोग्य है, [तत् सर्वं] वह सब [ते अविष कृणोमि] तेरेलिए निर्विष करता हूँ।

यत् पय पिबसि तत् सर्वं अविष कृणोमि ।= जो दूध तू पीता है वह सब मैं विषरहित करता हूं। अर्थात् दूध आदि पदार्थ परिशुद्ध स्थितिमें सेवन करने चाहिये। दूधमें विष तथा रोगबीज पहुंच सकते हैं और उसके सेवनसे मनुष्य रोगी हो सकता है। इन कष्टोंसे बचनेके लिए दूधको निर्विष बनाना चाहिये। दूध उबालनेसे निर्विष होता है।

(५९) दूधसे शरीरकी शुद्धि।

वृहच्छुक्र। त्वष्टा। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ६।५३।३)

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा नो अत्र वरीयः कृणोत्वनु नो मार्ष्टु तन्वो३ यद्विरिष्टम् ॥५२५॥

[वर्चसा पयसा स] तेज और पुष्टिकारक दूधसे हम युक्त हों, [तनूभिः स] अच्छे शरीरोंसे हम युक्त हों, [शिवेन मनसा स अगन्महि] कल्याणमय विचारयुक्त मन हमें मिल जाय, [त्वष्टा नः अत्र वरीयः कृणोतु] श्रेष्ठ कारीगर परमात्मा हमें यहाँ उत्तम कोटिका बनाय, [यत् नः तन्व वि-रिष्ट] जो हमारे शरीरोंमें कष्ट देनेवाला भाग हो [अनु मार्ष्टु] उसे अनुकूलतासे शुद्ध करे।

वर्चसा पयसा स अगन्महि, तन्व विरिष्टं, अनु मार्ष्टु= तेजस्वी दूधसे हम युक्त हों, हमारे शरीरोंमें जो दोष हों, वे इससे दूर हों। अर्थात् दूधमें जो तेजस्विता है, वह हमें प्राप्त हो और उससे हमारे शरीरके सब दोष दूर हों, शरीरकी स्वच्छता होनेसे, अनुमार्जनसे, शारीरिक रोगोंका दूर होना यहां लिखा है। दूध पीनेसे शरीरमें अनुमार्जन अर्थात् आन्तरिक स्वच्छता होती है, उससे (तन्वः विरिष्टं) शारीरिक दोष दूर होते हैं। केवल दूधपर रहनेसे शरीर दोषरहित हो सकता है। यह एक उपवासका पर्याय है। उपवास शरीर शुद्धिके लिए किया जाता है।

(६०) गायका बलवर्धक दूध।

वामदेवो गौतमः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।५।१०)

अध द्युतानः पित्रोः सचासा ऽमनुत गुह्यं चारु पृश्नेः।
मातुष्पदे परमे अन्ति षद् गोर्वृष्णः शोचिषः प्रयतस्य जिह्वा ॥५२६॥

[अध] अब [पित्रो सचा] द्यावापृथिवीके मध्य [द्युतानः] जगमगाता हुआ वह [पृश्नेः]

गौके [चारु] सुन्दर [गुह्य] लेवेमें छिपा हुआ दूध [आसा] अपने मुँहसे पीनेके लिए [अमनुत] मान्य करने लगा, [मातु] मातृवत् [गो: परमे पदे] गायके श्रेष्ठ स्थानमें [अन्ति सत्] समीप रहनेवाला दूध, [वृष्णः] वर्धक [शोचिषः] दीप्तिमान तथा [प्रयतस्य] नियमानुकूल रहनेवालेकी [जिह्वा] जीभ पी लेना चाहती है।

पृश्नेः चारु गुह्यं आसा अमनुत= सुंदर गुप्त स्थानमें प्राप्त होनेवाला गौका दूध मुखसे पीनेकी मनीषा होती है। गो: मातु परमे पदे अन्ति सत्, वृष्णः जिह्वा अमनुत = गोमाताके परम पवित्र स्थानमें—लेवेमें रहनेवाला दूध है, उस बलवर्धक दूधका पान करनेकी इच्छा जिह्वा करती है।

इस तरह धारोष्ण दूध पीकर मनुष्य बलवान हो सकता है।

त्रित आप्त्यः, कुत्स आङ्गिरसो वा । विश्वे देवा । पङ्क्तिः । (ऋ० १।१०५।२)

अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम् ।
तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५३७॥

(अर्थिनः अर्थं वै इत् ऊँ) धनवालेके धनको देखकरही (जाया पतिं आ युवते) पत्नी पतिको प्राप्त करती है (वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते) वे दोनों भी बलवर्धक दूध पीते हैं, वे उसे (परि-दाय) लेकर (रसं दुहे) रसवीर्यको उत्पन्न करते हैं। [आगे चलकर उनके संतान पैदा होती हैं] हे (रोदसी !) द्यावापृथिवी ! (अस्य मे) मेरा यह तुम (वित्त) जान लो।

वृष्ण्यं पयः = दूध बलवर्धक है।

पराशर शाक्त्य । अग्नि । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।७२।८)

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद् गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥५३८॥

(ऋतज्ञा) सत्य तत्त्व जाननेहारे अंगिरसोंने (स्वाध्य) उत्तम कर्म करनेवाली (दिव यह्वीः) द्युलोकसे आनेवाली बडी (सप्त) सात नदियाँ और (रायः) धन पानेके सभी (दुरः) दरवाजे (वि अजानन्) विशेष ढंगसे जान लिए— (येन) जिससे—अन्नसे (मानुषी विट्) मानवी प्रजा (भोजते) भोजन करती है, ऐसा (गव्यं कं दृळ्हं ऊर्वं) गौसे मिलनेवाला बलवर्धक सुखकारक अन्न (सरमा नु विदत्) इस सरमाने सचमुच प्राप्त किया।

सत्य तत्त्वसे परिचित ऋषिओंने धन पानेके सभी धार्मिक मार्ग और जिनके तटोंपर यज्ञ प्रचलित हुआ करते, स्वाध्याय जारी रहते हैं ऐसी सात नदियोंको जान लिया। उसी प्रकार मानवोंके खानेयोग्य, पुष्टिकारक एवं सुख-दायक गोरसरूपी अन्न भी पा लिया। तबसे घृत, दूधका हवन और भक्षण प्रचलित रहा है।

अथर्वा । अमावास्या । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।७९।३)

आऽगन् रात्री सङ्गमनी वसूनामूर्जं पुष्टं वस्वावेशयन्ती ।
अमावास्यायै हविषा विधेमोर्जं दुहाना पयसा न आऽगन् ॥५३९॥

[वसूनां सङ्गमनी] सब धन इकट्ठा करनेवाली [पुष्टं वसु ऊर्जं आवेशयन्ती] पुष्टिकारक तथा बलवर्धक धन देनेवाली [रात्री आऽगन्] रात आ पहुँची है। [अमावास्यायै हविषा विधेम] अमावास्याके लिए हम हवनसे यजन करते हैं, क्योंकि वह [ऊर्जं दुहाना पयसा नः आऽगन्] अन्न देनेवाली दूधके साथ हमारे समीप आ चुकी है।

पयसा ऊर्जं दुहाना न आऽगन्= दूधसे अन्नकाही दोहन करती हुई हमारे पास आ गयी है। अर्थात् दूधरूपी अन्नका दोहन गायके थनोंसे किया जाता है।

अथर्वा। मधु, अश्विनौ। यवमध्या अतिजागतगर्भा महाबृहती। (अथर्व० ९।१।७)

स तौ प्र वेद स उ तौ चिकेत यावस्याः स्तनौ सहस्रधारावक्षितौ।

ऊर्जं दुहाते अनपस्फुरन्तौ ॥५४०॥

(सः तौ प्र वेद) वह उन्हें जानता है, (स उ तौ चिकेत) वह उनका विचार करता है, (यौ अस्याः सहस्रधारौ अक्षितौ स्तनौ) जो इसके सहस्रधारायुक्त अक्षय थन हैं, वे (अनपस्फुरन्तौ ऊर्जं दुहाते) हिलते न डुलते, बलवान् रसका दोहन करते हैं।

अस्याः सहस्रधारौ अक्षितौ स्तनौ ऊर्जं दुहाते= इस गौके सहस्रों धाराओंसे दूध देनेवाले अक्षय थन बलकाही दोहन करते हैं।

अथर्वा। द्यावापृथिवी, विश्वे देवाः, मरुतः, आपः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० २।२९।५)

ऊर्जमस्मा ऊर्जस्वती धत्तं पयो अस्मै पयस्वती धत्तम्।

ऊर्जमस्मै द्यावापृथिवी अधातां विश्वे देवा मरुत ऊर्जमापः ॥५४१॥

(हे ऊर्जस्वती!) हे अन्नवाली गौ! (अस्मै ऊर्जं धत्त) इसे अन्न दो, (पयस्वती अस्मै पयः धत्त) दूधवाली गौ इसे दूध दे, (द्यावापृथिवी अस्मै ऊर्जं अधातां) द्युलोक तथा भूलोक इसे अन्न दे दें, (विश्वे देवा मरुत आप ऊर्जं) सारे देव, उत्साही वीर सैनिक, जल भी इसे अन्न (अधातां) दें।

पयस्वती अस्मै ऊर्जं पयः धत्तं= दूध देनेवाली गौ इसके लिए बलवर्धक दूध दे।

गोतमो राहूगण। सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।९१।१८)

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः।

आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥५४२॥

(अभिमातिषाहः) शत्रुका वध करनेहारे (ते) तुझे (पयांसि) दूध (वाजाः) अन्न (उ वृष्ण्यानि) और बल (सं यन्तु) भली भाँति प्राप्त हों। हे सोम! (अमृताय) अमर होनेके लिए (आप्यायमानः) बढता हुआ तू (दिवि) स्वर्गमें पहुँचकर (उत्तमानि श्रवांसि धिष्व) श्रेष्ठ यश प्राप्त कर।

ते वृष्ण्यानि पयांसि सं संयन्तु= तेरे पास बलवर्धक दूध पहुँचे।

(६१) गौमें अजेय बल।

गृत्समदः शौनक। ब्रह्मणस्पति। जगती। (ऋ० २।२५।४)

तस्मा अर्षन्ति दिव्या असश्चतः स सत्वभिः प्रथमो गोषु गच्छति।

अनिभृष्टतविषिर्हन्त्योजसा यंयं युजं कृणुते ब्रह्मणस्पतिः ॥५४३॥

(यं यं) जिसे जिसे ब्रह्मणस्पति (युजं कृणुते) अपना मित्र बनाता है, (तस्मै) उसके लिए (दिव्याः असश्चतः अर्षन्ति) दिव्य तथा स्तब्ध रहनेवाले पदार्थ भी गतिमान होते हैं, (सः सत्वभिः) वह अपने बलोंके साथ (प्रथम गोषु गच्छति) पहलेही गौओंमें प्रविष्ट होता है, और (अनिभृष्टतविषि) अजेय बलसे युक्त होकर (ओजसा हन्ति) अपनी शक्तिसे शत्रुओंका वध करता है।

असश्चत्— न हिलनेवाला, स्थिर, पूर्ण न होनेवाला, अजेय।

स· सस्वभि' गोषु गच्छति, अभिभूष्ट-तविषि ओजसा हन्ति= वह बल अनेक बलोंके साथ गौओंमें जाता है, अर्थात् गौओंमें जाकर अजेय बलसे शत्रुका नाश करता है।

कण्वो घौरः। मरुत.। गायत्री। (ऋ० १।३७।५)

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे ॥५४४॥

(यत् गोषु) जो बल गौओंमें रहता है, जो (क्रीळ मारुत) खिलाडीपनके रूपमें वीरोंमें दीख पडता, जो (रसस्य जम्भे वावृधे) गोरसके सेवनसे बढता है, उस (अघ्न्यं शर्धः प्रशंस) अहननीय बलकी सराहना करो।

गोरसके रूपमें बडाही अनूठा बल गौओंमें पाया जाता है, और वही अनोखी शक्ति वीरोंकी क्रीडानिपुणतामें प्रकट होती है। ऐसे अद्भुत बलको प्रत्येक मानवमें बढाना चाहिये। यदि पर्याप्त गोरस पीनेको मिले, तो वह विलक्षण बल बढा सकता है, जिसकी प्रशंसा प्रत्येकको करना उचित है।

(६२) बैलके बलका धारण।

अथर्वा। वनस्पति.। अनुष्टुप्। (अथर्व० ४।४।८)

अश्वस्याश्वतरस्याजस्य पेत्वस्य च।

अथ ऋषभस्य ये वाजास्तानस्मिन् धेहि तनूवशिन् ॥५४५॥

घोडा, खच्चर, भेड और चपल लडाऊ घोडा तथा बैल (ये वाजा) उसमें जो सामर्थ्य है (अस्मिन्) इस मनुष्यमें (धेहि) स्थापन कर। (तनू-वशिन्) अपने शरीरको अपने वशमें करने वाले, तू यह कर।

अपने शरीरको अपने अधीन रखनेसे अर्थात् संयम करनेसे ये सब शक्तियाँ मानवमें सुस्थिर हो सकती हैं। यहाँ ' ऋषभस्य वाजाः ' बैलके बलका उल्लेख है। वह बल मनुष्यमें आना चाहिये।

(६३) वीर्य बढानेवाला दूध।

दीर्घतमा औचथ्य.। द्यावापृथिवी। जगती। (ऋ० १।१६०।३)

स वह्निः पुत्रः पित्रोः पवित्रवान्पुनाति धीरो भुवनानि मायया।

धेनुं च पृश्निं वृषभं सुरेतसं विश्वाहा शुक्रं पयो अस्य धुक्षत ॥५४६॥

(पित्रो पुत्र) द्यावापृथिवीका पुत्र (पवित्रवान् धीर) पवित्रता करनेवाला, बुद्धिदाता (सः वह्निः) अग्नि (मायया) अपनी शक्तिसे (भुवनानि पृश्नि धेनुं) सारे प्राणीमात्रको और विविध रंगवाली गायको तथा (सुरेतस वृषभ) उत्तम वीर्यवाले बैलको (पुनाति) पवित्र करता है। (विश्वाहा) हमेशा (अस्य शुक्रं पयः) इसका वीर्यवर्धक दूध जोकि स्वच्छ है, (धुक्षत) दोहन करो।

अग्निके प्रदीप्त होनेपर गायका दूध निचोडते हैं और पश्चात् हवनका प्रारंभ होता है। गायका दूध (शुक्रं पय) वीर्य बढानेवाला है " सद्यःशुक्रकरं स्वादु " ऐसा वैद्यक ग्रंथोंमें दूधका वर्णन है।

सुरेतसं वृषभं= उत्तम वीर्यवाले बैलका यहां वर्णन किया है। गोवंश सुधारके लिए उत्तम बरधेकी आवश्यकता रहती है।

पृश्निं धेनुं वृषभं= गौको पवित्र बनाता है। उत्तम वीर्यवाले बरधेके साथ सम्बन्ध होनेसे गौकी पवित्रता होती है, जिससे उसकी सन्तानका सुधार होता जाता है। गोवंशके सुधारका यह उपाय है। बरधा उत्तम होनेसे गौके वंशका सुधार होता है।

कक्षीवान् औशिजो दैर्घतमसः । विश्वे देवा इन्द्रो वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२१।५)

तुभ्यं पयो यत् पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।
शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्त्रियायाः ॥५४७॥

[भुरण्यू पितरौ] विश्वका पोषण करनेवाले माता, पिता अर्थात् द्यावापृथिवी [यत्] जो [राधः सु रेतः] समृद्धियुक्त बढिया वीर्य निर्माण करनेवाला [पयः अनीतां] दूध बनाते हैं, और [यत् च] जो [सबर्दुघायाः] बहुत दूध देनेहारी [उस्त्रियायाः] गौओंमें [शुचि पयः] निर्मल दूधके स्वरूपमें [रेक्णः] धन विद्यमान है, [तेन] उस दूधसे हे इन्द्र ! [तुरणे तुभ्यं] सभी काम त्वरापूर्वक करनेहारे तुझ जैसेका [आऽयजन्त] यजन हुआ करता है । गायोंके दुग्धसे वीर्य बढता है।

सुरेतः पयः अनीतां= उत्तम वीर्यवर्धक दूध ले आवे ।

सबर्दुघायाः उस्त्रियायाः शुचि पयः रेक्णः = सुखसे दुहनेयोग्य गौका शुद्ध दूध उत्तम धनही है ।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।४।७)

आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः ।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान्देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥५४८॥

(अस्य घृतं आज्यं) इसका घी और आज्य (रेतः बिभर्ति) वीर्यको धारण करता है, (साहस्रः पोषः) जो हजारोंका पोषक है, (तं उ यज्ञं आहुः) उसे यज्ञ कहते हैं । (इन्द्रस्य रूपं वसानः ऋषभः) इन्द्रका रूप धारण करता हुआ बैल (देवाः) हे देवो ! (सः दत्तः अस्मान् शिवः आ एतु) वह दान दिया हुआ हमारे पास शुभ होकर प्राप्त हो जाय ।

घृतं आज्यं रेतः बिभर्ति = जो घी है उसमें वीर्य है ।

सहस्र-पोषः = वह वीर्य सहस्रोंका पोषण करता है ।

नरो भारद्वाजः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।३५।५)

तमा नूनं वृजनमन्यथा चिच्छूरो यच्छक्र वि दुरो गृणीषे ।
मा निररं शुक्रदुघस्य धेनोराङ्गिरसान् ब्रह्मणा विप्र जिन्व ॥५४९॥

हे (विप्र शक्र) ज्ञानी एवं शक्तिसंपन्न प्रभो ! (यत्) चूँकि (वि दुरः) तू विशेष ढंगसे शत्रु-विदारण करनेवाला है, अतः (गृणीषे) प्रशंसित हो रहा है, इसलिए (तं वृजनं) उस पापीको (शूरः नूनं) वीर तू अवश्यही (अन्यथा चित्) हमसे विरुद्ध दशामें रख दे, (शुक्रदुघस्य धेनोः) वीर्यरूपी दूधका दोहन करनेवाली गायसे मैं (मा निः अरं) न बिछुड जाऊं (ब्रह्मणा आङ्गिरसान् जिन्व) ब्रह्मरूपी अन्नसे अंगिरापरिवारमें उत्पन्न लोगोंको संतुष्ट कर ।

शुक्र-दुघस्य धेनोः मा निः अरम् = वीर्यकाही प्रत्यक्ष दोहन करनेवाली गौसे मैं कदापि दूर न होऊं । ऐसी दुधारू गौ सदा हमारे पास रहे ।

(६४) मनुष्य-जीवनके लिए गौकी आवश्यकता।

ब्रह्मा । आयुः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ८।२।२५)

सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः ।
यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिधिर्जीवनाय कम् ॥५५०॥

[यत्र इदं ब्रह्म] जहां यह ज्ञान तथा [जीवनाय कं परिधिः क्रियते] जीवनके लिए सुखमयी मर्यादाकी

जाती है, [तत्र गो अश्व पशुः पुरुष] वहां गाय, घोडा, पशु तथा मानव [सर्वे वे जीवति] सब कोई जीवित रहता है। जहां गौ है वहां दीर्घ जीवन होता है।

मनुष्यके जीवनके लिए गौकी अत्यंत आवश्यकता है।

दीर्घतमा औचथ्य । मित्रावरुणा । जगती । (ऋ० १।१५१।८)

युवां यज्ञैः प्रथमा गोभिरञ्जत ऋतावाना मनसो न प्रयुक्तिषु ।
भरन्ति वां मन्मना संयता गिरोऽदृप्यता मनसा रेवदाशाथे ॥ ५५१ ॥

[प्रयुक्तिषु मनसः न] सभी प्रयोगोंमें मन लगाना पडता है, उसी प्रकार भक्त [ऋतवाना प्रथमा] सत्यनिष्ठ एवं अद्वितीय [युवं] तुम्हारे पास [यज्ञैः गोभिः] यज्ञों तथा गौओंके साथ [अञ्जते] आया करते हैं। [मन्मना वां संयता गिरः] मननपूर्वक तुम्हारे स्तोत्र संयमपूर्वक वाणीसे [भरन्ति] तैयार करते हैं, या गाते हैं, और [अदृप्यता मनसा] आनन्दित अन्तःकरणसे तुम दोनों [रेवत्] धन लेकर हमारे यज्ञमें [आशाथे] आया करते हो।

युवं गोभिः अञ्जते = तुम गौओंके साथ जाते हैं। गोओंके साथ तुम सदा रहते हैं। बिछुड नहीं जाते। मनुष्य गौओंके साथ रहें।

(६५) गौके दूधसे तृप्ति होती है।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१८१।८)

उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन् ।
वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥ ५५२ ॥

हे अश्विनौ ! (उत वां) और तुम्हारे (रुशतः वप्ससः) तेजस्वी रूपकी (स्या गीः) यह प्रशंसा (त्रि-बर्हिषि सदसि) तीन आसनोंसे युक्त सभामण्डपमें (नॄन् पिन्वते) सभी मानवोंको तृप्त करती है, हे (वृषणा) बलिष्ठ अश्विनौ ! (वां वृषा मेघः) तुम्हारा वर्षा देनेहारा बादल (मनुषः) मानवोंको जल (दशस्यन्) देता हुआ, (गोः सेके न) गाय दूध देकर जिस तरह सन्तुष्ट करती है, उसी तरह (पीपाय) तृप्त करता है।

गोः सेके पीपाय = गौके दूधसे तृप्ति होती है।

(६६) गायोंमें प्रशस्तता।

पराशरः शाक्त्यः । अग्निः । द्विपदा विराट् । (ऋ० १।७०।५)

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५५३ ॥

हे अग्ने ! (वनेषु) जंगलोंमें घूमती हुई (गोषु) गौओंमें (प्रशस्तिं धिषे) प्रशस्तता धर दे, (विश्वे) सभी मानव (स्वः बलिं) तेजस्वी अर्पण (त्वे भरन्ति) तुझे दे देते हैं, उसी प्रकार (नरः) सभी मानव (पुरुत्रा) सभी जगह तेरा (वि सपर्यन्) सत्कार करते हैं और (जिव्रेः पितुः न वेदः) बूढे बापसे धन मिल जाय, वैसेही तुझसे ये लोग धन (वि भरन्त) पाते हैं।

गोषु प्रशस्तिं धिषे = गौओंमें प्रशस्तताका तू धारण करता है। गौओंकी प्रशंसा करो।

(६७) गौओंमें दुग्धरूप यश।

अथर्वा। बृहस्पतिः, अश्विनौ। अनुष्टुप्। (अथर्व० ६।६९।१)

गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद् यशः।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥ ५५४ ॥

(गिरौ) पहाडपर (अरगराटेषु) चक्रयंत्रमें (हिरण्ये गोषु यद् यशः) सुवर्ण और गौओंमें जो यश है, और (सिच्यमानायां सुरायां) बहनेवाली पर्जन्यधारामें (कीलाले मधु) तथा अन्नमें जो मधुरता है (तत् मयि) वह मुझमें हो।

गोषु यत् मधु यशः तत् मयि = गौओमें जो माधुर्य युक्त दूधरूपी रस है और जो यश है वह सब मुझे प्राप्त हो।

अथर्वा। बृहस्पतिः, अश्विनौ। अनुष्टुप्। (अथर्व० ६।६९।३)

मयि वर्चो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पयः।
तन्मयि प्रजापतिर्दिवि द्यामिव दृंहतु ॥ ५५५ ॥

(मयि वर्चः) मुझमें तेज हो, (अथो यशः) और यश भी रहे, (अथो यज्ञस्य यत् पयः) और यज्ञका जो दुग्धमय सार है, (प्रजापति तत् मयि दृंहतु) प्रजापालक देव उसे मुझमें दृढ करे (दिवि द्यां इव) जैसे द्युलोकमें प्रकाश होता है।

यज्ञस्य यशः पयः = यज्ञका यश दूधही है। गौमें दूध न हो तो यज्ञ कभी नहीं बनेगा।

गयः प्लातः। विश्वे देवा। जगती। (ऋ० १०।६४।११)

रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव क्षयो भद्रा रुद्राणां मरुतामुपस्तुतिः।
गोभिः ष्याम यशसो जनेष्वा सदा देवास इळया सचेमहि ॥ ५५६ ॥

(संदृष्टौ रण्वः) दर्शनके लिए रमणीय तथा (पितुमान् क्षयः इव) जनताके लिए अन्नपूर्ण निवासस्थानकी तरह आदरणीय यह वीर मरुतोंका संघ है, अत (रुद्राणां मरुतां उपस्तुतिः भद्रा) शत्रुको रुलानेवाले मरुतोंकी प्रशंसा कल्याणकारक होती है, (जनेषु) जनतामें हम लोग (गोभिः) बहुतसी गौएँ साथ रखनेके कारण (यशसः स्याम) यशस्वी हों और (देवासः) हे देवो! (सदा) हमेशा हम (इळया सचेमहि) अन्नसे युक्त रहें।

जनेषु गोभिः यशसः स्याम = जनतामें हम गौओंसे यशस्वी हो जायगे।

अथर्वा (ब्रह्मवर्चसकाम)। आत्मा। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ७।१।१)

धीती वा ये अनयन् वाचो अग्रं मनसा वा येऽवदन्नृतानि।
तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानास्तुरीयेणामन्वत नाम धेनोः ॥ ५५७ ॥

(ये वा मनसा धीती) जो अपने मनसे ध्यानको (वाचः अग्रं अनयन्) वाणीके मूलस्थानतक पहुँचाते हैं और (ये ऋतानि वा अवदन्) जो सत्य बोलते हैं, वे (तृतीयेन ब्रह्मणा वावृधानाः) तीसरे अर्थात् श्रेष्ठ ज्ञानसे बढते हुए (तुरीयेण) चतुर्थ भागसे (धेनोः नाम अमन्वत) गायके यशका मनन करते हैं।

तुरीयेण धेनोः नाम अमन्वत = उच्च स्वरसे गायके यशका वर्णन करते है। इस तरह वर्णनीय गाय है।

(६८) पवित्र घी ।

पर्वतः काण्व । इन्द्रः । उष्णिक् । (ऋ० ८।१२।४)

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः । येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ५५८ ॥

हे (अद्रिवः) वज्रधारी ! (इमं स्तोमं) इस स्तोत्रको, (पूतं घृतं न) विशुद्ध किये घृतके समान, (अभिष्टये) इष्ट वस्तुको पानेके लिये स्वीकार कर, (येन) जिससे (ओजसा) ओजगुणके कारण (सद्यः नु) तुरन्तही (ववक्षिथ) तू हमें इच्छित वस्तुतक पहुँचा देता है ।

पूतं घृतं= घी पवित्र है । पीनेके लिये पवित्र घीकाही उपयोग करना योग्य है ।

नाभाक काण्व. । अग्नि । महापङ्क्ति । (ऋ० ८।३९।३)

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।

स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥५५९॥

(कं घृतं न) सुखकारक घीके समान हे अग्ने ! (तुभ्य मन्मानि) तेरे लिए मननीय स्तोत्र (आसनि जुह्वे) मुँहमें हवन कर दूँगा, (त्वं पूर्व्यः हि असि) तू पहला सचमुच है, और (विवस्वत शिवः दूतः) विवस्वानका कल्याणकारक दूत भी है, ऐसा (सः) वह तू (देवेषु प्र चिकिद्धि) देवोंके मध्य मेरे इस कथनको पहुचा दे, (अन्यके) दूसरे क्षुद्र लोग (समे नभन्तां) सभी झुक जायँ ।

घृतं कं आसनि जुह्वे= घी सुखकारक है । इसलिये घीका सेवन मनुष्य करें । घी पीया करें ।

(६९) घी पीओ ।

मेधातिथि । विष्णु । त्र्यवसाना षट्पदा विराट् शक्वरी । (अथर्व० । ७।२६।३)

यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधि क्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।

उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर ॥ ५६० ॥

(यस्य उरुषु त्रिषु विक्रमणेषु) जिसके विशाल तीन विक्रमोंमें (विश्वा भुवनानि अधि क्षियन्ति) सब भुवन रहते हैं, (विष्णो !) हे व्यापक देव ! (उरु वि क्रमस्व) विशेष विक्रम कर, (घृतयोने !) हे घृतके उत्पादक ! (घृत पिब) घीका सेवन कर और (यज्ञपतिं प्रप्र तिर) यज्ञके स्वामीको पार ले जा ।

घृतं पिब= घी पीओ । घी पीनेसे अधिक विक्रम करनेकी शक्ति आती है ।

मेधातिथिः । अग्नाविष्णू । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।२९।१-२)

अग्नाविष्णू महि तद् वां महित्वं पाथो घृतस्य गुह्यस्य नाम ।

दमेदमे सप्त रत्ना दधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमा चरण्यात् ॥ ५६१ ॥

(अग्नाविष्णू) हे अग्नि तथा विष्णु ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (महि महित्वं नाम) बड़ा महत्वपूर्ण यश है, जो तुम दोनों (गुह्यस्य घृतस्य पाथः) गुह्य घृतका पान करते हो और (दमे-

दमे सप्त रत्ना दधानौ) हर घरमें सात रत्नोंको धारण कराते हो, तथा (वां जिह्वा) तुम दोनोंकी जिह्वा (घृत प्रति आ चरण्यात्) हर यज्ञमें उस घृतके प्रति प्राप्त होती है।

१ गुह्यस्य घृतस्य पाथः= रहस्यपूर्ण घीको पीते हो।

२ वां जिह्वा घृतं प्रति आ चरण्यात् = तुम्हारी जिह्वा घीके पास उसका पान करनेके लिये जावे। अग्नि और विष्णु ये देव घी पीते हैं, अतः तेजस्वी हैं। जो घी पीयेंगे वे तेजस्वी बनेंगे।

अग्नाविष्णू महि धाम प्रियं वां वीथो घृतस्य गुह्या जुषाणौ।
दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ प्रति वां जिह्वा घृतमुच्चरण्यात् ॥ ५६२ ॥

हे अग्नि तथा विष्णु ! (वां धाम महि प्रिय) तुम दोनोंका स्थान गूढ रसका सेवन करते हुए (वीथः) तुम प्राप्त करते हो, (दमेदमे सुष्टुत्या वावृधानौ) हर घरमें अच्छी स्तुतिसे बढते हुए (वां जिह्वा) तुम दोनोंकी जिह्वा (घृत प्रति उत् चरण्यात्) उस घृतको प्राप्त करती है।

वां जिह्वा घृत प्रति उच्चरण्यात्— तुम्हारी जिह्वा घीके पास शब्द करती हुई पहुंचे।

चातन । अग्निः (जातवेदा) । अनुष्टुप् । (अथर्व० १।७।२)

आज्यस्य परमेष्ठिन् जातवेदस्तनूवशिन्।
अग्ने तौलस्य प्राशान यातुधानान् वि लापय ॥ ५६३ ॥

(तनू-वशिन् परमेष्ठिन्) हे शरीरका संयम करनेवाले, श्रेष्ठ स्थानमें रहनेवाले (जातवेद. अग्ने) ज्ञानी अग्ने ! (तौलस्य आज्यस्य) तोलकर घृतका (प्राशान) प्राशन कर और (यातुधानान् वि लापय) कष्ट पहुंचानेवालोंको रुला दे।

आज्यस्य तौलस्य प्राशान = घी तोलकर पीओ। प्रमाणसे माप कर पीओ।

अथर्वा । पृथिवी, पर्जन्य. । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।१८।२)

न घ्रंस्तताप न हिमो जघान प्र नभतां पृथिवी जीरदानुः।
आपश्चिदस्मै घृतमित् क्षरन्ति यत्र सोमः सदमित् तत्र भद्रम् ॥ ५६४ ॥

(घ्रन न तताप) उष्णता करनेवाला सूर्य ताप न देवे। (हिमः न जघान) हिम या बर्फ भी इसे नष्ट न करे, (जीरदानुः पृथिवी प्र नभतां) जल देनेवाली पृथिवी जलके प्रवाहोंको फैला देवे और (आप चित् अस्मै) जल इसके लिए (घृत इत् क्षरन्ति) घी जैसा बहता रहे, (यत्र सोमः तत्र सद इत् भद्र) जहाँ सोमादि औषधियां होती हैं, वहाँ सदा कल्याणही होता है।

जल घी जैसा पुष्टिकारक बनकर पृथ्वीभर फैले।

मेधातिथिः । इडा । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।२७।१)

इडैवास्माँ अनु वस्तां व्रतेन यस्याः पदे पुनते देवयन्तः।
घृतपदी शक्वरी सोमपृष्ठोप यज्ञमस्थित वैश्वदेवी ॥ ५६५ ॥

(इडा एव) अन्न देनेवाली गौ नियमसे (अस्मान् व्रतेन अनु वस्तां) हमारे समीप अनुकूलतासे रहे, (यस्याः पदे) जिसके पदपदमें (देवयन्त. पुनते) देवताके समान आचरण करनेवाले पवित्र होते हैं, (घृत-पदी) घृतयुक्त स्थानवाली (शक्वरी) सामर्थ्यवती (सोमपृष्ठा) सोम जिसके साथ होता है, ऐसी (वैश्वदेवी) सब देवोंके साथ रहनेवाली गौ (यज्ञ उप अस्थित) यज्ञके निकट स्थिर रहे।

घृतपदी शकरी = घी जिसके पास है वह बलवाली होती है । गौही ऐसी होती है ।

वामदेव । सरस्वती । जगती । (अथर्व० ७।५७।१)

यदाशसा वदतो मे विचुक्षुभे यद्याचमानस्य चरतो जनाँ अनु ।
यदात्मनि तन्वो मे विरिष्टं सरस्वती तदा पृणद्घृतेन ॥ ५६६ ॥

(यत् आशसा वदतः मे विचुक्षुभे) जो हिंसासे बोलनेवाले मेरे मनको क्षोभ हो गया है, (यत् जनान् अनु चरत याचमानस्य) जो लोगोंकी सेवा करते हुए याचना करनेवालेकी व्याकुलता हो गयी है, (तत् आत्मनि मे तन्व विरिष्ट) वह अपने आत्मामें तथा मेरे शरीरमें जो हीनता हो गयी है, (तत् सरस्वती घृतेन आ पृणत्) उसे सरस्वती घृतसे भर डाले।

सरस्वती घृतेन तत् विरिष्टं आ पृणत = दूध देनेवाली गौ अपने घीसे उस शारीरिक तथा मानसिक दोषको दूर करे और वहाँ पूर्णता स्थापित करे । अर्थात् गौके घृतके सेवनसे शारीरिक तथा मानसिक दोष दूर होते हैं और मनुष्य निर्दोष होता है ।

वत्सः काण्व । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६।४३)

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ५६७ ॥

(घृतस्य मधो पिप्युषी) घृत एव मधुको परिपुष्ट करनेवाली (इमा सु पूर्व्यां धियं) इस अच्छी भाँति पूर्वकालीन क्रिया या बुद्धिको कण्वगोत्रके लोगोंने (उक्थेन वावृधु) स्तोत्रोंसे बढाया ।

मधोः घृतस्य पिप्युषी = मधुर घृतसे पुष्टि करनेवाली बुद्धि बढायी जाय । घृतसे पुष्टि होती है इस ज्ञानका प्रचार होना चाहिये ।

पर्वत काण्वः । इन्द्रः । उष्णिक् । (ऋ० ८।१२।१३)

यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः । घृतं न पिप्ये आसन्यृतस्य यत् ॥ ५६८ ॥

(यं) जिसे (उक्थवाहसः आयवः) स्तोत्रोंको स्थानस्थानपर गानेवाले मानव एवं (विप्राः) ज्ञानी लोग (अभिप्रमन्दुः) खूब आनन्द दे चुके, (यत्) जो आनन्द (ऋतस्य आसनि) यज्ञके मुँहमें अर्थात् स्थानमें (घृतं न पिप्ये) घृतके समान पुष्ट हो गया ।

घृतं पिप्ये = घृत पाकर पुष्ट हो गया । घी पीकर पुष्ट बन जाता है ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।६२।५)

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५६९ ॥

(नः जीवसे) हमारे जीवनके लिए (बाहवा प्र सिसृतं) बाहुओंको फैला दो और (नः गव्यूतिं घृतेन उक्षतं) हमारी गोचर भूमिको घीसे सिक्त करो, हे (युवाना) युवक मित्र एवं वरुण ! (जने नः आ श्रवयत) जनतामें हमें विख्यात बना दो और (मे इमा हवा श्रुत) मेरी इन पुकारोंको सुन लो ।

गव्यूतिं घृतेन उक्षतं = गोचर भूमिको घीसे भिगावे, अर्थात् गोचर भूमिमें ऐसा घास आदि गौको खानेके लिए मिले कि, जिससे गौके दूधमें घीकी मात्रा बढे ।

बादरायणि । अग्नि । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।१०९।३)

अप्सरसः सधमादं मदन्ति हविर्धानमन्तरा सूर्यं च ।
ता मे हस्तौ सं सृजन्तु घृतेन सपत्नं मे कितवं रन्धयन्तु ॥ ५७० ॥

(सूर्यं हविर्धानं च अन्तरा) सूर्य तथा हविष्पात्रके मध्यस्थानमें जो (सध-मादं) साथ रहनेका स्थान है। उसमें (अप्सरसः मदन्ति) अप्सरायें हर्षित होती हैं, (ताः मे हस्तौ) वे मेरे हाथोंको (घृतेन सं सृजन्तु) घीसे युक्त करें और (मे कितवं सपत्नं रन्धयन्तु) मेरे जुआडी शत्रुका नाश करें।

मे हस्तौ घृतेन सं सृजन्तु = मेरे दोनों हाथ घीसे भरे रहे हैं। इतना घी खानेको मिले की, कभी हाथोंमे घी न हो, ऐसा न हो।

बादरायणि । अग्नि । अनुष्टुप् । (अथर्व० ७।१०९।५)

आदिनवं प्रतिदीव्ने घृतेनास्माँ अभि क्षर ।
वृक्षमिवाशन्या जहि यो अस्मान् प्रतिदीव्यति ॥ ५७१ ॥

(प्रतिदीव्ने आ-दिनवं) प्रतिपक्षीके साथ मे विजयेच्छासे लडता हूँ, (घृतेन अस्मान् अभि क्षर) घीसे हमें युक्त कर, (यः अस्मान् प्रतिदीव्यति) जो हमारे साथ प्रतिपक्षी होकर व्यवहार करता है, उसे (अशन्या वृक्षं इव) बिजलीसे वृक्षका जैसे नाश किया जाता है, वैसेही (जहि) नष्ट कर डालो।

अस्मान् घृतेन अभि क्षर = हमे घीसे संयुक्त कर। हमारे चारों ओर घी चूता रहे अर्थात् विपुल प्रमाणमें हमें घी मिले।

(७०) गौमें घी रहता है ।

वामदेवो गौतमः । अग्नि, सूर्यो वाऽऽपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।५८।४)

त्रिधा हितं पणिभिर्गुह्यमानं गवि देवासो घृतमन्वविन्दन् ।
इन्द्र एकं सूर्य एकं जजान वेनादेकं स्वधया निष्टतक्षुः ॥ ५७२ ॥

(पणिभिः त्रिधा हितं) पणियोंने तीन तरहसे रखा हुआ (गवि गुह्यमानं घृतं) गौमें छिपे पडे हुए घृतको (देवाः अन्वविन्दन्) देवोंने प्राप्त किया था। (एकं इन्द्रः) एकको इन्द्रने (एकं सूर्यः जजान) एकको सूर्यने उत्पन्न किया (एकं वेनात्) और एकको वेनसे (स्वधया निःततक्षुः) अपनी धारकशक्तिसे पूर्णतया बनाया है।

देवाः गवि गुह्यमानं घृतं अन्वविन्दन् = देवोंने गायमें छिपे घीको प्राप्त किया।

जमदग्नि । गावः । अनुष्टुप् । (अथर्व० ६।९।३)

यासां नाभिरारेहणं हृदि संवननं कृतम् ।
गावो घृतस्य मातरोऽमूं सं वानयन्तु मे ॥ ५७३ ॥

(यासां नाभिः) जिनसे मिलना (आरेहणं) आनन्ददायक है और जिनके (हृदि संवननं कृतं) हृदयमें प्रेमकी सेवा है, (घृतस्य मातरः गावः) घीको निर्माण करनेवाली ये गायें (अमूं मे सं वानयन्तु) इस स्त्रीको मेरे साथ मिला दें।

घृतस्य मातरः गावः = गौवें घी निर्माण करनेवाली हैं। गौओंसे घी उत्पन्न होता है।

वत्स काण्व । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६।१९)

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ ५७४ ॥

हे इन्द्र ! (ऋतस्य पिप्युषीः) यज्ञको पुष्ट करनेवाली (इमाः पृश्नयः) ये गौएं (ते) तेरे लिए (एनां आशिरं घृतं दुहन्त) इस आश्रयणीय घृतको दुहती हैं।

पृश्नयः आशिरं घृतं दुहन्त = गौएं आश्रयणीय सोमरसमें मिलानेके लिये घीका दोहन करती हैं ॥

सुपर्ण काण्व. । इन्द्रावरुणौ । जगती । (ऋ० ८।५९।४)

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य ।
या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ॥ ५७५ ॥

(ऋतस्य सदने) यज्ञके घरमें (सप्त) सात (जीरदानवः) शीघ्रदानी (सौम्या घृतप्रुषः) सौम्य प्रकृतिवाली एवं घृतका पोषण करनेवाली (स्वसारः) स्वकीय शक्तिसे आगे बढनेवाली गौएं हैं, हे इन्द्र एवं वरुण ! (वां याः ह घृतश्चुतः) तुम दोनोंके लिये जो सचमुच घृत टपकानेवाली गौएं हैं (ताभिः यजमानाय धत्तं) उनसे यजमानके लिए आधार दे दो और (शिक्षतं) शिक्षा भी दो।

सौम्याः घृतप्रुषः घृतश्चुतः= शान्त और घीका परिपोष करनेवाली और घी टपकानेवाली (गावें) हैं।

पुनर्वत्सः काण्वः । मरुत । गायत्री । (ऋ० ८।७।१९)

इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान् काण्वस्य मन्मभिः ॥ ५७६ ॥

हे (सुदानव) अच्छे दानी वीरो ! (घृत न) घृततुल्य (इमा पिप्युषीः इषः) ये पुष्टिकारक गोरस मिश्रित अन्न (वः उ) तुम्हारे लिए ही रखे हैं, इसलिए (काण्वस्य) काण्वपरिवारके (मन्मभिः) मननीय स्तोत्रोंसे (वर्धान्) तुम बढते रहो।

घीके समान पुष्टिकारक अन्न भी हैं। और घृतमिश्रित अन्न पुष्टिकारक है।

(७१) घृतमिश्रित अन्नका सेवन।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । सतो बृहती । (ऋ० ७।१६।८)

येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥ ५७७ ॥

(येषां दुरोणे) जिनके घरमें (घृतहस्ता इळा) हाथमें घी रखनेवाली गोरूपी अन्नदेवता (प्राता) पूर्ण रूपसे (आ निसीदति) बैठ जाती है, (तान्) उन्हें (सहस्य) हे बलवान् अग्ने ! (द्रुह निदः त्रायस्व) द्रोही तथा निन्दक लोगोंसे सुरक्षित रख और (नः दीर्घश्रुत् शर्म यच्छ) हमें दीर्घ कालतक सुननेयोग्य सुखका दान दे दे।

दुरोणे घृतहस्ता इळा आ निसीदाति = घरमें घी हाथमें लिए गोरूपी अन्न देवता जहां बैठती है। (वे घर धन्य हैं)

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।३।१)

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।

यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥ ५७८ ॥

(वः अग्निं देवं) तुम्हारे अग्निदेवको, (यः घृतान्न पावकः) जो घीको अन्नके समान खानेवाला, पवित्रता करनेवाला (मर्त्येषु निध्रुविः) मानवोंमें नितान्त स्थायी रूपसे रहनेवाला, (ऋतावा तपुर्मूर्धा) ऋतका रक्षण करनेवाला और तप्त मस्तकवाला है, (यजिष्ठं दूतं) अत्यंत यजनशील दूत (अध्वरे) हिंसारहित कार्यमें (अग्निभिः सजोषाः कृणुध्व) अग्नियोंसे सहित सुपूजित कर दो ।

घृतान्नः पावकः = घी खानेवाला अग्नि जैसा तेजस्वी होता है ।

मातरिश्वा काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।५४।१)

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।

ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन् धीतिभिः ॥ ५७९ ॥

हे इन्द्र ! (ते एतत् वीर्यं) तेरी इस वीरताको (कारवः गीर्भिः गृणन्ति) कार्य करनेमें कुशल कवि लोग काव्योंसे प्रशंसित करते हैं, (ते स्तोभन्तः) वे स्तुति करते हुए (पौरासः) नागरिक लोग (धीतिभिः) कर्मोंसे (घृतश्चुतं ऊर्जं आवन्) घीसे लबालब भरे हुए बलवर्धक अन्नको सुरक्षित रख सकें, तथा (नक्षन्) प्राप्त कर सकें ।

घृतश्चुतं ऊर्जं आवन् = घीसे भरपूर भरे हुए बलवर्धक अन्नको ज्ञानी लोग सुरक्षित रखते हैं ।

वत्सः काण्वः । अश्विनौ । अनुष्टुप् । (ऋ० ८।८।१५-१६)

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।

तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ ५८० ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।

यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥ ५८१ ॥

हे (नासत्या ! दानुनः पती अश्विना) सत्यपूर्ण, दानी अश्विनौ ! (यः ऋषिः वत्सः वां) जिस वत्सऋषिने तुम्हें (गीर्भिः अवीवृधत्) काव्योंद्वारा बढाया है, (तस्मै) उसे (घृतश्चुत सहस्र-निर्णिज इषं धत्त) घीसे लबालब पूर्ण हजार बार स्वच्छ किये हुए अन्नको दे डालो ॥

(यः वसुयात्) जो धनकी चाह करनेवाला (वां सुम्नाय तुष्टवत्) तुम्हारी सुखके लिये सराहना करेगा (अस्मै) इसे (युवं) तुम दोनों (घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छत) घीसे लबालब भरे हुए अन्नको दे दो ॥

घृतश्चुत इषं धत्त = घीसे परिपूर्ण अन्न दे डालो ।

घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छतं = घीसे युक्त बलवर्धक अन्न दे दो ।

परुच्छेपो दैवोदासिः । मित्रावरुणौ । अत्यष्टि । (ऋ० १।१३६।१)

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम् ।

ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता ।

अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे ॥ ५८२ ॥

(नि-चिराभ्यां मृळयत्-भ्यां) बहुत समयतक सुख देनेहारे (मृळयत्-भ्यां) तथा आनन्द

बढानेहारे मित्र एवं वरुणसे (ज्येष्ठं घृतत् स्वादिष्ठं हव्यं नम) श्रेष्ठ, बडा, पवित्र तथा स्वादु अन्न और (मतिं) बुद्धि (सु प्र भरत) पर्याप्त रूपसे प्राप्त करो । (ता स-राजा) क्योंकि वे सम्राट् (घृत-आसुती) घी मिलाये हुए अन्नका भक्षण करनेहारे हैं, उसी प्रकार (यज्ञे यज्ञे) हर यज्ञमें वे (उप-स्तुता) प्रशंसित किये जाते हैं, (अथ) वैसेही (एनोः क्षत्रं) इनका क्षात्रबल (कुतः चन) कहींसे भी (न आ धृषे) परास्त नहीं हो जाता और उनके (नु चित् देवत्वं आधृषे) देवतापन पर भी किसीका आक्रमण नहीं होता है ।

घृता-सुती= जिस अन्नमें घी मिलाया हो, ऐसा अन्न जिन देवोंके लिए दिया जाता है, वे देव पूजनीय हैं।

(७२) घृतके साथ अन्नका दान।

गोतमो राहूगण । अग्नीषोमौ । गायत्री । (ऋ० १।९३।१०)

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति । तस्मै दीदयतं बृहत् ॥ ५८३ ॥

हे (अग्नीषोमा) अग्नि तथा सोम ! (वां) तुम्हारा (यः) जो उपासक (अनेन घृतेन) इस घीके साथ (वां दाशति) तुम्हें दान देता है, (तस्मै) उसे (बृहत् दीदयतम्) बहुतसा धन देवो।

घृतेन दाशति = घीके साथ अन्न देता है ।

मनुर्वैवस्वत , कश्यपो वा मारीच । विश्वे देवा । द्विपदा विराट् । (ऋ० ८।२५।५)

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ५८४ ॥

(सर्पिः आसुती द्वा सम्राजा) घृत-उत्पादन करनेवाले एवं दो अच्छे विराजमान मित्रवरुण (उपमा) सबके उपमानभूत होते हुए (दिवि सदः चक्राते) द्युलोकमें घर बनवा लेते हैं ।

सर्पिः आसुती सम्राजौ— बहुत घी उत्पन्न करनेवाले दो सम्राट् है । सम्राटोंको उचित है कि वे अपने राज्यमें पर्याप्त प्रमाणमें घी उत्पन्न करें, जिससे सब लोग पुष्ट हों ।

(७३) घृतसे युक्त रथ ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । अश्विनौ । जगती । (ऋ० १।३४।१०)

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ ५८५ ॥

हे (नासत्या) अश्विनी देवो ! हमारे यज्ञमें (आ गच्छतं) चले आओ, क्योंकि इधर (हविः हूयते) हमारा हवन चल रहा है, (मधुपेभिः आसभिः) मीठे रसको चखनेवाले अपने मुँहोंसे (मध्वः पिबतं) इस मिठास भरे रसका सेवन करो । (सविता उषसः पूर्वं) सूर्य उषःकालके पूर्व (युवोः घृतवन्तं चित्रं रथं) तुम दोनोंका घृतसहित चित्रविचित्र रथ यज्ञकी ओर (इष्यति हि) भेज देता है ।

जिसमें घीके घडे रखे हों, ऐसे रथका बखान यहाँपर किया है । घीसे परिपूर्ण कलश लेकर रथ यज्ञभूमिमें उपस्थित हुआ करता है । इससे कल्पना की जा सकती है कि, यज्ञमें कितना घी अग्निमें उँडेला जाता था और वह घी गोदुग्धसेही निकाला जाता था ।

(७४) घीकी विपुलता ।

गोतमो राहूगण । मरुत । जगती । (ऋ० १।८७।२)

उपह्वरेषु यदचिध्वं ययिं वय इव मरुतः केन चित्पथा ।

श्चोतन्ति कोशा उप वो रथेष्वा घृतमुक्षता मधुवर्णमर्चते ॥ ५८६ ॥

हे (मरुतः) वीर मरुतो ! (वयः इव) पक्षियोंकी तरह (केन चित् पथा) किसी भी राहसे आकर (यत् उपह्वरेषु) जब हमारे समीप (ययिं अचिध्वं) आनेवालोंको तुम इकट्ठे करते हो, तब (वः रथेषु) तुम्हारे रथोंमें रखे हुए (कोशाः) धन भाण्डार हमपर (उप श्चोतन्ति) धनकी वर्षासी करने लगते हैं और (अर्चते) उपासकके लिए (मधुवर्णं घृतं आ उक्षत) शहदकासा रंग धारण करनेहारे घृतको तुम चारों ओर खींचते हो, पर्याप्त मात्रामें घी दे देते हो ।

मधुवर्णं घृतं आ उक्षत — शहद जैसा घी चारों ओरसे प्राप्त होता रहे ।

(७५) घृतके प्रवाह ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । (आप्रीसूक्तं) देवीः द्वारः । गायत्री । (ऋ० १।१८८।५)

विराट् सम्राड्विभ्वीः प्रभ्वीर्बह्वीश्च भूयसीश्च याः । दुरो घृतान्यक्षरन् ॥ ५८७ ॥

(विराट्) विशेष ढंगसे सुहानेवाले (सम्राट्) तेजस्वी (विभ्वीः) विविध प्रकारके (प्रभ्वीः) अत्यन्त बडे (बह्वीः भूयसीः) अनगिनती (याः दुरः) जो दरवाजे हैं, वे (घृतानि अक्षरन्) घीके प्रवाह प्रवाहित कर दें ।

जैसे जलके प्रवाह आते हैं वैसे घीके प्रवाह आजांय । अर्थात् विपुल घी मिलता रहे ।

(७६) घृत और शहदसे परिपूर्ण ।

ब्रह्मा । अग्नि । २ द्विपदा साम्नी भुरिगनुष्टुप्, ४ द्विपदा साम्नी भुरिग्बृहती । (अथर्व० ५।२७।२, ४)

देवो देवेषु देवः पथो अनक्ति मध्वा घृतेन ॥ ५८८ ॥

अच्छायमेति शवसा घृता चिदीडानो वह्निर्नमसा ॥ ५८९ ॥

(देवेषु देव देवः) सब देवोंमें मुख्य देव (मध्वा घृतेन पथः अनक्ति) शहद और घीसे मार्गोंको भरपूर करता है, (अयं ईडानः वह्निः) यह स्तुति किया गया अग्नि (शवसा घृता नमसा चित्) बल, घृत और अन्नादिके साथ (अच्छ एति) भली प्रकार चलता है ।

मार्गोंमें घी और शहद भरपूर मिले ।

अथर्वा । त्रिवृत्, अग्न्यादय । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५।२८।१४)

घृतादुल्लुप्तं मधुना समक्तं भूमिदृंहमच्युतं पारयिष्णु ।

भिन्दत् सपत्नानधरांश्च कृण्वदा मा रोह महते सौभगाय ॥ ५९० ॥

(घृतात् उल्लुप्तं) घीसे भरा हुआ (मधुना समक्तं) शहदसे सींचा हुआ (भूमिदृंहं अच्युतं पारयिष्णु) भूमिके समान स्थिर और पार ले जानेवाला और शत्रुको (अधरान् कृण्वत् च) नीचे करनेवाला तू (महते सौभगाय मा आरोह) बडे भारी सौभाग्यके लिए मुझपर आरोहण कर, अर्थात् मुझे प्राप्त हो ।

अथर्वा। त्रिवृत्, अग्न्यादयः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ५।२८।३)

त्रयः पोषास्त्रिवृति श्रयन्तामनक्तु पूषा पयसा घृतेन।
अन्नस्य भूमा पुरुषस्य भूमा भूमा पशूनां त इह श्रयन्ताम् ॥ ५९१ ॥

(त्रिवृति) तीन धागोंसे युक्त इस यज्ञोपवीतमें (त्रयः पोषाः श्रयन्तां) तीन पुष्टियाँ बनी रहें, (पूषा पयसा घृतेन अनक्तु) पोषणकर्ता दूध और घीसे हमें भरपूर पूर्ण करे, (अन्नस्य भूमा) अन्नकी विपुलता (पुरुषस्य भूमा) मानवोंकी अधिकता तथा (पशूनां भूमा) पशुओंकी प्रचुरता या समृद्धि (ते इह श्रयन्तां) तेरे यहाँ स्थिर रहें।

हमारे घरोंमें दूध और घीकी विपुलता हो और गौ आदि पशुओंकी भी वृद्धि हो।

(७७) जलसंचारियोंके लिये घी।

बादरायणि। अग्नि। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ७।१०९।२)

घृतमप्सराभ्यो वह त्वमग्ने पांसूनक्षेभ्यः सिकता अपश्च।
यथाभागं हव्यदातिं जुषाणा मदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥ ५९२ ॥

हे अग्ने! (त्वं अप्-सराभ्य घृतं वह) तू जलमें संचार करनेवालोंके लिए, अप्सराओंके लिये, घी प्राप्त कर, (यथाभागं हव्यदातिं जुषाणाः देवाः) यथायोग्य प्रमाणसे हव्यभागका सेवन करनेवाले देव (उभयानि हव्या मदन्ति) दोनों प्रकारके हव्य पदार्थ प्राप्त करके आनंदित होते हैं।

अप्सरा वह है कि जो जलमें संचार करते है। जलमें संचार करनेवालोंके लिये अधिक घी मिलना चाहिये। जलमें संचार करनेवाले घी अधिक खायें और शरीरको भी अधिक घी लगा देवें जिससे जलकी शीतलाकी बाधा उनको नहीं होगी। इस कार्यके लिये शरीरपर तेल भी लगाया जाता है। आर्क्टिक प्रदेशमें मच्छियोंका तेल शरीरपर इसी कार्यके लिये लगाते हैं। इस कार्यके लिये वैदिक समयमें शुद्ध गौका घी बर्ता जाता था।

(७८) घृतसे लीपे तेजस्वी घोडे।

मेधातिथि काण्व। विश्वे देवा। गायत्री। (ऋ० १।१४।६)

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः। आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ५९३ ॥

(ये) जो (मनोयुजः) मनके समान वेगवान् (घृतपृष्ठा) घीसे लेप किये हुए समान चमकीले (वह्नयः) रथको खींचनेवाले घोडे हैं, (ते) वे (त्वा) तुझे और (देवान्) सभी देवोंको (सोमपीतये) सोमपानके लिए (आ वहन्ति) ढोते हैं, ला देते हैं।

घोडोंका शरीर घृतलेप करनेके समान चमकीला रहे। यहां शरीरपर घृतके लेपकी उपमा दी है। यह इस पद्धतिका सूचक है।

(७९) गायको दुधारू बनाना।

दीर्घतमा औचथ्यः। अश्व। जगती। (ऋ० १।१६१।३)

अग्निं दूतं प्रति यदब्रवीतनाश्वः कर्त्वो रथ उतेह कर्त्वः।
धेनुः कर्त्वा युवशा कर्त्वा द्वा तानि भ्रातरनु वः कृत्व्येमसि ॥ ५९४ ॥

(अश्वः कर्त्वः) घोडा सिखाकर तैयार करना है, (उत इह रथ कर्त्वः) उसी प्रकार इधर रथ

तैयार करता है, (धेनुः कर्त्वा) गाय दुधारू बनाना है, और (द्वा युवशा कर्त्वा) दो वृद्धोंको युवक बना देना है। (हे भ्रातः) हे बन्धो ! (तानि कृत्वा) उन सभी कार्योंको करके (व अनु आ ईमसि) तुम्हारे समीप आकर हम पहुँचते हैं। ऐसे तुम (यत् दूत आग्नि) जो दूत बने हुए अग्निसे (प्रति अब्रवीतन) उत्तरके रूपमें कह चुके हो। अर्थात् उनसे अपना भाव तुमने बतायाही होगा।

धेनुः कर्त्वा= गौको निर्माण करना है, अर्थात् गौको उत्तम दुधारू बनाना है। यह ऋभुदेवोंने कहा है। ऋभुदेव साधारण गौको उत्तम दुधारी बनाते थे।

कुत्स आङ्गिरस । ऋभव । जगती । (ऋ० १।११०।८)

निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः ।
सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥ ५९५ ॥

हे (ऋभव) ऋभुदेवो ! तुम (चर्मणः) केवल चमडेसे (गां) एक गायको (नि अपिंशत) सुन्दर स्वरूप देकर बना चुके हो और (मातर) उस माताको उसके (वत्सेन) बछडेसे (पुनः सं असृजत) फिर संयुक्त कर दिया। हे (सौधन्वनासः) सुधन्वाके पुत्रो ! तथा हे (नरः) नेता हे वीरो ! तुम (सु-अपस्यया) उत्तम कुशलतापूर्वक (जिव्री पितरा) वृद्ध मातापिताको पुनः (युवाना अकृणोतन) युवक बना चुके हो।

इस मन्त्रमें ऐसा सूचित किया हुआ दीख पडता है कि बहुत दुबली पतली, जिसके शरीरमें सिर्फ हड्डियां, और चमडीही बची रही थीं, ऐसी गायको पुष्ट करके उसे उसके बछडेके समीप रख दिया। बछडा तब दूध भी पीने लगा। बच्चेको दूध मिले, इसलिये हड्डीचर्म जैसी गौको उत्तम दुधारू बना दिया। ऋभुदेव इस विद्याको जानते थे।

इसी मन्त्रमें बूढे मातापिताको फिरसे जवान बनानेका भी उल्लेख है। जिस तरह बूढेको तरुण बनाया, वैसाही अतिकृश गौको हृष्टपुष्ट बनाया और दुधारू भी बना दिया।

(८०) कृश गौको पुष्ट बनाना।

दीर्घतमा औचथ्यः । ऋभव । जगती । (ऋ० १।१६१।७)

निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिर्या जरन्ता युवशा ताकृणोतन ।
सौधन्वना अश्वादश्वमतक्षत युक्त्वा रथमुप देवाँ अयातन ॥ ५९६ ॥

(हे सौधन्वनाः !) सुधन्वाके पुत्रो ! (धीतिभिः) कार्योंसे (चर्मणः गां निः अरिणीत) चमडेसे तुमने गौ सिद्ध करा दी, (या जरन्ता) जो बूढे हो चुके थे, (ता युवशा अकृणोतन) उन्हें तुमने युवक बना दिया (अश्वात् अश्व अतक्षत) घोडेसे घोडा तुमने तैयार कर डाला और उसे (रथ युक्त्वा) रथमें जोतकर (देवान् उप अयातन) देवोंके निकट तुम जा चुके।

चर्मणः गां निः अरिणीत= जो गाय मात्र हाड चामकी दशामें पडी थी उसे दुधारू बना दिया।

पूर्व मन्त्रमें कही बातें ऋभुदेवोंने यहां बता दी हैं। अर्थात् अस्थिचर्म अवस्थामें रही कृश गौको ऋभुदेवोंने हृष्टपुष्ट और दुधारू बना दिया है।

विश्वामित्रो गाथिन । ऋभव । जगती । (ऋ० ३।६०।२)

याभिः शचीभिश्चमसाँ अपिंशत यया धिया गामरिणीत चर्मणः ।
येन हरी मनसा निरतक्षत तेन देवत्वमृभवः समानश ॥ ५९७ ॥

हे ऋभुओ ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे (चमसान् अपिंशत) चमसोंको अलग अलग

बना दिया और (यया धिया) जिस बुद्धिके बलसे (चर्मण गां अरिणीत) चमडेसे गाय फिर तैयार कर दी, (येन मनसा) जिस मनःसामर्थ्यसे (नि अतक्षत) इन्द्रके घोडे पूर्णतया सिखलाकर तैयार कर रखे, (तेन) उसी शक्तिके सहारे तुम (देवत्वं सं आनश) देवपनको ठीक तरह प्राप्त हुए।

धिया चर्मण गां अरिणीत= बुद्धिकौशल्यसे अस्थिचर्म जैसे कृश गौको तुमने हृष्टपुष्ट और दुधारु बनाया।

वामदेवो गौतम । ऋभव । जगती। (ऋ० ४।३६।४)

एकं वि चक्र चमसं चतुर्वयं निश्चर्मणो गामरिणीत धीतिभिः ।
अथा देवेष्वमृतत्वमानश श्रुष्टी वाजा ऋभवस्तद्व उक्थ्यम् ॥ ५९८ ॥

(एकं चमसं) एक चमसको (चतुर्वयं) चार विभागवाला (वि चक्र) तुमने बना डाला, (चर्मणः) चमडेसे (धीतिभिः गां निः अरिणीत) अपने कर्मोंद्वारा गौकी पूर्ण रचना कर दी, (अथ श्रुष्टी) पश्चात् शीघ्रही (देवेषु अमृतत्वं आनश) देवोंमें तुम अमरपनको प्राप्त कर चुके, हे (वाजाः ऋभवः) बलिष्ठ ऋभुओ ! (वः तत् उक्थ्यं) तुम्हारा वह कार्य प्रशंसनीय है।

धीतिभिः चर्मणः गां निः अरिणीत= अपनी बुद्धि अर्थात् चतुरतासे तुमने चर्मकी स्थितिसे उत्तम गौका निर्माण किया, अर्थात् अस्थिचर्म जैसी अतिकृश गौ थी, उसको हृष्टपुष्ट और दुधारू बना दिया।

वामदेवो गौतम । ऋभव । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।३४।९)

ये अश्विना ये पितरा य ऊती धेनुं ततक्षुर्ऋभवो ये अश्वा ।
ये अंसत्रा य ऋधग्रोदसी ये विभ्वो नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ५९९ ॥

(ये ऋभवः) जो ऋभु (ऊती) संरक्षण योजनासे (अश्विना पितरा) अश्विनौ एवं पितरोंको संतुष्ट कर चुके, (ये धेनुं अश्वा) जो गाय तथा घोडोंको (ततक्षुः) बना चुके, (ये अंसत्रा) जो कवचको निर्माण कर चुके, (ये रोदसी ऋधक्) जिन्होंने द्युलोक तथा भूलोकको पृथक् बनाया; इस भाँति जो (विभ्वः नरः) व्याप्त, नेतृत्वगुणसे युक्त हैं, वे (स्वपत्यानि चक्रुः) अच्छे कार्य कर चुके हैं।

ये धेनुं ततक्षुः= जिन ऋभुदेवोंने गायका निर्माण किया, अर्थात् उत्तम दुधारु गाय तैयार की, ऐसे ये ऋभुदेव बडे कुशल हैं।

जिस तरह पितरोंको तरुण बनाया, उसी तरह वृद्ध और क्षीण गाको तरुण और दुधारू बनाया है। यहां अभावसे धेनुका निर्माण नहीं किया है। जिस तरह पितर थे, वैसीही धेनु थी। वृद्ध पितरोंको तरुण बनाया और क्षीण गौको दुधारु बनाया।

मेधातिथि काण्व । ऋभवः। गायत्री। (ऋ० १।२०।२)

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथम् । तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ६०० ॥

देवोंने (नासत्याभ्यां) अश्विनी देवोंके लिए (परि-ज्मानं सुखं रथं) वेगवान तथा सुखकारक रथ (तक्षन्) तैयार कर रखा और (सबर्दुघां धेनुं) बहुत दूध देनेहारी गाय भी (तक्षन्) निर्मित कर रखी है। (सबर्) दूध या अमृत (दुघा) देनेवाली गाय बहुत दूध देनेवाली गौ, (स-बर्-दुघा) पर्याप्त, उत्तम और पुष्टिकारक दुग्ध देनेवाली गौ।

यहाँपर वर्णन है कि (धेनुं तक्षन्) गौ बनाई, जिससे प्रतीत होता है कि, दुधारूपन, पुष्टिकारकता आदि गुण

गायोंमें कुछ विशेष प्रयोगोंसे बढाये जा सकते हैं। 'तक्षन्' पदसे सूचित किया है कि, जिन गुणोंका अभाव था, उन गुणोंका विशेष प्रयोगोंद्वारा निर्माण किया गया। 'तक्ष'= बनाना, तैयार करना।

धेनु सबर्दुघां तक्षन्= गौको दुधारू बना दिया।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनक । अपांनपात् । त्रिष्टुप् (ऋ० २।३५।७)

स्व आ दमे सुदुघा यस्य धेनुः स्वधां पीपाय सुभ्वन्नमत्ति ।
सो अपां नपादूर्जयन्नप्स्व१न्तर्वसुदेयाय विधते वि भाति ॥ ६०१ ॥

(यस्य धेनुः सुदुघा) जिसकी गौ बढिया दूध देनेहारी है, जो (स्वे दमे) अपने घरमें विद्यमान (स्वधां) अपनी धारक शक्तिको (आ पीपाय) बढाता है, जो (सुभु अन्न अत्ति) उत्कृष्ट अन्न खाता है, (सः ऊर्जयन्) वह बलवान् होता हुआ, (अप्सु अन्तः) जलोंमें रहकर (अपां न-पात्) जलप्रवाहोंको न गिरानेवाला अग्नि (विधते वसु-देयाय) सत्कर्म करनेहारेको धन देनेके लिए (वि भाति) विशेष ढंगसे प्रकाशमान होता है।

सुदुघा धेनुः= सुखसे दोहन करनेयोग्य गौ चाहिये। दूध दुहनेके समय गौ स्थिर रहे, हिले न, लाथे न मारे, न उछले,। ऐसी सद्गुणी गौ चाहिये।

श्रुतविदात्रेय । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।६२।३)

अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ६०२ ॥

हे (जीरदानू) शीघ्र देनेवाले (मित्रराजाना वरुणा) मित्रके साथ विराजमान वरुण! (महोभिः) अपने तेजोंसे (पृथिवीं उत द्यां अधारयत) भूलोक तथा द्युलोकको तुम स्थिर कर चुके, अब (ओषधीः वर्धयतं) ओषधियोंको पुष्ट करो, बढाओ, (गाः पिन्वत) गायोंको दुधारु करो तथा (वृष्टिं अव सृजत) वर्षाको नीचे छोड दो, खूब बारिश करो।

गाः पिन्वत= गायोंको पुष्ट करो, दुधारू बनाओ।

गृत्समद (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः । मरुत् । जगती । (ऋ० २।३४।६)

आ नो ब्रह्माणि मरुतः समन्यवो नरां न शंसः सवनानि गन्तन ।
अश्वामिव पिप्यत धेनुमूधनि कर्ता धियं जरित्रे वाजपेशसम् ॥ ६०३ ॥

हे (स-मन्यवः मरुतः) उत्साही वीर मरुतो! (नरां शंसः न) शूरोंमें प्रशंसनीय वीरोंके तुल्य (नः ब्रह्माणि सवनानि) हमारे ज्ञानमय सोमसत्रकी ओर (आ गन्तन) चले आओ, (अश्वां इव) घोडीके समान पुष्ट (धेनुं ऊधनि पिप्यत) गौको लेवेमें पुष्ट करो, (जरित्रे वाज-पेशसं) स्तोताको अन्नसे अच्छी सुरूपता दे देनेका (धियं कर्त) कर्म करो।

धेनुं ऊधनि पिप्यत = गौको दुग्धाशयमें पुष्ट करो, गौको अधिक दूध देनेयोग्य बनाओ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । अश्विनौ । जगती । (ऋ० १।११९।६)

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६०४ ॥

(युवं रेभं) तुमने रेभऋषिको (परिसूतेः उरुष्यथ) चारों ओरके उपद्रवोंसे बचाया और

(अत्रये परितप्तं घर्मं) अत्रिऋषिको धधकते हुए अग्निसे (हिमेन) शीतल जलकी सहायतासे बचाया, (शयोः) शयु नामक ऋषिकी (गवि) गोमें (युव अवसं) तुमने रक्षणक्षम दूध (पिप्यथुः) पर्याप्त मात्रामें पैदा किया, (वन्दनः) वन्दन ऋषिको (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवनसे (प्र तारि) पैलतीर पहुँचा दिया, अर्थात् दीर्घ आयुवाला बना दिया।

अवसं = रक्षा करनेहारा दूध, शरीरकी रक्षा दूध करता है, इसलिए उसे ' अवस ' कहते हैं। दूधमें विद्यमान संरक्षक गुणका यहां बखान किया है।

शयोः गवि अवसं पिप्यथुः = शयु ऋषिकी गोमें तुमने उत्तम दूध अधिक मात्रासे बना दिया। यहा दूधके लिये ' अवसं ' पद है, जो सुरक्षा करता है, रोग दूर करता है, और पोषण करता है, वैसा यह दूध है।

विश्वामित्रो गाथिन । अग्नि । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।१।७)

स्तीर्णा अस्य संहतो विश्वरूपा घृतस्य योनौ स्रवथे मधूनाम्।
अस्थुरत्र धेनवः पिन्वमाना मही दस्मस्य मातरा समीची ॥ ६०५ ॥

(घृतस्य योनौ) जलके उत्पत्तिस्थान अन्तरिक्षमेंसे (मधूनां स्रवथे) मीठे जलोंकी वृष्टि होते समय (अस्य संहतः) इस अग्निके इकट्ठे हुए किरण (विश्वरूपा स्तीर्णाः) भाँति भाँतिके रंगों तथा रूपोंसे युक्त हो हर जगह फैल जाते हैं, (अत्र धेनवः) यहाँपर गौएँ (पिन्वमानाः अस्थुः) यथेष्ट दूधसे भरपूर होकर खडी हैं और (मही) महनीय तथा विशाल (दस्मस्य मातरा) दर्शनीय अग्निके मातापिता, द्यावापृथिवी (समीची) एक होकर आयी हुई दिखाई देती हैं।

धेनवः पिन्वमाना अत्र अस्थु = गौवें पुष्ट होकर, दुधारू बनकर यहाँ रहती हैं।

(८१) अरुन्धती औषधिसे गौओंको अधिक दुधारू बनाना।

अथर्वा। रुद्र, अरुन्धती, औषधि। अनुष्टुप्। (अथर्व० ६।५९।२)

शर्म यच्छत्वोषधिः सह देवीररुन्धती। करत्पयस्वन्तं गोष्ठमयक्ष्माँ उत पूरुषान् ॥६०६॥

(अरुन्धती ओषधि देवी सह) अरुंधती नामक औषधि सब दूसरी दिव्य औषधियोंके साथ (शर्म यच्छतु) सुख देवे। (गोष्ठं पयस्वन्त) गोशालाको बहुत दुग्धयुक्त (उत पुरुषान् अयक्ष्मान् करत्) और पुरुषोंको रोगरहित करे।

अरुंधती औषधि है जो गौओंको खिलानेसे गौवें दुधारू बनती हैं। इस मन्त्रसे ऐसा पता लगता है कि और भी अन्य दिव्य औषधियाँ हैं कि जिनके खिलानेसे गौवें दुधारू बन जाती है।

गोष्ठं पयस्वन्तं करत् = गोशालाको दूधसे भरपूर करती है। यह औषधि गौको खिलानेसे गौ दुधारू बनती है और मनुष्य नीरोग होते हैं अर्थात् उस दूधको पीनेसे मनुष्य नीरोग बनते हैं।

(८२) दूधको बढानेवाले वीर।

नोधा गौतमः। मरुत। जगती। (ऋ० १।६४।११)

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३ न पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥ ६०७ ॥

(पयोवृधः) दूधकी वृद्धि करनेवाले (मखाः) यज्ञमें पूज्य (अयासः स्वसृतः) आगे आनेवाले

तथा अपनी प्रगतिसे हलचल करनेवाले (अच्युतच्युतः) स्थिर शत्रुओंको भी हिला देनेवाले (दुध्रकृतः) शत्रु जिन्हें घेर नहीं सकते, ऐसे (भ्राजत्-ऋष्टयः) चमकीले हथियार धारण करनेवाले (मरुतः) वीर मरुत् (आपथ्य न) यात्रीके तुल्य अर्थात् सडकपरसे जानेवाला जैसे राहका तृण हटाता है, वैसे (पर्वतान्) पहाडोंको भी (हिरण्ययेभिः पविभिः) स्वर्णसे अलंकृत पहियोंसे (उत् जिघ्नन्ते) उडा देते हैं, सभी विघ्नोंको दूर हटा देते हैं।

पयोवृधः= गौका दूध बढानेवाले, देशमें अधिक मात्रामें दूधकी उपज करनेवाले। राष्ट्रीय वीरोंका यह कार्य है कि वे गौओंका दूध बढानेके प्रयोग करके गोसुधार करें।

(८३) गौको दुधारू बनाओ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।११८।२)

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।

पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ ६०८ ॥

हे अश्विनौ देव! (त्रि-बन्धुरेण) बैठनेके लिए तीन आसनवाले (त्रि-वृता) तीन बंधनोंसे युक्त (त्रि-चक्रेण) तीन पहियोंवाले (सु-वृता) अच्छे वेगवान (रथेन) रथसे (अर्वाक्) इधर (आयात) पधारो। हमारी (गाः पिन्वतं) गायोंको दूधसे पूर्ण करो। (नः अर्वतः जिन्वत) हमारे घोडोंको उत्साह एवं उमंगसे भर दो, और (अस्मे) हमारे (वीरं वर्धयतं) वीरोंकी वृद्धि करो।

गाः पिन्वत = गौओंको पुष्ट करो, दुधारू बना दो। अश्विदेव औषधि प्रयोगसे गौओंको पुष्ट तथा दुधारू बनाते है।

(८४) बछडे न देनेवाली गायको बछडोंवाली बनाना।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज। अश्विनौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।११७।२०)

अधेनुं दस्रा स्तर्यं[1] विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।

युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम्[2] ॥ ६०९ ॥

हे (दस्रा अश्विना) दर्शनीय अश्विदेवो! (वि-सक्तां स्तर्यं अधेनुं) कृश, दुबली, पतली, न जननेवाली और दूध न देनेवाली (गां) गौको तुमने (शयवे अपिन्वतं) शयूके लिए दूधसे परिपूर्ण किया, दुधारू बनाया (पुरुमित्रस्य योषां) पुरुमित्रकी कन्याको (विमदाय) विमदके लिए तुम (जायां) पत्नीके रूपमें अर्पित कर चुके हो और (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे उसे (नि ऊहथुः) घरपर पहुँचा भी चुके हो।

१ बूढी बछडे न होनेवाली और दूध न देनेवाली गायको दुधारू बना दिया।

२ पुरुमित्रकी कन्याका ब्याह विमदसे किया था और उसे पतिगृह भी पहुँचा दिया। और उसे ऐसी उत्तम गौ प्रदान की।

कुत्स आङ्गिरसः। अश्विनौ। जगती। (ऋ० १।११२।३)

युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना।

याभिर्धेनुमस्वं[1] पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ ६१० ॥

हे (नरा) नेता (अश्विना) अश्विनी देवो! (युवं) तुम (दिव्यस्य अमृतस्य) दिव्य अमृतके

(मज्मना) प्रभावसे (तासां विशां प्रवासने) उन सब प्रजाओंके लिए अच्छा राज्यशासन प्रस्थापित करनेके लिए (क्षयथः) निवास करते हो, (याभिः ऊतिभिः) जिन शक्तियोंसे (अस्वं धेनुं) प्रसूत न होनेवाली गौको तुम (पिन्वथः) दूधसे परिपूर्ण बनाते हो, (ताभिः) उन्हीं शक्तियोंसे तुम (सु-आगतम्) भलीभाँति हमारे निकट आओ।

ऊतिभिः अ-स्व धेनुं पिन्वथः= अपनी शक्तियोंसे प्रसूत न होनेवाली गौको प्रसूत होनेयोग्य पुष्ट करते और दुधारू बना देते हो।

अस्व धेनु= वन्ध्या धेनु है, इसको प्रसूत होनेयोग्य बनानेका कार्य अश्विदेव करते थे। गर्भधारण करनेमें अक्षम धेनुको अस्व (अ-सु) कहते हैं। इसको गर्भधारणक्षम बनाना और भरपूर दूध भी उसके देनेमें उत्पन्न करना यह विशेष औषधि प्रयोगसेही होना शक्य है।

नाभानेदिष्ठो मानवः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।६१।१७)

स द्विबन्धुर्वैतरणो यष्टा सबर्धुं धेनुमस्वं दुहध्यै ।

स यन्मित्रावरुणा वृञ्ज उक्थैर्ज्येष्ठेभिरर्यमणं वरूथैः ॥ ६११ ॥

(वैतरणः) विशेष ढंगसे लोगोंको दुःखोंसे पार ले चलनेवाला (द्विबन्धुः) दोनों लोकोंका बन्धुभावसे देखता हुआ और (यष्टा सः) यजन करनेवाला (अस्वं धेनुं) वन्ध्या गायको (सबर्धुं) अमृततुल्य दूध देनेवाली बनाकर (दुहध्यै) दोहन करता है, (यत्) तब (ज्येष्ठेभिः वरूथैः उक्थैः) श्रेष्ठकोटिके, वरणीय स्तोत्रोंसे मित्र, वरुण तथा अर्यमाकी (सं वृञ्जे) ठीक स्तुति होती है।

यष्टा अस्वं धेनुं सबर्धुं दुहध्यै= यजन करनेवाला वन्ध्या गौको उत्तम दूध देनेवाली बनाकर दोहन करता है। यहां भी प्रसूतिके लिये अक्षम गौको दुधारू बनानेका उल्लेख है।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।११६।२२)

शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः ।

शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ ६१२ ॥

(आर्चत्कस्य शरस्य चित्) ऋचत्कके शर नामक पुत्रके लिए (पातवे) पीनेके लिए (नीचात् अवतात्) गंभीर कूपमेंसे (उच्चा वाः आ चक्रथुः) तुम पानी ऊपर ला चुके और (जसुरये) थकेमांदे (शयवे चित्) शयुके लिए तुमने (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (स्तर्यं गां) वन्ध्या गौको दुग्धसे (पिप्यथुः) परिपूर्ण किया।

वन्ध्या गायको दूध देनेवाली बनाया। जो मुमुर्षु बना हो उसे गोदुग्धके सेवनसे लाभ पहुँचता है। जो थकामाँदा हो उसे ताजा धारोष्ण दूध दिया जाय तो थकावट दूर होती है।

स्तर्यं गां पिप्यथु = वंध्या गाको उपजाऊ बनाया और दुधारू बनाया है।

वासिष्ठो मैत्रावरुणिः । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।६८।८)

वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।

यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥ ६१३ ॥

हे अश्विनौ ! [यौ] जो तुम दोनों [जसमानाय वृकाय चित् शक्तं] क्षीण होनेवाले वृकको भी प्रबल बना चुके [उत हूयमाना] और बुलाया आनेपर [शयवे श्रुतं] शयुके लिए उसकी पुकार तुम सुन चुके, [स्तर्यं चित् अघ्न्यां] वन्ध्या सदृश गायको [शक्ती शचीभिः] अपने सामर्थ्यसे

तथा शक्तियोंसे या कर्मोंसे [अप न अपिन्वतं] जलोंसे नदीको जैसे पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार दूधसे भरपूर कर चुके थे।

स्तर्यं अघ्न्यां शचीभिः अपिन्वतं = वन्ध्या तथा कृश गौको तुमने अपनी चातुर्यकी शक्तिसे हृष्टपुष्ट तथा दुधारू बना दिया है। वन्ध्या गाको गर्भधारण समर्थ बना दिया और कृश गौको पुष्ट और दुधारू बनाया।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।११८।८)

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥ ६१४ ॥

(अश्विना) हे अश्विनौ ! (युव) तुम (नाधिताय पूर्व्याय शयवे) याचना करनेहारे बहुत पुराने शयूके लिए (धेनु अपिन्वत) गायको दूधसे परिपूर्ण कर दिया, (वर्तिकां अंहसः) वर्तिकाको बुराईसे (नि अमुञ्चतं) छुडाया और (विश्पलाया जङ्घां प्रति अधत्तं) विश्पलाकी जंघा फिरसे बैठा दी गयी।

१ धेनुं अपिन्वतं = वन्ध्या गायको दुधारू बना दिया।

(८५) दूधसे परिपूर्ण अवध्य गौ।

विरूप आंगिरस। अग्नि । गायत्री। (ऋ० ८।७५।८)

मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः। कृशं न हासुरघ्न्याः ॥ ६१५ ॥

(देवानां विशः) देवोंकी प्रजाएँ (प्रस्नातीः उस्राः इव) दूधकी धाराएँ टपकाती हुई गौओंके समान प्रेमपूर्ण (अघ्न्याः) अवध्य गौएँ (कृशं न) दुबले बछडेको जैसे नहीं छोडती हैं, उसी प्रकार (नः मा हासुः) हमें न छोडें।

प्रस्नातीः उस्राः अघ्न्याः = दूधका प्रवाह छोडनेवाली गौवोंके समान गायें। भरपूर दूध देनेवाली गौवें हों।

(८६) दूधदहीसे भरे घडे।

अथर्वा। ब्रह्मौदनं। भुरिक्शाक्वरी। (अथर्व० ४।३४।७)

चतुरः कुम्भांश्चतुर्धा ददामि क्षीरेण पूर्णाँ उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ६१६ ॥

(क्षीरेण दध्ना उदकेन पूर्णान्) दूध, दही और जलसे भरे हुए (चतुरः कुम्भान् चतुर्धा ददामि) चार घडोंको चार प्रकारसे प्रदान करता हूँ। ये सारी धाराएँ सभी नदियाँ तेरे समीप उपस्थित हों।

घरमें दूध दही और जलसे भरे घडे रहें। यह घरकी शोभा है। इससे घरवालोका पोषण होता है।

अथर्वा। ब्रह्मौदन। पञ्चपदातिशक्करी। (अथर्व० ४।३४।६)

घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेण पूर्णा उदकेन दध्ना।
एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः ॥ ६१७ ॥

(घृतह्रदाः मधुकूलाः) घीके हौज और मधुर रसके प्रवाह, (सुरोदकाः) निर्मल जलसे युक्त

तथा (उदकेन दध्ना क्षीरेण पूर्णा) जल, दही और दूधसे पूर्ण (एताः सर्वाः धाराः त्वा उप यन्तु) ये सभी धाराएँ तेरे समीप आ जायँ, (स्वर्गे लोके) स्वर्ग लोकमें (मधुमत् पिन्वमानाः) मधुर रसको देनेवाली (समन्ता पुष्करिणी) सारी नदियाँ (त्वा उप तिष्ठन्तु) तेरे निकट आ जायें।

क्षीरेण दध्ना उदकेन पूर्णाः, घृतह्रदाः, मधुकूलाः त्वा उप यन्तु = दूध, दही, जल, घी और मधु (शहद) से परिपूर्ण घडे या बडे हौज घरमें रहें। इस तरह पुष्टिकारक पदार्थोंकी विपुलता घरमें हो।

प्रियमेध आंगिरस । इन्द्र । अनुष्टुप् । (ऋ० ८।६९।३)

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ६१८ ॥

(अस्य सोमं) इसके सोमको, (ताः सूददोहसः पृश्नयः) वे हौज भर सकें, इतना दूध देनेवाली गौएँ (देवानां जन्मन्) देवोंके जन्मस्थान अर्थात् (दिवः रोचने) द्युलोकके जगमगाते स्थानमें (विशः) बैठनेवाली होकर (त्रिषु आ श्रीणन्ति) तीनों समय पूर्णतया सिद्ध करती हैं।

सोमरसमें मिलानेके लिये पर्याप्त दूध दिनमें तीन बार देनेवाली गौवें है। सूद-दोहसः पृश्नयः= दूधसे हौज भरनेवाली गौवें हों।

सूद-(हौज)-दोहसः (भरनेवाली) पृश्नयः = नाना रंगोंकी गौवें। गौवें इतना अधिक दूध देवें की जिनके दूधसे हौज भर जाय।

पुनर्वत्स काण्वः । मरुत । गायत्री । (ऋ० ८।७।१०)

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु । उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ ६१९ ॥

(पृश्नयः) गायोंने (वज्रिणे) वज्रधारीके लिए (मधु) मिठाससे पूर्ण (त्रीणि सरांसि) तीन तालाब, जिन्हें (उत्सं) जलकुंड, (क-बन्धं) पानीको बाँधकर रखनेवाले जलाशय, एवं (उद्रिण) उदकयुक्त हौज कहते हैं। इस तरहके कुण्ड (दुदुह्रे) दोहन कर रखे। अर्थात् भरकर रखे हैं।

पृश्नयः त्रीणि सरांसि दुदुह्रे = गौओंने तीन हौज अपने दूधसे भरकर रखे है।

(८७) अग्निकी सेवा करनेहारी गौएँ।

विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।७।२)

दिवक्षसो धेनवो वृष्णो अश्वा देवीरा तस्थौ मधुमद्वहन्तीः ।
ऋतस्य त्वा सदसि क्षेमयन्तं पर्येका चरति वर्तनिं गौः ॥ ६२० ॥

(वृष्णः) बलिष्ठ अग्निके सम्मुख (अश्वाः) घोडे, (दिवक्षसः धेनवः) दिव्य तेजसे युक्त गौएँ तथा (देवीः) दिव्य, (मधुमत् वहन्तीः) मधुर जल बहनेवाली नदियाँ (आ तस्थौ) आकर खडी हैं, हे अग्ने! (ऋतस्य सदसि) इस यज्ञगृहमें (क्षेमयन्तं त्वा) निवास करनेवाले तुझको (वर्तनिं) ज्वालाओंका प्रवर्तन करनेहारेको (एका गौः परि चरति) एक गाय सेवित कर रही है।

अग्निकी सेवा करनेके लिए, गौएँ घोडे तथा जल सदैव उत्कंठित रहती हैं।

उत्कील कात्य । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।१५।२)

त्वं नो अस्या उषसो व्युष्टौ त्वं सूर उदिते बोधि गोपाः ।
जन्मेव नित्यं तनयं जुषस्व स्तोमं मे अग्ने तन्वा सुजात ॥ ६२१ ॥

हे अग्ने ! (अस्याः उषसः वि-उष्टौ) इस उषाके प्रकाशित होनेपर तथा (सूरे उदिते) सूर्यके उदय होनेपर (त्वं न गोपाः बोधि) तूही हमारी गायोंका पालनकर्ता होनेके लिए जागृत रह, हे (तन्वा सुजात) शरीररूपी ज्वालाओंसे सुन्दर दीख पडनेवाले अग्ने ! (मे स्तोमं) मेरे स्तोत्रको, (तनयं जन्म इव) पुत्रको जन्मदाता पिताके समान (नित्यं जुषस्व) हमेशा समीप रख लो ।

देवीः धेनवः मधुमत् वहन्तीः= दिव्य गौवें मीठा दूध देती हैं । इनका रक्षक (गो पा अग्निः) अर्थात् गौओंका पालन करनेवाला अग्नि है । अग्निमें यज्ञ होता है, यज्ञमें सोमरस निकाला जाता है, उस रसमें मिलानेके लिये तथा हवनके अर्थ घीके लिये गौओंकी सुरक्षा की जाती है ।

विश्वामित्रो गाथिनः । अग्निः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।६।४)

महान्त्सधस्थे ध्रुव आ निषत्तोऽन्तर्द्यावा माहिने हर्यमाणः ।
आस्क्रे सपत्नी अजरे अमृक्ते सबर्दुघे उरुगायस्य धेनू ॥ ६२२ ॥

(ध्रुवः महान्) स्थिर तथा बडा अग्नि (द्यावा अन्तः) द्यावापृथिवीके अन्दर अर्थात् बीचमें- अन्तरिक्षमें (माहिने सधस्थे) महत्त्वपूर्ण स्थानपर (आ-निषत्तः) बैठा हुआ (हर्यमाण) उपासकोंको सुख देनेकी इच्छा करता है, (आस्क्रे) आक्रमण करनेहारी (स-पत्नी) समान पतिवाली, सूर्यकी दोनों स्त्रियाँ (अजरे) क्षीण न होती हुई (अमृक्ते) अमर, (सबर्दुघे) दुधारू (धेनू) दो गायें, धन्य करनेवालीं द्यावापृथिवी (उरु-गायस्य) बहुत प्रशंसनीय अग्निको दुग्ध पिलाती हैं ।

यज्ञमें गायें, दूध एवं घृतका हवन होता है । अमृक्ते सबर्दुघे धेनू = अमृत जैसा दूध देनेवाली उत्तम दुधारू गौवें हों ।

(८८) दुधारू गायकी उत्पत्ति करनेवाला बैल ।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।४।१)

साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ ६२३ ॥

(त्वेषः साहस्रः) तेजस्वी, हजारों शक्तियोंसे युक्त (पयस्वान् ऋषभः) दूधवाला बैल (वक्षणासु विश्वा रूपाणि बिभ्रत्) नदीके किनारोंपर सभी रूपोंको धारण करता हुआ (बार्हस्पत्यः उस्रियः) बृहस्पतिसे नाता रखनेवाला यह बैल (दात्रे यजमानाय) दानी यज्ञकर्ताको (भद्रं शिक्षन्) भलाई सिखाता हुआ यज्ञके (तन्तुं आतान्) धागेको फैलाता है ।

जिसके वीर्यसे विशेष दूध देनेवाली गायें उत्पन्न होती हैं, वह बैल विशेष महत्त्ववाला है ।

पयस्वान् वृषभः = यह दूधवाला बैल है । वास्तवमें बैल कभी दूध नहीं देता । परन्तु यहां दूधवाले बैलका वर्णन है । इसका अर्थ यही है कि, जिस बैलसे गर्भधारणा होनेपर उत्तम दुधारू गायकी उत्पत्ति होती है वह बैल ' दुधारू बैल ' कहलाता है । गौका वंशसुधार करनेका यह साधन है ।

(८९) गौ निर्माण करनेवाला सोम ।

गोतमो राहूगण. । सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९१।२२)

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।
त्वमा ततन्थोर्व१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ ६२४ ॥

हे सोम ! [त्वं इमाः विश्वाः ओषधीः] तू इन सभी औषधियोंको [अजनय] उत्पन्न कर चुका है, [त्वं अपः] तूने जलसमूह बनाये हैं, [त्वं गाः] तूने गौएँ बनायी हैं और [त्वं उरु अन्तरिक्षं] तूने विस्तीर्ण तथा भव्य अन्तरिक्ष [आ ततन्थ] अधिक विशाल तथा चौडा बनाया है, उसी प्रकार [त्वं तमः] तू अँधेरेको [ज्योतिषा विववर्थ] तेजसे दूर हटा चुका है।

हे सोम ! त्वं गाः अजनय = हे सोम ! तूने गौको बना दिया, अर्थात् सोम गौओंको पुष्ट बनाकर दुधारू बनाता है। अच्छी वनस्पतियोंके सेवनसे भी गौ दुधारू बनती है।

(९०) गायमें दूध उत्पन्न करनेवाला देव ।

नोधा गोतम । इन्द्र. । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।६२।९)

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ६२५ ॥

[सु- अपस्यमानः] सत्कर्म करनेवाले [सु-दंसाः] कार्यकुशल [शवसा सूनुः] बलसे युवक इन्द्रने [सनेमि] अनादि कालसे ले हमसे [सख्यं दाधार] मित्रता रखी है । [आमासु चित् अन्तः] छोटी ऊमरकी गायोंमें भी उसने [पक्वं पयः दधिषे] परिपक्व दूध धर दिया है, और [कृष्णासु रोहिणीषु] काली या रक्तिम वर्णवाली गौओंमें भी [रुशत्] शुभ्र सफेद रंगका दूध बना दिया है।

विरोधाभास अलंकार- (१) आमासु अन्तः पक्वं पयः दधिषे= कच्ची गायोंमें पका दूध पैदा किया, (२) कृष्णासु रोहिणीषु रुशत्= काली और लाल गायोंमें श्वेतवर्णवाला दूध रखा । यही देवताके सामर्थ्यका आश्चर्य है।

(९१) अश्विनौने गायके लेवेमें दूध उत्पन्न किया ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणि । अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१८०।३)

युवं पय उस्रियायामधत्तं पक्वमामायामव पूर्व्यं गोः ।
अन्तर्यद्वनिनो वामृतप्सू ह्वारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥ ६२६ ॥

(युवं) तुमने (उस्रियायां) गायोंमें (पयः अधत्तं) दूध रख दिया है, पैदा किया है, उसी तरह (आमायां) अपरिपक्व गायोंमें भी (गोः पक्वं) गायका परिपक्व दूध तुमने (पूर्व्यं) पहले जैसेही (अव) धारण किया हुआ है, हे (ऋतप्सू) सत्यस्वरूपवाले देवो ! (यत्) इसीलिए (वनिनः अन्तः) वनके भीतर रहनेवाले (ह्वारः न) चोरके समान जागृत रहनेवाला (हविष्मान्) अन्न साथ रखनेवाला (शुचिः) पवित्र आचरणसे युक्त यजमान (वां यजते) तुम्हारी पूजा कर रहा है।

युवं उस्रियायां पयः अधत्तं, आमायां गोः पक्वं अधत्तं= तुमने गौमें दूध रखा और अपक्व गौमें भी पक्व दूध रखा है । अर्थात् छोटी आयुवाली गौमें भी बडी गौके समानही दूध रखा है । यह अश्विनी देवोंकी कृपा है।

(९२) दुधारू गायके लिये सुख ।

त्रित आप्त्यः । आदित्याः । महापङ्क्तिः । (ऋ० ८।४७।१२)

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत ।

गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ६२७ ॥

(धेनवे गवे च श्रवस्यते वीराय च) दुधारू गायके तथा अन्नकी या यशकी कामना करनेहारे शूर पुरुषके लिए (भद्रं) कल्याण हो, क्योंकि (वः ऊतयः अनेहसः) तुम्हारी रक्षाएँ दोषशून्य हैं, और (*वः ऊतयः सुऊतयः*) *तुम्हारी रक्षाएँ भलीभाँति सुन्दर हैं ।*

धेनवे गवे भद्रं= गौके लिए सुख प्राप्त हो, ऐसी उत्तम रीतिसे गौका सँभाल करना चाहिये ।

सोभरिः काण्वः । अश्विनौ । सतो बृहती । (ऋ० ८।२२।४)

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।

अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ६२८ ॥

हे (शुभस्पती) शुभके पालनकर्ता अश्विनौ ! (युवो रथस्य चक्र) तुम्हारे रथका एक पहिया (परि ईयते) द्युलोकमें चतुर्दिक् घूमता है, (अन्यत्) दूसरा पहिया (ईर्मा वां इषण्यति) प्रेरण-कर्ता तुम्हारे पीछे चला आता है । (वां सुमतिः) तुम दोनोंकी कल्याणकारक बुद्धि (अस्मान् अच्छ) हमारे प्रति (धेनुः इव आ धावतु) दुधारू गायके समान दौडती चली आए ।

अश्विनौ देवोंकी सुमति जैसी सहाय्यकारी होती है वैसीही उत्तम दुधारू गौ साथ रही तो सहायक होती है । देवोंकी सुमति जसी ही गौ है, इसीलिये इस गौको दुधारू बनना चाहिये ।

उरुचक्रिरात्रेयः । मित्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।६९।२)

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।

त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ ६२९ ॥

हे वरुण तथा मित्र ! (वां) तुम दोनोंकी (धेनवः इरावतीः) गायें दूधवाली होती हैं और (सिन्धवः मधुमत् दुह्रे) नदियाँ मीठा जल दुहती हैं, (त्रयः द्युमन्तः रेतोधाः) तीन द्योतमान और रेतका धारण करनेवाले (वृषभासः) बैल (तिसृणां धिषणानां वि तस्थुः) तीन स्थानोंमें विशेष रूपसे अवस्थित हो चुके ।

मित्र और वरुणकी गौवें दुधारू होती हैं । ऐसी गौवें हमें मिलें । उत्तम बैल, सांड, रहें रहें जिनसे गोवंशका सुधार हो । इरावती धेनवः द्युमन्तः रेतोधाः वृषभासः तस्थुः— दूध देनेवाली गौवें निर्माण करनेके लिये तेजस्वी गर्भाधान करनेवाले बैल रहें । यह गोवंश सुधारका मार्ग है ।

(९३) थोडासा दूध देनेहारी गौका सुधार ।

अगस्त्यो मैत्रावरुणिः । बृहस्पतिः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१९०।५)

ये त्वा देवोस्रिकं मन्यमानाः पापा भद्रमुपजीवन्ति पज्राः ।

न दूढ्ये३ अनु ददासि वामं बृहस्पते चयस इत्पियारुम् ॥ ६३० ॥

हे देव ! (ये पापाः पज्राः) जो पापी बलनेपर भी धनिक बने लोग (भद्रं त्वां) कल्याणकारक

तुझको (उस्त्रिक मन्यमाना) तुच्छ, नगण्य समझकर (उप जीवन्ति) जीवित रहते हैं, ऐसे (दूढये) दुरात्माओंको तू (वामं न ददासि) धन नहीं देता है और हे बृहस्पते ! (पियारुं) ऐसे हिंसकका (चयसे इत्) निश्चयपूर्वक तू वध करता है।

उस्त्रिक = बिलकुल छोटीसी, तुच्छ गाय जो नाममात्रका दूध देती हो । भद्र उस्त्रिक मन्यमाना = कल्याण करनेवालेको क्षुद्र समझ लेना। थोडा दूध देनेवाली गौ तुच्छ समझी जाती है, इसीलिये ऐसी गौको पूर्वोक्त औषधियाँ आदि खिलाकर दुधारू बनानेसे वही गौ यज्ञके योग्य होती है।

(९४) गौके दूधके साथ सोमरसका मिश्रण।

अग्नयो धिष्ण्या ऐश्वरय । पवमानः सोमः । द्विपदा विराट् । (ऋ० ९।१०९।१५,१७)

पिबन्त्यस्य विश्वे देवासो गोभिः श्रीतस्य नृभिः सुतस्य ॥ ६३१ ॥
स वाज्यक्षाः सहस्ररेता अद्भिर्मृजानो गोभिः श्रीणानः ॥ ६३२ ॥

(अस्य नृभिः सुतस्य) इस मानवोंद्वारा निचोडे हुए (गोभिः श्रीतस्य) गायोंके दुग्धसे मिलाये हुए सोमके रसको (विश्वे देवासः) सभी देव (पिबन्ति) पी लेते हैं। (वाजी) बलवान (सः सहस्ररेता) वह सहस्रवीर्यवाला (गोभिः श्रीणान) गायोंके दुग्धसे मिश्रित होता हुआ (अद्भिः मृजान) जलोंसे साफ सुथरा बनता हुआ सोम (अक्षाः) टपकता रहा है।

सुतस्य गोभिः श्रीतस्य पिबन्ति । गोभिः श्रीणानः अद्भिः मृजानः अक्षाः = सोमके नीचोडे रसमें गोदुग्ध मिलाकर पीते हैं। गोदुग्धसे मिलाया और जलसे मिश्रित किया यह सोमरस छाना जाकर तैयार हुआ है। अब यह पीनेयोग्य हुआ है।

सप्तर्षयः। पवमानः सोमः । सतो बृहती। (ऋ० ९।१०७।२)

नूनं पुनानोऽविभिः परि स्रवादब्धः सुरभिंतरः ।
सुते चित्त्वाप्सु मदामो अन्धसा श्रीणन्तो गोभिरुत्तरम् ॥ ६३३ ॥

हे सोम ! (अदब्ध सुरभिंतरः) न दबा हुआ और अत्यन्त सुगन्धसे पूर्ण तू (नूनं अविभिः पुनानः) अब सचमुच भेडीके बालोंकी छाननीसे शुद्ध होता हुआ (परि स्रव) चारों ओरसे टपकता रह, (त्वा सुते चित्) तुझको निचोडनेपर (अन्धसा गोभिः) अन्नसे और गायोंके दूधसे (उत्तरं श्रीणन्तः) खूब मिलाते हुए (अप्सु मदामः) जलोंमें रख हम हर्षित होते हैं।

सुरभिंतरः, अविभिः पुनानः, अन्धसा गोभिः श्रीणन्तः = सोमरस सुगन्धयुक्त है, भेडीकी ऊनके कम्बलसे छाना जाता है, सत्तूका आटा और गौका दूध मिलाकर (पीनेके लिये) तैयार होता है।

अयास्य आङ्गिरसः। पवमानः सोमः । गायत्री। (ऋ० ९।४६।४)

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना । गोभिः श्रीणीत मत्सरम् ॥ ६३४ ॥

हे [सुहस्त्यः] अच्छे हाथवाले यजमानो ! [आ धावत] चारों तरफसे दौडते आओ, [मन्थिना शुक्रा गृभ्णीत] दण्डसे जोकि बिलोडनेके काममें आता है, तेजस्वी सोमोंको पकड लो, और [मत्सरं गोभिः श्रीणीत] आनन्द देनेवाले सोमरसको गायोंके दूधसे मिश्रित कर दो।

गोभिः श्रीणीत मत्सरम् = सोमरसमें गायोंका दूध मिलाओ।

पराशरः शाक्त्यः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९७।४३)

ऋजुः पवस्व वृजिनस्य हन्ताऽपामीवां बाधमानो मृधश्च ।

अभिश्रीणन्पयः पयसाऽभि गोनामिन्द्रस्य त्वं तव वयं सखायः ॥ ६३५ ॥

(वृजिनस्य हन्ता) पापका विनाशकर्ता (मृधः बाधमानः च) शत्रुओंको कष्ट देता हुआ, (अमीवां अप) रोगको हटा दे और (ऋजुः पवस्व) सरल ढंगसे टपकता रह, (पयः) अपने सारको (गोनां पयसा) गायोंके दूधसे (अभि अभिश्रीणन्) चारों ओरसे मिलाता हुआ, (त्वं इन्द्रस्य) तू इन्द्रका मित्र है और (वयं तव सखायः) हम तेरे मित्र हैं।

पयः गोनां पयसा अभिश्रीणन् = सोमका रस गौओंके दूधके साथ मिश्रित किया जाता है।

वाच्य प्रजापति । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।८४।५)

अभि त्यं गावः पयसा पयोवृधं सोमं श्रीणन्ति मतिभिः स्वर्विदम् ।

धनंजयः पवते कृत्व्यो रसो विप्रः कविः काव्येना स्वर्चनाः ॥ ६३६ ॥

(त्यं पयोवृधं) उस दूधसे बढानेहारे (मतिभिः स्वः विदं सोमं) बुद्धियोंसे स्वर्गके प्रकाशको प्राप्त करनेहारे सोमको (गावः पयसा श्रीणन्ति) गौएँ दूधसे मिश्रित करती है, (धनंजयः कृत्व्यः रसः) धनको जीतनेवाला, करनेयोग्य रसीला (विप्रः कविः) ज्ञानी, क्रान्तदर्शी (स्वर्चनाः) उत्तम अन्न रखनेवाला सोम (काव्येन पवते) काव्यके साथ विशुद्ध होता है।

पयोवृधं सोमं गावः पयसा श्रीणन्ति = जलसे बढाये जानेवाले सोमके साथ गौवें अपने दूधको मिलाती हैं। जब यह रस छाना जाता है, तब काव्यगान होता रहता है।

सोममें जल मिलाया जाता है, वह छाना जाता है और दूध मिलाकर पीया जाता है।

नोधा गौतम । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९३।३)

उत प्र पिप्य ऊधरघ्न्याया इन्दुर्धाराभिः सचते सुमेधाः ।

मूर्धानं गावः पयसा चमूष्वभि श्रीणन्ति वसुभिर्न निक्तैः ॥ ६३७ ॥

(सुमेधा इन्दुः) अच्छी बुद्धि देनेवाला सोम (धाराभिः सचते) धाराप्रवाहमें वह निकलता है, (उत) और (अघ्न्यायाः ऊधः) अवध्य गायका लेवा (प्र पिप्ये) यथेष्ट पुष्ट कर चुका है, (निक्तैः वसुभिः न) मानों स्वच्छ कपडोंसे (गावः पयसा) गौएँ दूधसे (चमूषु) बर्तनोंमें (मूर्धानं अभि श्रीणन्ति) ऊँचे स्थानमें रहे सोमको मिश्रित करती हैं।

इन्दुः धाराभिः अघ्न्यायाः ऊधः प्र पिप्ये = सोमरस अपनी धाराओंद्वारा अवध्य गौका लेवा पुष्ट करता है, और—

गावः पयसा चमूषु मूर्धानं अभि श्रीणन्ति = गौवें अपने दूधसे पात्रोंमें सिरके स्थानमें विराजमान होनेवाले सोमरसके साथ मिल जाती हैं। अर्थात् सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है।

सिकता निवावरी । पवमान सोमः । जगती । (ऋ० ९।८६।१७)

प्र वो धियो मन्द्रयुवो विपन्युवः पनस्युवः संवसनेष्वक्रमुः ।

सोमं मनीषा अभ्यनूषत स्तुभोऽभि धेनवः पयसेमशिश्रयुः ॥ ६३८ ॥

(वः धियः) तुम्हारे बुद्धिमान लोग जोकि (मन्द्र-युवः विपन्युवः) आनन्ददायक सोमकी

कामना करनेहारे प्रशंसाकी इच्छा करनेहारे हैं, (सदनेषु प्र अक्रमुः) निवासस्थानोंमें विशेष रीतिसे सञ्चार करने लगे, (मनीषा स्तुभः) मनपर प्रभुत्व रखनेवाले स्तोतागण (सोमं अभ्यनूषत) सोमकी सराहना कर चुके और (धेनवः पयसा) गौवें दूधसे (ईं अभि अशिश्रयुः) इसे पूरी तरह मिला चुकीं।

धेनवः पयसा सोमं अभि अशिश्रयुः = गायोंने अपने दूधके साथ सोमका रस मिला दिया। अर्थात् सोमरसमें गोदुग्ध मिलाया गया।

ऋषभो वैश्वामित्रः। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।७१।४)

परि द्युक्षं सहसः पर्वतावृधं मध्वः सिञ्चन्ति हर्म्यस्य सक्षणिम्।
आ यस्मिन् गावः सुहुताद ऊधनि मूर्धञ्छ्रीणन्त्यग्रियं वरीमभिः ॥ ६३९ ॥

इन्द्रको (हर्म्यस्य सक्षणिं) शत्रुओंके महलको तोडनेवाले (पर्वतावृधं द्युक्षं) पर्वतोंपर बढनेवाले और द्युलोकमें रहनेवाले (मध्वः) मिठाससे पूर्ण (सहसः) बलसे निष्पादित सोमरस (परि सिञ्चन्ति) पूर्णतया सिक्त करते हैं, (यस्मिन्) जिसमें (सुहुतादः गावः) अच्छी तरह दिये हुए का आस्वादन करनेवाली गौएँ (मूर्धन् ऊधनि अग्रियं) अपने ऊंचे लेवेमें पाये जानेवाला श्रेष्ठ दूध (वरीमभिः) श्रेष्ठ तरीकोंसे (आ श्रीणन्ति) पूर्णतया मिलाती हैं।

सोमसे मधुर रस निकालते हैं, उसमें गौओंका दूध मिलाते हैं। जिन गौओंका दूध निचोडते हैं, उनको अच्छी तरह घास पानी आदि निर्मल वस्तुएँ खिलाते और पिलाते हैं।

इस मन्त्रमें सोमके वर्णनमें कहा है कि– ' पर्वता-वृध द्यु-क्ष ' (सोम) ' अर्थात् पर्वतके शिखरपर बढनेवाला द्युलोकमें स्थित सोम है। जो पर्वतके शिखरपर बढता है वही द्युलोकमें रहता है। पर्वतशिखर और द्यु ये पद करीब करीब एकही प्रदेशका वर्णन करते हैं। इससे प्रतीत होता है कि पर्वतशिखर और द्युलोक तथा आकाश ये द्युलोक हैं। ऊंचे पर्वतके शिखरपर रहनेवाला सोम उत्तम है।

पर्वतावृधं द्युक्षं परि सिञ्चन्ति, यस्मिन् गावः ऊधनि अग्रियं श्रीणन्ति = पर्वतके शिखरपर रहनेवाले सोममें जलका सिंचन करते हैं और जिसमें गौवें अपने लेवेमें मुख्यतः रहनेवाले दूधको मिलाती हैं।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।१।९)

अभीऽममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्। सोममिन्द्राय पातवे ॥ ६४० ॥

(इमं शिशुं सोमं) इस शिशु सोमके साथ (अघ्न्याः धेनवः) अवध्य गायें, (उत इन्द्राय पातवे) इसलिए कि इन्द्र पी सके, (अभि श्रीणन्ति) अपने दूधको मिश्रित करती हैं।

धेनवः सोमं श्रीणन्ति = गौवें सोमको (अपने दूधके साथ) मिश्रित करती हैं। सोमके साथ गौका दूध मिलाया जाता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।१४।६)

अति श्रिती तिरश्चता गव्या जिगात्यण्व्या। वग्नुमियर्ति यं विदे ॥ ६४१ ॥

(गव्या श्रिती) गायोंके दूधके साथ मिश्रित होनेके लिए (अण्व्या अति) अँगुलियोंको पार करके छाननीमेंसे (तिरश्चता) टेढी राहसे (जिगाति) चला जाता है, छाना जाकर नीचे उतर रहा है और (वग्नुं) शब्दको (यं विदे) जिसे उपासक जानता है, (इयर्ति) उच्चारित करता है। अर्थात् छाना जानेके समय शब्द करता हुआ सोम छाननीसे नीचे उतरता है।

सोम कूटकर अंगुलियोंसे इकट्ठा करके छाननीपर रखते हैं, अंगुलियोंसे दबाते हैं, ऐसा करनेसे रस निकल आता है और वह छाननीसे छाना जाकर नीचे उतरता है। इस समय टपकनेका जो शब्द होता है वह सोमरस छाननेवालोंको परिचित होता है। यह सोमरस गोदुग्धके साथ मिश्रित होनेके लिये इस समय तैयार रहता है।

गव्या श्रित्ती जिगाति = गोदुग्धके साथ मिश्रित होनेकी इच्छासे सोमरस छाननीसे नीचे उतरता है।

कश्यपो मारीचः । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।६४।२८)

वविद्युतत्या रुचा परिष्टोभन्त्या कृपा । सोमाः शुक्रा गवाशिरः ॥ ६४२ ॥

(शुक्राः गवाशिरः) दीप्त तथा गोदुग्धसे मिश्रित सोमरस (वविद्युतत्या रुचा) द्योतमान कान्तिसे और (परिष्टोभन्त्या कृपा) चारों ओरसे जिसकी स्तुति होती है ऐसी धारोंसे युक्त होकर तैयार हुए हैं। स्वच्छ किये हुए सोमरसके प्रवाह गोदुग्धके साथ मिलकर तैयार हुए हैं।

गौका दूध और सोमका रस।

गौके दूधके साथ सोमरसका मिश्रण करनेकी प्रथाका वर्णन करनेवाले ये मन्त्र हैं। इनमें- (१) गोभिः श्रीतः, गोभिः श्रीणानः । ऋ० ९।१०९।१५, १७ (२) गोभिः अन्धसा श्रीणन्त । ऋ० ९।१०७।२, (३) गोभिः मत्सरं श्रीणीत । ऋ० ९।४६।४; (४) धेनवः सोम श्रीणन्ति । ऋ० ९।१।९, इतने मन्त्रोंद्वारा बताया कि, गौओंके साथ सोमका मिश्रण होता है। यहां शंका उत्पन्न होती है कि, गौके किस पदार्थके साथ सोमका मिलान होता है ? उत्तरके लिये निम्नलिखित मंत्रोंमें कहा है कि—

(५) गोनां पयसा अभिश्रीणन् । ऋ० ९।९७।४३, (६) गावः पयसा श्रीणन्ति । ऋ० ९।८४।५, (७) गावः पयसा मूर्धान अभि श्रीणन्ति । ऋ० ९।९३।३, (८) धेनवः पयसा सोमं आशिश्रयुः । ऋ० ९।८६।१७, (९) गावः अग्रियं आ श्रीणन्ति । ऋ० ९।७१।४ = गौवें अपने दूधसे सोमरसका मिश्रण करती हैं। अर्थात् गौवें दूधको सोमरसके साथ मिलाती हैं, इसका अर्थ यह है कि, गौका दूध और सोमरसका मिश्रण किया जाता है। ' गोभिः अन्धसा श्रीणन्तः । ऋ० ९।१०७।२ इस मन्त्रमें ' अन्धस् ' पदका अर्थ भी गोदुग्धही है जो सोमरसमें मिलाया जाता है।

इस तरह मंत्रोंद्वाराही उत्तर दिया गया कि, गौके दूधकाही मिश्रण सोमरसके साथ किया जाता है। इसी मिश्रणको वेदमन्त्रोंने ' गवाशिरः ' कहा है, इसका अर्थ गोदुग्धके साथ मिला हुआ सोमरस। अब दहीके साथ सोमरसका मिश्रण करनेका उल्लेख करनेवाले मन्त्र देखिये—

(९५) सोमरसका दहीसे मिलान।

वसुर्भारद्वाज । पवमान सोमः । जगती । (ऋ० ९।८१।१)

प्र सोमस्य पवमानस्योर्मय इन्द्रस्य यन्ति जठरं सुपेशसः ।
दध्ना यदीमुन्नीता यशसा गवां दानाय शूरमुदमन्दिषुः सुताः ॥ ६४३ ॥

सोमरसकी (सुपेशसः ऊर्मयः) सुन्दर लहरें (इन्द्रस्य जठरं प्र यन्ति) इन्द्रके पेटमें चली जाती हैं, (यत्-ईं) जब ये (दध्ना यशसा उन्नीताः) दही और यशसे ऊपर उठाये हुए थे, तब (सुताः) निचोडे हुए सोमरस (शूर गवां दानाय) शूर इन्द्रको गायोंका दान करनेके लिए (उत् अमन्दिषुः) प्रोत्साहित कर चुके।

सुता दध्ना उन्नीताः = निचोडे सोमरस दहीके साथ उण्डेले जाते हैं, तब वह पीये जाते है।

सोमरसका उन्नयन— रसका उन्नयन उसको कहते हैं कि जो ऊंची धारासे एक बर्तनका रस दूसरे बर्तनमें डाला जाता है। इस उन्नयनसे उस रसमें वायु मिलता है और रुचिमें मधुरता आती है। भंग पीनेवाले ऐसा उन्नयन करते हैं और पश्चात् भंग पीते है। सोमरस भी उन्नयनके पश्चात्‌ही पीया जाता था।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।११।६)

नमसेदुप सीदत दध्नेदभि श्रीणीतन। इन्दुमिन्द्रे दधातन॥ ६४४॥

(इन्दु) सोमको (नमसा उपसीदत इत्) नमनपूर्वक समीप जा बैठो, (दध्ना अभि श्रीणीतन इत्) दहीसे जरूर मिला दो और (इन्द्रे दधातन) इन्द्रमें उसे रख दो। अर्थात् इन्द्रको अर्पण कर दो।

इन्दु दध्ना अभि श्रीणीतन = सोमरस दहीके साथ मिला दो।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।२२।३)

एते पूता विपश्चितः सोमासो दध्याशिरः। विपा व्यानशुर्धियः॥ ६४५॥

(एते सोमासः) ये सोम (दध्याशिरः) दहीमें मिलाये हुए (पूताः विपश्चितः) पवित्र किये हुए तथा बुद्धिवर्धक (विपा) बुद्धि या ज्ञानसे (धियः व्यानशुः) कर्मोंको व्याप्त करते हैं अर्थात् दहीमें मिलाये हुए सोम पी लेनेसे सभी कार्य पूर्ण करनेमें उत्साह उत्पन्न होता है।

पूताः सोमासः दध्याशिरः धियः व्यानशुः = पवित्र छाना हुआ सोमरस दहीके साथ मिलाकर पीनेसे बुद्धिको उत्साहित करता है।

निध्रुविः काश्यपः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६३।१५)

सुता इन्द्राय वज्रिणे सोमासो दध्याशिरः। पवित्रमत्यक्षरन्॥ ६४६॥

(वज्रिणे इन्द्राय सुताः) वज्रधारी इन्द्रके लिए निचोडे हुए (सोमासः दध्याशिरः) सोमरस दहीसे मिश्रित होकर (पवित्र अति अक्षरन्) पवित्र करनेवाली छाननीसे छाने गये हैं। अर्थात् सोमरसमें दही मिलाया और वह मिश्रण छाननीसे छाना गया है।

सोमरस और दही।

सोमरसके साथ दहीके मिश्रण करनेका उल्लेख निम्नलिखित वेदमंत्रोंमें है— (१) **सुताः दध्ना उन्नीताः।** ऋ० ९।८१।१, (२) **इन्दुं दध्ना अभि श्रीणीतन।** ऋ० ९।११।६= सोमरसका दहीके साथ मिश्रण करो। यहां जो '**उन्नीताः**' पद है वह बताता है कि यह मिश्रण उण्डेला जाता है, एक बर्तनसे दूसरे बर्तनमें उण्डेलनेका नामही उन्नयन है।

इसी मिश्रणको '**दध्याशिरः**' कहते हैं, दहीके साथ मिलाया सोमरस यह इस पदका अर्थ है।

वेदमें '**गो**' पद गौका दूध और दहीके अर्थमें प्रयुक्त होता है। यह पूर्वस्थानमें दिये मन्त्रोंसे स्पष्ट हो चुका है, तथा अगले मन्त्रोंसे भी अधिक स्पष्ट हो जायगा—

(९६) गोदुग्धसे सोमरसकी सुंदरताकी वृद्धि।

उचथ्य आंगिरसः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।५०।५)

स पवस्व मदिन्तम गोभिरञ्जानो अक्तुभिः। इन्दविन्द्राय पीतये॥ ६४७॥

हे (मदिन्तम इन्दो) अत्यन्त हर्ष देनेहारे सोम! (अक्तुभिः गोभिः अञ्जानः) मिलानेयोग्य

गायोंके दूधसे सुशोभित होता हुआ (इन्द्राय पीतये) इन्द्रके पानेके लिए (सः पवस्व) तू टपकता रह। छाननीसे छाना जा।

गोभिः अञ्जानः सोमः = गौओंके दूधके साथ मिलाया सोमरस पीनेके लिये योग्य है। ' अञ्ज् ' धातुका अर्थ सुन्दर रूप देना, सुन्दर करना, सौन्दर्य बढाना है। अनेक पदार्थोंके संयोगसे जो सौन्दर्य बढता है वह यहां अपेक्षित है। ' अञ्जन ' जैसा नेत्रका सौंदर्य बढाता है वैसा दूध सोमरसका सौंदर्य बढाता है यह भाव यहां समझना उचित है निम्नलिखित मन्त्रोंमें यही भाव पाठक देख सकते हैं—

द्वित आप्त्य । पवमानः सोमः । उष्णिक्। (ऋ० ९।१०३।२)

परि वाराण्यव्यया गोभिरञ्जानो अर्षति । त्री षधस्था पुनानः कृणुते हरिः ॥ ६४८ ॥

(गोभिः अञ्जानः) गोदुग्धसे मिलाया हुआ (अव्यया वाराणि) भेडीके लोमोंकी छलनीके पास (परि अर्षति) चारों ओरसे चला जाता है, और (हरिः पुनानः) हरे रंगवाला सोम विशुद्ध होता हुआ (त्री सधस्था कृणुते) तीन स्थानोंपर रखा जाता है।

हरिः पुनानः अव्यया वाराणि परि अर्षति, गोभिः अंजानः त्रि सधस्था कृणुते। = हरे रंगका सोम भेडीकी ऊनकी छलनीसे छाना जाता है, पश्चात् गोदुग्धसे मिश्रित होकर तीन स्थानों रखा जाता है।

सप्तर्षय । पवमानः सोम । सतो बृहती। (ऋ० ९।१०७।२२)

मृजानो वारे पवमानो अव्यये वृषाव चक्रदो वने ।
देवानां सोम पवमान निष्कृतं गोभिरञ्जानो अर्षसि ॥ ६४९ ॥

(वृषा पवमानः) बलका संवर्धन करनेवाला सोम (वने) वनके मध्य (अव्यये वारे मृजानः) भेडीके केशोंकी बनी छलनीपरसे शुद्ध होता हुआ तू (अव चक्रदः) गर्जना कर चुका है, और हे सोम पवमान ! (गोभिः अञ्जानः) गोदुग्धसे अलंकृत होता हुआ तू (देवानां निष्कृतं अर्षसि) देवोंके पूर्णतया तैयार किए हुए स्थानतक पहुंचता है।

सोम अव्यये वारे मृजानः गोभिः अञ्जानः अव चक्रदत् = सोमरस भेडीकी ऊनकी छलनीसे शुद्ध होता हुआ गौके दूधसे मिलाया जाता है, जिसका शब्द होता है।

वेनो भार्गव । पवमान सोम । जगती। (ऋ० ९।८५।५)

कनिक्रदत्कलशे गोभिरज्यसे व्य१व्ययं समया वारमर्षसि ।
मर्मृज्यमानो अत्यो न सानसिरिन्द्रस्य सोम जठरे समक्षरः ॥ ६५० ॥

हे सोम ! (कलशे कनिक्रदत्) कलशमें शब्द करता हुआ, तू (गोभिः अज्यसे) गायोंके दूधसे मिश्रित होता है, और (अव्ययं वारं) भेडीके बालोंसे बनायी हुई छलनीके (समया वि अर्षसि) समीप विशेषतया जाता है, (अत्यः न मर्मृज्यमानः) घोडेके समान विशुद्ध ढंगसे स्वच्छ किया जाता हुआ तू (सानसिः) हर्ष देता हुआ (इन्द्रस्य जठरे) इन्द्रके पेटमें (सं अक्षरः) भलीभाँति जाता है।

कलशपर भेडीके बालोंकी कंबल जैसी छलनी रखी जाती है, उसमेंसे सोमरस छाना जाता है। जब वह कलशमें उतरता है, तब वह शब्द करता हुआ उतरता है। यह शब्द टपकनेका है। इस समय यह रस गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, तब उसको देव पीते हैं।

यहां सोमको घुडदौडके (अत्य) घोडेकी उपमा दी है । इसका आशय यह है कि, जैसा घोडा नदीके पानीसे बारबार धोया जाता है, वैसाही सोम बारबार नदीके जलसे धोया जाता है । 'मर्मृज्यमान' पद बारबार धोनेका दर्शक है । इसी तरह भंग भी बारबार धोयी जाती है । बारबार धोना, कूटना, मिलाना और जल मिलाना यह इसकी विधि भंगके साथ समान है । पर भंगमें कहीं गौका दूध नहीं मिलाया जाता, परंतु सोमरसमें मिलाया जाता है यह सोमरसकी विशेषता है ।

(५७) सोमका गायोंके साथ जाना और गायोंका सोमके पास आना ।

श्यावाश्व आत्रेय । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।३२।३)

आदीं हंसो यथा गणं विश्वस्यावीवशन्मतिम् । अत्यो न गोभिरज्यते ॥ ६५१ ॥

(आत्) पश्चात् (ईं) यह (गणं यथा हंसः) झुंडके समीप जैसे हंस चला जाता है, वैसेही (विश्वस्य मतिं) सभीके मनोंमें सोम (अवीवशत्) घुसा गया है और (अत्यः न) शीघ्रगामी घोडे जैसा वह सोम अब (गोभिः अज्यते) गायोंके दूधके साथ गमन करता है ।

(सोमः) गोभिः अज्यते = सोमरस गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है । सोम गौके साथ दौडता है ।

कविर्भार्गव । पवमान सोम । जगती । (ऋ० ९।७६।२)

शूरो न धत्त आयुधा गभस्त्योः स्वः सिषासन्रथिरो गविष्टिषु ।
इन्द्रस्य शुष्ममीरयन्नपस्युभिरिन्दुर्हिन्वानो अज्यते मनीषिभिः ॥ ६५२ ॥

जो (गभस्त्योः आयुधा) अपने बाहुओंपर तेजस्वी शस्त्र, (शूरः न धत्ते) वीर पुरुषकी न्याईं, धारण करता है, जो (रथिरः) रथपर चढकर (गविष्टिषु) गायोंके ढूंढने या गायोंको पानेके लिए किए जानेवाले युद्धोंमें (स्वः सिषासन्) अपना स्वर्गीय बल दिखाता है उस (इन्द्रस्य शुष्मं ईरयन्) इन्द्रके बलको प्रेरित करनेवाला (इन्दुः) यह सोम (अपस्युभिः मनीषिभिः) कर्म करनेकी इच्छा करनेवाले विद्वानोंद्वारा (हिन्वानः अज्यते) प्रेरित होता हुआ, गोदुग्धसे मिश्रित होता है ।

इन्दुः अज्यते = सोमरस गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है ।

हरिमन्त आङ्गिरस । पवमान सोम । जगती । (ऋ० ९।७२।१)

हरिं मृजन्त्यरुषो न युज्यते सं धेनुभिः कलशे सोमो अज्यते ।
उद्वाचमीरयति हिन्वते मती पुरुष्टुतस्य कति चित्परिप्रियः ॥ ६५३ ॥

(हरिं मृजन्ति) हरे रंगवाले सोमको स्वच्छ करते हैं, (अरुषः न युज्यते) घोडेके तुल्य वह नियुक्त किया जाता है, (सोमः कलशे धेनुभिः सं अज्यते) सोम कलशमें गायोंके दूधसे भली-भाँति मिश्रित होता है, (मती हिन्वते) स्तोतागण स्तुतियोंको प्रेरित करते हैं, (पुरुष्टुतस्य) बहुत प्रशंसितके (कति चित् परिप्रियः) कुछ चुने हुए प्रिय वस्तुओंको देता है ।

सोमको स्वच्छ करते हैं, उसका रस कलशोंमें भरते और उसमें गोदुग्ध मिलाते हैं । 'सोमः धेनुभिः सं अज्यते' — सोम गौओंके साथ मिलकर गमन करता है अर्थात् रस दूधसे मिलाया जाता है ।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।१०।३)

राजानो न प्रशस्तिभिः सोमासो गोभिरञ्जते । यज्ञो न सप्त धातृभिः ॥ ६५४ ॥

(राजानः प्रशस्तिभिः न) नरेश प्रशंसाओंसे जैसे विभूषित होते हैं, (सप्त धातृभिः यज्ञः न) सात धारक ऋत्विज लोगोंसे यज्ञ जैसे अलंकृत बनता है, वैसेही (सोमासः गोभिः अञ्जते) सोमरस गायोंके दुग्धसे सुहाता है– गोदुग्धकी मिलावट होनेपर सोमरस बहुत शोभायमान प्रतीत होता है । सोम गौओंके साथ दौडता है ।

सोमासः गोभिः अञ्जते= सोम गौओंके साथ दौडता जाता है, अर्थात् सोमरसमें गोदुग्ध मिलनेसे वह उत्तम सुंदर पेय बनता है ।

भौमोऽत्रिः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।८६।४३)

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाऽभ्यञ्जते ।

सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ६५५ ॥

(क्रतुं) कर्म करनेका उत्साह बढानेवाले सोमको (अञ्जते वि अञ्जते) गायके दूधसे ठीक तरह मिलाते हैं, (सं अञ्जते मधुना अभ्यञ्जते) ठीक ठीक शहदसे मिला देते हैं और (रिहन्ति) उसे स्पर्श करते हैं, (उक्षणं) सेचन करनेवाले (सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं) नदीके ऊँचे प्रदेशमें गिरते हुए (पशुं) द्रष्टा सोमको (हिरण्यपावाः आसु गृभ्णते) सुवर्णसे शोधन करनेवाले इन जलोंमें इसे पकडते हैं जलके साथ सोमरसका मिलान करते हैं ।

सोमरसके साथ गौका दूध और शहद मिला देते हैं । नदीका जल भी उसमें मिला देते हैं । सुवर्णकी छालनीसे यह मिश्रण छानते हैं, तब वह पीनेके लिये तैयार होता है ।

अयास्य आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।४५।३)

उत त्वामरुणं वयं गोभिरञ्ज्मो मदाय कम् । वि नो राये दुरो वृधि ॥ ६५६ ॥

(उत त्वां) और तुझे जोकि (अरुणं) लाल रंगवाला है (वयं मदाय) हम आनन्दके लिए (गोभिः अञ्ज्मः) गायोंके दूधसे विभूषित करते हैं, इसलिए (नः राये) हमें धन मिले अतः (दुरः वि वृधि) दरवाजे खोल दे ।

त्वां गोभिः अञ्ज्मः= तुझ सोमरसको गौओंके साथ मिला देते हैं । अर्थात् सोमरसमें गौका दूध मिला देते हैं ।

इन मन्त्रोंमें गौके दूधके साथ सोमरसका मिलान करनेका वर्णन है— (१) गोभिः अञ्जानः (सोमः) (ऋ० ९।५०।५, १०३।२, १०७।२२), (२) गोभिः अज्यसे । (ऋ० ९।८५।५), (३) गोभिः अज्यते । (ऋ० ९।३२।३), (४) इन्दुः अज्यते । (ऋ० ९।७६।२), (५) धेनुभिः सोमः कलशे सं अज्यते । (ऋ० ९।७२।१)= गौओंके साथ सोम मिलाया जाता है, अर्थात् कलशमें सोमरसके साथ गौके दूधका मिश्रण किया जाता है, (६) मधुना सं अभि अञ्जते । (ऋ० ९।८६।४३) = मधुके साथ सोमका मिलान होता है ।

सोमरसके साथ शहद, दूध अथवा दही मिलाते हैं और वह मिश्रण पीया जाता है । इसमें जल भी मिला देते हैं । यहा ' अज् ' धातु ' दौडने,' जानेके अर्थमें है । मिलानेका भाव बतानेके लिये यहां प्रयुक्त हुआ है ।

कण्वो घौरः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९४।५)

इषमूर्जमभ्य१र्षाश्वं गामुरु ज्योतिः कृणुहि मत्सि देवान् ।

विश्वानि हि सुषहा तानि तुभ्यं पवमान बाधसे सोम शत्रून् ॥ ६५७ ॥

हे सोम पवमान ! (गां अश्वं) गाय, घोडा (इषं ऊर्जं) अन्न एवं बल (अभ्यर्ष) के पास जा ।

इनको प्राप्त हो। (उरु ज्योतिः कृणुहि) विशाल प्रकाश हमारे लिए बना दो, (देवान् मत्सि) देवोंको तू हर्षित करता है, (तानि विश्वानि हि) वे सारेके सारे शत्रु सचमुच (तुभ्य सुसहा) तेरेलिए सुगमतापूर्वक पराजित करनेयोग्य हैं, इसलिए (शत्रून् बाधसे) शत्रुओंको तू कष्ट देता है।

सोम ! गाँ अभ्यर्ष = हे सोम ! गायके पास जा, क्योंकि जहां सोम होगा, वहां गौ अवश्यही चाहिये, इसका कारण यह है कि, गोदुग्धके बिना सोमरस पीया नहीं जाता।

कुत्स आंगिरसः। पवमान सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।५०)

अभि वस्त्रा सुवसनान्यर्षाभि धेनूः सुदुघाः पूयमानः।
अभि चन्द्रा भर्तवे नो हिरण्याऽभ्यश्वान् रथिनो देव सोम ॥ ६५८ ॥

हे द्योतमान सोम ! (सुवसनानि वस्त्रा) सुंदर ढंगसे पहननेयोग्य कपडे तथा (सुदुघाः धेनूः) सुखपूर्वक दुही जानेवाली गायोंको (पूयमानः अभि अर्ष) विशुद्ध होता हुआ तू प्राप्त हो, (नः भर्तवे) हमारे भरणके लिए (चन्द्रा हिरण्या) आल्हाददायक सुवर्णके भूषणोंको (अश्वान् रथिनः) घोडे तथा रथपर चढनेवाले वीरोंको (अभि अर्ष) हमारे लिए प्राप्त कर।

सोम ! सुदुघाः धेनूः पूयमान अभि अर्ष = सोमका रस स्वच्छ छाना जानेके बाद उत्तम दुहनेयोग्य गौवोंको प्राप्त हो। अर्थात् छाना गया रस गोदुग्धके साथ मिश्रित किया जाता है।

निध्रुविः काश्यपः। पवमान सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६३।१२)

अभ्यर्ष सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम्। अभि वाजमुत श्रवः ॥ ६५९ ॥

(सहस्रिणं) सहस्रसंख्यावाले (गोमन्तं अश्विनं) गायों तथा घोडोंसे युक्त (रयिं वाजं उत श्रवः) धन, अन्न तथा यशको (अभि अर्ष) प्राप्त हो।

निध्रुविः काश्यपः। पवमान सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६३।१४)

एते धामान्यार्या शुक्रा ऋतस्य धारया। वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ ६६० ॥

(एते शुक्राः) ये दीप्त सोमरस (आर्या धामानि) आर्योंके घरोंतक (गोमन्तं वाजं) गायोंसे युक्त अन्नको (ऋतस्य धारया अक्षरन्) जलकी धाराके साथ बह चुके।

गोमन्तं वाजं अर्ष = हे सोम ! तू गोदुग्धरूप अन्नको प्राप्त कर।

शुक्रा गोमन्तं वाजं ऋतस्य धारया अक्षरन् = ये शुद्ध सोमरसके प्रवाह गोदुग्धरूपी अन्नके प्रति जल-धाराके साथ बह रहे हैं। अर्थात् सोमरस गोदुग्धमें मिश्रित हो रहे हैं।

कश्यपो मारीचः। पवमान सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६७।५)

इन्दो व्यव्यमर्षसि वि श्रवांसि वि सौभगा। वि वाजान्त्सोम गोमतः ॥ ६६१ ॥

हे [इन्दो] सोम ! [गोमतः वाजान्] गायोंसे युक्त अन्नोंको [श्रवांसि सौभगा] हवियों एवं अच्छे ऐश्वर्योंको पानेके लिए [अव्यं वि अर्षसि] भेडीके बालोंको छोडकर तू आगे बढता है।

सोमरस गोदुग्धरूपी अन्न प्राप्त करनेके लिये भेडीकी ऊनकी छाननीसे छाना जाता है। अर्थात् छाननेके बाद गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है।

[illegible] । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।[illegible])

परि णो देववीतये वाजाँ अर्षसि गोमतः । पुनान इन्दविन्द्रयुः ॥ ६६२ ॥

हे [इन्दो] सोम ! [इन्द्रयुः पुनानः] इन्द्रको चाहनेवाला तथा शुद्ध होता हुआ तू, सोम [नः देव-वीतये] हमारे यज्ञके लिए [गोमतः वाजान् परि अर्षसि] गौओंसे युक्त अन्नोंको पूर्णतया प्राप्त करता है।

अर्थात् सोम गोदुग्धके साथ मिलकर उत्तम पान बनाता है। उत्तम पेय बनाता है।

प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।१६)

स्वायुधः सोतृभिः पूयमानोऽभ्यर्ष गुह्यं चारु नाम ।
अभि वाजं सप्तिरिव श्रवस्याभि वायुमभि गा देव सोम ॥ ६६३ ॥

हे दीप्तिमान या देवतारूपी सोम ! [सोतृभिः पूयमानः] निचोडनेवालोंद्वारा विशुद्ध होता हुआ, [स्वायुधः] अच्छे हथियार धारण करनेवाला [चारु गुह्यं नाम] सुन्दर पर गूढ या गोपनीय नामको तथा [वायुं गाः वाजं] प्राण, गोरस और अन्नको [श्रवस्या] इनमें अन्नकी इच्छा होनेके कारण [सप्तिः इव] शीघ्रगामी घोडेके तुल्य उत्साहपूर्ण होकर तू [अभि अर्ष] प्राप्त कर, उसके पास जा।

पूयमानः गाः वाजं अभि अर्ष = पवित्र होता हुआ सोमरस गोरस अन्नको प्राप्त होता है। अर्थात् गोदुग्धके साथ मिश्रित होता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।२०।२)

स हि ष्मा जरितृभ्य आ वाजं गोमन्तमिन्वति । पवमानः सहस्रिणम् ॥ ६६४ ॥

[सः पवमानः] वह पवमान सोम [जरितृभ्यः हि] स्तोताओंको अवश्य [सहस्रिणं गोमन्तं वाजं] सहस्र संख्यावाले गौओंसे युक्त अन्नको [आ इन्वति] पूर्णरूपसे प्राप्त करता है।

पवमानः गोमन्तं वाजं आ इन्वति = यह पवित्र होनेवाला सोमरस गौओंसे युक्त अन्नको प्राप्त करता है। अर्थात् सोमरसमें गौओंका दूध मिलाया जाता है और वह उत्तम बलवर्धक अन्न होता है।

त्रित आप्त्यः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।३३।२)

अभि द्रोणानि बभ्रवः शुक्रा ऋतस्य धारया । वाजं गोमन्तमक्षरन् ॥ ६६५ ॥

[शुक्राः बभ्रवः] तेजस्वी और भूरे रंगवाले सोमके रसके प्रवाह [ऋतस्य धारया] जलकी धाराके समान [द्रोणानि अभि] द्रोणोंके प्रति बहने लगे और [गोमन्तं वाजं अक्षरन्] गायोंसे पूर्ण अन्नके प्रति टपक चुके।

अर्थात् सोममें जल मिलाकर निकला रस पात्रोंमें भर दिया गया, और उसमें गोदुग्ध मिलाकर उसका बलवर्धक पेय बनाया गया।

वेनो भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।८५।८)

पवमानो अभ्यर्षा सुवीर्यमुर्वीं गव्यूतिं महि शर्म सप्रथः ।
माकिर्नो अस्य परिषूतिरीशतेन्दो जयेम त्वया धनंधनम् ॥ ६६६ ॥

[सप्रथः महि शर्म] विस्तारशील बडाभारी सुख, [उर्वीं गव्यूतिं] विस्तीर्ण गायोंके चरनेका

स्थान तथा [सुवीर्य अभि अर्ष] अच्छी वीरता हमें दे दो। [पवमानः] जब कि तू निशुद्ध हो रहा है, [अस्य परिषूतिः] इसका हिंसक [न॰ माकिः ईशत] हमें कभी अपने वशमें न रखे और हे [इन्दो] सोम ! [तथा] तेरी सहायतासे [धन-धन जयेम] हर प्रकारका धन हम जीत लें।

उर्वीं गव्यूति अभ्यर्ष = बडी गोचर भूमी हमें चाहिये, जहां गौवें चरती रहें और हमें वीरतायुक्त सुख दे। उस गोचर भूमिमें गौओंको प्राप्त कर, उनका दूध निचोड और वह सोमरसके साथ मिला दे।

जमदग्निर्भार्गव । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।६२।२३-२४)

अभि गव्यानि वीतये नृम्णा पुनानो अर्षसि । सनद्वाजः परि स्रव ॥ ६६७ ॥

उत नो गोमतीरिषो विश्वा अर्ष परिष्टुभः । गृणानो जमदग्निना ॥ ६६८ ॥

(पुनानः) शुद्ध होता हुआ तू (वीतये) आस्वादनके लिए (नृम्णा गव्यानि) बलकारक गोदुग्धके (अभि अर्षसि) समीप चला जाता है, (सनत्-वाजः) भक्तोंको अन्नका दान करता हुआ तू (परि स्रव) चारों ओरसे टपकता रह ॥

(उत) और जमदग्निद्वारा (गृणान॰) प्रशंसित तू (नः) हमें (गोमतीः विश्वा॰ परिष्टुभ॰) गौओंसे युक्त सभी प्रशंसनीय (इष॰ अर्ष) अन्न प्रवाहित कर ॥

सोमरस छाना जानेके बाद गौके दूधमें मिलाया जाता है, तब वह स्वादु बनता है और उत्तम पुष्टिकारक अन्न बनता है।

कविर्भार्गवः । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।७६।५)

वृषेव यूथा परि कोशमर्षस्यपामुपस्थे वृषभः कनिक्रदत् ।

स इन्द्राय पवसे मत्सरिन्तमो यथा जेषाम समिथे त्वोतयः ॥ ६६९ ॥

(अपां उपस्थे) जलोंके समीप (वृषभः कनिक्रदत्) बलवान् होकर गर्जना करता हुआ (वृषा यूथा इव) बैल जैसे गायोंकी झुंडकी ओर जाता है, उसी प्रकार सोमरस (कोशं परि अर्षसि) गोरसके पात्रकी ओर चला जाता है, (स॰ मत्सरिन्तमः) ऐसा वह तू अत्यन्त हर्ष प्रदान करता हुआ (इन्द्राय पवसे) इन्द्रके लिए टपक रहा है, छाना जा रहा है और (समिथे त्वोतयः) युद्धमें तुझसे संरक्षित होते हुए (यथा जेषाम) जैसे हम विजयी हों, ऐसा प्रबन्ध कर।

अपां उपस्थे वृषा यूथा इव कोश परि अर्षसि= जलप्रवाहके समीप जैसा बलवान् बैल गौके पास जाता है, उस तरह बलवर्धक सोम गोदुग्धसे भरे पात्रके पास जाता है अर्थात् गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है।

जमदग्निर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६२।३)*

कृण्वन्तो वरिवो गवेऽभ्यर्षन्ति सुष्टुतिम् । इळामस्मभ्यं संयतम् ॥ ६७० ॥

(अस्मभ्यं गवे) हमारी गौके लिए (इळां) अन्न तथा (संयतं वरिवः कृण्वन्तः) निर्धारित धन निष्पन्न करते हुए (सु-स्तुतिं अभि अर्षन्ति) हमारी अच्छी स्तुतिके समीप सोमरस चले आते हैं।

गवे अभि अर्षन्ति= सोमरस गायके पास पहुँचते हैं, अर्थात् सोमरस गोदुग्धमें मिलाये जाते हैं।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोम. । गायत्री । (ऋ० ९।१३।७)

वाश्रा अर्षन्तीन्दवोऽभि वत्सं न धेनवः । दधन्विरे गभस्त्योः ॥ ६७१ ॥

(वाश्राः धेनवः) रँभाती हुई दुधारू गायें (वत्सं अभि न) बछडेके समीप जैसे जाती हैं,

वैसेही (इन्दवः अभि अर्षन्ति) सोम प्रवाह सामने आ रहे हैं, (गभस्त्यो दधन्विरे) वे हाथोंमें धारण किये हुए हैं।

जैसी दुधारू गौवें अपने बछडेके पास दौडती आती हैं, उसी तरह सोमरसरूपी बछडेके पास गौवें आती हैं। आगे दोनोंका मेल होता है। जहां सोमरसके प्रवाह होते हैं वहीं गोदुग्धके प्रवाह पहुंचते हैं।

कविर्भार्गवः। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।७७।१)

एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टरः।
अभीमृतस्य सुदुघा घृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसेव धेनवः॥ ६७२॥

(एषः मधुमान्) यह मधुर रस (इन्द्रस्य वज्रः) इन्द्रका मानों वज्रही है और (वपुषः वपुः-तरः) यह सुंदर वस्तुओंमें अति सुन्दर है ऐसा यह रस (कोशे प्र अचिक्रदत्) पात्रमें छाननेके समय खूब गर्जना कर चुका, (ईं अभि) इसके प्रति, (वाश्रा धेनवः पयसा इव) रँभाती हुई गायें जैसे दुग्धसे युक्त होकर बछडोंकी ओर जाती हैं, वैसेही (ऋतस्य सुदुघाः) यज्ञकी सुगमतापूर्वक दुहनयोग्य तथा (घृतश्चुतः) घृत टपकानेवाली गायें इसके पास (अर्षन्ति) चली आती हैं।

घृतश्चुतः सुदुघाः धेनवः पयसा (मधुमन्तं सोमं) अर्षन्ति= घृत देनेवाली सुखसे दुही जानेवाली गौएँ दूधके साथ मधुर सोमरसके पास जाती हैं अर्थात् गोदुग्ध सोमरसमें मिलाया जाता है।

गोदुग्धके साथ सोमका मिश्रण, आलंकारिक वर्णन।

सोमरसके साथ गौका दूध मिलाया जाता है, अथवा गौके दूधके साथ सोमरस मिलाया जाता है, इन दोनों वाक्योंका अर्थ एकही है। अलंकारसे यह वर्णन वेदमें अनेक रीतियोंसे किया जाता है। कई मन्त्रोंमें 'सोमका गौओंको प्राप्त करना' लिखा है, और कई मन्त्रोंमें 'गौओंका सोमको प्राप्त करना' लिखा है। इसके कुछ उदाहरण यहां देखिये—

(१) सोम! गां अभ्यर्ष। (ऋ० ९।९४।५); (२) सोम! धेनूः अभ्यर्ष। (ऋ० ९।९७।५०), (३) गोमन्तं वाजं अभ्यर्ष। (ऋ० ९।६३।१२, १४), (४) सोम! गोमतः वाजान् अर्षसि। (ऋ० ९।६७।५), (५) इन्दो! गोमतः वाजान् परि अर्षसि। (ऋ० ९।५४।४), (६) पवमानः गोमन्तं वाजं इन्वति। (ऋ० ९।२०।२), (७) शुक्रा गोमन्तं वाजं अक्षरन्। (ऋ० ९।३३।२); (८) इन्दो! गव्यूतिं अभ्यर्ष। (ऋ० ९।८५।८), (९) गव्यानि अभ्यर्षसि। (ऋ० ९।६२।२३), (१०) वृषा कोशं परि अर्षसि। (ऋ० ९।७६।५), = सोम! तू गौओंके पास जा, सोम! तू गौओंवाले अन्नके पास जा, गौओंवाले अन्नको प्राप्त हो, स्वच्छ हुए सोमरस गौओंवाले अन्नको प्राप्त हुए। हे सोम! तू गौओंकी झुण्डकी गोचर भूमिमें प्राप्त कर। हे सोम! तू गौओंसे उत्पन्न वस्तुओंको प्राप्त होता है। बलवर्धक सोम कलशमें स्थित गौके दूधको प्राप्त होता है।

इस तरह सोम गोदुग्धको अथवा गौओंको प्राप्त होता है ऐसा वर्णन है। साथही साथ (११) धेनवः पयसा (सोमं) अर्षन्ति। (ऋ० ९।७७।१), अर्थात् गौवें अपने दूधके साथ सोमको प्राप्त करती हैं ऐसे भी वर्णन हैं। ये दोनों वर्णन आलंकारिक हैं। दोनोंका, अर्थात् सोमरस और गोदुग्धका संमिश्रणही यहां अभीष्ट है।

सोम गौओंके पास दौडता है।

कश्यपो मारीचः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६४।१३)

इषे पवस्व धारया मृज्यमानो मनीषिभिः। इन्दो रुचाभि गा इहि॥ ६७३॥

हे (इन्दो) सोम! (मनीषिभिः मृज्यमानः) विद्वानोंद्वारा विशुद्ध होता हुआ तू (इषे पवस्व)

अन्नके लिए प्रवाहित हो, (क्ष्मा गा अभि इहि) कान्तिसे युक्त होकर गोदुग्धके समीप चला जा।

विद्वान् लोग सोमको धोते हैं, रस निचोडते हैं, छानते हैं और गौके दूधके साथ मिलाते हैं।

त्रित आप्त्य । पवमानः सोम । गायत्री। (ऋ० ९।३३।४)

तिस्रो वाच उदीरते गावो मिमन्ति धेनवः। हरिरेति कनिक्रदत् ॥ ६७४ ॥

(धेनवः गावः मिमन्ति) दुधारू गौएँ रँभाती हैं और (तिस्रः वाचः उदीरते) तीन तरहकी वाणियाँ ऊपर उठती है, तब (हरिः कनिक्रदत् एति) हरे रंगवाला सोम गरजता हुआ आता है।

अर्थात् गौवें रंभाती हैं और दूध देती है। इधर सोमरस छाना जानेके समय टपकनेका शब्द करता हुआ पात्रोंमे भरा जाता है। इस तरह सोमरस ओर गोदुग्धका मिलान होता है।

उपमन्युर्वासिष्ठः। पवमानः सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।१३)

वृषा शोणो अभिकनिक्रदद्गा नदयन्नेति पृथिवीमुत द्याम्।
इन्द्रस्येव वग्नुरा शृण्व आजौ प्रचेतयन्नर्षति वाचमेमाम् ॥ ६७५ ॥

(गा अभि कनिक्रदत्) गायोंको देखकर गरजता हुआ (शोणः वृषा) लाल रंगवाला बलवान् सोम (पृथिवीं उत द्यां) भूलोक एवं द्युलोकमें (नदयन् एति) ध्वनि करता हुआ आता है, (आजौ इन्द्रस्य वग्नुः इव) युद्धमें इन्द्रके गरजनेके समान (आ शृण्वे) सोमका शब्द सुनाई देता है और (इमां वाचं प्रचेतयन्) इस भाषणको प्रकर्षसे चेतनयुक्त बनाता हुआ (आ अर्षति) पूर्णतया चला आता है।

गाः अभि कनिक्रदत् वृषा एति = गौओंके समीप शब्द करता हुआ सोम जाता है अर्थात् गोदुग्धमें सोमका रस मिलाया जाता है।

उशना काव्यः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।८७।९)

उत स्म राशिं परि यासि गोनामिन्द्रेण सोम सरथं पुनानः।
पूर्वीरिषो बृहतीर्जीरदानो शिक्षा शचीवस्तव ता उपष्टुत् ॥ ६७६ ॥

हे सोम ! (उत गोनां राशिं परि यासि) और तू गायोंके झुण्डके समीप चला जाता है, जब कि (इन्द्रेण सरथं) इन्द्रके साथ एक रथपर बैठा हुआ तू, (पुनानः) विशुद्ध बनता है, हे (जीरदानो) शीघ्र दान देनेवाले ! (शचीवः) शक्तिसंपन्न ! (उपस्तुत्) समीप आकर तेरी स्तुति होनेपर (तव ताः) तेरी वे (पूर्वीः बृहतीः इषः शिक्ष) पूर्वकालीन बहुतसी अन्नसामग्रियाँ हमें दे डाल।

सोम ! गोनां राशिं परि यासि= हे सोम ! तू गौओंकी झुण्डको प्राप्त करता है, सोमरस गोदुग्धमें मिलाते हैं।

उशना काव्य । पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।८७।७)

एष सुवानः परि सोमः पवित्रे सर्गो न सृष्टो अदधावदर्वा।
तिग्मे शिशानो महिषो न शृङ्गे गा गव्यन्नभि शूरो न सत्वा ॥ ६७७ ॥

(एषः सुवानः) यह निचोडा जाता हुआ सोम (सर्गः अर्वा सृष्टः न) वेगपूर्वक जानेवाला घोडा छूट जानेपर जैसे दौडने लगता है, वैसेही (पवित्रे परि अदधावत्) छलनीपर चारों ओरसे

दौडने लगा, (महिषः न) भैंसके समान (तिग्मे शृङ्गे शिशानः) तेज सींगमें चमकाता हुआ और (गव्यन् शूरः गाः अभि न) गायोंके दूधको पानेकी इच्छा करनेवाला वीर पुरुष गौओंके प्रति जैसे दौडता चला जाता है, वैसेही (सत्वा) यह सोम भी गोदुग्धके पास जाता है।

सुवानः पवित्रे गाः अभि पर्यधावत् = सोमरस निचोडा जानेपर छलनीपर चढकर गौके दूधके पास गमन करता है अर्थात् सोमरस गौके दूधमें मिलाया जाता है।

कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९१।३)

वृषा वृष्णे रोरुवदंशुरस्मै पवमानो रुशदीर्ते पयो गोः ।
सहस्रमृक्वा पथिभिर्वचोविदध्वस्मभिः सूरो अण्वं वि याति ॥ ६७८ ॥

(वृष्णे) बलवान् इन्द्रके लिए (वृषा अंशुः) बलवान् सोमरस (रुशत्) चमकता हुआ तथा (पवमानः) विशुद्ध होता हुआ (गोः पयः ईर्ते) गोदुग्धमें चला जाता है, (ऋक्वा) स्तोत्रयुक्त, (वचोवित् सूरः) वचनोंको जाननेहारा विद्वान् (अध्वस्मभिः सहस्रं पथिभिः) हिंसारहित हजारों मार्गोंसे (अण्वं वि याति) अणुके प्रति चला जाता है।

वृषा अंशुः गोः पयः ईर्ते = बलवर्धक सोमरस गौके दुग्धको प्राप्त करता है, दूधके साथ मिल जाता है।

हरिमन्त आङ्गिरसः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।७२।३)

अरममाणो अत्येति गा अभि सूर्यस्य प्रियं दुहितुस्तिरो रवम् ।
अन्वस्मै जोषमभरद्विनंगृसः सं द्वयीभिः स्वसृभिः क्षेति जामिभिः ॥ ६७९ ॥

(सूर्यस्य दुहितुः) सूर्यकी कन्या उषाके लिए (प्रियं रवं) प्यारे शब्दको (तिरः) दूर करता हुआ (अरममाणः गाः अभि अत्येति) न रुकनेवाला सोम गायोंके सम्मुख आ जाता है, गोदुग्धमें मिलाया जाता है। (अनु) तदुपरान्तही (अस्मै) इस रसके लिए (विनंगृसः) स्तोता (जोषं अभरत्) पर्याप्त रूपसे सेवनीय स्तोत्र प्रदान कर चुका, (द्वयीभिः जामिभिः स्वसृभिः) दो हाथोंसे उत्पन्न बंधुतुल्य मानों बहनें जैसी उँगलियोंसे (सं क्षेति) निकल कर ठीक प्रकार बर्तनमें बैठ जाता है।

सोमरस गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है जो सोमरस अंगुलियोंसे निचोडकर निकालते हैं।

नोधा गौतमः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९३।२)

सं मातृभिर्न शिशुर्वावशानो वृषा दधन्वे पुरुवारो अद्भिः ।
मर्यो न योषामभि निष्कृतं यन्त्सं गच्छते कलश उस्रियाभिः ॥ ६८० ॥

(वृषा पुरुवारः) बलवान् और अनेकोंद्वारा स्वीकारनेयोग्य, (वावशानः) शुभ कामना करता हुआ, (मातृभिः शिशुः न) माताओंसे बालक जिस प्रकार धारण किया जाता है, वैसेही (अद्भिः दधन्वे) जलोंसे जो धारण किया जा चुका है, (मर्यः योषां न) मानव नारीके समीप जैसे जाता है, वैसेही (निष्कृतं अभि यन्) सिद्ध किये सोमरसके प्रति (कलशे उस्रियाभिः सगच्छते) कलशमें गायोंके दुग्धसे मिल जाता है।

कलशे निष्कृतं उस्रियाभिः सगच्छते = कलशमें स्थित सोमरस गौओंसे अर्थात् गोदुग्धके साथ मिल जाता है।

सोमका गौओंके पास दौडना।

सोम गौओंके पास दौडता हुआ जाता है, इसके ये उदाहरण हैं— (१) इन्दो। गाः अभि इहि। (ऋ० ९।६४।१३), (२) हरिः कनिक्रदत् गावः एति। (ऋ० ९।३३।४), (३) वृषा गाः अभि एति। (ऋ० ९।९७।१३), (४) सोम 'गोनां राशिं परि यासि। (ऋ० ९।८७।९), (५) सुवानः गाः पर्यधावत्। (ऋ० ९।८७।७), (६) वृषा अंशुः गाः पयः ईर्ते। (ऋ० ९।९१।३), अर्थात 'सोमरस शब्द करता हुआ, छाना जाता हुआ, गौओंके पास दौडकर जाता है। बलवान् तेजस्वी सोमरस गौओंके दूधके पास जाता है।' इन सब मन्त्रभागोंका भाव यही है कि, सोमरस छाना जानेके बाद गायोंके दूधके साथ अतिशीघ्र मिलाया जाता है, कई प्रसंगोंमें तो छाना जाता हुआ भी गोदुग्धके साथ मिश्रित किया जाता है।

(९८) जल और गोदुग्धके साथ सोमरसका मिलान।

वत्सप्रिर्भालन्दनः। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।६८।९)

अयं दिव इयर्ति विश्वमा रजः सोमः पुनानः कलशेषु सीदति।
अद्भिर्गोभिर्मृज्यते अद्रिभिः सुतः पुनान इन्दुर्वरिवो विदत् प्रियम् ॥ ६८१ ॥

(अयं सोमः) यह सोम (दिवः) द्युलोकसे आकर (विश्वं रजः आ इयर्ति) समूचे रजोलोकको प्रेरित करता है, और स्वयं (पुनानः) पवित्र होता हुआ (कलशेषु सीदति) कलशोंमें बैठ जाता है। (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे निचोडा गया (इन्दुः) सोम (पुनानः) विशुद्ध होता हुआ (अद्भिः) जलोंसे तथा (गोभिः) गोदुग्धसे (मृज्यते) विशुद्ध किया जाता है, तब वह (प्रियं वरिवः विदत्) प्यारे स्वादु श्रेष्ठ रसको प्राप्त होता है।

सोम पर्वत-शिखरपरसे लाया जाता है, वह आनेपर सब जनतामें बडी हलचल होती है। उसका रस छानकर कलशोंमें भरा जाता है, उसमें जल और गोदुग्ध मिलाकर पीनेयोग्य बनाया जाता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६।६)

तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववीतये। सुतं भराय सं सृज ॥ ६८२ ॥

(तं वृषणं रसं) उस बलवर्धक रसको जोकि (सुतं) निचोडा गया है, (देव-वीतये मदाय) देवोंके आस्वादनके लिए और आनन्दके लिए (भराय) पोषणके लिए (गोभिः सं सृज) गोदुग्धसे भलीभाँति मिला दो।

वृषणं सुतं रसं गोभिः सं सृजः= बलवर्धक सोमरसको गौओंके साथ छोड दो, अर्थात् सोमरसको गोदुग्धके साथ मिला दो।

उशना काव्यः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।८७।५)

एते सोमा अभि गव्या सहस्रा महे वाजायामृताय श्रवांसि।
पवित्रेभिः पवमाना असृग्रञ्छ्रवस्यवो न पृतनाजो अत्याः ॥ ६८३ ॥

(पृतनाजः अत्याः न) सेना जीतनेवाले घोडोंके समान (एते पवित्रेभिः पवमानाः) ये छलनीयोंसे शुद्ध होते हुए (श्रवस्यवः सोमाः) यशकी कामना करनेहारे सोमरस (महे वाजाय अमृताय) बडे भारी बल तथा अमरपनके लिये (श्रवांसि सहस्रा गव्या अभि) अन्नों तथा हजारों गायोंके

दूधको ध्यानमें रखते हुए (असृग्रन्) छोडे गये हैं। अर्थात् गौओंके दूधके साथ सोमरसका मिलान किया गया है।

(१) अद्भिः गोभिः कलशेषु सोमः मृज्यते। (ऋ० ९।६८।९), (२) सुत रस गोभिः सं सृज। (ऋ० ९।६।६), (३) पवमानाः गव्या अभि असृग्रन्। (ऋ० ९।८७।५)= जलों और गौओंके साथ कलशोंमें सोमरस शुद्ध किये जाते हैं, रस सिद्ध होनेपर वह गौओंके साथ छोडा जाता है, रस शुद्ध होकर गौओंसे उत्पन्न वस्तुओंको प्राप्त होते हैं।

यहां सोमरसके साथ गौओंका छोडना, गौओंके साथ शुद्ध होना गोदुग्धके साथ मिश्रित होनाही है। गौओंसे उत्पन्न वस्तुओंके साथ सोमरसका मिलान अन्तिम मन्त्रमें स्पष्ट है। दूध तथा दहीके साथ सोमरसका मिश्रण हमने पूर्व स्थानमें बतायाही है।

गायें सोमके पास दौडती हुई आती हैं।

पराशर शाक्त्य। पवमानः सोम। त्रिष्टुप् (ऋ० ९।९७।३४)

तिस्रो वाच ईरयति प्र वह्निर्ऋतस्य धीतिं ब्रह्मणो मनीषाम्।

गावो यन्ति गोपतिं पृच्छमानाः सोमं यन्ति मतयो वावशानाः॥ ६८४॥

(वह्निः) होमवाला यजमान (तिस्रः वाचः) तीन वाणियोंको (प्र ईरयति) विशेष ढंगसे प्रेरित करता है, और (ब्रह्मणः मनीषां) ब्रह्मकी मनोलालसा तथा (ऋतस्य धीतिं) यज्ञका धारण करनेवालीको भी प्रेरणा देता है, (गोपतिं पृच्छमानाः) गो-पालकसे पूछती हुई (गावः यन्ति) गौएं चली जाती हैं, और (वावशानाः मतयः) इच्छा करती हुई स्तुतियां (सोमं यन्ति) सोमके निकट चली जाती हैं।

गावः सोमं यन्ति= गौवें सोमके पास जाती हैं। अर्थात् गौका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है।

कर्णश्रुद्वासिष्ठ। पवमान सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।२२)

तक्षद्यदी मनसो वेनतो वाग्ज्येष्ठस्य वा धर्मणि क्षोरनीके।

आदीमायन्वरमा वावशाना जुष्टं पतिं कलशे गाव इन्दुम्॥ ६८५॥

(यदि) यदि कहीं (वेनतः मनसः वाक्) इच्छा करनेवालेकी मनःपूर्वक की हुई स्तुतिमय वाणी (क्षोः अनीके) शब्द करते हुए के सम्मुख (ज्येष्ठस्य धर्मणि वा) श्रेष्ठके धारक कार्यके लिए हो इसलिए (तक्षत्) विशेष रूपसे बना दे- वर्णित करे, तोही (आत् ईं) पश्चात् इसे जोकि (कलशे जुष्टं पतिं इन्दु) कलशमें सेवित पतिरूप सोम है, (गावः वावशानाः) गौएं रैंभाती हुई (वरं आयन्) श्रेष्ठके प्रति आती हैं।

कलशे पतिं इन्दुं गावः वावशानाः आयन् = कलशमें रह पतिस्वरूप सोमरसको प्राप्त होनेकी इच्छा करती हुई गौवें आगयी हैं। अर्थात् कलशमें स्थित सोमरसमें मिलानेके लिये गौओंका दूध लाया गया है।

यहां ' पतिं इन्दुं ' अर्थात् ' पतिं सोमं ' है। सोमका दूसरा नाम ' वृषा, वृषभ ' है। वह बैलवाचक है। वह गौका पति है। इसलिये सोमको गौका पति कहा है।

सप्त वैखानसाः। पवमान सोम। अनुष्टुप्। (ऋ० ९।६६।६, १२)

तवेमे सप्त सिन्धवः प्रशिषं सोम सिस्रते। तुभ्यं धावन्ति धेनवः॥ ६८६॥

अच्छा समुद्रमिन्दवोऽस्तं गावो न धेनवः। अग्मन्नृतस्य योनिमा॥ ६८७॥

हे सोम! (तव प्रशिषं) तेरी आज्ञाके अनुसार (इमे सप्त सिन्धवः) ये सात नदियाँ (सिस्रते)

बहती चली जाती हैं, (धेनवः) गौएँ (तुभ्य धावन्ति) तेरे लिए दौडने लगती हैं। अर्थात् सोम रसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है ॥

सोमके प्रवाह (समुद्रं अच्छ) समुद्रस्थानके प्रति, जलके स्थानके पास (ऋतस्य योनिं) जलके मूलस्थानमें (धेनवः गावः अस्तं न) दुधारू गायें अपने घरपर आनेके समान (आ अग्मन्) पहुँच गये ॥

सोमरसमें जल तथा गोदुग्ध मिलाया जाता है।

कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।४९।२)

तया पवस्व धारया यया गाव इहागमन् । जन्यास उप नो गृहम् ॥ ६८८ ॥

(तया धारया) उस धारासे (पवस्व) तू टपकता रह कि (यया) जिससे (जन्यासः गावः) बछडे उत्पन्न करनेवाली गौएँ (नः गृहं उप इह आगमन्) हमारे घरके समीप इधर चली आजायँ।

सोमका रस छाना जाय और उसमें गोदुग्ध मिलाया जावे। ऐसी सुयोग्य गौवें हमारे घरमें आनन्दसे विचरती रहें।

गायें सोमरसके पास आती हैं।

' गायें सोमके पास आती हैं ' इस आशयको बतानेवाले ये मन्त्र हैं— (१) गावः सोमं यन्ति । (ऋ० ९।९७।३४); (२) गावः इन्दुं आयन् । (ऋ० ९।९७।२२), (३) धेनवः तुभ्य धावन्ति । (ऋ० ९।६६।६)= अर्थात् गौवें सोमके पास दौडती हुई जाती हैं। गायोंके दुग्धप्रवाह सोमरसके साथ मिलनेके लिये जाते हैं।

ये वर्णन भी सोमरस और गोदुग्धके मिश्रणका भाव बता रहे हैं।

(९९) सोमका गोरूप धारण।

सोम गौके वस्त्र परिधान करता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।८।५)

पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः । परि गव्यान्यव्यत ॥ ६८९ ॥

(अरुषः हरिः) चमकीले हरे रंगवाला सोमरस (कलशेषु आ पुनानः) घडोंमें शुद्ध होता हुआ (गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत) गोदुग्धके वस्त्रोंसे अपनेको ढक लेता है।

हरिः कलशेषु गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत = हरे रंगवाला सोमरस कलशोंमें गौओंसे उत्पन्न वस्त्रोंको चारों ओरसे ओढ लेता है। अर्थात् सोमरसमें इतना अधिक दूध मिलाया जाता है कि, मानो गोदुग्धके वस्त्रसे सोमरस ढक जाता है।

अनेक मंत्रोंमें ' वासयिष्यसे ' प्रयोग यही भाव बता रहे हैं, यहां ' वस्त्राणि ' पद स्पष्ट है और उन मन्त्रोंमें ' वस् ' धातुका प्रयोग है। दोनोंका अर्थ एकही है।

प्रतर्दनो दैवोदासिः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।१)

प्र सेनानीः शूरो अग्रे रथानां गव्यन्नेति हर्षते अस्य सेना ।
भद्रान्कृण्वन्निन्द्रहवान्त्सखिभ्य आ सोमो वस्त्रा रभसानि दत्ते ॥ ६९० ॥

(शूरः सेनानीः) वीर एवं सेनानायक (रथानां अग्रे) रथोंके आगे (गव्यन् एति) गायोंकी इच्छा करता हुआ चला आता है, तब (अस्य सेना हर्षते) इसकी सेना आनंदित होती है, सोम

(सखिभ्यः) मित्रोंके लिए (इन्द्र-हवान् भद्रान् कृण्वन्) इन्द्रकी पुकारोंका कल्याणप्रद करता हुआ, (रभसानि वस्त्रा आ दत्ते) तेजस्वी वस्त्रोंको ले लेता है।

गव्यन् (सोमः) एति, रभसानि वस्त्रा आ दत्ते = गायोंकी इच्छा करता हुआ सोम चलता है और गोदुग्धरूपी वस्त्रोंको ओढता है। गोदुग्धके साथ मिलता है।

मेधातिथि काण्व । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।२।४)

महान्तं त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः । यद्गोभिर्वासयिष्यसे ॥ ६९१ ॥

(महान्तं त्वा) बडे भारी तुझ सोमको (यत्) जब तू (गोभिः वासयिष्यसे) गोदुग्धसे ढक जायेगा, तब (महीः आपः सिन्धवः) बडे भारी जलसमूह तथा नद तुझे (अनु अर्षन्ति) प्राप्त होते हैं।

गोभिः वासयिष्यसे, त्वा आपः अनु अर्षन्ति = जब सोमरस गौओंसे ढक जाता है, गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, तब जल भी उसमें मिलाया जाता है।

सोमरसमें जल तथा गौका दूध मिलाया जाता है। सोमरसमें दूध इतना अधिक मिलाया जाता है कि, वह इस दूधसे ढक जाता है। दूधका रंग उस मिश्रणको आ जाता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।८।५)

देवेभ्यस्त्वा मदाय कं सृजानमति मेष्यः । सं गोभिर्वासयामसि ॥ ६९२ ॥

(देवेभ्यः मदाय) देवोंके आनन्दके लिए (मेष्यः अति) भेडकी ऊनकी छलनीसे छानकर (सृजानं कं त्वा) उत्पन्न होनेवाले सुखकारक तुझ सोमरसको (गोभिः सं वासयामसि) गायोंसे भलीभाँति ढक देते हैं— अर्थात् दूधसे मिश्रित करते हैं।

कं गोभिः सं वासयामसि = आनन्दवर्धक सोमरसको गौओंसे ढक देते हैं, अर्थात् सोमरसमें गौका दूध इतना अधिक मिला देते हैं कि, उस रसको दूधका सा रंग आ जाता है।

प्रभूवसुराङ्गिरस । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।३५।५)

तं गीर्भिर्वाचमीङ्खयं पुनानं वासयामसि । सोमं जनस्य गोपतिम् ॥ ६९३ ॥

(तं जनस्य गोपतिं सोमं) उस जनताके गोपालक सोमका (गीर्भिः) काव्योंसे प्रशंसित करते हैं, (वाच-ईङ्खयं पुनानं) वाणीको प्रेरित करनेवाले तथा पवित्र होते हुए सोमको (वासयामसि) हम ढंक देते हैं।

सोमं पुनानं गोपतिं वासयामसि = सोमरस छाना जानेपर गौका पालन करनेवाला होता है, उसे गोदुग्धसे आच्छादित करते हैं, अर्थात् उसमें इतना दूध मिलाते हैं कि, सोमरसका हरा भूरा रंग मिट जाय और दूधका रंग उसपर चढे।

' गोपति ' सोमका नाम है, गोपति बैल है, बैलके लिये ' वृषा, गोपति, गवां पतिः ' ये पद हैं और ये सोमके भी वाचक है। इसलिये सोमको ' गोपति ' कहा है। गोपतिरूप सोमपर गौके वस्त्र चढाये जाते हैं अर्थात् सोमरसके साथ गोदुग्ध मिलाया जाता है।

मेध्यातिथिः काण्व । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।४३।१)

यो अत्य इव मृज्यते गोभिर्मदाय हर्यतः । तं गीर्भिर्वासयामसि ॥ ६९४ ॥

(यः हर्यतः) जो मनको हरण करनेकी क्षमता रखता है और जो (गोभिः अत्यः इव मृज्यते)

गायोंके दूधसे घोडेके समान विशुद्ध किया जाता है, (तं) उसके (गीर्भिः वासयामसि) काव्योंसे मानों ढकसा देते हैं।

अर्थात् सोमको गोदुग्धसे मिश्रित करते है।

पर्वत नारदौ काण्वौ, काश्यपौ शिखण्डिन्यावप्सरसौ वा। पवमानः सोमः। उष्णिक्। (ऋ० ९।१०५।४)

अस्मभ्यं त्वा वसुविदमभि वाणीरनूषत। गोभिष्टे वर्णमभि वासयामसि॥ ६९५॥

(वसुविदं त्वा) धन बतलानेवाले तुझको (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वाणीः अभि अनूषत) वाणियाँ प्रशंसित कर चुकी हैं, (ते वर्णं) तेरे रंगको (गोभिः अभि वासयामसि) गायोंके दूधसे हम पूर्णतया ढक देते हैं।

पर्वत नारदौ काण्वौ। पवमान सोम। उष्णिक्। (ऋ० ९।१०५।४)

गोमन्न इन्दो अश्ववत्सुतः सुदक्ष धन्व। शुचिं ते वर्णमधि गोषु दीधरम्॥ ६९६॥

हे (इन्दो) पिघलनेवाले सोम! (सुतः) निचोडा गया तू (नः) हमारे लिए, (सुदक्ष) हे अच्छे बलसे युक्त! (गोमत् अश्ववत् धन्व) गायों और घोडोंसे युक्त होकर टपकता रह, (ते शुचिं वर्णं) तेरे शुभ्र रंगको (गोषु अधि दीधरं) गोदुग्धमें मैं रख चुका हूँ।

ते वर्णं गोभिः वासयामसि = सोमके वर्णपर हम गौके दूधके वस्त्र चढाते हैं, अर्थात् सोमरसमें इतना दूध मिला देते हैं कि उसका रंग दूध जैसाही दीखता है।

ते वर्णं गोषु अधि दीधरम् = तेरे रंगको हम गौओंमें धर देते हैं अर्थात् सोमरसमें गोदुग्ध इतना मिला देते हैं कि उस मिश्रणका रंग दूध जैसा हो जाता है।

शतं वैखानसा। पवमान सोम। गायत्री। (ऋ० ९।६६।१३)

प्र ण इन्दो महे रण आपो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे॥ ६९७॥

हे (इन्दो) सोम! (यत् गोभिः वासयिष्यसे) जब तू गोदुग्धसे मिश्रित होता है, तब (नः महे रणाय) हमारे बडे आनन्दके लिए (सिन्धवः आपः अर्षन्ति) बहनेवाले जलप्रवाह बहते जाते हैं।

अर्थात् सोमरसमें गौका दूध और नदीका जल मिलाया जाता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोम। गायत्री। (ऋ० ९।१४।३)

आदस्य शुष्मिणो रसे विश्वे देवा अमत्सत। यदी गोभिर्वसायते॥ ६९८॥

(आत्) पश्चात् (यदि) जब यह (गोभिः वसायते) गोदुग्धसे मिश्रित होने लगता है, तभी (शुष्मिणः अस्य रसे) बलसे पूर्ण इस सोमके रससे (विश्वे देवाः अमत्सत) सभी देव हर्षित हुए दीख पडते हैं।

गोभिः वसायते = गौओंसे ढंक जाता है, तब उस सोमरससे सब आनंदित होते हैं। सोमरससे इतना दूध मिलाया जाए कि उस मिश्रणको दूधकाही रंग आ जाए, तब वह पेय आनन्दवर्धक बनता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।१४।५)

नप्तीभिर्यो विवस्वतः शुभ्रो न मामृजे युवा। गाः कृण्वानो न निर्णिजम्॥ ६९९॥

(यः युवा) जो युवकसा सोमरस (शुभ्रः न) विशुद्ध होता हुआ (विवस्वतः नप्तीभिः) विशेष रूपसे परिचरण करनेवालेकी अंगुलियोंसे (मामृजे) विशुद्ध होकर (गाः निर्णिजं कृण्वानः न) मानों गोदुग्धके वस्त्रसे अपनेको ढकता हुआ दीखाई देता है।

शुभ्रः नप्तीभिः मामृजे गा निर्णिजं कृण्वान = शुभ्र सोम अंगुलियोंसे अधिक स्वच्छ होता हुआ गौओंका चोगा अपने ऊपर धारण करता है। अर्थात् सोमको भी धोकर, अंगुलियोंसे बारबार स्वच्छ करके, जब रस निचोडते और छानते हैं, तब उसमें गोदुग्ध इतना अधिक मिलाते हैं, कि मानो गोदुग्धका चोगासा उस सोमरसपर बन जाता है।

सोमको स्वच्छ करना, बारंबार पानीसे धोना, स्वच्छ होनेपर उसे कूटना, रस निकालना, छानना और पश्चात् उसमें दूध मिला देना, यह रीति है जिससे सोमरसका उत्तम पेय बनता है।

वत्सप्रिर्भालन्दनः। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।६८।१)

प्र देवमच्छा मधुमन्त इन्दवोऽसिष्यदन्त गाव आ न धेनवः।
बर्हिषदो वचनावन्त ऊधभिः परिस्रुतमुस्रिया निर्णिजं धिरे ॥ ७०० ॥

(मधुमन्तः इन्दवः) मधुरिमामय सोमरस (देवं अच्छ) द्योतमान इन्द्रके प्रति, (धेनवः गावः न) दुधारू गायोंके समान शीघ्रतापूर्वक (आ प्र असिष्यदन्त) चारों ओरसे आने लगे, (बर्हिः-सदः) अपने स्थानपर बैठनेवाली (वचनावन्त उस्रियाः) शब्द करती हुई गौयें (परिस्रुतं निर्णिजं) टपकता हुआ शुद्ध दूध (ऊधभिः धिरे) अपने लेवोंमें धारण करती हैं।

सोमरस इन्द्रके लिये छानकर तैयार हुए हैं, उनमें मिलानेके लिये गौके लेवेमें दूध भी तैयार है।

प्रस्कण्व काण्वः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९५।१)

कनिक्रन्ति हरिरा सृज्यमानः सीदन्वनस्य जठरे पुनानः।
नृभिर्यतः कृणुते निर्णिजं गा अतो मतीर्जनयत स्वधाभिः ॥ ७०१ ॥

(वनस्य जठरे सीदन्) वनके अन्दर बैठता हुआ (आ सृज्यमानः पुनानः) चारों ओरसे निचोडा जाता हुआ, विशुद्ध बनता हुआ (हरिः कनिक्रन्ति) हरे रंगवाला सोम शब्द करता है, (नृभिः यतः) मानवोंसे नियमित होकर (गाः निर्णिजं कृणुते) गायोंके दूधको अपना रूप बना लेता है (अतः) इसलिए (स्वधाभिः मतीः जनयत) स्वधाओंसे हे मानवो! मननपूर्वक स्तोत्र बनाओ।

पुनानः हरिः गाः निर्णिजं कृणुते = पवित्र होता हुआ हरे रंगवाला सोम गौओंको अर्थात् गोदुग्धको अपना रूप बनाता है। गोदुग्धके साथ इस तरह मिल जाता है कि दूधकाही रूप उसको प्राप्त होता है।

सप्तर्षय। पवमान सोम। सतो बृहती। (ऋ० ९।१०७।२६)

अपो वसानः परि कोशमर्षतीन्दुर्हियानः सोतृभिः।
जनयञ्ज्योतिर्मन्दना अवीवशद्गाः कृण्वानो न निर्णिजम् ॥ ७०२ ॥

(इन्दुः अपः वसानः) पिघलनेवाला सोम जलोंसे अपने आपको ढकता हुआ, (सोतृभिः हियानः) निचोडनेवालोंद्वारा प्रेरित होता हुआ, (कोशं परि अर्षति) कलशकी ओर चला जाता है, (ज्योतिः जनयन्) प्रकाश उत्पन्न करता हुआ (गाः निर्णिजं कृण्वानः) गोदुग्धको अपना स्वरूप बनाता हुआ, (मन्दनाः अवीवशत्) प्रसन्नता करनेवाली स्तुतियोंको चाहता है।

इन्दुः अपः वसानः, कोशं अर्षति, गाः निर्णिजं कृण्वान = सोमरसमें जल मिलानेपर वह कलशमें भरा जाता है, पश्चात् वह गौका रूप धारण करता है, अर्थात् उसमें इतना दूध मिलाया जाता है कि वह दूध जैसाही दीखता है।

सोम गौसे उत्पन्न वस्त्र ओढता है।

वेदमें यह एक अलंकार है, सोमरस गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है, ऐसा कथन करनेके स्थानपर 'सोम गौसे उत्पन्न वस्त्र ओढ लेता है' ऐसा वर्णन होता है— (१) हरिः कलशेषु गव्यानि वस्त्राणि परि अव्यत। (ऋ० ९।८।६), (२) गव्यन् एति, रभसानि वस्त्रा आ दत्ते। (ऋ० ९।९६।१) अर्थात् 'हरे रंगवाला सोमरस कलशोंमें रहता हुआ गौसे उत्पन्न वस्त्र ओढ लेता है, सोम तेजस्वी वस्त्र धारण करता है।' गौसे उत्पन्न वस्त्रका अर्थ दूधही है। सोम दूधरूपी वस्त्र ओढ लेता है, इसका भाव यही है कि, इस मिश्रणका रंग दूध जैसा बनता है अर्थात् इस मिश्रणमें सोमरस प्रमाणमें कम और दूध प्रमाणमें अधिक रहता है। यही आशय निम्नलिखित मंत्रभाग स्पष्ट कर देते हैं— (३) गोभिः वासयिष्यसे। (ऋ० ९।२।४), (४) कं गोभिः सं वासयामसि। (ऋ० ९।८।५), (५) सोमं वासयामसि। (ऋ० ९।३५।५), (६) तं गोभिः वासयामसि। (ऋ० ९।४३।१), (७) ते वर्णं गोभिः वासयामसि। (ऋ० ९।१०४।४), (८) इन्दो! गोभिः वासयिष्यसे। (ऋ० ९।६६।१३), (९) गोभिः वसायते। (ऋ० ९।१४।३) अर्थात् 'गौओंसे सोमरसको ढंक देते हैं, आच्छादित करते है, सोमरसको गौओंद्वारा छादित करते है।' इन मन्त्रोंमें यही कहा है कि, गौवें वस्त्र उत्पन्न करती हैं, जिससे सोम आच्छादित किया जाता है। यह वस्त्र दूधही है, अथवा दही होगा। सोमरसमें अधिक दूध मिला देनाही इस आलंकारिक वर्णनका तात्पर्य है।

सोम गौका रूप धारण करता है।

उक्त मिश्रणके अर्थमें यह एक अलंकार है। इसके उदाहरण ये हैं— (१०) शुभ्र गाः निर्णिजं कृण्वानः। (ऋ० ९।१४।५), (११) इन्दव उस्रियाः निर्णिज धिरे। (ऋ० ९।६८।१) (१२) हरिः गाः निर्णिजं कृणुते। (ऋ० ९।९५।१) अर्थात् 'सोमरस गौओंके रूपको धारण करता है, सोम गौका रूप धारण करता है।' जब गौवें सोमको ढक देती है, तब सोम गौ जैसा दीखता है। सोमरसमें गौका दूध अधिक प्रमाणमें मिला देनेसे वह मिश्रण दूधके रंगका बनता है, यह भाव बतानेके लिये इस तरह अलंकारका वर्णन इन मन्त्रोंमें किया गया है। यहां 'गौ' का अर्थ 'गोदुग्ध' है।

(१००) सोम गौओंमें ठहरता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोम। गायत्री। (ऋ० ९।१६।६)

पुनानो रूपे अव्यये विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ७०३ ॥

[विश्वाः श्रियः] सभी शोभाओंको [अभि अर्षन्] प्राप्त होता हुआ और [अव्यये रूपे पुनानः] मैंढीके लोमोंसे बने हुए सुन्दर छाननीद्वारा शुद्ध होता हुआ सोम [शूरः न] मानों वीर पुरुषके समान [गोषु तिष्ठति] गायोंमें- गोदुग्धमें खडा रहता है।

अव्यये पुनानः गोषु तिष्ठति = मेढीकी ऊनकी छाननीद्वारा छाना जाकर सोमरस गौओंमें ठहरता है, अर्थात् गौके दूधमें मिल जाता है।

जमदग्निर्भार्गवः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६२।१९)

आविशन् कलशं सुतो विश्वा अर्षन्नभि श्रियः। शूरो न गोषु तिष्ठति ॥ ७०४ ॥

[सुतः] निचोडनेपर सोमरस [विश्वा श्रियः अभि अर्षन्] सारी शोभाओंको प्राप्त होता हुआ [कलशं आविशन्] कलशमें घुसता हुआ, [शूरः न] मानो एक शूर वीरसा [गोषु तिष्ठति] गोदुग्धमें रहता है।

सोमका रस निकालनेपर, कलशमें भरा जाता है और वह गोदुग्धमें उण्डेला जाता है।

दैवोदासि प्रतर्दनः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।७)

प्रावीविपद्वाच ऊर्मिं न सिन्धुर्गिरः सोमः पवमानो मनीषाः ।
अन्तः पश्यन्वृजनेमावराण्या तिष्ठति वृषभो गोषु जानन् ॥ ७०५ ॥

[पवमानः सोमः] पवित्र होता हुआ सोम [मनीषा वाच] मनपर प्रभुत्व रखनेवाले भाषण [गिरः] प्रशंसापर वचन [सिन्धु ऊर्मिं न] समुद्र लहरको जैसे प्रेरित करता है, वैसेही [प्र अवीविपत्] यथेष्ट प्रेरित कर चुका है, [गोषु वृषभः] गायोंके झुण्डमें बैल जैसे खडा रहता है, वैसेही [इमा अवराणि] ये दूसरोंसे हटाये जानेमें अशक्य [वृजना] बलोंको [अन्तः पश्यन्] भीतरतक देखता हुआ और [जानन् आ तिष्ठति] जानता हुआ अपने अधीन रखता है।

सोमः पवमानः गोषु वृषभः आ तिष्ठति= सोम छाना जानेके बाद, गायोंमें बैल जैसा, गोदुग्धधाराओंमें ठहरता है, अर्थात् गोदुग्धके साथ मिश्रित होता है ।

सोम गौओंमें ठहरता है ।

सोम और गौओंके आलंकारिक वर्णनोंमें ' सोम गौओंमें ठहरता है ' ऐसा भी वर्णन है। इसके उदाहरण देखिये—

[१] अव्यये पुनानः गोषु तिष्ठति । (ऋ० ९।१६।६)

[२] सुतः कलशं आविशन् गोषु तिष्ठति । (ऋ० ९।६२।१९)

[३] पवमानः सोमः गोषु आ तिष्ठति। (ऋ० ९।९६।७)

छाना जानेवाला सोम कलशमें प्रविष्ट होता हुआ गौओंमें ठहरता है अर्थात् गोदुग्धमें स्थिर रहता है, गोदुग्धके साथ मिश्रित होकर रहता है । गोदुग्धमें मिश्रित होता है ऐसा कहनेके स्थानपर यहां ' गौओंमें रहता है ' ऐसा वर्णन हुआ है । इन मन्त्रोंमें ' पुनानः, सुत , पवमानः ' ये पद सोमरस छाननेका भाव बतानेवाले न होते तो दूसरा अर्थ हो भी जाता, परन्तु इन पदोंके रहनेसे सोमरस छाना जानेके बाद वह गौओंमे अर्थात गौके दूधमें स्थिर रहता है, दूधके साथ मिश्रित होता है यही अर्थ निश्चित रूपसे प्रतीत होता है ।

(१०१) सोमके लिये गौएँ दूध देती हैं ।

गोतमो राहूगणः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।३१।५)

तुभ्यं गावो घृतं पयो बभ्रो दुदुह्रे अक्षितम् । वर्षिष्ठे अधि सानवि ॥ ७०६ ॥

हे [बभ्रो] भूरे रंगवाले सोम ! [वर्षिष्ठे सानवि अधि] अत्यन्त प्रवृद्ध ऊँचे स्थलमें [तुभ्यं] तेरे लिए [अक्षित] कभी कम न होनेवाले [पयः घृत गावः दुदुह्रे] दूध और घीका गौएँ दोहन कर चुकीं हैं ।

गावः तुभ्यं पयः दुदुह्रे= गायें सोमके लिये दूध दे चुकी । गायें जो दूध देती है वह सोमरसमें मिलानेके लियेही होता है।

सोमरसमें मिलानेके लिये २१ गौओंका दूध ।

रेणुर्वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।७०।१)

त्रिरस्मै सप्त धेनवो दुदुह्रे सत्यामाशिरं पूर्व्ये व्योमनि ।
चत्वार्यन्या भुवनानि निर्णिजे चारूणि चक्रे यदृतैरवर्धत ॥ ७०७ ॥

[पूर्व्ये व्योमनि] पूर्व-दिशाके आकाशमें अर्थात् प्रातःसमयमें [अस्मै] इस सोमके लिए

[त्रिः सप्त धेनवः] तीन बार सात अर्थात् २१ गौओंने [सत्यां आशिरं दुदुहे] सच्ची आश्रयकी जगह अर्थात् दूध दुहकर दिया, [यत् ऋतै. अवर्धत] जब यह दूध यज्ञोंसे बढने लगा, तब [चत्वारि अन्या भुवनानि] चार दूसरे भुवनोंने [निर्णिजे चारूणि चक्रे] सुंदरताके लिए अति सुन्दर नये रूप बनाये।

सोमरसमें मिलानेके लिये इक्कीस गौओंका दूध दुहा गया, जिसका सुदर मिश्रण पान करनेके लिये तैयार हुआ। यद्यपि इसमें कितने सोमरसमें कितने दूधका मिश्रण होना चाहिये इसका प्रमाण नहीं है, तथापि सोमरसके कई गुना दूध चाहिये, यह बात निश्चित है। यह मिश्रण दूध जैसा दीखना चाहिये। सोमरसका रंग हरासा होता है, वह रंग न दीखे और दूधकाही रंग उस मिश्रणका हो, इतना अधिक दूध उस सोमरसमें मिलना चाहिये।

पृश्नयोऽजा। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।८६।२१)

अयं पुनान उषसो वि रोचयदयं सिन्धुभ्यो अभवदु लोककृत्।

अयं त्रिः सप्त दुदुहान आशिरं सोमो हृदे पवते चारु मत्सरः ॥ ७०८ ॥

(पुनानः अयं) विशुद्ध होता हुआ यह (उषसः वि रोचयत्) उषाओंको विशेष ढंगसे प्रकाशित कर चुका, (अयं लोककृत् उ) यह सचमुच लोकोंका बनानेवाला (सिन्धुभ्यः अभवत्) नदियों-से उत्पन्न हुआ (अयं सोमः) यह सोम (चारु मत्सरः) सुन्दर ढगसे आनन्द देता हुआ (त्रिः सप्त) इक्कीस गायोंसे (आशिरं दुदुहान.) आश्रयणीय दुग्धका दोहन करता हुआ (हृदे पवते) अन्तस्तलमें विशुद्ध होता है।

सोमः मत्सरः त्रिः सप्त आशिरं दुहानः पवते = सोमका हर्षवर्धक रस इक्कीस गौओंका दूध अपने साथ मिलानेके लिये निचोडता है और मिलानेपर छाना जाता है।

चार गौओंकी दूधसे सोमकी सेवा।

उशना काव्य। पवमानः सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।८९।५)

चतस्र ईं घृतदुहः सचन्ते समाने अन्तर्धरुणे निषत्ताः।

ता ईमर्षन्ति नमसा पुनानास्ता ईं विश्वतः परि षन्ति पूर्वीः ॥ ७०९ ॥

(ईं) इसे (चतस्रः घृतदुहः) चार घृतका दोहन करनेवाली (समाने धरुणे अन्तः निसत्ताः) एकही धारक क्षेत्रके भीतर बैठी हुई गौएँ (सचन्ते) प्राप्त होती हैं, (ताः नमसा पुनानाः) वे नमनसे विशुद्ध करती हुई (ईं अर्षन्ति) इसके समीप आती हैं, (ताः पूर्वीः) वे अधिक संख्यामें (विश्वतः ईं परि षन्ति) सभी ओरसे इसके पास पहुँचती हैं।

चतस्र घृतदुह ईं सचन्ते= घृतका दोहन करनेवाली चार गौवें इसे प्राप्त होती हैं। अर्थात् इन गौओंका दूध इस सोमरसमें मिलाते हैं। पूर्व-मन्त्रमें २१ गौओंका दूध सोमरसमें मिलानेका विधान है, और यहां चार गौओंका दूध मिलानेका उल्लेख है। गौओंसे प्राप्त होनेवाला दूध और सोमरसका प्रमाण निश्चित करनेके साधन इन मन्त्रोंसे भी नहीं प्राप्त होते। तथापि थोडे सोमरसमें अधिक दूध मिलाना चाहिये, इतनाही यहां स्पष्ट हो जाता है। कई मंत्रोंमें 'गोभिः धेनुभिः उस्रियाभिः' ऐसे प्रयोग हैं जो कमसे कम तीन गौओंके दूधका मिश्रण करनेकी सूचना देते हैं।

सोमका अनेक गौओंके दूधसे मिश्रण।

कश्यपो मारीच। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६४।३)

अश्वो न चक्रदो वृषा सं गा इन्दो समर्वतः। वि नो राये दुरो वृधि ॥ ७१० ॥

हे (इन्दो) सोम! (वृषा) इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाला तू (अश्वः न चक्रद) घोडेके समान

आवाज कर चुका। (गा अर्वत सं) गायों तथा घोडोंको ठीक तरह रख दो और (न राये) हमारी संपत्तिके लिए (दुरः वि वृधि) दरवाजे खोल दो।

सोम गायोंको देता है अर्थात् जो सोमरस सिद्ध करते हैं, उनके पास गौवें अवश्य रहती हैं। अर्थात् उनके दूधका मिश्रण सोमरसके साथ किया जाता है।

कश्यपो मारीच । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९१।२)

वीती जनस्य दिव्यस्य कव्यैरधि सुवानो नहुष्येभिरिन्दुः ।
प्र यो नृभिरमृतो मर्त्येभिर्मर्मृजानोऽविभिर्गोभिरद्भिः ॥ ७११ ॥

(इन्दुः) रसयुक्त सोम (कव्यैः नहुष्येभिः) प्रशंसनीय मानवोंद्वारा (दिव्यस्य जनस्य वीती) द्युलोकके लोगोंके सेवनार्थ (अधि सुवान) निचोडा जाता है। (य अमृत) जो अमर होता हुआ (मर्त्येभि नृभिः) मानवों एवं नेताओंसे (मर्मृजानः) विशुद्ध होकर (अविभिः अद्भि) भेडोंके केशोंकी बनी छलनीमेंसे छाना जाकर, जलोंसे तथा (गोभि) गोदुग्धसे युक्त होकर (प्र) प्रकर्षसे उत्तम पेयके रूपमें तैयार होता है।

इन्दु अविभिः अद्भिः मृजान गोभि प्र = सोमका रस छलनीसे और जलधारासे छाना जाकर गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है।

असहीयुराङ्गिरस । पवमानः सोम । गायत्री । (ऋ० ९।६१।१३)

उपो षु जातमप्तुरं गोभिर्भङ्गं परिष्कृतम् । इन्दुं देवा अयासिषुः ॥ ७१२ ॥

(अप्तुर) जलोंमें त्वरापूर्वक जानेवाले, (गोभि परिष्कृतं) गायोंके दूधसे पूर्णतया मिश्रित, (सुजातं) सुन्दर ढंगसे उत्पन्न, (भङ्गं इन्दुं) शत्रुभंजक सोमके (देवाः उप अयासिषुः) समीप देवता चले गये।

सोमके अन्दर जल और गौका दूध मिलाया जाता है जिसको देव पीते हैं।

असहीयुराङ्गिरस । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।६१।२१)

संमिश्लो अरुषो भव सूपस्थाभिर्न धेनुभिः । सीदञ्छ्येनो न योनिमा ॥ ७१३ ॥

हे सोम ! (न) समानरूपसे (सु उपस्थाभिः धेनुभिः) अच्छी तरह आनेवाली गायोंके दूधसे (संमिश्लः) मिश्रित किया गया तू (श्येन न) बाज पंछीके तुल्य (योनिं आ सीदन्) मूल स्थानपर बैठता हुआ (अरुषः भव) चमकीला बन।

धेनुभिः संमिश्लः, अरुष = गौओंके दूधके साथ मिलाया सोमरस तेजस्वी दीखता है।

सप्तर्षयः । पवमानः सोम । बृहती । (ऋ० ९।१०७।९)

अनूपे गोमान्गोभिरक्षाः सोमो दुग्धाभिरक्षाः ।
समुद्रं न संवरणान्यग्मन्मन्दी मदाय तोशते ॥ ७१४ ॥

(गोमान् सोमः) गायोंसे युक्त सोम (अनूपे) निम्न स्थानमें (गोभिः दुग्धाभिः अक्षाः) निचोडी हुई गायोंके साथ टपक पडा, (समुद्रं न) समुद्रके पास जैसे जलप्रवाह पहुँचते हैं, वैसे (संवरणानि अग्मन्) स्वीकार करनेयोग्य अन्नरस इसे प्राप्त हुए हैं, (मन्दी) आनंद देनेवाला सोम (मदाय तोशते) हर्षके लिए कूटा जाता है।

सोमः गोभिः दुग्धाभिः अक्षाः = सोमका रस गौके दूधके साथ मिलकर छलनीसे छाना जाता है।

दैवोदासिः प्रतर्दनः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।१४)

वृष्टिं दिवः शतधारः पवस्व सहस्रसा वाजयुर्देववीतौ ।

सं सिन्धुभिः कलशे वावशानः समुस्रियाभिः प्रतिरन्न आयुः ॥ ७१५ ॥

(नः आयुः प्रतिरन्) हमारे जीवनको बढाता हुआ (देव-वीतौ) यज्ञमें (वाजयुः) दान देनेके लिए अन्न प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला और (सहस्रसा) हजारोंकी संख्यामें दान देनेवाला, (कलशे वावशानः) कलसेमें गर्जना करता हुआ (सिन्धुभिः उस्रियाभिः सं) नदीजलों और गायोंके दूधसे मिलता हुआ तू (दिवः वृष्टिं) द्युलोकसे वर्षाको (शतधारः पवस्व) सैकडों धाराओंमें टपका दे ।

कलशे वावशानः सिन्धुभिः उस्रियाभिः सं पवस्व = कलशमें जलों और दुग्धधाराओंके साथ मिलनेकी इच्छा करता हुआ सोम छाना जा रहा है ।

सप्तर्षयः । पवमानः सोमः । सतो बृहती । (ऋ० ९।१०७।१८)

पुनानश्चमू जनयन्मतिं कविः सोमो देवेषु रण्यति ।

अपो वसानः परि गोभिरुत्तरः सीदन् वनेष्वव्यत ॥ ७१६ ॥

(कविः सोमः) क्रान्तदर्शी सोम (अपः वसानः) जलोंसे अपने आपको ढकता हुआ (चमू पुनानः) चमुओंपर शुद्ध होता हुआ (मतिं जनयन्) बुद्धिको प्रकट करता हुआ (देवेषु रण्यति) देवोंमें रममाण होता है और (वनेषु सीदन्) वनोंमें बैठता हुआ (उत्तरः) ऊँचा उठता हुआ (गोभिः परि अव्यत) गोदुग्धसे आच्छादित हुआ है ।

सोमः पुनानः गोभिः परि अव्यत = सोम शुद्ध होनेके बाद गौओंके दूधके साथ मिलाया जाता है ।

कुत्स आङ्गिरस । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (९।९७।४५)

सोमः सुतो धारयात्यो न हित्वा सिन्धुर्न निम्नमभि वाज्यक्षाः ।

आ योनिं वन्यमसदत्पुनानः समिन्दुर्गोभिरसरत्समद्भिः ॥ ७१७ ॥

(अत्यः न) दौडते घोडेके तुल्य (हित्वा) गमन करके (सुतः सोमः धारया) निचोडा हुआ सोम धारासे, (सिन्धुः निम्नं न) नदी नीचेकी ओर जिस तरह चली जाती है वैसेही (वाजी) बलवान् होता हुआ (अभि अक्षाः) सीधा टपक पडा, (पुनानः) पवित्र होता हुआ (वन्यं योनिं आ असदत्) वृक्षसे निष्पादित कलशरूपी मूल स्थानपर जाता हुआ (इन्दुः) पिघल जानेवाला सोम (गोभिः अद्भिः) गायोंके दुग्ध एवं जलोंसे युक्त होकर (सं असरत्) भलीभाँति पात्रमें फैल गया ।

सुतः सोमः धारया योनिं आऽसदत्, इन्दुः गोभिः अद्भिः समसरत् = निचोडा गया सोमरस धारासे कलशमें गया, वह सोमरस गौओंके दूधके साथ और जलोंके साथ मिश्रित हुआ । प्रथम सोमका रस निकालते, छानकर उसको कलशमें भर देते हैं, पश्चात् दूध और जलके साथ मिला देते हैं, तब वह पीनेयोग्य बनता है ।

दैवोदासिः प्रतर्दनः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।२२)

प्रास्य धारा बृहतीरसृग्रन्नक्तो गोभिः कलशाँ आ विवेश ।

साम कृण्वन्त्सामन्यो विपश्चित्क्रन्दन्नेत्यभि सख्युर्न जामिम् ॥ ७१८ ॥

[अस्य बृहतीः धाराः] इस सोमकी प्रचण्ड धाराएँ [प्र असृग्रन्] खूब उत्पन्न हुई हैं, और यह

[गोभिः अक्त] गोदुग्धसे पूर्णतया लिप्त होकर [कलशान् आ विवेश] कलशोंमें प्रविष्ट हुआ, [सामन्यः विपश्चित्] सामगान करता हुआ विद्वान् [साम कृण्वन्] सामका गायन करता हुआ, [सख्युः जामिं न] मित्रकी पत्नीके समीप जैसे कोई मित्रभावसे जाता है, वैसेही [क्रन्दन् अभि एति] हर्षध्वनि करता हुआ देवोंके निकट जाता है ।

अस्य धारा गोभिः कलशान् आ विवेश = इस सोमकी धाराएँ गौओंके साथ अर्थात् गोदुग्धके साथ मिश्रित होकर कलशोंमें भर दी हैं ।

सोमरसमें अनेक गौओंके दूधका मिश्रण ।

सोमरसमें अनेक गौओंका दूध मिलाया जाता था, यह बात ' गोभिः ' आदि बहुवचनके प्रयोगसे सिद्ध होती है। इसके उदाहरण ये है— (१) इन्दो ! गा सम् । (ऋ० ९।६४।३), (२) इन्दुः गोभिः प्र । (ऋ० ९।३१।२), (३) गोभिः परिष्कृतं इन्दुम् । (ऋ० ९।६१।१३), (४) धेनुभिः संमिश्ल सोमः । (ऋ० ९।६१।२१); (५) सोमः गोभिः दुग्धाभि अक्षा (ऋ० ९।१०७।९), (६) कलशे उस्रियाभिः पवस्व । (ऋ० ९।९६।१४), (७) सोमः गोभिः परि अव्यत । (ऋ० ९।१०७।१८); (८) इन्दुः गोभिः समसरत् । (ऋ० ९।९७।४५), (९) अस्य धारा गोभिः कलशान् आ विवेश । (ऋ० ९।९६।२२)= सोम छाना जानेके बाद अनेक गौवोंके दूधके साथ मिश्रित होकर कलशोंमें भरा जाता है । यहा अनेक गौओंका अर्थात् उनके दूधका उल्लेख स्पष्ट है ।

गौवें दूधसे सोमरसको स्वादु बनाती है ।

जमदग्निर्भार्गव । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६२।५)

शुभ्रमन्धो देववातमप्सु धूतो नृभिः सुतः । स्वदन्ति गावः पयोभिः ॥ ७१९ ॥

[देववातं अन्धः] देवोंने प्रार्थित सोमरस [शुभ्रं] शुद्ध अर्थात् निर्दोष, [अप्सु धूतः] जलोंमें धोया हुआ [नृभिः सुतः] मानवोंने निचोडा हुआ है उसे [गावः पयोभिः स्वदन्ति] गौएँ अपने दूधसे स्वादु बनाती हैं ।

सोम उत्तम अन्न है, वह प्रथम (अप्सु धूत) जलोंमें स्वच्छ किया जाता है, (सुत) उसका रस निकाला जाता है, उस रसको (गाव पयोभि स्वदन्ति) गौवें अपने दूधसे स्वादु बनाती है ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस. । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।६९।४)

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ७२० ॥

[उक्षा मिमाति] बलवर्धक सोम गर्जना करता है, [देवीः धेनवः] दिव्य गौएँ [देवस्य निष्कृत उप यन्ति] सोम देवके स्थानके समीप चली जाती है, और [प्रति यन्ति] दोहनके पश्चात् वापस आती हैं, [अर्जुनं अव्यय वारं] सफेद मेंढीके लोमोंसे बनाई छलनीको [सोमः अत्यक्रमीत्] सोम पार कर चुका, अर्थात् छाना गया है और वह [निक्तं अत्कं न] साफ स्वच्छ कवचके तुल्य गोदुग्धको [परि अव्यत] पूर्णतया प्राप्त हुआ है ।

सोम कूटा जाता है तब वह एक प्रकारका शब्द करता है । उस समय गौवें वहा जाती हैं, उनका दूध निकाला जाता है, और वे वापस भी आती हैं । पश्चात् सोमरस ऊनकी श्वेत छाननीपर रखकर छाना जाता है, तब उसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है । मानो सोमरस गोदुग्धका चोगा पहनता है ।

अकृष्टा माषा। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।८६।२)

प्र ते मदासो मदिरास आशवोऽसृक्षत रथ्यासो यथा पृथक्।
धेनुर्न वत्सं पयसाऽभि वज्रिणमिन्द्रमिन्दवो मधुमन्त ऊर्मयः ॥ ७२१ ॥

(ते आशवः) तेरे व्यापनशील (मदिरासः मदासः) हर्षित करानेवाले रस (यथा रथ्यासः पृथक्) जैसे घोडे अलग अलग छोडे जाते हैं, वैसेही (प्र असृक्षत) प्रकर्षसे छोड रखे हैं, (धेनुः पयसा वत्सं न) गाय दूधके साथ बछडेके पास जैसे चली जाती है, वैसेही (इन्दवः) सोमरस (मधुमन्तः ऊर्मयः) मिठाससे पूर्ण तरंगोंके समान (वज्रिणं इन्द्रं अभि) वज्रधारी इन्द्रके प्रति चले जाते हैं।

मदिरासः मदासः प्रासृक्षत, धेनुः पयसा = आनंदवर्धक सोमरस प्रवाहित हो रहे हैं, उनके साथ गौ अपने दूधको मिलाती है। तब वह सोमरस इन्द्रके पीनेके लिये तैयार होता है।

वसुर्भारद्वाजः। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।८०।२)

यं त्वा वाजिन्नघ्न्या अभ्यनूषतायोहतं योनिमा रोहसि द्युमान्।
मघोनामायुः प्रतिरन्महि श्रव इन्द्राय सोम पवसे वृषा मदः ॥ ७२२ ॥

हे (वाजिन् सोम) बलवान् सोम! (यं त्वा अघ्न्या अभ्यनूषत) जिस तुझको अवध्य गायोंने हँबारवसे प्रशंसित कर रखा है, अतः (अयः-हत योनिं) लोहेसे, पत्थरोंसे, ठोंक पीटकर ठीक बनाये हुए मूलस्थानपर (द्युमान् आ रोहसि) द्योतमान तू चढ जाता है। (मघोनां) ऐश्वर्यसंपन्न लोगोंको (महि श्रव आयुः प्र तिरन्) बडा भारी यश और जीवन बढाता हुआ (वृषा मदः) इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाला तथा हर्षजनक तू (इन्द्राय पवसे) इन्द्रके लिये विशुद्ध होता है।

सोम कूटा जाता है उस समय गौवें हँबारव करके उसकी मानो प्रशंसा करती हैं। गौवें सोमके साथ मिलना चाहती हैं। अपना दूध सोमरसके साथ मिलाना चाहती हैं। गोचर्मपर रखा सोम जब पत्थरोंसे-लोहे जैसे पत्थरोंसे कूटा जाता है, तब वह चमकने लगता है और छाना जानेके लिये छननीके ऊपर चढ बैठता है। इस छननीसे सोम का रस छाना जाता है। सोमपान करनेवालोंकी आयु बढती है, उत्साह बढता है और यशकी भी वृद्धि होती है।

हरिमन्त आङ्गिरस। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।७२।६)

अंशुं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितं कविं कवयोऽपसो मनीषिणः।
समी गावो मतयो यन्ति संयत ऋतस्य योना सदने पुनर्भुवः ॥ ७२३ ॥

(अक्षितं स्तनयन्तं अंशुं) न घटनेवाले, गरजनेवाले, तेजस्वी (कविं) क्रान्तदर्शी सोमको (मनीषिणः अपसः कवयः) विद्वान्, कार्यशील और क्रान्तदर्शी लोग (दुहन्ति) निचोड लेते हैं, (ईं) इसके पास (पुनः भवः) फिर उत्पन्न होनेवाली, (ऋतस्य योना सदने) जलके मूलस्थानमें, यज्ञस्थलमें (मतयः) बुद्धियां और (गावः संयतः) गौएं इकट्ठी होकर (संयन्ति) भलीभाँति मिल जाती हैं।

ज्ञानी लोग सोमका रस निकालते हैं और गौके दूधके साथ मिला देते हैं।

ऋतस्य सदनं = यज्ञस्थान, जलस्थान, नदीकिनारा,
मतयः= बुद्धियां, बुद्धिसे उत्पन्न मंत्र,
गावः = गौवें, गौका दूध

यज्ञस्थानमें वेदमंत्र बोले जाते हैं और उस समय गौओंका दूध सोमरसमें मिलाया जाता है।

उशना काव्य । पवमान. सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।८७।८)

एषा ययौ परमादन्तरद्रेः कूचित्सतीरूर्वे गा विवेद ।
दिवो न विद्युत्स्तनयन्त्यभ्रैः सोमस्य ते पवत इन्द्र धारा ॥ ७२४ ॥

(एषा सोमस्य धारा) यह सोमरसकी धारा (परमात् अद्रेः अन्तः ययौ) बडे उच्च पर्वतके शिखरके ऊपरसे चली आयी है और (ऊर्वे कूचित् सतीः गाः विवेद) बडी उर्वरा भूमिमें रहनेवाली गायोंको प्राप्त कर सकी है। हे इन्द्र ! (दिवः) द्युलोकसे (अभ्रैः) मेघोंसे (स्तनयन्ती विद्युत् न) गरजती हुई बिजलीके समान चमकनेवाली यह (ते पवते) तेरे लिए छानी जा रही है।

सोमवल्ली पर्वतके उच्च शिखरपर उत्पन्न होती है, वहांसे लाकर सोमवल्लीका रस निकालते हैं। इसमें गौदुग्ध मिलाते हैं और छानकर पीते हैं।

कण्वो घौर । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९४।२)

द्विता व्यूर्ण्वन्नमृतस्य धाम स्वर्विदे भुवनानि प्रथन्त ।
धियः पिन्वानाः स्वसरे न गाव ऋतायन्तीरभि वावश्र इन्दुम् ॥ ७२५ ॥

(अमृतस्य धाम) जलके स्थानको (द्विता वि ऊर्ण्वन्) दो बार विशेषतया ढकता है, (स्वः विदे भुवनानि प्रथन्त) स्वकीय शक्ति जाननेहारे सोमके लिए सब भुवन विस्तीर्ण होते हैं, सर्वत्र सोमको स्थान मिलता है। (ऋतायन्ती धिय) यज्ञकी चाहती हुई बुद्धियाँ, (स्वसरे पिन्वाना गावः न) गोशालामें दूध देती हुई गायोंके समान, (इन्दु अभि वावश्रे) सोमके प्रति शब्द करने लगीं, अर्थात् सोमकी स्तुति करने लगीं।

गावः इन्दु अभि वावश्रे = गौवें सोमकी प्रशंसा करती हैं। दुहनेके समय हम्बारव करती हैं। पश्चात् दूध दुहा जाता है और सोमरसके साथ मिलाया जाता है।

जमदग्निर्भार्गव । पवमान. सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६२।९)

त्वमिन्दो परि स्रव स्वादिष्ठो अङ्गिरोभ्यः । वरिवोविद् घृतं पयः ॥ ७२६ ॥

हे (इन्दो) सोम ! (त्वं वरिवोवित्) धन दिलानेवाला (स्वादिष्ठ) अत्यंत स्वादु (अंगिरोभ्य) अंगिरसोंके लिए (घृतं पय परि स्रव) जल तथा दूध चारों ओरसे टपका दे।

यहांका ' घृत ' पद प्रायः जलका वाचक होगा। सोमरस स्वादु है, उसमें जल और दूध मिलाया जाता है।

दूधसे सोमकी स्वादुता।

दूधके मिश्रणसे सोमरस स्वादु बनता है, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखनेयोग्य हैं— (१) गावः पयोभिः शुभ्रं स्वदन्ति = गौवें अपने दूधसे सोमरसको स्वादु बनाती हैं। (ऋ० ९।६२।५) (२) धेनुः पयसा मदास मासृक्षत = गौ अपने दूधसे हर्षवर्धक रसको बढा देती है। (ऋ० ९।८६।२) (३) इन्दो त्वं स्वादिष्ठः घृतं पयः परि स्रव = हे सोम ! तू स्वादिष्ट होनेके लिये घृतयुक्त दूधके पास जा। (ऋ० ९।६२।९)

घृतयुक्त दूध वह है जो गौसे निचोडा होता है। न तपे दूधमें घी उत्तम मिला रहता है। ऐसाही दूध सोमरसमें मिलना चाहिये। इसीलिये जिस गौके दूधमें घीकी मात्रा अधिक होती है, वह दूध सोमरसमें मिलानेके लिये अच्छा समझा जाता है।

(१०२) सोमरस कलशोंमें रखा जाता है।

कक्षीवान् दैर्घतमस. । पवमान सोम. । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।७४।८)

अध श्वेतं कलशं गोभिरक्तं कार्ष्मन्ना वाज्यक्रमीत् ससवान् ।
आ हिन्विरे मनसा देवयन्तः कक्षीवते शतहिमाय गोनाम् ॥ ७२७ ॥

(अध गोभिः अक्तं श्वेतं कलश) अब गोदुग्धसे युक्त सफेद कलशके समीप (ससवान् वाजी) जानेवाला बलिष्ठ सोम (कार्ष्मन् आ अक्रमीत्) युद्धमें वीरके जानेके समान, यज्ञमें सञ्चार करने लगा, (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेहारे लोग (मनसा आ हिन्विरे) मनःपूर्वक स्तोत्रोंका पाठ करने लगे, तब (शतहिमाय कक्षीवते) सौ हिमकाल देखे हुए कक्षीवान्‌को (गोनां) गायोंका झुण्ड उसने दे दिया।

गोभिः अक्तं कलशं वाजी अक्रमीत् = गौओंके दूधसे भरे कलशपर बलवान सोम आक्रमण करने लगा, अर्थात् गौके दूधसे सोमरसका मिश्रण होने लगा।

शतहिमाय कक्षीवते गोनां = सौ वर्ष जीवित रहे कक्षीवान् ऋषिको सौ गौओंका दान दिया गया।

इस मन्त्रमें सोमरसके साथ गोदुग्धका मिलान करने और १०० गौओंका दान करनेका उल्लेख है।

दैवोदासि. प्रतर्दन. । पवमान सोम. । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।२०)

मर्यो न शुभ्रस्तन्वं मृजानोऽत्यो न सृत्वा सनये धनानाम् ।
वृषेव यूथा परि कोशमर्षन्कनिक्रदच्चम्वो३रा विवेश ॥ ७२८ ॥

(तन्वं मर्यः न मृजान) अपने शरीरको मानवके समान विशुद्ध करता हुआ, (धनानां सनये) धनोंका बँटवारा करनेके लिए (अत्यः न सृत्वा) घोडेके समान जल्द जानेवाला, (शुभ्र) तेजस्वी, (यूथा वृषा इव) झुण्डोंके समीप बैल जैसे जाता है, उसी प्रकार (कोश परि अर्षन्) पात्रके समीप जाता हुआ (कनिक्रदत्) गरजते हुए (चम्वोः आ विवेश) चमुओंमें प्रविष्ट हो चुका है।

मृजानः शुभ्रः कनिक्रदत् चम्वोः आ विवेश = शुद्ध होता हुआ, पवित्र होकर, शब्द करता हुआ सोमरस पात्रोंमें प्रविष्ट हुआ, अर्थात् सोमरस छाननेके बाद पात्रोंमें भरकर रखा है।

कृतयशा आङ्गिरस । पवमान सोम. । सतो बृहती । (ऋ० ९।१०८।१०)

आ वच्यस्व सुदक्ष चम्वोः सुतो विशां वह्निर्न विश्पतिः ।
वृष्टिं दिवः पवस्व रीतिमपां जिन्वा गविष्टये धियः ॥ ७२९ ॥

हे (सुदक्ष) अच्छे बलवान् सोम ! (विशां वह्निः) प्रजाओंको अभीष्ट स्थानको पहुँचानेवाला (विश्पतिः न) नरेशके तुल्य (सुतः) निचोडे जानेपर (चम्वोः आ वच्यस्व) बर्तनोंमें पूर्णतया टपकता रह, (अपां रीतिं) जलोंकी रीतिके अनुसार (दिव वृष्टिं पवस्व) द्युलोकसे वर्षा टपका दे और (गविष्टये धियः जिन्व) गायोंको खोजनेके लिए बुद्धियोंको प्रेरित कर।

सुतः चम्वोः गविष्टये आ वच्यस्व, जिन्व= सोमका रस निकालनेपर पात्रोंमें भरा जाता है, गौओंकी खोज करता है अर्थात् उसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है।

सोमरस बर्तनोंमें छाना जानेका वर्णन करनेवाले ये मन्त्र हैं।

(१०३) गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला सोम ।

नृमेध आङ्गिरस । पवमान सोम. । गायत्री । (ऋ० ९।२७।४)

एष गव्युरचिक्रदत्पवमानो हिरण्ययुः । इन्दुः सत्राजिदस्तृतः ॥ ७३० ॥

(एषः हिरण्ययुः गव्युः) यह सुवर्ण तथा गोधन पानेकी इच्छा करनेवाला (इन्दुः सत्राजित्) पिघलनेवाला, तथा बहुत शत्रुओंपर विजय पानेवाला, (अस्तृतः) दूसरेसे पराभूत न होनेवाला (पवमानः) छाननीसे छाना जानेके समय (अचिक्रदत्) गरज चुका। छाननीसे नीचे गिरनेका शब्द करता रहा।

गव्युः पवमानः = गौकी इच्छा करनेवाला छाना जानेवाला सोमरस है। अर्थात् छाना जानेके बाद उसमें गौका दूध मिलाया जाता है।

वासिष्ठ उपमन्यु । पवमान सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९७।१५)

एवा पवस्व मदिरो मदायोदग्राभस्य नमयन् वधस्नैः ।
परि वर्णं भरमाणो रुशन्तं गव्युर्नो अर्ष परि सोम सिक्तः ॥ ७३१ ॥

हे सोम ! (मदिरः) आनंद देनेवाला तू (उदग्राभस्य वधस्नैः नमयन्) जलको पकड रखनेवाले मेघोंको हथियारोंसे नीचे झुकाते हैं वैसे (एव पवस्व) ढंगसे तू टपकता रह और (गव्युः) गायोंको चाहता हुआ (परिसिक्तः) पूर्णतया सींचा जानेपर (रुशन्तं वर्णं) चमकीले रंगको (परि भरमाणः) चारों ओरसे धारण करता हुआ (नः अर्ष) हमें प्राप्त हो जा।

मदिरः गव्युः पवस्व = आनन्द देनेवाला सोमरस गौओंकी इच्छा करता हुआ छलनीके नीचे टपकता रहे। गायोंकी इच्छाका तात्पर्य यह है कि, गोदुग्धके साथ मिश्रित होनेकी इच्छा करता हुआ टपकता रहे। छाना जानेके बाद गोदुग्धके साथ मिश्रित होवे।

अम्बरीषो वार्षागिर, ऋजिश्वा भारद्वाजश्च । पवमान. सोम. । अनुष्टुप् । (ऋ० ९।९८।३)

परि ष्य सुवानो अक्षा इन्दुरव्ये मदच्युतः ।
धारा य ऊर्ध्वो अध्वरे भ्राजा नैति गव्ययुः ॥ ७३२ ॥

(सुवानः स्यः इन्दुः) निचोडा जाता हुआ वह पिघलनेवाला सोम (मद-च्युतः) हर्षवर्धक रसका टपकानेवाला होकर, (अव्ये परि अक्षाः) भेडीके लोमोंसे बनाई छलनीपरसे चारों ओरसे टपक पडा है। (यः अध्वरे ऊर्ध्वः) जो अहिंसक कार्यमें ऊँचा खडा रहकर, (गव्य-युः) गायोंको चाहनेवाला हो, (भ्राजा न एति) दीप्तिसे युक्त हुएके समान हमारे पास आता है।

इन्दुः अव्ये परि अक्षाः गव्ययुः एति = सोमरस भेडीकी ऊनकी छलनीसे छाना जाकर गौओंकी इच्छा करता है। अर्थात् सोमका रस छाना जानेके पश्चात् गौके दुग्धके साथ मिश्रित होता है।

प्रभूवसुराङ्गिरसः । पवमान सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।३६।६)

आ दिवस्पृष्ठमश्वयुर्गव्ययुः सोम रोहसि । वीरयुः शवसस्पते ॥ ७३३ ॥

हे (शवसस्पते) बलके स्वामिन् सोम ! तू (वीरयुः) वीरोंको चाहनेवाला (अश्वयुः गव्ययुः) घोडों तथा गायोंको पानेकी लालसा रखनेवाला है और (दिवः पृष्ठं आ रोहसि) द्युलोकके पृष्ठ भागपर चढ आता है।

सोम गव्ययु = सोमरस गौको चाहता है, अर्थात् गोदुग्धमें मिश्रित होनेकी इच्छा करता है।

अकृष्टमाषाद्यसृय । पवमान सोमः । जगती । (ऋ० ९।८६।३९)

गोवित्पवस्व वसुविद्धिरण्यविद्रेतोधा इन्दो भुवनेष्वर्पितः ।
त्वं सुवीरो असि सोम विश्ववित्तं त्वा विप्रा उप गिरेम आसते ॥ ७३४ ॥

हे (इन्दो सोम) पिघलनेवाले सोम ! तू (गोवित्) गायें प्राप्त करनेहारा (वसुवित्) धन जतलानेवाला (हिरण्यवित्) सुवर्ण जाननेवाला (रेतोधाः भुवनेषु अर्पितः) वीर्य धारण करनेवाला और भुवनोंमें रखा हुआ (पवस्व) टपकता हुआ रह, (त्वं सुवीरः विश्ववित् असि) तू अच्छा वीर और सब कुछ जाननेहारा है, (तं त्वा) ऐसे विख्यात तुझको (इमे विप्राः गिरा) ये ज्ञानी अपने भाषणके साथ तेरे (उप आसते) समीप बैठते हैं, तथा प्रशंसा करते हैं।

सोम ! गोवित् = सोम गौको प्राप्त करनेवाला है, अर्थात् सोमरसमें गौका दूध मिलाया जाता है।

अवत्सार काश्यप । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।५५।३)

उत नो गोविदश्ववित्पवस्व सोमान्धसा । मक्षूतमेभिरहभिः ॥ ७३५ ॥

(उत) और हे सोम ! (मक्षु-तमेभिः अहभिः) अत्यन्तही निकट भविष्यमें (गोवित् अश्ववित्) गायों और घोडोंको प्राप्त होकर (नः) हमारे लिए (अन्धसा पवस्व) अन्नके साथ टपकता रह। अर्थात् सोम गोदुग्धके साथ मिलकर उत्तम पौष्टिक अन्न बनता है।

दैवोदासि प्रतर्दन । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९६।१९)

चमूषच्छ्येनः शकुनो विभृत्वा गोविन्दुर्द्रप्स आयुधानि बिभ्रत् ।
अपामूर्मिं सचमानः समुद्रं तुरीयं धाम महिषो विवक्ति ॥ ७३६ ॥

(चमू-सत्) बर्तनमें बैठनेवाला, (श्येनः शकुनः) प्रशंसनीय और सामर्थ्यकारी, (वि-भृत्वा) विशेष ढंगसे भरण करनेवाला, (द्रप्सः) द्रवीभूत होनेवाला, (गो-विन्दुः) गायोंको प्राप्त करनेवाला और (आयुधानि बिभ्रत्) हथियार धारण करता हुआ, (अपां ऊर्मिं समुद्रं सचमानः) जलोंके लहरोंके प्रवाहोंको मिलता हुआ (महिषः) महान् सोम (तुरीयं धाम विवक्ति) चौथे स्थानका सेवन करता है।

द्रप्सः गोविन्दुः अपां ऊर्मिं सचमानः = प्रवाहित सोमरस गौको प्राप्त करनेवाला जलप्रवाहको प्राप्त करता है, अर्थात् सोमरसमें गौका दूध और जल मिला दिया जाता है।

मेध्यातिथिः काण्वः । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।४१।४)

आ पवस्व महीमिषं गोमदिन्दो हिरण्यवत् । अश्वावद्वाजवत् सुतः ॥ ७३७ ॥

हे (इन्दो) सोम ! (सुतः) निचोडा गया तू (अश्वावत् वाजवत्) घोडों तथा अन्नसे युक्त (गोमत् हिरण्यवत्) गायों तथा सुवर्णसे पूर्ण (महीं इषं) बडी भारी अन्नसामग्री (आ पवस्व) हमारे लिए पूरीतरह प्रवाहित कर।

मेध्यातिथि काण्व । पवमान सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।४२।६)

गोमन्नः सोम वीरवदश्वावद्वाजवत्सुतः । पवस्व बृहतीरिषः ॥ ७३८ ॥

हे सोम ! (नः) हमारे लिए (सुतः) निष्पादित हो जानेपर तू (गोमत् वीरवत् अश्वावत्

वाजवत्) गायों, वीरों, घोडों और अन्नोंसे युक्त (बृहतीः इषः) बडी प्रचण्ड अन्न-सामग्रियाँ (पवस्व) बहाओ।

सुतः सोम गोमत् = निचोडा सोमरस गौसे युक्त होता है, अर्थात् वह गौके दूधके साथ मिलाया जाता है।

अवत्सार काश्यप। पवमान सोम। गायत्री। (ऋ० ९।५९।१)

पवस्व गोजिदश्वजिद्विश्वजित्सोम रण्यजित्। प्रजावद्रत्नमा भर ॥ ७३९ ॥

हे सोम! तू (गोजित् अश्वजित्) गायों और घोडोंको जीतनेवाला (विश्वजित् रण्यजित्) सबका विजेता रमणीय चीजोंको जीतकर पानेवाला है, तू (पवस्व) टपकता रह और हमारे लिए (प्रजावत् रत्नं आ भर) सन्तानसे युक्त रमणीय धन ले आओ।

गोजित् नः पवस्व = गौको जीतकर हमारे लिये छाना जा, अर्थात् गौके दूधमें मिलकर हमारे पीनेके लिये तैयार हो।

कविर्भार्गवः। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।७८।४)

गोजिन्नः सोमो रथजिद्धिरण्यजित्स्वर्जिदब्जित्पवते सहस्रजित्।
यं देवासश्चक्रिरे पीतये मदं स्वादिष्ठं द्रप्समरुणं मयोभुवम् ॥ ७४० ॥

(नः) हमारे लिए सोम (गोजित् रथजित्) गायों और रथोंको (हिरण्यजित् स्व जित्) सुवर्ण तथा स्वर्गीय आनन्दको तथा (अप्-जित् सहस्र-जित्) जलों एव सहस्रों वस्तुओंको जीतनेवाला बनकर (पवते) विशुद्ध होता हुआ छाना जा रहा है, (य स्वादिष्ठ) जिस अत्यन्त स्वादु (मयोभुव अरुणं द्रप्स) सुखदायक लाल रंगवाले द्रवमय रसको जोकि (मद) हर्षकारक है, (देवासः पीतये चक्रिरे) देवोंने पेयके रूपमें बनाया था।

गोजित् अब्जित् पवते = गायों और जलोंको पानेवाला सोमरस छाना जा रहा है, अर्थात् सोमरसमें जल और गोदुग्ध मिलाकर छाना जाता है, तब वह (स्वादिष्ठ) स्वादु बनता है। यह देवोंने पीनेके लिये बनाया है।

सोम गौओंकी प्राप्तिकी इच्छा करता और प्राप्त करता है।

सोम 'गव्युः, गव्ययुः' है अर्थात् गौओंको प्राप्त होनेका इच्छुक है। यह 'गो-विद्, गो-विन्दुः' है, अर्थात् यह गौओंको प्राप्त करता है, सोमके पास गौवें रहती हैं, अत उसको 'गोमत्' कहते हैं। यह सोम 'गो-जित्' गौओंको जीतनेवाला है। इस तरह यह गौओंको प्राप्त करता है।

जहा सोमयाग होता है वहा गौवे होतीही हैं। गौओंके विना सोमयाग सिद्ध नहीं हो सकता। इस बातको बतानेवाले ये पद हैं। सोम और गौवें इनकी साथ साथ उपस्थिति होती है। यह इसका भाव है।

सोम गौओंकी अभिलाषा करता है।

देवोदासि प्रतर्दन। पवमानः सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९६।८)

स मत्सरः पृत्सु वन्वन्नवातः सहस्ररेता अभि वाजमर्ष।
इन्द्रायेन्दो पवमानो मनीष्यंशोरूर्मिमीरय गा इषण्यन् ॥ ७४१ ॥

हे (इन्दो) पिघलनेवाले सोम! तू (मत्सरः) आनंद देनेवाला (पृत्सु वन्वन्) सेनाओंमें शत्रुदलका विध्वंस करता हुआ, पर (अवातः) दूसरोंके लिए अगम्य, (सहस्ररेताः) हजारों

बलोंसे युक्त है, अतः विख्यात है, प्रेरा। (स.) वह तू (वाजं अभि अर्ष) बलके प्रति चला जा, (इन्द्राय पवमानः) इन्द्रके लिए विशुद्ध होता हुआ तू (गाः इषण्यन्) गायोंको प्रेरित करता हुआ (मनीषी) विद्वान् बनकर (अंशोः ऊर्मि ईरय) सोमकी लहरको प्रेरित कर।

मत्सरः पवमानः गाः इषण्यन् = सोमका रस छाना जानेके पश्चात् गाइयोंकी प्राप्तिकी इच्छा करता है। अर्थात् गोदुग्धके साथ मिलना चाहता है।

पराशरः शाक्त्यः। पवमान सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।३९)

स वर्धिता वर्धनः पूयमानः सोमो मीढ्वाँ अभि नो ज्योतिषाऽऽवीत्।
येना नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः स्वर्विदो अभि गा अद्रिमुष्णन् ॥ ७४२ ॥

(स. वर्धनः मीढ्वान्) वह बढता हुआ इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाला, (वर्धिता पूयमानः) बढानेवाला और विशुद्ध होता हुआ सोम (न ज्योतिषा) हमें प्रकाशसे (अभि आवीत) सुरक्षित रखे, (येन) जिसकी सहायतासे (न स्वः विद पूर्वे पितर) हमारे, स्वकीय तेजको जाननेहारे पूर्वकालीन पितरोंने (पदज्ञाः गायोंके पैरोंके चिह्न जाननेवाले बनकर (गाः अभि) गायोंको लक्ष्यमें रखकर (अद्रिं उष्णन्) पहाडमेंसे गायोंको छुडा लानेका यत्न किया।

सोम पूयमानः गाः अभि अद्रिं उष्णन् = सोमका रस छाना जानेके पश्चात् गौओंकी इच्छा करता है जो गौवें पर्वतके पास पहुचती है। अर्थात् सोमरस छाना जानेके पश्चात् गौओंके दूधके साथ मिलता है जो गौवें पहाडोंमें चरती हैं।

कविर्भार्गव। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।७८।१)

प्र राजा वाचं जनयन्नसिष्यददपो वसानो अभि गा इयक्षति।
गृभ्णाति रिप्रमविरस्य तान्वा शुद्धो देवानामुप याति निष्कृतम् ॥ ७४३ ॥

(राजा) शोभायमान सोम (वाचं जनयन्) शब्द करता हुआ छलनीसे (प्र असि स्यदत्) छाना गया है और (अप वसानः) जलोंसे आच्छादित हो जलोंसे मिश्रित हो, (गाः अभि इयक्षति) गौके समीप चला जाता है, (अस्य रिप्र) इसके दोषको (अविः तान्वा गृभ्णाति) छलनी अपनेमें पकड लेती है, बाद (शुद्धः देवानां निष्कृत) विशुद्ध होकर यह सोम देवोंके घर (उप याति) पहुँचता है।

राजा (सोमः) अपः वसानः गा अभि इयक्षति = सोम राजा अर्थात् सोमरस जलमें मिश्रित होकर, गौके अर्थात् गोदुग्धके समीप जाता है, गोदुग्धमें मिश्रित होता है। इसमें जो (रिप्र अवि गृभ्णाति) दोष होता है, उसको भेडीकी ऊनकी छननी अपनेमें लेती है, और (शुद्ध उप याति) शुद्ध होकर वह सोमरस पीनेके लिये प्रवाहित होता है।

(१०४) सोम गौओंका स्वामी है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमान. सोम। गायत्री। (ऋ० ९।१९।२)

युवं हि स्थः स्वर्पती इन्द्रश्च सोम गोपती। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ ७४४ ॥

हे इन्द्र तथा सोम! (युवं गोपती स्व पती हि स्थ.) तुम गायोंके स्वामी और स्वर्गके अधिपति निश्चयसे हो और (ईशाना) सर्व सामर्थ्यसे युक्त होकर (धिय. पिप्यतं) बुद्धियोंको समृद्ध बनाओ।

इन्द्रः सोमः च गोपती = इन्द्र और सोम ये गौपालक हैं अर्थात् इन्द्रके पीनेके लिये और सोमरसमें मिलानेके लिये गौका पालन होता है। गौका दूध सोमरसमें मिलाते हैं और वह पेय इन्द्रको दिया जाता है।

सोम और इन्द्रके लिये ' वृषा, वृषभः, ऋषभ , उक्षा ' आदि पद आते हैं। ये जैसे सोम और इन्द्रके वाचक अथवा विशेषण हैं, वैसेही ये पद बैलवाचक भी हैं। बैलवाचक होनेसे सोमको ' गोपति, गौका पति ' कहा गया है।

सोम गौओंका प्रिय पति है।

हरिमन्त आङ्गिरसः। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।७२।४)

नृधूतो अद्रिषुतो बर्हिषि प्रियः पतिर्गवां प्रदिव इन्दुर्ऋत्वियः।
पुरंधिवान् मनुषो यज्ञसाधनः शुचिर्धिया पवते सोम इन्द्र ते ॥ ७४५ ॥

हे इन्द्र ! (नृधूतः) नेताओंद्वारा धोया हुआ, (अद्रिसुत) पत्थरसे निचोडा हुआ, (गवां प्रियः पतिः) गायोंका प्यारा पालनपोषणकर्ता (प्रदिवः ऋत्वियः) पुराना एवं ऋतुमें उत्पन्न (पुरंधिवान्) बहुतसे कर्मोंसे युक्त (मनुषः यज्ञसाधनः) मानवोंके यज्ञके हितार्थ साधन बना हुआ, (शुचिः इन्दुः) पवित्र सोमरस (ते बर्हिषि पवते) तेरे लिए कुशासनपर विशुद्ध हो जाता है।

सोमको प्रथम धोते हैं, पश्चात् पत्थरोंसे कूटते हैं, यह सोम गौओंको प्रिय है, इसका यजन करते हैं, इसको कुशाकी छाननीसे छानते हैं। गौओंको सोम खिलाया जाता है और गौवें इसे प्रेमसे खाती हैं। गौओंको सोम यथेच्छ खिलाकर उस गौका दूध पीना बडा पुष्टिकारक है।

गायोंके मुखमें सोम।

रेभसूनू काश्यपौ। पवमानः सोमः। अनुष्टुप्। (ऋ० ९।९९।३)

तमस्य मर्जयामसि मदो य इन्द्रपातमः।
यं गाव आसभिर्दधुः पुरा नूनं च सूरयः ॥ ७४६ ॥

(यः इन्द्रपातमः मदः) जो इन्द्रके अत्यन्त पीनेयोग्य तथा आनन्ददायक है, (यं) जिसे (पुरा नूनं च) पहले तथा अब भी (सूरयः) विद्वान् लोग और (गावः) गौएँ (आसभिः दधुः) मुँहमें रख लेती हैं, (अस्य तं) इसके उस रसको (मर्जयामसि) हम धो डालते हैं।

यं मदः गाव दधुः तं मर्जयामसि = जिस आनन्दकारक सोमको गौवें धारण करती हैं, उसे हम शुद्ध करते हैं। अर्थात् शोधित रसको गोदुग्धके साथ मिला देते हैं।

सोम गौओंके स्थानको प्राप्त होता है।

पराशरः शाक्त्यः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९७।३१)

प्र ते धारा मधुमतीरसृग्रन्वारान्यत्पूतो अत्येष्यव्यान्।
पवमान पवसे धाम गोनां जज्ञानः सूर्यमपिन्वो अर्कैः ॥ ७४७ ॥

[यत् पूतः] जो तू शुद्ध होकर [अव्यान् वारान्] भेडीके बालोंसे [अति एषि] पार होकर आता है, तो [ते मधुमती धारा] तेरी मधुमय धाराएँ [प्र असृग्रन्] खूब उत्पन्न हुई हैं, हे पवमान ! [जज्ञानः] उत्पन्न होता हुआ तू [सूर्यं अर्कैः अपिन्व] सूर्यको अर्पणीय स्तोत्रोंसे पूर्ण कर चुका, और [गोनां धाम पवसे] गायोंके धारकशक्तियुक्त दुग्धको देखकर तू टपकता है।

पूतः अव्यान् वारान् अत्येषि, गोनां धाम पवसे = पवित्र होता हुआ सोम भेडोंके बालोंसे छाना जाता है और गौओंके स्थानसे पहुँचनेके लिये पवित्र होता है। अर्थात् छाना जानेके पश्चात् सोमरसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है।

गायें सोमको चाटती हैं।

रेभसूनू काश्यपौ। पवमान सोम। अनुष्टुप्। (ऋ० ९।१००।१,७)

अभी नवन्ते अद्रुहः प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
वत्सं न पूर्व आयुनि जातं रिहन्ति मातरः ॥ ७४८ ॥

त्वां रिहन्ति मातरो हरिं पवित्रे अद्रुहः। वत्सं जातं न धेनवः पवमान विधर्मणि ॥ ७४९ ॥

(पूर्वे आयुनि) जीवनके प्रारम्भिक कालमें (जातं वत्सं न) उत्पन्न बछडेको जैसे (मातरः रिहन्ति) गायें चाटती हैं, वैसेही (इन्द्रस्य प्रियं काम्यं) इन्द्रके प्यारे एवं कमनीय सोमको (अद्रुहः अभि नवन्ते) द्वेष न करनेवाली गौवें सामने खडे रहकर नमन करती हैं ॥

हे पवमान ! (त्वां हरिं) तुझ हरे रंगवालेको (विधर्मणि) यज्ञमें (वत्सं जातं धेनवः न) बछडेको उत्पन्न होनेपर गायें जैसे चाटती हैं, उसी प्रकार (अद्रुहः मातरः) द्रोह न करनेवाली मातायें (पवित्रे रिहन्ति) विशुद्ध वर्तनमें स्पर्श करती हैं ॥

हरिं धेनवः पवित्रे रिहन्ति = हरे रंगवाले सोमको गौवें छलनीपर चाटती हैं। अर्थात हरे रंगवाले सोमके रसमें गौका दूध छलनीपर भी मिला देते हैं, जिससे यह मिश्रण छाना जाता है।

सोम दूधपर तैरता है।

दैवोदासिः प्रतर्दनः। पवमान सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।९६।१५)

एष स्य सोमो मतिभिः पुनानोऽत्यो न वाजी तरतीदरातीः।
पयो न दुग्धमदितेरिषिरमुर्विव गातुः सुयमो न वोळ्हा ॥ ७५० ॥

(स्यः एषः सोमः) वह विख्यात यह सोम (मतिभिः पुनानः) मननसे उत्पन्न स्तोत्रोंसे विशुद्ध होता हुआ (अत्यः वाजी न) गमनशील बलिष्ठ घोडेके समान (अरातीः तरति इत्) शत्रुओंको पार करके परे चला जाता है, (अदितेः इषिरं पयः न दुग्धं) अवध्य गायके अभिलषणीय दूधके निचोडनेपर जैसे वह हितकारक होता है, और (उरु गातु इव) विस्तीर्ण मार्गके तुल्य तथा (सुयमः वोळ्हा न) सुखपूर्वक नियंत्रित किये जानेवाले घोडे या बैलके समान सोम आनन्ददायक है।

सोम पुनानः अदितेः पयः दुग्धं तरति = सोमरस पवित्र होता हुआ अवध्य गौके उत्तम दूधमें तरता है अर्थात् गोदुग्धके साथ मिश्रित होता है।

(१०५) सोम गौओंसे युक्त अन्न देता है।

निध्रुविः काश्यपः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६३।१८)

आ पवस्व हिरण्यवदश्वावत्सोम वीरवत्। वाजं गोमन्तमा भर ॥ ७५१ ॥

हे सोम ! तू (हिरण्यवत् अश्वावत् वीरवत्) सुवर्ण, घोडे एवं वीर सन्तानसे युक्त होकर (आ पवस्व) छाना जा और (गोमन्तं वाजं आ भर) गायोंसे युक्त अन्नको हमें दे डालो।

अर्थात् सोमरस छाना जाता है और गोदुग्धके साथ मिलकर उत्तम अन्न बनता है।

कविर्भार्गवः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।७८।३)

तं नः पूर्वास उपरास इन्दवो महे वाजाय धन्वन्तु गोमते ।
ईक्षेण्यासो अह्यो३ न चारवो ब्रह्मब्रह्म ये जुजुषुर्हविर्हविः ॥ ७५२ ॥

(त पूर्वासः उपरासः इन्दवः) वे पहलेके और अनके तैयार हुए सोमरस (न महे गोमते वाजाय) हमें बडे भारी गोधनयुक्त अन्नको पानेके लिए (धन्वन्तु) प्रेरणा करते हैं, (ईक्षेण्यासः अह्यः न) दर्शनीय नारियोंके समान वे (चारवः) सुन्दर सोमरस हैं (ये) जो (ब्रह्म-ब्रह्म) हर ज्ञानका भार (हविः-हविः) प्रत्येक हविका (जुजुषुः) सेवन करते हैं । अर्थात् सोमरसके हवनके समय (ब्रह्म) मन्त्र बोले जाते हैं और (हविः) अन्यान्य हवन-सामग्री भी हवन की जाती है ।

सोमरस छानकर तैयार किया जाता है, उसमें गौका दूध मिलाया जाता है, मंत्र बोले जाते हैं और हवन किया जाता है । यह सोमयागकी रीति है ।

इन्दवः गोमते वाजाय धन्वन्तु = सोमरस गौओंसे युक्त अन्नके लिये प्रेरित करते हैं अर्थात् तैयार किये गये सोमरस गौओंसे प्राप्त होनेवाले अन्न-दूध-से मिश्रित करनेके लिये याजकोंको उत्साहित करते हैं ।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । पवमान सोम । जगती । (ऋ० ९।६९।८)

आ नः पवस्व वसुमद्धिरण्यवदश्वावद्गोमद्यवमत्सुवीर्यम् ।
यूयं हि सोम पितरो मम स्थन दिवो मूर्धानः प्रस्थिता वयस्कृतः ॥ ७५३ ॥

हे सोम ! (नः) हमारे लिये (वसुमत् हिरण्यवत्) धनयुक्त और सुवर्णयुक्त (अश्वावत् गोमत्) घोडों और गायोंसे युक्त, (यवमत् सुवीर्य) जौसे पूर्ण और अच्छी वीरतासे भरपूर होकर (आ पवस्व) चारों ओरसे प्रवाह बहा दे, क्योंकि (मम हि) मेरे तो (यूयं पितरः स्थन) आप माता पिता जैसे हैं, और (दिवः मूर्धानः) द्युलोकके सिरपर विराजमान एवं (वयः-कृतः प्रस्थिताः) अन्नके कर्ता तथा हमेशा आयुके लिये हित करनेके लिये कटिबद्ध है ।

सोमरसके प्रवाह हमारे पास गोदुग्धके साथ मिलकर आजाय । वे सोमरसके प्रवाह हमारे मातापिता जैसे हैं । वे अन्न तथा आयु देते हैं ।

हे सोम ! गोमत् पवस्व = हे सोम ! तू गौओंसे युक्त होकर हमारे पास प्रवाहित हो ।

जमदग्निर्भार्गव । पवमान सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६२।१२)

आ पवस्व सहस्रिणं रयिं गोमन्तमश्विनम् । पुरुश्चन्द्रं पुरुस्पृहम् ॥ ७५४ ॥

(सहस्रिणं) सहस्रोंकी संख्यामें (पुरुश्चन्द्रं) बहुतोंके आह्लादक (पुरुस्पृहं) बहुतोंके स्पृहणीय (गोमन्तं अश्विनं) गायों तथा घोडोंसे पूर्ण (रयिं आ पवस्व) धनको चारों ओरसे टपका दे ।
सोम गाइयोंसे युक्त धन अर्थात् रसरूप अन्न देता है ।

कश्यपो मारीचः । पवमान सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६७।६)

आ न इन्दो शतग्विनं रयिं गोमन्तमश्विनम् । भरा सोम सहस्रिणम् ॥ ७५५ ॥

हे (इन्दो सोम) पिघलनेवाले सोम ! (नः) हमें (शतग्विनं गोमन्तं अश्विनं रयिं) सौ गायोंसे युक्त, गोधन परिपूर्ण, घोडोंसे पूर्ण धनसंपदाको (सहस्रिणं आ भर) सहस्रोंकी संख्यामें देदो । सोम गोधन देवे ।

अर्थात् सोमरस पीनेके पूर्व उसमें गौका दूध मिलानेके लिये गौवें घरमें रहनी चाहिये ।

सोम गौओंके विषयमें पूछता है।

उशना काव्य । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।८९।३)

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।

शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ७५६ ॥

(अस्य दिवः पतिं) इस द्युलोकके अधिपति (अरुषं हरिं) लाल रंगवाले तथा मन हरण करनेवाले (सिंहं) शत्रुविनाशक (मध्वः अयासं) मधुरिमाके प्रेरणकर्ता सोमको (नसन्त) प्राप्त होते हैं, (युत्सु प्रथमः शूरः) लडाइयोंमें पहला वीर यह सोम (गाः पृच्छते) गायोंकी पूछताछ करता है, (अस्य चक्षसा) इसकी दर्शनशक्तिसे (उक्षा परि पाति) यही सोम सबका संरक्षण करता है।

मध्वः गाः पृच्छते = यह मधुर सोमरस गौओंको पूछता है, अर्थात् गौओंसे दूध मांगता है। अपनेमें मिलानेके लिये गौओंसे दूध मांगता है।

पराशर शाक्त्य । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९७।३५)

सोमं गावो धेनवो वावशानाः सोमं विप्रा मतिभिः पृच्छमानाः ।

सोमः सुतः पूयते अज्यमानः सोमे अर्कास्त्रिष्टुभः सं नवन्ते ॥ ७५७ ॥

[वावशानाः गावः] इच्छा करती हुई गौएँ जोकि [धेनवः] संतुष्ट करनेवाली हैं, और [मतिभिः पृच्छमानाः विप्राः] बुद्धियोंसे प्रश्न पूछनेवाले ज्ञानी लोग [सोमं] सोमको पाना चाहते हैं, [सुतः] निचोडा जानेपर सोम [अज्यमानः पवते] गोदुग्धसे मिश्रित होता हुआ विशुद्ध होकर टपकता है, [त्रिष्टुभः अर्काः] त्रिष्टुप् छन्दमें बनाये हुए स्तोत्र [सोमे] सोममें [सं नवन्ते] मिलकर सम्मिलित होते हैं।

सोमं गावः पृच्छमाना सं नवन्ते= सोमको पूछती हुई गौवें प्राप्त होती है। सोमरसमें गोदुग्ध मिलाया जाता है।

सोम हमें गौवें देवे।

कश्यपो मारीच । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९१।६)

एवा पुनानो अपः स्वर्गा अस्मभ्यं तोका तनयानि भूरि ।

शं नः क्षेत्रमुरु ज्योतींषि सोम ज्योङ्नः सूर्यं दृशये रिरीहि ॥ ७५८ ॥

हे सोम ! [पुनानः पव] विशुद्ध होता हुआ तू [अस्मभ्यं] हमें [भूरि तोका तनयानि] बहुतसे बालबच्चोंके साथ [स्वः गाः] स्वर्गीय तेज और गौएँ दे डाल, [नः क्षेत्रं शं] हमारा खेत सुखकारक हो, [ज्योतींषि उरु] तेजोगोलोंको विस्तीर्ण बना दे और [नः दृशये] हमारे दर्शनके लिए [ज्योक्] बहुत देरतक [सूर्यं रिरीहि] सूरजको देदो।

पुनानः अस्मभ्यं गाः क्षेत्रं शं = शुद्ध होनेवाला सोमरस हमें गौवें तथा क्षेत्र सुखकारक रीतिसे दे देवे।

सोमके लिए गौओंके बाडे खोले गये।

पृश्नियोऽजाः । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।८६।२३)

अद्रिभिः सुतः पवसे पवित्र आँ इन्दविन्द्रस्य जठरेष्वाविशन् ।

त्वं नृचक्षा अभवो विचक्षण सोम गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरप ॥७५९ ॥

हे (इन्दो सोम) पिघलनेवाले सोम ! (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे निचोडा गया तू (इन्द्रस्य

जठरेषु आविशन्) इन्द्रके पेटमें घुसता हुआ (पवित्रे आ पवसे) छलनीमेंसे टपकता है, हे (विचक्षण) विशेष रूपसे देखनेहारे ! (त्वं नृचक्षा अभवः) तू मानवोंका निरीक्षक बन चुका है और (अंगिरोभ्यः गोत्रं अप अवृणः) अंगिरोंके लिए गायोंके बाडेको खोल चुका है।

सोम पत्थरोंसे कूटा जाता और छलनीपर छाना जाता है। यह सोम अंगिरा ऋषियोंकी गौओंका संरक्षक हुआ है। यह रस तैयार होतेही गाओंके बाडे खोले गये, दूध दुहा गया और गोमरसका पेय तयार किया गया है।

कश्यपो मारीचः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६४।४)

असृक्षत प्र वाजिनो गव्या सोमासो अश्वया । शुक्रासो वीरयाऽऽशवः ॥ ७६० ॥

(गव्या अश्वया वीरया) गो, घोडे एवं सन्तान पानेकी इच्छासे (आशवः) शीघ्रगामी (शुक्रासः) दीप्त और (वाजिनः सोमासः) बलिष्ठ सोम (प्र असृक्षत) खूब उत्पन्न किये गये हैं।

प्रवाही बलवर्धक और छाने हुए सोमरसके प्रवाह गोदुग्धमें मिलनेके लिये तैयार हुए हैं।

गव्या सोमास प्र असृक्षत= गायकी इच्छा करनेवाले सोमरस छाने गये और तैयार हुए हैं।

रेणुर्वैश्वामित्रः । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।७०।७)

रुवति भीमो वृषभस्तविष्यया शृङ्गे शिशानो हरिणी विचक्षणः ।
आ योनिं सोमः सुकृतं नि षीदति गव्ययी त्वग्भवति निर्णिगव्ययी ॥ ७६१ ॥

(विचक्षणः भीमः) बुद्धिमान और भीषण सोम (वृषभः तविष्यया) मानो बैल जैसे बल दर्शानेकी इच्छासे सींग चलाता है, वैसेही (हरिणी शृंगे शिशानः) हरे रंगवाले सींग तेज करता हुआ, (रुवति) गरजता है। सोम (सुकृतं योनिं आ नि सीदति) भलीभाँति तैयार किये हुए मूलस्थानपर आकर बैठ जाता है और (निर्णिक् त्वक्) विशुद्ध करनेकी चमडी (गव्ययी अव्ययी भवति) गौकी या भैडेकी बनी होती है।

सोम कूटकर छाननीसे छाना जाता है वह छलनी भेडीके बालोंकी बनी होती है।

(१०६) गोचर्मपर सोम रहता है।

भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६५।२५)

पवते हर्यतो हरिर्गृणानो जमदग्निना । हिन्वानो गोरधि त्वचि ॥ ७६२ ॥

जमदग्निद्वारा (गृणानः हर्यतः हरिः) प्रशंसित होता हुआ हरे रंगवाला सोम (गोः त्वचि अधि) गाय या बलके चमडेपर (हिन्वानः पवते) प्रेरित होता हुआ विशुद्ध होता है- छाना जा रहा है। गायके चर्मपर बैठकर हरे रंगके सोमको कूटते और छानते हैं।

'गोचर्म' का अर्थ— याज्ञवल्क्य-टीका मिताक्षरामें कहा है—

" दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डनिवर्तनम् । दश तान्येव गोचर्म० । "

एकार्थदीपिका कोशमें भी ऐसाही लिखा है। ३००×१० गज भूमि गोचर्म कहलाती है। वसिष्ठ कहते है—

दशहस्तेन वंशेन दशवंशान् समन्ततः । पञ्च चाभ्यधिकान् दद्यात् एतद्गोचर्म चोच्यते ॥ (वसिष्ठ)

इस तरह यह भूमिका लंबा चौडा विशेष प्रमाण है। ऐसी भूमीपर सोमका रस निकालनेके लिये बैठते है, ऐसा प्रतीत होता है।

सर्वसाधारण लोग गौके चर्मपर बैठते थे ऐसा मानते हैं। इसकी खोज होनी चाहिये।

'अनडुहे लोहिते चर्मणि' (औ० सू०) 'अंशुं दुहन्तो अध्यासते गावि।' (ऋ० १०।९४।९), 'एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळति।' (ऋ० ९।६६।२९) ये वेदमन्त्र गौका चर्म बताते हैं। अत गोचर्मका अर्थ खोजनेयोग्य है। गौके चर्मपर अधिक मनुष्य बैठ नहीं सकते, परन्तु ऊपर कही गयी भूमीपर खुली तरह अनेक मनुष्य बैठ सकते हैं। खोजनेवाले खोज करें। और देखो—

१०० गौवें, १ बैल और उनके बच्चे रहनेके लिये जितनी जगह चाहिये उतनी जगहका नाम 'गोचर्म' है। (गृह्य०) इसके दस गुणा बडी भूमि। (पराशर स्मृति १२)

३० दण्ड लंबी और १ दण्ड तथा ७ हाथ चौडी भूमि (बृहस्पति), एक मनुष्यके लिये एक वर्षतक पर्याप्त होनेयोग्य आवश्यक धान्य देनेवाली भूमी (विष्णु ५।१८१) श ब्रा ५।२।५।२ में भी 'गोचर्म' का अर्थ भूमीही दिया है।

यहां 'गोचर्मका' का अर्थ पृथ्वीका पृष्ठभाग है।

शत वैखानसा। पवमान सोम। गायत्री। (ऋ० ९।६६।२९)

एष सोमो अधि त्वचि गवां क्रीळत्यद्रिभिः। इन्द्रं मदाय जोहुवत् ॥ ७६३ ॥

(एष सोम) यह सोम (गवां त्वचि अधि) गायोंके चमडेपर (इन्द्र मदाय जोहुवत्) इन्द्रको आनन्दके लिए बुलाता हुआ (अद्रिभिः क्रीळति) पत्थरोंसे खेलता है।

गौके चर्मपर सोम रखा जाता है और पत्थरोंसे कूटा जाता है।

कविर्भार्गवः। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।७९।४)

दिवि ते नाभा परमो य आददे पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः।
अद्रयस्त्वा बप्सति गोरधि त्वच्य१प्सु त्वा हस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः ॥ ७६४ ॥

(ते परमः) तेरा श्रेष्ठ अंश (दिवि नाभा) द्युलोकके केन्द्रमें विद्यमान है, (यः आददे) जो वहांसे ग्रहण किया जाता है, (पृथिव्याः सानवि) भूमिके उच्च विभागमें अर्थात् पर्वतके शिखरपर (ते क्षिपः रुरुहुः) तेरे फेंके हुए बीज उगते है, (त्वा अद्रयः) तुझे पत्थर (बप्सति) कूटते है। (गोः त्वचि अधि) जब कि तू गोचर्मपर पडा रहता है, तब (मनीषिण हस्तैः त्वा दुदुहुः) बुद्धिमान् हाथोंसे तुझे दुहते है।

सोम पर्वतके उच्च शिखरपर उगता है। इसके बीज वहीं गिरते हैं, जिनसे सोमकी वल्लियां उगती हैं। उच्चसे उच्च पर्वतशिखरसे सोमवल्ली लायी जाती है। गौके चर्मपर रखकर पत्थरोंसे कूटी जाती है, कूटनेपर बुद्धिमान लोग उसे हाथोंसे दबाते हैं, और रस निकालते हैं।

मनु सावरणि। पवमान सोम। अनुष्टुप्। (ऋ० ९।१०१।११)

सुष्वाणासो व्यद्रिभिश्चिताना गोरधि त्वचि।
इषमस्मभ्यमभितः समस्वरन्वसुविदः ॥ ७६५ ॥

(गोः त्वचि अधि) बैलके चमडेपर (चिताना) साफ साफ दीख पडनेवाले, (अद्रिभिः वि सुष्वाणासः) पत्थरोंसे विशेषतया निचोडे जानेवाले, (वसुविद) धनको बतलानेहारे सोम (अस्मभ्य इषं अभितः) हमारे लिए अन्नको चारों तरफसे (सं अस्वरन्) बोलते हुए ठीक तरह दे देते हैं।

वैश्वामित्रो वाच्यो वा प्रजापतिः । पवमानः सोमः । अनुष्टुप् । (ऋ० ९।१०१।१६)

अव्यो वारेभिः पवते सोमो गव्ये अधि त्वचि ।

कनिक्रदद्वृषा हरिरिन्द्रस्याभ्येति निष्कृतम् ॥ ७६६ ॥

(सोमः गव्ये त्वचि अधि) सोम वनस्पति बैलके चमडेपर (अव्यः वारेभिः पवते) भेडोंके लोमोंसे छानकर विशुद्धरूपमें आता है, (वृषा हरिः) बलवान् तथा हरे रंगवाला (इन्द्रस्य निष्कृतं) इन्द्रके घरके समीप (कनिक्रदत् अभि एति) शब्द करता हुआ चला आता है ।

गोः त्वचि अद्रिभिः सुष्वाणासः समस्वरन्, सोमः गव्यः त्वचि अव्यः वारेभिः पवते= गौके चमडे पर सोम पत्थरोंसे कूटा जाता है और भेडोंकी ऊनकी छालनीसे छाना जाता है ।

सोम गौओंका पोषण करता है ।

भृगुर्वारुणिर्जमदग्निर्भार्गवो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६५।१७)

आ न इन्दो शतग्विनं गवां पोषं स्वश्व्यम् । वहा भगत्तिमूतये ॥ ७६७ ॥

हे (इन्दो) सोम ! (नः) हमें (सु-अश्व्य) अच्छे घोडोंसे युक्त, (शतग्विनं गवां पोषं) सौ गायोंसे युक्त गोधनका पोषण (ऊतये) संरक्षणके लिए (भगत्तिं आ वह) ऐश्वर्यका दान देदो ।

सोम हमें सौ गायें देवे ।

कण्वो घौरः । पवमानः सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९४।१)

अधि यदस्मिन्वाजिनीव शुभः स्पर्धन्ते धियः सूर्ये न विशः ।

अपो वृणानः पवते कवीयन्व्रजं न पशुवर्धनाय मन्म ॥ ७६८ ॥

(वाजिनि शुभः इव) घोडेपर अलंकार जैसे सुहाते हैं, (विशः सूर्ये न) प्रजायें सूर्यके उदय होनेपर जैसी हर्षित होती हैं, वैसेही (यत् अस्मिन्) जब इस सोममें, (धियः अधि स्पर्धन्ते) बुद्धियाँ अधिकाधिक स्पर्धा करती हैं, (कवीयन्) कवि लोगोंकी इच्छा करता हुआ (पशुवर्धनाय) गौओंकी वृद्धि करनेके लिए (मन्म व्रज न) मनन करनेयोग्य बाडेकी ओर जैसे गोपालनकर्ता जाता है, वैसेही (अपः वृणानः पवते) जलोंका स्वीकार करता हुआ विशुद्ध होता है ।

अपः वृणानः पशुवर्धनाय पवते= जलको अपनेमें धारण करनेवाला सोम पशु अर्थात् गौओंकी वृद्धि करनेके लिये शुद्ध होता है । सोमरस अपनेमें बहुत गोदुग्ध मिलानेका इच्छुक हुआ है ।

अमहीयुराङ्गिरसः । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।६१।१५)

अर्षा णः सोम शं गवे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् । वर्धा समुद्रमुक्थ्यम् ॥ ७६९ ॥

हे सोम ! (नः गवे शं अर्ष) हमारी गायको सुख पहुँचाओ (पिप्युषीं इषं धुक्षस्व) पुष्टिकारक अन्नका दोहन कर (उक्थ्यं समुद्रं वर्ध) प्रशंसनीय समुद्रको बढाओ ।

सोम गायको खिलाया जाता है, जिससे गायका दूध बढता है ।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।११।३)

स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते । शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ ७७० ॥

हे (राजन्) द्योतमान सोम ! (नः गवे जनाय अर्वते) हमारी गऊ, जनता, घोडे (ओषधीभ्यः) वनस्पतियोंके लिए (सः) विख्यात वह तू (शं पवस्व) सुखकारक ढंगसे टपकता चल ।

हे सोम ! गवे पवस्व = हे सोम ! तू गाईयोंके लिये प्रवाहित हो, अर्थात् सोमरस गौके दूधके साथ मिलाया जावे।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।११।७)

अमित्रहा विचर्षणिः पवस्व सोम शं गवे। देवेभ्यो अनुकामकृत्॥ ७७१॥

हे सोम ! तू (देवेभ्य) देवोंके लिए (अनु कामकृत्) इच्छित वस्तुका दाता है, (अमित्रहा विचर्षणि) शत्रुका वध करनेवाला और दर्शक भी है, इसलिए (गवे शं पवस्व) गऊके लिए शान्तिदायक ढगसे तू टपकता रह।

हे सोम ! गवे शं पवस्व = हे सोम ! तू गौके लिये सुखदायक टपकता रह, अर्थात् सोमरस छाननीसे जब छाना जाता है, तब वह छाननीसे नीचे टपक टपककर उतरता है, मानो वह गौके दूधके साथ मिलनेके लिये तयार हो जाता है।

सोम शत्रुओंसे गोधन लाता है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।२२।७)

त्वं सोम पणिभ्य आ वसु गव्यानि धारयः। ततं तन्तुमचिक्रदः॥ ७७२॥

हे सोम ! (त्वं गव्यानि वसु) तू गोरूप धनको (पणिभ्य आ धारयः) पणियोंसे छीनकर अपने पास धारण कर चुका है और (तन्तु ततं अचिक्रदः) यज्ञके सूत्रका फैलाव करनेकी घोषणा कर चुका।

सोमही शत्रुओंसे गोधनको प्राप्त करता है। अर्थात् सोमपानसे उत्साहित हुए वीर शत्रुको परास्त करते और गौओंको प्राप्त करते हैं।

गौओंकी झुण्डमें बलके जानेके समान सोम शब्द करता है।

ऋषभो वैश्वामित्रः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप् (ऋ० ९।७१।९)

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः॥ ७७३॥

(यूथा परि यन्) गौके झुंडोंके इर्दगिर्द जाता हुआ (उक्षा इव) बैलके समान (अरावीत्) सोम शब्द कर चुका है, और (सूर्यस्य त्विषीः अधि अधित) सूर्यकी कान्तियोंको धारण कर चुका है, (दिव्यः सुपर्णः सोमः) द्युलोकमें उत्पन्न सुन्दर पत्तोंवाला सोम (क्षां अव चक्षत) भूमिको देखता है, और (जाः क्रतुना परि पश्यते) जनताको कार्यसे पूर्णतया देख लेता है।

सोमका रस निकालनेके समय एक भाँतिका शब्द होता है, यह सोम पर्वतकी चोटीपर उत्पन्न होता है, अतः यह आकाशकी वल्ली है, वहांसे यह पृथ्वीपर लायी गयी है।

जिस तरह सांड गायोंकी झुण्डमें जानेके समय गरजता हुआ जाता है, वैसाही सोमरस गोदुग्धमें मिलानेके समय शब्द करता है। इसका भाव यह है कि सोमरस छाननेका एक भाँतिका शब्द होता है, पश्चात् गोदुग्धमें वह मिल जाता है। यही सांडका गौओंमें जाना है।

यहां सांडके लिये ' उक्षा ' पद है वह जैसा सांडका वैसा सोमका भी वाचक है।

त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य । पवमान सोम । ऊर्ध्वा बृहती । (ऋ० ९।११०।९)

अध यदिमे पवमान रोदसी इमा च विश्वा भुवनानि मज्मना ।
यूथे न निःष्ठा वृषभो वि तिष्ठसे ॥ ७७४ ॥

हे पवमान ! (अध यत्) अत्र जो तू (इमे रोदसी) ये द्युलोक और भूलोक (इमा विश्वा भुवना च) ये सारे भुवन भी (मज्मना) अपनी सामर्थ्यसे (यूथे निःस्था वृषभः न) गायोंके झुंडमें खडे रहनेवाले बैलके समान (अभि वि तिष्ठसे) सामने खडे रहकर संचालित करता है ।

(पवमान) यूथे वृषभः न = गौओंकी झुंडमें बैल रहता है वैसाही गौओंके दूधमें यह सोम रहता है । दूध और सोमरसका मिश्रण होता है, यह मानो गौओंमें बैलही खडा है ।

यहांका ' वृषभ ' पद बैल और सोमका वाचक है ।

सोम गौएं देता है ।

काश्यपोऽसितो देवलो वा । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।९।९)

पवमान महि श्रवो गामश्वं रासि वीरवत् । सना मेधां सना स्वः ॥ ७७५ ॥

हे सोम ! (महि श्रवः) बडा भारी अन्न जोकि (वीरवत्) वीर पुत्रोंसे युक्त है, (गां अश्वं रासि) गाय और घोडेको देता है, अतः हम प्रार्थना करते हैं कि (मेधां सन) बुद्धि दे तथा (स्वः सन) तेज भी दे दो।

सोम गौको देता है । सोमरस जहां होता है वहां गौकी उपस्थिति अवश्य है । इससे प्रतीत होता है कि सोमरस गोदुग्धके विना पीया नहीं जाता ।

ऋषभो वैश्वामित्र । पवमान सोम । जगती । (ऋ० ९।७१।८)

त्वेषं रूपं कृणुते वर्णो अस्य स यत्राशयत्समृता सेधति स्रिधः ।
अप्सा याति स्वधया दैव्यं जनं सं सुष्टुती नसते सं गो-अग्रया ॥ ७७६ ॥

(अस्य वर्णः) इसका रंग (त्वेषं रूप कृणुते) तेजस्वी स्वरूप व्यक्त करता है, (समृता) युद्धमें (यत्र स अशयत्) जहाँ वह बैठ जाता है, (स्रिधः सेधती) शत्रुओंको हटाता है, (अप्-सा) जल देनेवाला वह (दैव्यं जन) दिव्य पुरुषको (सुष्टुती) अच्छी स्तुतिसे (सं याति) भलीभाँति प्राप्त होता है, और (गो-अग्रया स्वधया स नसते) गौको आगे रखनेवाले अन्नके साथ, गोदुग्धके साथ, ठीक तरह चला जाता है, मिलाया जाता है ।

सोमरस सुंदर दीखता है, उसमें जल मिलाया जाता है, सोमयज्ञमें इस सोमकी स्तुति गायी जाती है और गौसे प्राप्त होनेवाले दूधरूपी मुख्य वस्तुके साथ उस सोमरसका मिलान करते हैं ।

मेधातिथिः काण्व । पवमानः सोमः । गायत्री । (ऋ० ९।२।१०)

गोषा इन्दो नृषा अस्यश्वसा वाजसा उत । आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः ॥ ७७७ ॥

हे (इन्दो) सोमरस ! तू (यज्ञस्य पूर्व्यः आत्मा) यज्ञका प्रथम आत्मारूप है, और (गो-साः) गोदान करनेवाला, (नृ-सा) पुत्रका प्रदान करनेवाला, (उत अश्व-साः वाज-साः असि) और घोडे तथा अन्नका दान करनेवाला है ।

सोम गौवें देता है। सोमरस पीनेके समय गोदुग्ध उसमें मिलानेकी आवश्यकता रहती है, अतः जहां सोमरस होगा, वहा गोदुग्ध अवश्यही होना चाहिये। इसलिये कहा है कि सोम गौंका देनेवाला है।

काश्यपोऽसितो देवलो वा। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।१६।२)

क्रत्वा दक्षस्य रथ्यमपो वसानमन्धसा। गोषामण्वेषु सश्चिम ॥ ७७८ ॥

(दक्षस्य रथ्य) बलको पहुँचानेवाले (अपः वसानं) जलोंका पहनावा धारण करनेवाले (गो-सां) गौंका दान करनेवाले (क्रत्वा अन्धसा) कार्यसे उत्पन्न अन्नके साथ रहनेवाले सोमको (अण्वेषु सश्चिम) ऊँगलियोंमें जोड देते हैं अर्थात् ऊँगलियोंसे निचोडने लगते हैं।

अण्वेषु सश्चिम = अंगुलियोंसे दबाकर सोमका रस निकालते हैं।

अपः वसानं = सोममें पानी मिलाते हैं और रस निकालते हैं।

गोसां = गौके साथ यह सोम मिलता है अर्थात् गोदुग्धके साथ मिलाया जाता है।

अमहीयुराङ्गिरसः। पवमानः सोमः। गायत्री। (ऋ० ९।६१।२०)

जघ्निर्वृत्रममित्रियं सस्निर्वाजं दिवेदिवे। गोषा उ अश्वसा असि ॥ ७७९ ॥

(अमित्रियं वृत्रं) शत्रुभूत वृत्रको (जघ्निः) मारनेवाला (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वाजं सस्निः) अन्नका विभजन करनेवाला तू (गो-सा अश्वसा उ असि) गायोंका तथा घोडोंका दान करनेवाला है।

गोसा वाजं सस्निः असि = गायोंका दान करनेवाला मानो अन्नकाही दान करता है।

सोम गौओका गुह्य नाम जानता है।

उशना काव्यः। पवमानः सोमः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ९।८७।३)

ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानामृभुर्धीर उशना काव्येन।
स चिद्विवेद निहितं यदासामपीच्यं१ गुह्यं नाम गोनाम् ॥ ७८० ॥

(जनानां पुरएता) लोगोंके आगे जानेवाला (ऋषि विप्रः) अतीन्द्रियद्रष्टा एवं ज्ञानी, (ऋभुः धीरः उशना) खूब चमकता हुआ, धैर्ययुक्त तथा उशना नामक ऋषि (काव्येन) काव्यसे सोमको प्राप्त करता है, (सः चित्) वही (यत् आसां गोनां) जो इन गायोंका (अपीच्यं गुह्यं नाम) गुप्त एवं गोपनीय यशरूपी दूध (निहितं वेद) जोकि रखा हुआ है, जान लेता है।

यहां ' गोनां गुह्यं नाम ' का अर्थ गोदुग्ध है। क्योंकि नामका अर्थ यश है, और गौंका यश दूधही है।

सोम दूधका धारण करता है।

त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण, त्रसदस्युः पौरुकुत्स्यः। पवमानः सोमः। पिपीलिकमध्याऽनुष्टुप्। (ऋ० ९।११०।३)

अजीजनो हि पवमान सूर्यं विधारे शक्मना पयः।
गोजीरया रंहमाणः पुरंध्या ॥ ७८१ ॥

हे पवमान सोम ! (पयः विधारे) दूधको विशेष रूपसे तू धारण करता है, (गोजीरया पुरंध्या) गायोंको प्रेरित करनेवाली और अनेकोंका धारण करनेवाली बुद्धिसे (रंहमाणः) वेगपूर्वक संचार करता हुआ (शक्मना हि) शक्तिसेही (सूर्यं अजीजनः) सूर्यको तूने उत्पन्न किया है।

(सोम) पयः विधारि, गोजीरया रंहमाण = सोमरस दूधको धारण करता है, गौके शब्दसे उत्तेजित होता है।

शत वैखानसा । पवमान सोम । गायत्री । (ऋ० ९।६६।१५)

आ पवस्व गविष्टये महे सोम नृचक्षसे । एन्द्रस्य जठरे विश ॥ ७८२ ॥

हे सोम ! (महे नृचक्षसे) बडे भारी मानवी दर्शनके लिए, (गविष्टये) गायोंको पानेके लिए (आ पवस्व) तू टपकता रह और (इन्द्रस्य जठरे आ विश) इन्द्रके पेटमें घुस जा।

सोमरस गौके दूधसे मिलाया जाय, छाना जाय और पीनेके लिये दिया जाय।

रेणुर्वैश्वामित्र । पवमान सोमः । जगती । (ऋ० ९।७०।६)

स मातरा न ददृशान उस्रियो नानददेति मरुतामिव स्वनः ।

जानन्नृतं प्रथमं यत्स्वर्णरं प्रशस्तये कमवृणीत सुक्रतुः ॥ ७८३ ॥

(मरुताम् इव स्वनः) वह मानो वीर मरुतोंकी गर्जनाके समान भीषण (नानदत्) गर्जना करता हुआ (उस्रियः मातरा न ददृशानः) गायोंको माताके समान देखता हुआ, मातृतुल्य मानता हुआ (एति) आता है, (यत्) जब (प्रथम स्वः-नरं ऋतं जानन्) प्रारंभिक स्वयंही ले जानेवाले ऋतको जानता हुआ (सुक्रतु प्र-शस्तये) अच्छे कर्म करनेवाला सोम प्रशस्तताके लिए (कं अवृणीत) भला किसका स्वीकार कर चुका है।

ऊर्ध्वसद्मा आङ्गिरसः । पवमानः सोम । सतो बृहती । (ऋ० ९।१०८।६)

य उस्रिया अप्या अन्तरश्मनो निर्गा अकृन्तदोजसा ।

अभि व्रजं तत्निषे गव्यमश्व्यं वर्मीव धृष्णवा रुज ॥ ७८४ ॥

(यः ओजसा) जो ओजस्वितासे (अन्तः अश्मन) पर्वतपर रहता है वह सोम (अप्याः उस्रियाः) दूध देनेवाली (गाः निः अकृन्तत्) गौओंको बाहर लाता है और (गव्य अश्व्यं व्रज) गायोंके तथा घोडोंके झुण्डको (अभि तत्निषे) विस्तृत करता है, इसलिए हे (धृष्णो) साहसी ! (वर्मी इव) कवचधारी वीरके समान (आ रुज) शत्रुदलका विनाश कर।

य उस्रिया गाः निः अकृन्तत् गव्य व्रज अभि तत्निषे = जो सोम दूध देनेवाली गौओंको गोस्थानसे बाहर दूध निकालनेके लिये लाता है और गौओंके बाडेको विस्तृत बना देता है।

गोदुग्धमें शहदके साथ सोमरसका मिलान।

कक्षीवान् दैर्घतमस । पवमानः सोमः । जगती । (ऋ० ९।७४।३)

महि प्सरः सुकृतं सोम्यं मधूर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते ।

ईशे यो वृष्टेरित उस्रियो वृषाऽपां नेता य इत ऊतिर्ऋग्मियः ॥ ७८५ ॥

[ऋत यते] ऋतकी ओर, जलकी ओर, यज्ञकी ओर जानेवालेके लिए [अदिते गव्यूतिः उर्वी] भूमिका मार्ग, जिसपरसे गायें चलती हैं, विशाल होता है और [सोम्य मधु] सोमरस मिश्रित शहद [सुकृतं महि प्सर] ठीक तरह तैयार किया हुआ बडा सेवन करनेयोग्य बनता है, [यः वृषा अपां नेता] जो इच्छाओंकी पूर्ति करनेवाला, जलोंका नेता [ऋग्मियः] ऋचाओंसे पूजनीय

है, तथा [यः इत वृष्टेः ईशे] जो यहाँसे वर्षाका प्रभु हो [इत ऊति उस्रियः] और इधर आकर रक्षा करनेवाला और गायोंका हित करनेवाला है।

ऋतं यते अदितेः गव्यूतिः उर्वी= यज्ञकी ओर जानेके समय गोकी गति बडी होती है, अर्थात् यज्ञमें गायका महत्त्व बडा भारी है।

सोम्य मधु सुकृत= सोमरसके साथ मिलाया मधुका मिश्रण उत्तम किया गया है। अतः वह गोप (उस्रिय) गौओंका हितकारी है, क्योंकि वह गौओंकी रक्षा करता है।

ऋषभो वैश्वामित्र। पवमान सोम। जगती। (ऋ० ९।७१।५)

समी रथं न भुरिजोरहेषत दश स्वसारो अदितेरुपस्थ आ।
जिगादुप ज्रयति गोरपीच्यं पदं यदस्य मतुथा अजीजनन् ॥ ७८६ ॥

[भुरिजो दश स्वसारः] बाहुओंके मानों दस बहिनें याने उँगलियाँ [अदितेः उपस्थे] भूमिपर [ईं] इसे, [रथं न] रथको जैसे आगे ढकेलते हैं, वैसेही [आ अहेषत] आगे आरम्भ प्रवर्तित कर चुकीं, [जिगात्] सोमरस भी बर्तनोंमें जाने लगा [यत्] जब [मतुथाः अस्य पदं अजीजनन्] विचारशील लोग इसके अंदरके स्थानके रसको उत्पन्न कर चुके, तब वह रस [गोः अपीच्यं उप ज्रयति] गायके गुह्य दूधके समीप चला जाता है।

सोम कूटनेपर अंगुलियोंसे उसका रस निकालते हैं तत् पश्चात् गायका दूध उसमें मिला देते हैं।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस। पवमानः सोमः। जगती। (ऋ० ९।६९।१)

इषुर्न धन्वन्प्रति धीयते मतिर्वत्सो न मातुरुप सर्ज्यूधनि।
उरुधारेव दुहे अग्र आयत्यस्य व्रतेष्वपि सोम इष्यते ॥ ७८७ ॥

(धन्वन् इषुः न) धनुष्यपर जैसा बाण रखा जाता है, या (मातुः ऊधनि वत्सः न) गौमाताके गोदमें जैसा बछडा रहता है, वैसेही (मतिः प्रति धीयते) बुद्धि सोमपर रखी जाती है- अर्थात् विचारपूर्वक सोमका स्तोत्र तैयार किया जाता है, (अग्रे आयती) आगे होकर आती हुई (उरुधारा इव) बहुतसी धाराओंसे दूध देनेवाली गौका (दुहे) दोहन किया जाता है, तो (अस्य व्रतेषु अपि) इसके व्रतोंमें भी (सोमः इष्यते) सोमकी आवश्यकता रहती है।

सोमके मन्त्रोंका पाठ होता है, गौओंका दोहन होता है तब सोमरस लाया जाता है और दोनोंका मिश्रण किया जाता है।

आग्निर्भौम। पवमानः सोम। गायत्री। (ऋ० ९।६७।११-१२)

अयं सोमः कपर्दिने घृतं न पवते मधु। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ७८८ ॥
अयं त आघृणे सुतो घृतं न पवते शुचि। आ भक्षत्कन्यासु नः ॥ ७८९ ॥

(अयं सोमः) यह सोम (मधु घृतं न) मीठे घीके तुल्य (कपर्दिने पवते) जटाजूटधारी रुद्रके लिए बहता रहे, और (कन्यासु नः) कन्याओंमें हमें (आ भक्षत) सब प्रकारसे भाग्यशाली कर ॥

हे (आघृणे) तेजस्वी देव! (सुतः अयं) निचोडा हुआ यह सोम, (शुचि घृतं न) विशुद्ध घीके तुल्य, (ते पवते) तेरे लिए बहता है। कन्याओंमें हमें वह भाग्यभागी बनावे ॥

सोमरस घृतके समान दीखता है। विशुद्ध सोमरस प्रवाही शुद्ध घीके समान रसरूपमें दीखता है।

सोममन्त्रोंके अध्ययनका फल।

पवित्र आङ्गिरसो वा वसिष्ठो वा उभौ वा। पवमान सोम। अनुष्टुप्। (ऋ० ९।६७।३२)

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्॥ ७९० ॥

(यः) जो (पावमानीः) पवमान सोमरसकी स्तुतिको तथा (ऋषिभिः संभृतं रसं) ऋषिओंने इकट्ठे किये हुए इस सारभूत रसका सोमके मन्त्रोंको (अध्येति) पढ लेता है, (तस्मै) उसे (सरस्वती क्षीरं सर्पिः मधु उदकं दुहे) सरस्वती दूध, घृत, शहद और जलको दोहन कर रख लेती है।

सोम-मन्त्रोंका अध्ययन करनेवालेको यह सोमविद्या दूध, घी, मधु और जल देती है। सोमरसमें ये पदार्थ मिलाये जाते हैं।

यहांतक सोमरसमें दूध मिलानेके वैदिक मन्त्रोंका विचार किया गया।

(१०७) उक्षा।

'उक्षा' का प्रसिद्ध अर्थ बैल है। तथापि इसका अर्थ 'सोमवल्ली, सोमरस, ऋषभक औषधि, सोमवल्ली आदि औषधियोंका रस' ये अर्थ भी वेदमन्त्रोंमें इस पदके हैं। ये न लेकर सर्वत्र 'बैल' ही इस पदका अर्थ लिया जाय, तो अनर्थ होता है। इस विषयमें निम्नलिखित दस मन्त्र देखिये—

उक्षा= सोम, ऋषभक वनस्पति।

दीर्घतमा औचथ्यः। शकधूम, सोम। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।१६४।४३)
ब्रह्मा। गौः। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ९।१०।२५)

शकमयं धूममारादपश्यं विषूवता पर एनावरेण।
उक्षाणं पृश्निमपचन्त वीरास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्॥ ७९१ ॥

(शकमयं धूमं आरात् अपश्यं) गोबरका धूवां मैंने दूरसे देखा, (एना अवरेण विषूवता) इस निकृष्ट परन्तु फैलनेवाले धूवेंसे (परः) परे, उसके नीचे, अग्निको भी देखा। वहां (वीराः) वीर लोग (पृश्निं उक्षाणं अपचन्त) चितकबरे सोमरसको पका रहे थे। (तानि धर्माणि) वे धर्म (प्रथमानि आसन्) प्रारंभके समयके थे।

गोबर जलाकर अग्नि तयार किया था, उस अग्निपर गौके दूधके साथ सोमका रस पकाते थे। उसका अग्निमें हवन करके वे भक्षण करते थे। ये धर्म प्रारंभके थे। (सायन० - उक्षाणं पृश्निं ... पृश्निर्वर्णः शुक्लरूपः सोमः। भाष्य उक्षाऽभवत्०।)

'*उक्षा*' का अर्थ सोम, तथा सोमसे निकला रस है। दीर्घायुवर्धक अष्टवर्गकी औषधियोंमें उक्षा वनस्पति (रा. नि. व ५ में) गिनी है। इसको यहां ऋषभक कहा है। 'पृश्नि' का अर्थ यहां चितकबरा, धब्बेवाला है।

यह उदाहरण लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाका है। ऋषभक वनस्पतिका रस पकाया जाता था, यह वर्णन इस मंत्रमें है। इस 'ऋषभक' औषधिका वर्णन वैद्यक ग्रंथोंमें इस तरह है—

ऋषभकः= गोवदेनो काश्मीरे प्रसिद्ध। तत्पर्याया - वृष, ऋषभ, वीर, पृथ्वीपति, गोपति, धीरः, विषाणी, दुर्धरः, ककुद्मान्, उन्नत, वोढा, शृंगी, वृषभ, भूर्य, भूपतिः, कामी, ऋक्षप्रियः, उक्षा, लांगली, गौ, मधुरः, गोरक्षः, वनवासी।

उत्पत्ति — 'जीवकर्षभकौ ज्ञेयौ हिमाद्रिशिखरोद्भवौ।
रसोनकन्दवत्कन्दौ निःसारौ सूक्ष्मपत्रकौ।
जीवकः कूर्चकाकारः ऋषभो वृषशृंगवत्।' (भावमिश्र)
गुणा — 'जीवकर्षभकौ बल्यौ शीतौ शुक्रकफप्रदौ।(भा० पू० १ भ)
मधुरः शीतः पित्तरक्तविरेकनुत्। शुक्रश्लेष्मकरो दाहक्षयज्वरहरश्च सः। (रा नि व ५)

ऋषभक वनस्पतिके नामोंमें 'वृषभ, गो, उक्षा' ये पद ऊपर देखनेयोग्य हैं। यह वनस्पति हिमालयके शिखरपर मिलती है। पत्ते थोडे और बारीक होते हैं। बैलके सींगके समान तथा लसनके समान इसका कन्द होता है। यह वनस्पति बलवर्धक, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, पुष्टिकारक, पित्तदोष,-रक्तदोष-विरेचन-दाह-क्षय-ज्वरको दूर करती है। गौ और बैलवाचक वनस्पति न लेते हुए उन पदोंके अर्थ पशुवाचक समझनेसे अर्थका अनर्थ होना सम्भव है।

भारद्वाजो बार्हस्पत्य । अग्नि । अनुष्टुप्। (ऋ० ६।१६।४७)

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ७९२ ॥

हे अग्ने! (ते) तेरे लिये (हृदा तष्टं हविः) अन्तःकरणपूर्वक तयार किया हवि (ऋचा आ भरामसि) मन्त्रके साथ अर्पण करते हैं। वे (उक्षणः) सोम, (ऋषभासः) ऋषभक औषधियां, और (वशाः) गौवें अर्थात् गौओंका दूध, घृत आदि (ते भवन्तु) तेरे लिए प्राप्त हों।

यहांका उक्षा शब्द बलवान् अर्थवाला मानकर ऋषभका विशेषण माना जा सकता है। इससे यह अर्थ होगा कि 'ये बलिष्ठ बैल और गौवें तुझे प्राप्त हों।' अग्निके लिये बैल अन्न देवे और गौ दूध देवे। अथवा 'उक्षण' का अर्थ सोम और 'ऋषभासः' का अर्थ ऋषभक औषधियां ऐसा भी हो सकता है।

(१०८) उक्षान्नः।

विरूप आङ्गिरस । अग्निः। गायत्री। (ऋ० ८।४३।११, अथर्व० २०।१।३)

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे। स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥ ७९३ ॥

वसिष्ठ । अग्नि । उपरिष्टाद्विराड्बृहती। (अथर्व० ३।२१।६)

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ७९४ ॥

(उक्षा-अन्नाय) ऋषभक औषधिका जिसपर हवन किया जाता है, (सोम-पृष्ठाय) सोमवल्लीका जिसपर हवन किया जाता है, (वशा-अन्नाय) गौके दूध, घी आदिका जिसपर हवन किया जाता है, उस (वेधसे अग्नये) ज्ञानी अग्निके लिए (स्तोमैः विधेम) सोमसे हम हवन करते हैं।

यहां 'उक्षा' पद ऋषभक औषधिका, 'सोम' सोमवल्लीका और 'वशा' पद घी दूध आदिका वाचक है। 'वशा' पदसे जैसा 'गोरस' लिया जाता है उसी तरह 'उक्षा व सोम' पदोंसे उनके रसकाही ग्रहण होता है। अर्थात् अग्निपर गोदुग्ध, घृत आदिका जैसा हवन होता है, वैसाही उक्त दोनों औषधियोंके रसोंकाही हवन होता है। ऐसे अग्निके लिये हवन करनेका उल्लेख यहां है। वैश्वानर तथा अन्य अग्नियोंमें यह हवन होता है।

उक्षा, वशा और सोम ये तीनों पद लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके उदाहरण हैं।

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस । पवमान सोमः । जगती । (ऋ० ९।६९।४)

उक्षा मिमाति प्रति यन्ति धेनवो देवस्य देवीरुप यन्ति निष्कृतम् ।
अत्यक्रमीदर्जुनं वारमव्ययमत्कं न निक्तं परि सोमो अव्यत ॥ ७९५ ॥

(उक्षा) सोमका रस (मिमाति) शब्द करता है, छाननेके समय उसकी आवाज होती है, उस समय (धेनवः प्रति यन्ति) गौवें अर्थात् गौके दूधकी धाराएँ उसके पास जाती हैं। उस सोमके रसमें गौका दूध मिलाया जाता है। (देवस्य निष्कृतं) सोम देवके स्थानके प्रति (देवी: उप यन्ति) गौवें अपने दूधके द्वारा जाती हैं। सोमरसमें गौका दूध मिला देते हैं। यह सोमरस (अव्ययं अर्जुन वार) अवी अर्थात् मेंढीके बालोंसे बनी श्वेत छाननीके परे (अति अक्रमीत्) अतिक्रमण करता है। सोम-रस छाननीसे नीचे उतरकर पात्रमें गिरता है। (अत्कं निक्तं न) कवचके समान (सोम परि अव्यत) सोमरस चारों ओरसे घेरता है। सोम दूधमें मिल जाता है, मानो सोमरस दूधका कवच धारण करता है।

यहांके कई पद विशेषार्थमें प्रयुक्त हुए हैं। ' उक्षा ' = सोमका रस। ' धेनु ' = गौ, गौका दूध। ' देवी '= गौ, गौका दूध। ' वार ' = बालोंसे बनी छाननी, कवच। ये सब उदाहरण लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके हैं।

ऋषभो वैश्वामित्र । पवमान सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।७१।९)

उक्षेव यूथा परियन्नरावीदधि त्विषीरधित सूर्यस्य ।
दिव्यः सुपर्णोऽव चक्षत क्षां सोमः परि क्रतुना पश्यते जाः ॥ ७९६ ॥

(उक्षा इव यूथा) बैल गौओंके यूथमें (परियन् अरावीत्) जाता हुआ शब्द करता है। अर्थात् सोमरस गोदुग्धमें मिलानेके समय, छाननीसे उतरनेके समय, आवाज करके नीचे उतरता है। पश्चात् (सूर्यस्य त्विषीः अधि अधीत) सूर्यकी चमकाहट धारण करता है। अर्थात् तेजस्वी दीखता है। जैसा (दिव्यः सुपर्णः) द्युलोकका सूर्य (क्षां अव चक्षत) पृथ्वीका निरीक्षण करता है, वैसाही सोम (क्रतुना) यज्ञके द्वारा (जाः परि पश्यते) सब प्रजाओंका निरीक्षण अर्थात् देखभाल करता है।

यहा ' उक्षा ' का अर्थ ' बैल ' है, परन्तु लक्षणासे अर्थ ' सोम ' है। ' यूथा, यूथानि ' का अर्थ गौओंके झुण्ड है, परन्तु लक्षणासे ' गौओंका दूध ' है। ये भी लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके उदाहरण हैं।

वेनो भार्गवः । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।८५।१०)

दिवो नाके मधुजिह्वा असश्चतो वेना दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम् ।
अप्सु द्रप्सं वावृधानं समुद्र आ सिन्धोरूर्मा मधुमन्तं पवित्र आ ॥ ७९७ ॥

(गिरि-स्थां उक्षणं) पर्वत शिखरपर रहनेवाले बलवर्धक सोमको (असश्चतः मधुजिह्वा वेनाः) कर्ममें कुशल मधुरभाषणी ज्ञानी लोग (दिवो नाके) स्वर्गधाम जैसे यज्ञमें (दुहन्ति) दुहते हैं, सोमका रस निकालते हैं। उस (द्रप्सं अप्सु वावृधानं) सोमरसको जलसे बढाते हुए वे (समुद्रे सिन्धोः ऊर्मा) नदियोंके जलप्रवाहकी लहरियोंपर तरंगनेके समान (मधुमन्तं) उस मीठे रसको (पवित्रे आ) छाननीपर चढाते हैं।

यहां ' उक्षा ' का अर्थ सोमवल्ली है क्योंकि वह पर्वतके शिखरपर रहती है ऐसा भी यहां कहा है।

भौमोऽत्रि । पवमान सोम । जगती । (ऋ० ९।८६।४३)
अथर्वा । यम । भुरिक् जगती । (अथर्व० १८।३।१८)

अञ्जते व्यञ्जते समञ्जते क्रतुं रिहन्ति मधुनाऽभ्यञ्जते।
सिन्धोरुच्छ्वासे पतयन्तमुक्षणं हिरण्यपावाः पशुमासु गृभ्णते ॥ ७९८ ॥

(अञ्जते, व्यञ्जते, समञ्जते) वे उसे स्वच्छ करते, विशेष साफ करते और सम्यक्तया शुद्ध करते हैं। उस (क्रतुं) यज्ञके करनेवाले सोमको (रिहन्ति) हाथसे पकडते हैं और (मधुना अभ्यञ्जते) मधुसे लिपटाते हैं। उस (सिन्धोः उच्छ्वासे पतयन्तं उक्षणं) नदीके स्वल्पजलमें रहनेवाले सोमको (आसु) उसी जलमें (पशुं) उसी पशु जैसे बलिष्ठ सोमकोही (हिरण्यपावाः) सोने जैसा चमकीला होनेतक (गृभ्णते) पकडकर रखते हैं, धो धोकर चमकनेतक स्वच्छ करते हैं।

इस मन्त्रमें ' उक्षा ' का अर्थ सोमवल्ली है। यह नदीके जलमें उगती है। यज्ञ करनेवाले इसे वारंवार धो धोकर स्वच्छ करते हैं, अन्तमें यह चमकने लग जाता है, तब उसे हाथसे पकडते हैं। उसका रस निकालते, उस रसमें शहद मिलाते हैं। यहां सोमरस तैयार करनेकी विधि बतायी है।

प्रस्कण्वः काण्व । पवमान सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।९५।४)

तं मर्मृजानं महिषं न सानावंशुं दुहन्त्युक्षणं गिरिष्ठाम्।
तं वावशानं मतयः सचन्ते त्रितो बिभर्ति वरुणं समुद्रे ॥ ७९९ ॥

(सानौ महिषं न) पर्वतपर रहनेवाले महिषके समान (गिरि-स्थां उक्षणं अंशुं) पर्वत-शिखरपर रहनेवाले बलवर्धक सोमको (मर्मृजानं तं दुहन्ति) शुद्ध करते हुए दुहते हैं, रस निकालते हैं। (वावशानं तं मतयः सचन्ते) वारंवार इच्छा करनेयोग्य उस सोमके पास सबकी बुद्धियां पहुंचती हैं। सबकी बुद्धियां सोमकी इच्छा करती हैं। (त्रितः) त्रित ऋषि (समुद्रे) समुद्रमें रहनेवाले (वरुणं) वरुणीय सोमको (बिभर्ति) धारण करता है। अपने पास रखते हैं।

यहां ' उक्षा ' का अर्थ सोमवल्ली है और यह पर्वतशिखरपर रहनेवाली है।

वृषाकपिरैन्द्र, वृषाकपिरिन्द्राणी च। इन्द्र । पंक्ति । (ऋ० १०।८६।१३, अथर्व० २०।१२६।१३)

वृषाकपायि रेवति सुपुत्र आदु सुस्नुषे।
घसत्त इन्द्र उक्षणः प्रियं काचित्करं हविर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८०० ॥

हे (रेवति सुपुत्रे सुस्नुषे वृषाकपायि) उत्तम धनवाली, पुत्रवाली और उत्तम स्नुषावाली वृषाकपायी देवी! (ते उक्षणः प्रियं) तेरे द्वारा बनाया ऋषभक वनस्पतिसे बना प्रिय पाक (इन्द्रः घसत्) इन्द्र खाता है, तथा (काचित्करं हविः) दूसरा हवि भी लेता है। (इन्द्रः विश्वस्मात् उत्तरः) इन्द्र सबसे श्रेष्ठ है।

' यहां ' उक्षा ' पदका अर्थ ऋषभक औषधि है। जिसका पाक खाया जाता है। इसका अर्थ सोम भी होगा।

इतने मन्त्रोंमें ' उक्षा ' पदका अर्थ औषधिवाचक है। औषधिवाचक ' उक्षा ' पदके पर्याय अनेक हैं और उनमें बहुतसे नाम ' बैल ' के वाचक भी हैं यह इस स्थानपर (ऋ० १।१६४।४३ के व्याख्यानमें) पहिलेही बताया है।

भत बैलवाचक पद हुआ तो उसका भी अर्थ औषधि लेना, या पशु लेना, यह एक समस्या रहती है, जो विवेकसेही हल करनी होती है।

सोमाहुतिर्भार्गव । अग्नि. । गायत्री । (ऋ० २।७।५)

त्वं नो असि भारताग्ने वशाभिरुक्षभिः । अष्टापदीभिराहुतः ॥ ८०१ ॥

हे (भारत अग्ने) भारतीयोंके साथ रहनेवाले अग्नि ! (नः) हमसे (त्व) तू (वशाभिः) गौके दूध, घी आदिसे, (उक्षभिः) ऋषभक तथा सोमके रसकी आहुतियोंसे और (अष्टापदीभिः) गर्भवती गौके दूध आदिसे (आहुत) आहुति लेनेवाला ह ।

' वशा, अष्टापदी ' ये दो पद गौके वाचक है, यहा गौके दूधके वाचक हैं। ' उक्षा ' पद ऋषभक वनस्पतिका तथा सोमका वाचक है, यहा इन वल्लियोंके रसका वाचक है। ये तीनो पद लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाके उदाहरण है।

' अष्टापदी ' का अर्थ ' चन्द्रमल्लिका ' है, एक सुगध देनेवाला वृक्ष है, जिसकी कर्पूर जैसी सुगध होती है। यह हवनीय वृक्ष है। अष्टापदीका अर्थ गर्भवती गौ भी है।

(१०९) उक्षा=बैल ।

अब चार मन्त्र ऐसे दिये जाते हैं कि जो उक्षा पदका बल ऐसा अर्थ बता रहे हैं। ऋ० १०।९१।१४ में बताया जायगा कि यज्ञके लिये अग्निके समीप जो पशु लाये जाते है, वे या तो गौ आदि दूध तथा घी देकर यज्ञ कराते हैं, अथवा बैल घोडे आदि अन्न उत्पन्न करके यज्ञकी सिद्धि करते है। अत ये अग्निके पास लाकर (आहुता. अवसृष्टासः । (ऋ० १०।९१।१४) अग्निको समर्पित करके छोडे जाते हैं। जाते वे यज्ञकाही कार्य करते रहे, यह इस विधिका तात्पर्य है।

मृगार । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ४।२४।४)

यस्य वशास ऋषभास उक्षणो यस्मै मीयन्ते स्वरवः स्वर्विदे ।
यस्मै शुक्रः पवते ब्रह्मशुम्भितः स नो मुञ्चत्वंहसः ॥ ८०२ ॥

(यस्य) जिसके ये (वशास ऋषभासः उक्षणः) गौवें बैल और सांड हैं, (यस्मै स्वर्विदे) जिस तेजस्वीके लिए (स्वरवः मीयन्ते) यज्ञस्तभ खडे किये जाते हैं, (यस्मै शुक्र ब्रह्मशुम्भितः पवते) जिसके लिए मंत्रोंसे प्रेरित हुआ वीर्यवर्धक सोमरस छाना जाता है (स. न अंहसः पातु) वह हमें पापसे बचावे।

ब्रह्मा, भृग्वङ्गिराश्च । आयुष्य । त्र्यवसाना षट्पदा बृहतीगर्भा जगती । (अथर्व० ३।११।८)

अभि त्वा जरिमाहित गामुक्षणमिव रज्ज्वा ।
यस्त्वा मृत्युरभ्यधत्त जायमानं सुपाशया ।
तं ते सत्यस्य हस्ताभ्यामुदमुञ्चद्बृहस्पतिः ॥ ८०३ ॥

(जरिमा) बुढापेने (त्वा अभि आहित) तुझे जखडकर बांध दिया है, जैसे गौ या बैलको रज्जूसे बांधते हैं। (त्वा जायमानं) तुझे उत्पन्न होतेही (सुपाशया मृत्युः अभ्यधत्त) उत्तम पाशसे मृत्युने बांध दिया है, उस तुझको बृहस्पति (सत्यस्य हस्ताभ्यां) सत्यकी शक्तिसे युक्त हाथोंसे (उदमुञ्चत्) मुक्त कर देता है। ' उक्षा ' का अर्थ यहां बैल है।

कृश काण्व । इन्द्र । गायत्री । (ऋ० ८।५५।२)

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ ८०४ ॥

सौ (श्वेतासः उक्षणः) श्वेत बैल द्युलोकमें तारोंके समान चमकते हैं, वे (मह्ना) अपने महत्त्वसे द्युलोकको (न) जैसा कि (तस्तभुः) स्थिर कर रहे हैं, आधार दे रहे हैं ।

उत्तम बैलोंका यह वर्णन है।

(११०) पशुओंको छोड देना ।

(वशा, उक्षा, ऋषभाः, मेषाः)

अरुणो वैतहव्य । अग्नि । जगती । (ऋ० १०।९१।१४)

यस्मिन्नश्वास ऋषभास उक्षणो वशा मेषा अवसृष्टास आहुताः ।
कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे हृदा मतिं जनये चारुमग्नये ॥ ८०५ ॥

(यस्मिन्) जिसमें घोडे, बैल, साँड, गौवें और मैंढे (आहुता) अर्पण करके (अवसृष्टासः) छोडे दिये जाते हैं उस (कीलालपे सोमपृष्ठाय वेधसे अग्नये) मधुर रसका पान करनेवाले सोमको पृष्ठपर धारण करनेवाले ज्ञानी अग्निके लिए (हृदा चारु मतिं जनये) अन्तःकरणपूर्वक सुन्दर स्तोत्र अपनी मतिके अनुसार करते हैं ।

यहां पशुओंका अग्निके लिये अर्पण करके छोड देनेका विधान मनन करनेयोग्य है। और अग्निका वर्णन (कीलाल-प) मधुर रसका पान करनेवाला, (सोम पृष्ठ) सोमका जिसपर हवन होता है ऐसा किया है। यज्ञके लिये घोडे और बैल भार ढोकर लानेके लिये, साँड गौके साथ संयुक्त कर उत्तम गोवंश निर्माण करनेके लिये, गावें दूध तथा घी यज्ञमें देनेके लिये, मैंढे सोमरसकी छाननी बनानेके लिये उपयोगी होते हैं। अतः ये यज्ञके लियेही समर्पित करके यज्ञभूमिमें छोडे अथवा रखे जाते हैं ।

इतने मन्त्रोंमें ' उक्षा ' पद बैलवाचक है। ये पशु यज्ञमें लाये जाते, अग्निको समर्पित होते हैं और पश्चात् यज्ञभूमिमें खुले रखे जाते हैं। ये आगे यज्ञकाही केवल कार्य करें यह इसका अर्थ है।

उक्षा= अग्नि, मेघ, इन्द्र, सूर्य और सर्वाधार देव ।

आगेके सात मन्त्रोंमें ' उक्षा ' पदके अर्थ अग्नि, मेघ, इन्द्र, सूर्य और सर्वाधार देव हैं। ये मन्त्र अब देखिये—

(१११) उक्षा = अग्नि ।

दीर्घतमा औचथ्य । अग्नि । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१४६।२)

उक्षा महाँ अभि ववक्ष एने अजरस्तस्थावितऊतिर्ऋष्वः ।
उर्व्याः पदो नि दधाति सानौ रिहन्त्यूधो अरुषासो अस्य ॥ ८०६ ॥

(महान् उक्षा) बडा सामर्थ्यवान् यह अग्नि (एने अभि ववक्ष) इन द्यावापृथिवीके बीचके सब वस्तुओंकी रक्षा करता है। (अजरः ऋष्वः) जरारहित पूजनीय और (इत-ऊतिः) सदा रक्षण करनेवाला यह अग्नि सर्वदा जागरूक (तस्थौ) रहता है (उर्व्याः सानौ पदः नि दधाति) पृथ्वीके ऊपर अपने पांव सुस्थिर रखता है और (अस्य अरुषासः ऊधः) इसके तेजस्वी किरण मेघमण्डलस्थ रसस्थानको (रिहन्ति) चाटने लगते हैं ।

यहां ' उक्षा ' ' अग्नि ' का विशेषण है। ' उक्षा ' का अर्थ यहां सामर्थ्यवान्, बलवान् है। वेदीपर यह प्रज्वलित होकर मानो, मेघोंको चाटने जाता है।

गाथिनो विश्वामित्र । अग्नि । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।७।६)

उतो पितृभ्यां प्रविदाऽनु घोषं महो महद्भ्यामनयन्त शूषम् ।
उक्षा ह यत्र परि धानमक्तोरनु स्वं धाम जरितुर्ववक्ष ॥ ८०७ ॥

(उत उ) और (महः महद्भ्यां पितृभ्यां) बडेसे बडे माता और पिताओंके पाससे (प्रविदा) ज्ञान प्राप्त करके वे (शूषं घोषं अनु अनयन्त) सुखदायी प्रार्थनाका घोष उसतक पहुंचाते रहे। (यत्र) यहां (उक्षा) सामर्थ्यवान् बडा अग्नि (अक्तोः परि धानं) रात्रीके अन्धकारको दूर करनेवाले (स्वं धाम) अपने तेजस्विताके स्थानको (जरितुः अनु ववक्ष) स्तोताके लिये बढाता रहा।

द्यावापृथिवीके बीचमें वेदीके स्थानपर अग्निको प्रदीप्त करके याजक लोग उसकी प्रार्थना करने लगे। और वह अग्नि भी यहां उनके कल्याणके लिये बढने लगा है।

यहां ' उक्षा ' का अर्थ अग्नि है।

(११२) उक्षा = जलसिंचनकर्ता मेघ ।

वामदेवो गौतमः । द्यावापृथिवी । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।५६।१)

मही द्यावापृथिवी इह ज्येष्ठे रुचा भवतां शुचयद्भिरर्कैः ।
यत् सीं वरिष्ठे बृहती विमिन्वन् रुवद्धोक्षा पप्रथानेभिरेवैः ॥ ८०८ ॥

(इह) यहां (मही ज्येष्ठे द्यावापृथिवी) बडे श्रेष्ठ द्युलोक और भूलोक ये दोनों (शुचयद्भिः अर्कैः रुचा भवतां) तेजस्वी किरणोंसे तेजस्वी बनें। (यत् सीं वरिष्ठे बृहती) क्योंकि इन सब प्रकारसे श्रेष्ठ और बडे दोनों लोकोंको (विमिन्वन्) सुव्यवस्थित करनेवाला यह (उक्षा) जलसिंचन करनेवाला पर्जन्यदेव (पप्रथानेभिः एवैः) अपने प्रसरणशील गतियोंसे गर्जनाका (रुवत्) शब्द करता है।

इस द्यावापृथिवीके बीचमें मेघोंमें रहनेवाला विद्युद्रूपी अग्नि मेघोंसे गर्जना करता है। यहाका ' उक्षा ' पद मेघवाचक है। विद्युत् अग्निका भी वाचक होगा। इन्द्रका भी वाचक है ऐसा कइयोंका मत है।

(११३) उक्षा = बलवान् इन्द्र ।

उशना काव्य । पवमानः सोम । त्रिष्टुप् । (ऋ० ९।८९।३)

सिंहं नसन्त मध्वो अयासं हरिमरुषं दिवो अस्य पतिम् ।
शूरो युत्सु प्रथमः पृच्छते गा अस्य चक्षसा परि पात्युक्षा ॥ ८०९ ॥

(सिंहं नसन्तः) सिंहके समान बलवान् सोमको उन्होंने प्राप्त किया, वह सोम (अस्य दिवः पतिं) इस द्युलोकका स्वामी (हरिं अरुषं) हरे रंगका पर चमकनेवाला (मध्वः अयासं) मधुर रसका झरना जैसा है। (युत्सु प्रथमः शूरः) युद्धोंमें प्रथम लडनेवाला वीर इन्द्र (गा पृच्छते) गौवें कहां है ऐसा पूछता है, क्योंकि वह उस सोमरसको दूधके साथ पीना चाहता है और वह (उक्षा अस्य चक्षसा) बलवान् वीर इस सोमके प्रभावसेही (परि पाति) हमारा सब प्रकार रक्षण करता है।

यहां सोमको ' दिवः पति ' (स्वर्गका पति) कहा है । क्योंकि यह उच्चसे ऊंचे पर्वतशिखरपर उगता है । इसका रंग हरा, परन्तु चमकीला होता है । यहांका ' उक्षा ' पद इन्द्रका विशेषण है और ' बलवान् ' ऐसा इसका अर्थ है ।

(११४) उक्षा = सूर्य ।

प्रतिरथ आत्रेयः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४७।३)

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ८१० ॥

(उक्षा) सामर्थ्यवान् (अरुषः समुद्रः) प्रकाशका समुद्र जैसा यह (सुपर्णः) सूर्य (पूर्वस्य पितुः योनिं) प्राचीन पितारूपी द्युलोकके स्थानमें (आ विवेश) प्रविष्ट हुआ है । यह (पृश्नि अश्मा) नाना रंगोंवाला गोलक सूर्य (दिवः निहितः) द्युलोकके मध्यमें रखा है । यह (वि चक्रमे) विक्रम करता हुआ (रजसः अन्तौ पाति) अन्तरिक्षलोकके दोनों अन्तों अर्थात् एक ओर भूलोककी और दूसरी ओर द्युलोककी रक्षा करता है ।

यहां ' उक्षा ' का अर्थ सूर्य है जो सबकी रक्षा करता है ।

पवित्र आङ्गिरस । पवमानः सोम । जगती । (ऋ० ९।८३।३)

अरूरुचदुषसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः ।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः ॥ ८११ ॥

(अग्रियः पृश्निः) प्रारंभमें आनेवाला तेजस्वी देव (उषस अरूरुचत्) उषाओंको प्रकाशित करता है, वह (उक्षा वाजयु) जलसिंचक अन्नदाता देव सब भुवनोंको (बिभर्ति) धारण करता है । (अस्य मायया) इसकी कुशलतासे (मायाविनः ममिरे) कुशल लोग,कार्य करने लगे और (नृचक्षसः पितरः) मानवोंका निरीक्षण करनेवाले पितर (गर्भ आ दधु.) गर्भका धारण करते रहे ।

यहां ' उक्षा ' का अर्थ जलका सिंचन करके अन्न उत्पन्न करनेवाला ' सूर्य ' है, ' मेघ ' भी होगा । सूर्य उगनेके पश्चात् कारीगर अपने कार्यमें लगते हैं ।

(११५) उक्षा = सर्वाधार देव ।

कवष ऐलूषः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।३१।८)

नैतावदेना परो अन्यदस्त्युक्षा स द्यावापृथिवी बिभर्ति ।
त्वचं पवित्रं कृणुत स्वधावान् यदीं सूर्यं न हरितो वहन्ति ॥ ८१२ ॥

(न एतावत्) इतनाही नही (अन्यत् परः अस्ति) परन्तु दूसरा एक श्रेष्ठ देव है । (सः उक्षा द्यावापृथिवी बिभर्ति) वह बलवान् देव द्युलोक और पृथिवीका धारण करता है । वह (स्वधावान्) अन्नका धारण करनेवाला देव (त्वच पवित्र कृणुत) त्वचा पवित्र करता है, चमडेको स्वच्छ करता है, (सूर्य न) सूर्यके समान (यत् ईं हरित वहन्ति) इसको घोडे खींचते हैं ।

यहां ' उक्षा ' पदका अर्थ द्यावापृथिवीको आधार देनेवाला देव है । आगेके मन्त्रमें ' वशा ' पद ' गौ ' अर्थमें अथवा ' कामना ' अर्थमें है ।

गाथिनो विश्वामित्र । ऋभव । जगती । (ऋ० ३।६०।४)

इन्द्रेण याथ सरथं सुते सचाँ अथो वशानां भवथा सह श्रिया ।
न वः प्रतिमै सुकृतानि वाघतः सौधन्वना ऋभवो वीर्याणि च ॥ ८१३ ॥

इन्द्रके साथ उसीके रथपर (सुते याथ) सोमयागमें जाओ, और उससे (वशानां श्रिया सह भवथ) गौओंकी शोभासे युक्त होओ, अथवा अपनी इच्छानुसार धनको प्राप्त करो । हे (वाघतः सौधन्वना ऋभवः) स्तोता सुधन्वाके पुत्र ऋभुदेवो ! तुम अपने सुकृतों और वीर्योंमें अप्रतिम हो । अर्थात् तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं है ।

यहांका ' वशा ' पद ' गो, कामना, तथा इच्छा ' का वाचक है ।

अस्तु । इस तरह ' उक्षा ' पदके अर्थ वेदमें अनेक हैं । उनका निर्णय सावधानीसे और पूर्वापर संबंध देखकर करना उचित है । वनस्पतिवाचक और पशुवाचक पद एकही होनेसे यह अर्थकी संकीर्णता और समस्या बढ जाती है । गौ और बैलके वधका निषेध वेदमें है और उनकी अवध्यतादर्शक ' अघ्न्या ' पद वेदमें अनेकवार गौ और बैलका वाचकही है । इसलिये जहां गोमांसके अर्थका दर्शक पद है ऐसा प्रतीत हो और अर्थके विषयमें संदेह हो, वहां गौ और बैलवाचकसे दीखनेवाले पदोंका अर्थ ओषधि वनस्पतिपरक करनेसे, तथा लुप्त-तद्धित-प्रक्रियाका आश्रय करनेसे संदेहका परिहार होगा और निःसंदेह अर्थ प्रकाशित हो जायगा ।

ऐसा करनेपर भी जहां संदेह रहेगा वहां पूर्वापर प्रकरण देखकर तथा अर्थ-निर्णायक चिन्ह मन्त्रमें देखकर अर्थ करना उचित है ।

(११६) ऋषभः=बैल ।

ब्रह्मा । ऋषभः । त्रिष्टुप्, ८ भुरिक्, ६, १०, २४ जगती, ११-१७, १९-२०, २३ अनुष्टुप्, १८ उपरिष्टाद्बृहती, २१ आस्तारपंक्ति । (अथर्व० ९।४।१-२४)

[१] साहस्रस्त्वेष ऋषभः पयस्वान् विश्वा रूपाणि वक्षणासु बिभ्रत् ।
भद्रं दात्रे यजमानाय शिक्षन् बार्हस्पत्य उस्रियस्तन्तुमातान् ॥ ८१४ ॥

(साहस्र०) सहस्रों प्रकारके कल्याण करनेवाला (एषः ऋषभः) यह बैल (पयस्वान्) दूधवाला है, यह (वक्षणासु) नदियोंमें (विश्वा रूपाणि बिभ्रत्) अनेक रूपोंको धारण करता है, आनन्दसे नदीके पुलिनमें नाचता हुआ अनेक रूप प्रकट करता है । यह (बार्हस्पत्यः उस्रियः) बृहस्पति-देवताके लिए प्रिय और सबके चाहनेयोग्य बैल (दात्रे यजमानाय भद्रं शिक्षन्) दाता यजमानके लिए कल्याण करनेकी इच्छासे (तन्तु आतान्) यज्ञके तन्तुको फैलाता है ।

बैलसे सहस्रों लाभ होते हैं । (पयस्वान्) अधिक दूध देनेवाली बछडी उत्पन्न करनेकी शक्ति इसमें है । बैलोंमें दो जातियां हैं । एक जातिके बैलसे दुधारू गौवें उत्पन्न होती हैं और दूसरी जातिके बैलसे खेतीके कार्यके उपयोगी बैल उत्पन्न होते हैं । यह सांड नदीके पुलिनोंमें आनन्दसे नाचता है और अनेक प्रकारके शरीरके भाव प्रकट करता है । यज्ञका फैलाव करनेके लिये यह बैल यजमानके लिये कल्याण प्रदान करता है । जिसको देखकर दूसरे लोग भी यज्ञ करनेकी इच्छा करते हैं । इस तरह यज्ञका फैलाव होता है ।

[२] अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ ८१५ ॥

(अग्रे) प्रारंभमें (यः अपां प्रतिमा बभूव) जो जलोंका प्रतिमारूप था और (देवी पृथिवी

इव) भूमाताके समान (सर्वस्मै प्रभूः) सबके हित करनेमें प्रभावी था । यह (वत्सानां पिता) बछडोंका पिता और (अघ्न्यानां पतिः) अवध्य गौओंका पति बैल (नः साहस्रे पोषे अपि कृणोतु) हमें हजारों प्रकारोंके पोषक साधनोंमें रखे ।

मेघको वृषभ कहते हैं । इसलिये बैलके लिये जल देनेवाले मेघोंकीही एक उत्तम उपमा योग्य होती है । इसीलिये मन्त्रमें कहा है कि, बैलके लिये (अपां प्रतिमा) मेघोंकी उपमा योग्य है । जैसा मेघ वृष्टिद्वारा अन्न उत्पन्न करता है वैसाही बैल बडे परिश्रमसे धान्य उत्पन्न करता है । इस तरह मेघ और बैल समानतया श्रेष्ठ है । पृथ्वीके समान-ही गौ और बैल अन्न देनेवाले हैं । यह बैल सब मानवोंके लिये सहस्रों प्रकारके पोषण करनेवाले पदार्थ देवे । पूर्वके मन्त्रसे बैलको (साहस्र) सहस्रों लाभ देनेवाला कहा और इस मन्त्रमें (साहस्रे पोषे न कृणोतु) कहा है कि ' हमें सहस्रों प्रकारोंके पोषणोंमें रखे अर्थात् हमें सहस्रों प्रकारके पोषक पदार्थ देकर हमारा पोषण करे । पहिले मन्त्र के ' साहस्र ' पदका स्पष्टीकरण दूसरे मन्त्रके (साहस्रे पोषे०) इस वाक्यने किया है ।

[३] पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति ।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः ॥ ८१६ ॥

(पुमान् अन्तर्वान्) पुरुष होकर भी गर्भ धारण करनेवाला, (स्थविरः पयस्वान्) वृद्ध होनेपर भी दूध देनेवाला (वृषभः) यह मेघरूपी बैल (वसोः कबन्धं बिभर्ति) जलमय शरीर धारण करता है । (तं इन्द्राय हुतं) उस इन्द्रके अर्थ हवन किये हुएको (जातवेदाः अग्नि) बने वस्तुमात्रमें विद्यमान अग्नि (देवयानैः पथिभिः) देवोंके जानेयोग्य मार्गोंसे (वहतु) ले जावे ।

गत मन्त्रसे वृषभकी प्रतिमा जलमय है (अपां प्रतिमा) ऐसा कहा, वही मेघका वर्णन बैलके रूपसे इस मंत्रमें किया है । मेघ बैलही है, परन्तु यह पुरुष होनेपर भी अपने अन्दर जलका गर्भ धारण करता है । यह वृद्ध होनेपर भी दूध अर्थात् जल देता है । गौ वृद्ध होनेपर दूध नहीं देती, पर यह वृद्ध होनेपर भी जल देता है । इसका शरीर (वसोः कबन्ध बिभर्ति) जलमय रहता है । द्वितीय मन्त्रमें (अपां प्रतिमा) जलोंकी प्रतिमा कहा है, वही बात यहां कही है । इस मेघको विद्युत् अग्नि दिव्यमार्गोंसे ले जावे और भूमिपर गिरा देवे । और जो उससे अन्न उत्पन्न हो जाय वह इन्द्रके यज्ञमें इन्द्रको देनेके अर्थ हवन किया जावे ।

[४] पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानामथो पिता महतां गर्गराणाम् ।
वत्सो जरायु प्रतिधुक् पीयूष आमिक्षा घृतं तद्व् अस्य रेतः ॥ ८१७ ॥

यह सुयोग्य बैल (वत्सानां पिता) बछडोंका पिता, (अघ्न्यानां पति) अवध्य गौओंका पति, (अथो महतां गर्गराणां पिता) और बडे जलप्रवाहोंका पालनकर्ता है । उससे पैदा हुआ (वत्सः) यह बछडा (जरायु) जेरीसे युक्त होकर (प्रतिधुक्) प्रत्येक दोहनमें (पीयूषः आमिक्षा घृतं) दूधरूपी अमृत, दही और घी विपुल प्रमाणमें देता है, क्योंकि (तत् उ अस्य रेतः) यह इसीके वीर्यका प्रभाव है ।

इस मंत्रमें बैल और मेघका वर्णन इकट्ठा किया है । यह बैल इन बछडोंका पिता और इन गौओंका पति है । (वत्सानां पिता, अघ्न्यानां पतिः) इस वर्णनसे गौओंके खानदानका निश्चय करना चाहिये, ऐसा सूचित किया है । इस गौके साथ इस बैलका संबंध होकर इसीके वीर्यसे इस बछडेकी उत्पत्ति हुई है । इस तरह वंश-शुद्धि की रक्षा करनेकी सूचना यहां मिलती है । इस तरह वंशशुद्धि तथा सुयोग्य बैलका संबंध सुयोग्य गौके साथ होनेसे (प्रतिधुक्) प्रतिवार दूध, घी आदीकी विपुलता होती रहती है । क्योंकि (तत् अस्य रेतः) यह सब सुयोग्य बैलके

वीर्यका प्रभावही रहता है। जैसा बैल वैसी सन्तान होती है। प्रति पुरुष गुणवृद्धि होती रहेगी। यह गोवंशके विषयमें कहा है। मेघरूपी बैल जलप्रवाहोंको उत्पन्न करता है यह मेघका वर्णन है।

[५] देवानां भाग उपनाह एषोऽपां रस ओषधीनां घृतस्य।
सोमस्य भक्षमवृणीत शक्रो बृहन्नद्रिरभवद्यच्छरीरम् ॥ ८१८ ॥

(देवानां भाग एष उपनाह) देवोंका भाग यह संचय है, जो यह (अपां ओषधीनां घृतस्य रस.) जलों, औषधियों और घीका रस है। (शक्र सोमस्य भक्ष अवृणीत) समर्थ इन्द्रने सोमरसको पसंद किया, (यत् शरीर बृहद् अद्रिः अभवत्) जो उसका अवशिष्ट शरीर था वह वहां बड़ा पत्थरसा बना पड़ा था।

सोमका रस देवोंके पेयका भाग है। सोमका रस मानो जल, औषधि और घीका सत्वही है। यह पेय इन्द्र सदा पसंद करता है। सोमका रस निकालनेपर जो उसका अवशिष्ट भाग रहता है, वह पत्थर जैसा शुष्क रहता है, जो पर्वत या पत्थरके समान फेंका जाता है।

[६] सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ८१९ ॥

(सोमेन पूर्ण कलशं बिभर्षि) सोमरससे भरपूर भरे कलशको तू धारण करता है। तू (रूपाणां त्वष्टा) नाना रूपोंको बनानेवाला और (पशूनां जनिता) पशुओंका उत्पन्नकर्ता है। (ते याः इमाः इह प्रजन्वः शिवा सन्तु) तेरी जो योनियां यहां हैं, अर्थात् तेरे साथ संबंध रखनेवाली जो गौवें हैं, वे हमारे लिए कल्याणकारिणी हों। हे (स्वधिते) शस्त्र ! (याः अमूः अस्मभ्यं नि यच्छ) जो गौवें दूर वहां हैं वे भी हमें प्राप्त हों।

यज्ञमें सोमरसके कलश भरे रखे जाते हैं। उत्तम सॉंड उत्तम गौओंसे संयुक्त बनकर उत्तम गोवंशका निर्माण करता है। इस सॉंडके साथ जो गौवें संयुक्त होती हैं वे सब अवश्यही सुधरती हैं, ऐसी सुधरी गौवें हमें प्राप्त हों और जो दूर प्रदेशमें हैं वे भी सुधरकर हमारे पास आ जायँ। शस्त्र इन सब गौओंकी रक्षा करे और शस्त्रसे सुरक्षित हुई गौवें हमारे पास विपुल संख्यासे रहें।

[७] आज्यं बिभर्ति घृतमस्य रेतः साहस्रः पोषस्तमु यज्ञमाहुः।
इन्द्रस्य रूपमृषभो वसानः सो अस्मान् देवाः शिव ऐतु दत्तः ॥ ८२० ॥

(आज्य बिभर्ति) यह सॉंड घृतका धारण करता है, (अस्य रेतः घृतं) इसका वीर्य घीही है, जो (साहस्रः पोष.) हजारोंका पोषक है, (तं यज्ञं आहु.) उसको यज्ञ कहते हैं। (वृषभ इन्द्रस्य रूप वसान.) यह बैल इन्द्रके रूपको धारण करता है, हे (देवा) देवो ! (सः दत्त शिव अस्मान् ऐतु) वह दान करनेपर कल्याणरूपसे हमारे पास आ जावे।

यह सॉंड जैसा दुधारू होता है, वैसाही घृतको भी धारण करता है। अर्थात् गौमें अधिक दूध और अधिक घृत उत्पन्न करना सॉंडकी श्रेष्ठतापर निर्भर है। क्योंकि सॉंडके बीजमेंही ये गुण रहते हैं। हजारों मानवोंका पोषण करनेवाला जो कर्म होता है, वही यज्ञ कहलाता है। यह यज्ञ यह बैलही करता है, क्योंकि यह बैल अन्न उत्पन्न करता है और दुधारू गौवोंका भी निर्माण करता है। यह बैल इन्द्रके समानही श्रेष्ठ है। उसका दान करनेसे वही सबका कल्याणरूप बनकर हमारे पास आता है अर्थात् यह दानमें दिया सॉंड हमारा कल्याण करता है।

उत्तमसे उत्तम साँड गावमें रखा जाय, जो उत्तम गोवंशका सुधार करनेके कार्य करता जाय। इससे सबका कल्याण होगा।

[८] इन्द्रस्यौजो वरुणस्य बाहू अश्विनोरंसौ मरुतामियं ककुत्।
बृहस्पतिं संभृतमेतमाहुर्ये धीरासः कवयो ये मनीषिणः ॥ ८२१ ॥

यह बैल (इन्द्रस्य ओजः) इन्द्रके सामर्थ्यसे युक्त है, (वरुणस्य बाहू) वरुणके बाहुओंकी शक्ति इसमें है, (अश्विनोः अंसौ) अश्विदेवोंके कन्धोंका बल इसमें है, (मरुतां इयं ककुत्) मरुतोंकी यह कोहान है। (ये मनीषिणः धीरासः कवयः) जो मननशील बुद्धिमान कवि हैं, वे (आहुः) कहते हैं कि, (एतं बृहस्पतिं संभृतं) यह साँड साक्षात् बृहस्पतिही इकट्ठा हुआ है।

ज्ञानी कहते हैं कि इस साँडमें इन्द्र, वरुण, अश्विदेव, मरुत् देव और बृहस्पतिकी शक्तियां इकट्ठी हुई हैं। अर्थात् इनके सामर्थ्य इसमें इकट्ठे हुए हैं।

[९] दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ८२२ ॥

(पयस्वान् दैवीः विशः आ तनोषि) अत्यंत दूध उत्पन्न करनेवाला होकर तू दिव्य प्रजाओंमें अपना विस्तार करता है। (त्वां इन्द्रं, त्वां सरस्वन्तं आहुः) तुझे इन्द्र और तुझे प्रवाहवाला कहते हैं। (यः ब्राह्मणः ऋषभं आ जुहोति) जो ब्राह्मण साँडका दान करता है, (सः) वह (एकमुखाः सहस्रं ददाति) एक जैसी मुखवाली हजारों गौओंका दान करता है।

साँडके वीर्य प्रभावसे विपुल दूध और विपुल घी देनेवाली गौवें निर्माण होती हैं, इसलिये ऐसी दुधारू गौवें निर्माण करनेद्वारा यह साँड, मानो, अपने आपकोही सब प्रजाजनोंमें फैलाता है। दूध और घीद्वारा सब प्रजाओंमें वह पहुंचता है। सब लोग इस कारण इस साँडको इन्द्र कहते हैं और दुग्धके प्रवाह जारी करनेवाला बोलते हैं। जो ब्राह्मण ऐसे साँडका दान करता है, अर्थात् ऐसे साँडको ग्रामके उपयोगके लिये दान देता है, वह मानो, हजारों गौओंका प्रदान करता है, क्योंकि इसके वीर्यसे हजारों उत्तम उत्तम गौओंकी उत्पत्ति होती है, जो प्रजाजनोंकी पुष्टि करती हैं। इस तरह साँडका प्रदान सब लोगोंके लिये हितकारी है।

[१०] बृहस्पतिः सविता ते वयो दधौ त्वष्टुर्वायोः पर्यात्मा त आभृतः।
अन्तरिक्षे मनसा त्वा जुहोमि बर्हिष्टे द्यावापृथिवी उभे स्ताम् ॥ ८२३ ॥

(बृहस्पतिः सविता ते वयः दधौ) बृहस्पति और सूर्य तेरे लिये सामर्थ्य देंगे, (त्वष्टुः वायोः ते आत्मा परि आभृतः) त्वष्टा वायुसे तेरा आत्मा सब प्रकारसे भरा है। (त्वां मनसा अन्तरिक्षे जुहोमि) तुझे मैं मनसे इस अवकाशमें अर्पण करता हूं। अब (उभे द्यावापृथिवी ते बर्हिः स्तां) दोनों द्युलोक और भूलोकही तेरे लिए घांसके समान हों।

साँडका प्रदान करनेके समय दानकर्ता इस तरह बोलें— "हे साँड! अब आगे सूर्य तेरे अन्दर सामर्थ्यका धारण करे और वायु तेरे प्राणकी पुष्टि करे। यह भूमि और वह आकाश तेरे लिये घास और जल देवे, जिससे तू पुष्ट होकर जीवित रह। अब मैं तुझे इस अवकाशमें छोड देता हूं।"

भूमि साँडको घास देती है और आकाश मेघवृष्टिद्वारा जल देता है। दाताके कथनका तात्पर्य यह है कि मैंने तेरा पालन इस समयतक किया, अब मैं तुझे छोड देता हूं। अब तेरा पालन द्यावापृथिवी करें। यहां (मनसा जुहोमि)

मनसे समर्पण कहा है, इसलिये यहां हवनका आशय ' जुहोमि ' पदसे नहीं लिया जा सकता, क्योंकि यहां मनसे केवल समर्पणही है ।

[११] य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत् ।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ८२४ ॥

(इन्द्रः देवेषु इव) इन्द्र जैसा देवोंमें वैसाही (यः गोषु विवावदत् एति) जो गौओंमें शब्द करता हुआ जाता है । (तस्य ऋषभस्य अंगानि) उस बैलके अंगोंकी (ब्रह्मा भद्रया सं स्तौतु) ब्रह्मा उत्तम वाणीसे स्तुति करे, प्रशंसा करे ।

उक्त प्रकार छोडा हुआ साँड इधर उधर ग्राममें विचरता रहे । वह स्वतन्त्रतापूर्वक गौओंमें विचरता रहे । उसके लिये कोई प्रतिबंध नहीं होगा । वह सब प्रकार पुष्ट होनेके कारण उसके सब अंग प्रशंसाके लिये योग्य होंगे । यह बैल उस स्थानके गौओंमें बीजका प्रक्षेप करता रहेगा और उसके द्वारा वहांके गौओंकी वंशशुद्धि होती रहेगी ।

[१२] पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ ८२५ ॥

(अनुमत्या पार्श्वे अस्तां) अनुमतिके दोनों पार्श्वभाग होंगे, (भगस्य अनूवृजौ आस्तां) भग देवके पसलियोंके दोनों भाग होंगे, (मित्र अब्रवीत्) मित्रने कहा है कि (मम केवलौ एतौ अष्ठीवन्तौ इति) मेरेही केवल ये अस्थिके बने घुटने होंगे ।

[१३] भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः ।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ ८२६ ॥

(आदित्यानां भसद् आसीत्) आदित्योंका यह प्रजनन भाग होगा, (बृहस्पते श्रोणी आस्तां) बृहस्पतिका कटिभाग होगा, (पुच्छ वातस्य देवस्य) पुच्छ वायुदेवका होगा (तेन ओषधीः धूनोति) जिससे वह औषधियोंको हिलाता रहता है ।

[१४] गुदा आसन्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन् ।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ ८२७ ॥

(सिनीवाल्या गुदा आसन्) सिनीवालीकी गुदाएं थीं, (सूर्याया त्वच अब्रुवन्) सूर्य प्रभाकी त्वचा है ऐसा कहते हैं । (यत् ऋषभं अकल्पयन्) जब बैलकी कल्पना की गयी उस समय (पद उत्थातुः अब्रुवन्) पांव उत्थाताके हैं ऐसा कहा गया था ।

यहां कहा है कि (यत् ऋषभं अकल्पयन्) जब बैलकी कल्पना की गयी थी, तब ये अवयव इन देवताओंके हैं, ऐसी कल्पना की गयी थी । बैलकी रचना करनेवालेनेही इस तरह कल्पना निर्धारित की थी इन अंगोंका आधिपत्य इन देवताओंके आधीन रहे । इसी तरह आगे भी अनुसंधान करना योग्य है ।

[१५] क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः ।
देवाः संगत्य यत् सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ ८२८ ॥

(जामिशंसस्य क्रोडः आसीत्) जामिशंसका गोदका अर्थात् स्तनोंका भाग है, जैसा कि

(सोमस्य कलशः धृत) सोमका कलशही धरा रखा है। (सर्वे देवाः संगत्य) सब देवोंने मिलकर (यत् ऋषभं व्यकल्पयन्) जब बैलकी कल्पना की थी, तब ऐसीही धारणा की थी।

[१६] ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन्॥ ८२९॥

(ते कुष्ठिकाः सरमायै) वे कुष्ठिकाएँ सरमाके लिए, (शफान् कूर्मेभ्यः अदधुः) खुरोंको कछुओंके लिए दिया है, (अस्य ऊबध्य कीटेभ्यः) इसके पेटके अपचित अन्नका भाग कीडोंके लिए है, जो कीडे (श्ववर्तेभ्यः) कुत्तेके समान मांसपर रहते है।

[१७] शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः॥ ८३०॥

(यः गवां अघ्न्यः पतिः) जो गौओंका अवध्य पति बैल है, वह (कर्णाभ्यां भद्रं शृणोति) कानोंसे कल्याणमय शब्द सुनता है, (शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषति) सींगोंसे राक्षसों-रोगकृमियोंका नाश करता है और (चक्षुषा अवर्तिं हन्ति) आंखोंसे आपत्तिका नाश करता है।

यहां बैलको (अघ्न्य.) ' अवध्य ' कहा है। इस सूक्तमें बैलको अवध्य कहनेके कारण इसी सूक्तमें उसके वधकी आज्ञा मानना असंभव है। अत जो लोग पूर्व मन्त्र १२ से १६ तकके पाच मन्त्रोंमें बैलको काटकर उसके अवयवोंका दान विभिन्न देवताओंको करनेका भाव देखते हैं, वे इस मंत्रके ' अघ्न्यः ' (अवध्य) पदको देखें। इस पदने बैलको ' अवध्य ' कहा है, अत बैलकी अवध्यता सुस्थिर रखते हुएही उक्त अवयवोंका संबंध उक्त देवताओंसे है, ऐसा मानना उचित है।

[१८] शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति॥ ८३१॥

(यः ब्राह्मणः ऋषभं आजुहोति) जो ब्राह्मण इस तरह बैलका समर्पण करता है, (सः शतयाजं यजते) और इस तरह वह सैकडों यज्ञ करता रहता है (तं विश्वे देवाः जिन्वन्ति) उसको सब देवताएँ प्रसन्न रखती हैं और (एनं अग्नयः न दुन्वन्ति) इसको अग्नि दुःख नहीं देते।

जो इस तरह साँडका उत्सर्ग करता है, वह उत्तम गौएं उत्पन्न करनेमें सहायता करनेके कारण सैकडों यज्ञ करता है, अतः सब देव उसके सहायक बनते हैं। इस साँडके वीर्यसे उत्तम गौवें निर्माण होती हैं, उन गौओंके दूध तथा घीसे अनेक यज्ञ होते हैं, उन यज्ञोंमें सब देव तृप्त होते है। इस तरह एक साँडका उत्सर्ग करना सैकडों यज्ञ करनेके समान है।

[१९] ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते॥ ८३२॥

जो (ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा) ब्राह्मणोंको साँडका प्रदान करता है, वह उससे (मनः वरीयः कृणुते) अपने मनको श्रेष्ठ बनाता है। तथा वह (स्वे गोष्ठे) अपनी गोशालामें (अघ्न्यानां पुष्टिं अव पश्यते) अवध्य गौओंकी पुष्टि हुई है ऐसा देखता है।

ब्राह्मणोंको बैलका प्रदान हुआ तो वे ब्राह्मण उसको साँड बनाते और गौओंके लिये छोड देते है। इस दानसे दाताका मन श्रेष्ठ बनता है और गौओंकी भी वंशवृद्धि होती है।

[२०] गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम् ।
तत् सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ ८३३ ॥

हमारे पास (गावः सन्तु) गौवें हों (प्रजाः सन्तु) संतानें हों (अथो तनूबलं अस्तु) और शरीरमें बल हो। (देवाः) सब देव (ऋषभ-दायिने) बैलका दान करनेवालेके लिए (तत् सर्वं अनु मन्यन्तां) वह सब अनुकूलताके साथ प्रदान करें।

अर्थात् बैलका दान करनेवालोंके लिये देवोंकी कृपासे विपुल गौवें, पर्याप्त संतानें और शारीरिक बल मिलेगा।

[२१] अयं पिपान इन्द्र इद्रयिं दधातु चेतनीम् ।
अयं धेनुं सुदुघां नित्यवत्सां वशं दुहां विपश्चितं परो दिवः ॥ ८३४ ॥

(अयं पिपानः इन्द्रः इत्) यह पुष्ट साँड इन्द्रही है। यह दाताको (चेतनी रयिं दधातु) चेतना देनेवाला धन देवे। (अयं) यह साँड (सुदुघां नित्यवत्सां धेनुं) उत्तम दुहनेयोग्य, सदा बछडेवाली गौको (वशं विपश्चितं) वशी ज्ञानी ब्राह्मणको (दिवः परः दुहां) द्युलोकसे देवे।

साँड पुष्ट होनेपर बडा सामर्थ्यवाला बनता है, वह दाताको धन देता और उत्तम दुधारू गौ भी देता है।

[२२] पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत् प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ ८३५ ॥

यह (पिशङ्गरूपः नभस वयोधाः) पीला बैल आकाशसे अन्न लानेवाला (ऐन्द्र शुष्मः) इन्द्रके बलसे युक्त (विश्वरूपः नः आगन्) अनेक रंगरूपवाला हमारे पास आ गया है। यह (असमभ्य) हमें (आयुः प्रजां च रायश्च पोषैः) दीर्घ आयुष्य, उत्तम संतान, धन और पुष्टि (नः अभि सचतां) देवे।

[२३] उपेहोपपर्चनास्मिन् गोष्ठ उप पृञ्च नः ।
उप ऋषभस्य यद् रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ ८३६ ॥

हे (इह उपपर्चन) यहां गौओंके समीप रहनेवाले साँड ! (अस्मिन् गोष्ठे नः उप उप पृञ्च) इस गोशालामें हमारी गौओंके समीप प्राप्त हो। हे इन्द्र ! (यत् ऋषभस्य रेतः) जो साँडका रेत है, वह (तव वीर्य) तेराही वीर्य है।

इस मन्त्रमें कहा है कि, वैसा पुष्ट साँड गोशालामें आवे, गौओंको गर्भवती करे। इस वृषभका वीर्य प्रत्यक्ष इन्द्रकाही वीर्य है। यदि उस साँडने यह कार्य करना है, तब तो निःसंदेहही उसका वध करना अयोग्यही है।

[२४] एतं वो युवानं प्रति दध्मो अत्र तेन क्रीडन्तीश्चरत वशाँ अनु ।
मा नो हासिष्ट जनुषा सुभागा रायश्च पोषैरभि नः सचध्वम् ॥ ८३७ ॥

(एतं युवानं) इस तरुण साँडको हम (वः प्रति दध्मः) तुम गौओंमेंसे प्रत्येकके प्रति धारण करते हैं। (अत्र) यहां (वशान् अनु) अपनी इच्छाके अनुसार (तेन क्रीडन्तीः चरत) उस साँडके साथ खेलती कूदती हुई विचरती रहो। हे (सुभागाः) उत्तम भाग्यवाली गौओ ! (जनुषा नः मा हासिष्ट) संतानकी उत्पत्तिसे हमें न त्यागो, अर्थात् संतान उत्पन्न न हो ऐसा कभी न होवे। (रायः च पोषैः नः सचध्वम्) धन और पुष्टिसे हमें सदा युक्त करो।

इस मन्त्रमें कहा है कि वह सांड गौओंमें विचरे, गौवें उसके साथ खेलती रहें, प्रत्येक गौ उससे गर्भ धारण करे और ऐसा कभी न हो कि किसी गौसें गर्भ धारण न हुआ हो। इस तरह उत्तम गौका वंश सुधरकर हमे धन और पोषण प्राप्त होता रहे।

(११७) बैल अवध्य है।

निम्नलिखित मन्त्रभाग इस सूक्तमें है जो बैलकी अवध्यता सिद्ध कर रहा है—

१ गवां यः पतिः, अघ्न्यः। (मं० १७)= गौओंका पति बैल अवध्य है।

यहां 'अघ्न्यः' पद बैलकी अवध्यता सिद्ध करता है। यह पद वेदमें कई वार आया है और वह सर्वत्र बैल-वाचक है, अतः बैल नित्य अवध्य है, यह बात सिद्ध है। इस बैलमें दैवी सामर्थ्य रहता है, ऐसा इस सूक्तके निम्नलिखित मन्त्रभागोंमें कहा है—

(११८) इन्द्र जैसा बैल, देवोंका सामर्थ्य।

१ ऋषभ इन्द्रस्य रूपं वसानः। (मं० ७)= यह बैल इन्द्रका रूप धारण करता है।

२ इस बैलमें इन्द्रका पराक्रम, वरुणकी शक्ति, अश्विनी-देवोंका सामर्थ्य, मरुतोंकी सहनशक्ति और बृहस्पतिका ज्ञान भरा है। (मं० ८)

३ त्वां इन्द्रं, त्वां सरस्वन्तं आहुः। (मं० ९)= बैलको इन्द्र और समुद्र या मेघ कहते हैं।

४ बृहस्पति और सविता बैलमें सामर्थ्य रखते हैं, वायु प्राणको रखता है। (मं० १०)

५ अयं पिपान इन्द्र। (मं० २१)= यह पुष्ट बैल इन्द्र जैसाही है।

इस तरह यह सांड दैवी सामर्थ्योंसे युक्त है। इसके अंग-प्रत्यङ्गोंमें देवताओंके सामर्थ्य विराजते हैं, इसी कारण यह अवध्य है और प्रशंसाके भी योग्य है—

(११९) प्रशंसायोग्य बैल।

१ ब्रह्मा ऋषभस्य अङ्गानि भद्रया सं स्तौतु। (मं० ११)= ब्रह्मा बैलके अवयवोंकी स्तुति अपनी शुभ वाणीसे करे।

हृष्टपुष्ट सांडका प्रत्येक अवयव वर्णन करनेयोग्य रहता है। इस तरह जो बैल सर्वांग सुंदर रहता है, वही गौओंमे वीर्यक्षेप करके गौओंकी संतति बढावे। हरएक बैलसे यह कार्य सुचारुरूपसे नहीं होगा। अतः उस बैलके कुछ लक्षण निम्नलिखित मन्त्रभागोंमें कहे हैं—

(१२०) दुधारू गौको उत्पन्न करनेवाला बैल।

१ पयस्वान्। (मंत्र १, ३)= दूधवाला, अर्थात् गौओंकी संतानमें विपुल दूध उत्पन्न करनेका सामर्थ्य जिसके वीर्यमें रहता है, ऐसा बैल।

२ अस्य तत् रेतः पीयूष आमिक्षा घृतं प्रतिधुक्। (मं० ४)= इस बैलका वह रेत अर्थात् वीर्य प्रत्येक दोहनमें अमृत जैसा दूध, दही और घी विपुल प्रमाणमें देता है।

३ अस्य रेतः घृतं आज्यं बिभर्ति। (मं० ७) = इस सांडका रेत विपुल प्रमाणमें तेजस्वी घीका धारण करता है।

४ अयं सुदुघां नित्यवत्सां धेनुं दुहां। (मं० २१)= यह बैल उत्तम दुहनेयोग्य नित्य बछडे देनेवाली गौको देवे।

५ ऋषभस्य यत् रेतः तत् हे इन्द्र ! तव वीर्यं । (मं० २३) = बैलका जो वीर्य है वह प्रत्यक्ष इन्द्रकाही वीर्य है ।

६ अस्मिन् गोष्ठे नः उप पृञ्च, इह उपपर्चन । (मं० २३) = इस गोशालामें यह साँड आवे और गौओंके समीप जावे (उनमें गर्भाधान करे) ।

दुधारू गौकी उत्पत्ति करना साँडके वीर्यके प्रभावसे होता है । अतः गौके पास ऐसाही साँड पहुंचना चाहिये कि जिसके वीर्यमें दुधारू गौ निर्माण करनेका सामर्थ्य हो । अधिक दूध देना और दूधमें अधिक घृत रहना ये गुण साँडके वीर्यसे निर्माण होते हैं । इस कारण ऐसा साँड निर्माण करना और उसी साँडसे गौओंका संबंध जोडना गोवंशकी शुद्धि और वृद्धिके लिये अत्यंत आवश्यक है । ऊपरके मन्त्रभागोंमें इस विषयकी सूचनाएं पर्याप्त हैं ।

इस तरहका साँड पहिले तैयार करना, उसको पुष्ट करना, उसका प्रत्येक अवयव हृष्टपुष्ट तथा नीरोग करना और ग्रामकी गौओंसे इसीका संबंध कराना गोवंश शुद्धिके लिये अत्यन्त आवश्यक है ।

यही विपुल दूध देनेवाली गौवें निर्माण करता है । इस दूधका महत्त्व क्या है यह अब देखिये—

(१२१) दूधका महत्त्व ।

दूधका महत्त्व बतानेवाले पद इस सूक्तमें ये हैं—

१ देवानां भाग, उपनाह एषः, अपां ओषधीनां घृतस्य रसः । (मं० ५) = यह दूध देवोंका भाग है, यह एक खजानाही है (जो दुग्धाशय है ।) यह दूध जल औषधि और घीका रसही है ।

दूध और दूधसे निर्माण हुआ घृत यज्ञमें प्रयुक्त किया जाता है । इसलिये यह देवोंका भाग है जो अवश्यही देवोंको देना चाहिये । यह दूध औषधियोंका रस है, तथा जल भी उसमें रहता है । अतः गौवें क्या खाती हैं और क्या पीती हैं इसका अवश्यही निरीक्षण करना चाहिये । अच्छा घास और शुद्ध जल गौओंको मिलना चाहिये तथा घृत बढानेवाले पदार्थ उनको खानेको देने चाहिये । तब दूध अमृत जैसा मिलेगा जो सब प्रकारसे मानवोंका हित करेगा । ऐसे उत्तम दूधसे मनुष्योंका उत्तम पोषण होगा, इस विषयमें निम्नलिखित मन्त्रभाग देखनेयोग्य है—

(१२२) पोषण करनेवाला बैल है ।

१ अघ्न्यानां पतिः नः साहस्रे पोषे कृणोतु । (मं० २)= अवध्य गौओंका पति बैल हमें सहस्रों प्रकारके पोषक पदार्थोंमें रखे अर्थात् अनेक प्रकारका धान्य खेतीसे निर्माण करके देवे ।

२ साहस्रः पोषः, तं यज्ञ आहुः । (मं० ७)= यह साँड हजारोंका पोषण करता है, इसलिये इसीको यज्ञ कहते हैं ।

३ शृङ्गाभ्यां रक्षः ऋषति, चक्षुषा अरातिं हन्ति । (मं० १७)= सींगोंसे राक्षसों और आंखसे अकालका नाश यह बैल करता है ।

४ यह पीले लाल रंगवाला बैल हमें धन, प्रजाएं और पोषणके लिये अन्नादि देवे । (मं० २२)

५ रायश्च पोषैः अभि नः सचध्वम् । (मं० २४)= धन और पोषणके सामर्थ्य हमें यह देवे ।

बैलसे दुधारू गौवें निर्माण होती हैं जो अपने अमृत जैसे दूधसे मानवोंका पोषण करती हैं । तथा स्वयं बैल खेती करके अन्न उत्पन्न करता है जो अन्न मनुष्योंका पोषण करता है । इस तरह बैल अन्न और दूध देकर मनुष्योंका पालनपोषण करता है और बैलसे यही धन मनुष्योंको मिलता है । यह सब बैलकाही कार्य है ।

(१२३) अनेक गौओंके लिये एक साँड।

१ अघ्न्यानां पति , वत्सानां पिता। (मं० २, ४)= अनेक अवध्य गौओंका पति एकही साँड है, वह अनेक बछडोंका पिता है।

२ पुमान् (मं० ३)= पुरुषत्वसे, वीर्यसे युक्त।

३ पशूनां जनिता, रूपाणां त्वष्टा। (मं० ६)= उत्तम गौ आदि पशुओंका उत्पन्न करनेवाला और अनेक रूपवाले बछडोंका यह निर्माण करनेवाला है।

४ यः, देवेषु इन्द्रः इव, गोषु विचावदत् एति। (मं० ११)= जो बैल, देवोंमें जैसा इन्द्र जाता है, वैसा गौओंमें सचार करता है।

५ एत युवान यः प्रति दध्मः, तेन क्रीडन्ती चरथ वशान् अनु। (मं० २४)= इस तरुण बैलको प्रत्येक गायके साथ हम धर देते हैं। वे गौवें इसके साथ खेलती कूदती हुई अपनी इच्छासे विचरती रहें।

एकही उत्तम साँड अनेक गौओंके साथ संयुक्त होना योग्य है। उत्तम बैलसे गौका वंश सुधरता है। हरएक किसान ऐसे बैलको अपने पास रख नही सकता। यह सार्वजनिक हितका कार्य है अतः इसके लिये उत्तम बैलका प्रदान करना योग्य है।

(१२४) बैलका दान करनेसे कल्याण।

१ सः दत्तः अस्मान् शिवः एतु। (मं० ७)= वह साँड दान देनेपर हमारे पास कल्याणरूप होकर आ जावे।

२ ब्राह्मणेभ्यः ऋषभं दत्त्वा मनः वरीयः कृणुते। स्वे गोष्ठे अघ्न्यानां पुष्टिं अव पश्यते। (मं० १९)= *जो ब्राह्मणोंको बैलका दान करता है वह अपना मन श्रेष्ठ बनाता है तथा वह अपनी गोशालामें अवध्य गौओंका* पोषण हुआ है ऐसा प्रत्यक्ष दीखता है।

३ ऋषभदायिने देवाः तत् सर्वं अनु मन्यन्तां (मं० २०)= *बैलका दान करनेवालेके लिये (गौवें, सन्तानें* और शारीरिक बल) यह सब देवोंकी अनुकूलतासे मिले।

ऐसा उत्तम बैल, पहिले सब तरह परिपुष्ट करके, इस कार्यके लियेही छोड देना चाहिये। इस साँडको कोई भय न बतावे, यह गौओंमें इच्छासे विचरे, गौवें इससे खेलें, कूदें। इस बैलके प्रदानसेही गोशालाकी गौवें पुष्ट होतीं, दुधारू और घृतारू बनती हैं। इस कार्यके लिये जो बैल दे देता है, उसको सब देव हरप्रकारकी सहायता करते हैं। सब लोगोंका इस तरहके बैलके दानसे कल्याण होता है। इस बैलका दान करना है। तथापि इस सूक्तमें इस बैलके हवनका अर्थ बतानेवाले पद हैं उनका भाव देखिये—

(१२५) बैलका हवन।

इस सूक्तमें बैलका हवन दर्शानेवाले ये पद और वाक्य हैं—

१ तं हुतं अग्निः वहतु। (मं० ३)= उस बैलका दान (हवन) करनेपर अग्नि उसको उठाकर ले जावे।

२ यः ब्राह्मण ऋषभं आजुहोति, सः एकमुखाः सहस्रं ददाति। (मं० ९)=जो ब्राह्मण इस बैलका दान (हवन) करता है वह एक मुखवाली सहस्रों गौओंका दान करता है।

३ अन्तरिक्षे मनसा जुहोमि, द्यावा-पृथिवी ते बर्हिः स्ताम्। (मं० १०)= तेरा अन्तरिक्षमें मनसे दान (हवन) करता हूं, द्यु और पृथ्वी तेरे लिये घास बनें।

४ य ब्राह्मण· ऋषभं आजुहोति, त विश्वे देवा· जिन्वन्ति, स शतयाजं यजते, एनं अग्नय· न दुन्वन्ति। (मं० १८) = जो ब्राह्मण बैलका दान (हवन) करता है, उसे सब देव सतुष्ट करते हैं। वह सैकडों यज्ञ करनेका कार्य करता है। इसे अग्नि कष्ट नही देते।

इन मंत्रोंमे ' हुत, जुहोति, आजुहोति ' ये पद हैं, इस ' हु ' धातुका प्रसिद्ध अर्थ ' हवन करना ' है, परन्तु यह इस सूक्तमें प्रसंगानुकूल नहीं है। अत इसका धात्वर्थ देखना चाहिये।

' हु=दान-आदानयो· प्रीणने च ' ये इसके धात्वर्थ है। अर्थात् ' दान देना, दान लेना, स्वीकार करना, सतुष्ट होना, ' ये इसके मूल धात्वर्थ हैं। अर्थात् ' ऋषभ आजुहोति ' का अर्थ यह है कि ' बैलका दान करना, बैलका दान लेना, बैल गौओंके लिये देना ' यही अर्थ इस सूक्तमे पूर्वापर आशय देखनेसे सुसगत हो सकता है। काटकर बैलके मांसका हवन करनेका भाव यहा सुसगत नहीं है। क्योंकि जो बैल दुधारू गौओंका उत्पन्न करनेवाला, उत्तम बैलका निर्माण करनेवाला, सबका पालनपोषण करनेका हेतु है, जिसकी नियुक्ति हरएक गौके साथ करके गोवशका सुधार करना है, अत जो अवध्य है ऐसा कहा गया, जिसमे दैवी शक्तियां है ऐसा कहा गया, उसीको काटकर हवन करनेकी सभावनाही कैसी मानी जा सकती है? और वह काटा जानेपर वह (अ-घ्न्यः) अवध्य कैसा हुआ? और यदि वह अवध्य है तब तो वह काटा भी कैसा जा सकता है? तात्पर्य इस बैलकी (अघ्न्य·) अवध्यता मुख्य है, यह अवध्यता सिद्ध होनेयोग्यही ' हु ' (जुहोति) धातुका अर्थ यहा लेना उचित है।

' हु ' धातुका पाणिनी मुनिने जो अर्थ दिया है वह ' दान और स्वीकार ' इतनाही है। हवन अर्थ गौणवृत्तिसे उस धातुपर लगाया है और वह पीछेका कार्य है। अत यहा इस धातुका मूल अर्थही लेनायोग्य है।

दूसरी बात यह है कि ' मनसा जुहोमि ' यहा मनसे हवन करनेकी बात कही है। मनसे हवन कैसा होगा? अग्निमे यदि बैलका हवन करना होगा तो वह मनसे नही होगा, वह तो हाथसे मास खडोंकाही होना संभव है। परतु बैल (अघ्न्य·) अवध्य होनेसे वैसा हवन असभव है। अत कहा है कि वह हवन अर्थात् बैलका दान मैं विचारपूर्वक (मनसा) करता हू। अविचारसे नही। द्यावा, पृथ्वी इस बैलके लिये घास और पानी देवे। पृथ्वी घास और द्युलोक वृष्टिद्वारा पानी देता है, जिससे यह बैल पुष्ट होता है। बैल इस तरह छोडा जानेपर वह यथेच्छ घास खाकर पानी पीकर पुष्ट होवे। ब्राह्मणही इस बैलका इस तरह दान करता है। अन्य लोग ब्राह्मणको इस बैलका दान करें, ब्राह्मण उसकी योग्य पालना करे, और सब प्रकारसे सुयोग्य होनेपर ब्राह्मणही विचारपूर्वक इस सॉडका प्रदान करे। यही बैल गौके वशकी शुद्धि और वृद्धि करता रहे। (मं० १०)

अर्थात् यहा बैलके हननका संबंधही नहीं है।

इस सूक्तके मन्त्र १२ से १६ तकके मन्त्रोंमें कई देवताओंका संबंध सॉडके कई अवयवोंके साथ बताया है। यहां केवल देवताओंका प्रभाव उन अवयवोंपर रहता है इतनाही बतानेका उद्देश्य है। जिस तरह हमारी आखपर सूर्यका प्रभाव है, प्राणपर वायुका है वैसाही सॉडके अवयवोंपर इन देवताओंका प्रभाव है ऐसा जानना उचित है।

देवता	बैलका भाग
अनुमति	पार्श्वभाग
भग	पसलियोंके भाग
मित्र	घुटने
आदित्य	प्रजनन-भाग
बृहस्पति	कटि, जांघे
वायु	

सिनीवाली	गुदा
सूर्यप्रभा, उषा	त्वचा
उत्थाता	पाव
जामिशंस	गोद्, रतन
सरमा	कुक्षिका
कूर्म	खुर
कृमि	पेट

पेटमें कृमि रहते हैं, इस तरह इनका संबंध देखना चाहिये। यहा कृमियोंके उद्देश्यसे पेटका हवन निःसन्देह नहीं है।

अस्तु। यहा पूर्वापर संबंध देखनेसे इनके उद्देश्यसे हवन तो निःसंदेह नहीं है, क्योंकि कृमि देवताके लिये किसी जगह हवन लिखा नहीं है। इनमेंसे प्रत्येकका स्पष्टीकरण करना यह कठिन कार्य होगा, परन्तु यहा बैलको काटकर उसके मांसका हवन नहीं लिखा है इतनी बात तो निःसंदेह सत्य है।

बैलको परिपुष्ट करना और ऐसे उत्तमोत्तम बैलका गोवंशके उद्धारके लिये दान करनाही इस सूक्तमें अभिष्ट है, क्योंकि बैल (अघ्न्य) अवध्य है यह इस सूक्तने प्रथमही माना है, अतः उसको अवध्य मानकरही सम्पूर्ण सूक्तका अर्थ देखनायोग्य है।

(१२६) अनड्वान् = बैल।

भृग्वङ्गिरा.। अनड्वान्, इन्द्रः। त्रिष्टुप्, १, ४ जगती, २ भुरिक्, ७ व्यवसाना षट्पदानुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जागतानिचृच्छक्वरी, ८-१२ अनुष्टुप्। (अथर्व० ४।११।१-१२)

[१] अनड्वान्दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान्दाधारोर्व१न्तरिक्षम्।
अनड्वान्दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान्विश्वं भुवनमा विवेश ॥ ८३८॥

(अनड्वान् पृथिवी उत द्यां दाधार) बैलने पृथ्वी और द्युलोकका धारण किया है, (अनड्वान् उरु अन्तरिक्षं दाधार) बैलने इस बडे अन्तरिक्षका भी धारण किया है। (अनड्वान् उर्वीः षट् प्रदिशः दाधार) बैलने ये बडे छः दिशा उपदिशाएं धारण की हैं और यह (अनड्वान् विश्वं भुवनं आ विवेश) यह बैल संपूर्ण भुवनमें प्रविष्ट हुआ है।

(अनस्-वह=अनड्वान्) गाडीको खींचनेवाला बैल। यहाका बैल इन्द्र है, विश्वका प्रभु है। वह इस विश्व शकटको चलाता है। अगलेही मंत्रमें 'यह बैल इन्द्र है' ऐसा कहा है। यह भूमि, अन्तरिक्ष और द्युलोकको धारण करता है और चार मुख्य दिशायें तथा ऊर्ध्व तथा अध ये दो दिशाएं, इनका भी धारण यही करता है। यह सब विश्वमें व्यापक भी है। इस बैलके विषयमें अगलाही मंत्र कहाता है—

[२] अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयांछक्रो वि मिमीते अध्वनः।
भूतं भविष्यद्भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥ ८३९॥

(अनड्वान् इन्द्रः) यह बैल इन्द्र है अर्थात् इस विश्वका प्रभु है। (सः पशुभ्यः वि चष्टे) वह सब पशुओंका निरीक्षण करता है, सब प्राणियोंको देखता है। (शक्रः त्रयान् अध्वनः वि मिमीते) यह समर्थ प्रभु तीनों मार्गोंका मापन करता है। (भूतं भविष्यत् भुवना दुहानः) भूतकालके और भविष्यकालके, एवं वर्तमानकालके भी भुवनोंका दोहन करता हुआ यह प्रभु (देवानां सर्वा व्रतानि चरति) सब देवोंके सब नियमोंका आचरण करता है।

जिस बैलका यहां वर्णन हो रहा है वह विश्वचालक प्रभुही है। सब चराचर जगत् एक गाडी है, इसको यह चलाता है। यही इसके सब प्राणियोंकी गतिका निरीक्षण करता है और उनकी उन्नतिके सात्विक, राजसिक और तामसिक मार्गोंका यथार्थ रीतिसे मापन करता है। विश्वमें जो भी वस्तु है उसको यथार्थ रीतिसे दुहकर उससे रस प्राप्त करता है और उस रसका आस्वाद भी वही लेता है। तथा यही अग्नि, वायु, सूर्य आदि देवताओंके नियमोंका संचालन करता है। स्वयं देवतारूप बनकर उनको विविधरूपोंमें चलाता है तथा स्वयं भी उनके रूपोंमें चलता रहता है।

[३] इन्द्रो जातो मनुष्येष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः।
सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ८४० ॥

(इन्द्रः मनुष्येषु अन्तः जातः) इन्द्र मानवोंके अन्दर रहता है। (तप्तः घर्मः शोशुचानः चरति) तपा हुआ यह गर्म सूर्य प्रकाशमान होकर यहीं विचरता है। (यः विजानन् अनडुहः न अश्नीयात्) जो यह जानता हुआ इस बैलसे उत्पन्न अन्नका सेवन स्वार्थवश नहीं करेगा। (स सुप्रजाः सन् उदारे न सर्षद्) वह उत्तम प्रजासे युक्त होकर भी उत्कर्षके मार्गमें नहीं भटकता रहेगा।

यह प्रभु मानवोंके रूपमें उत्पन्न होता है। वैसाही स्थावरोंके रूपोंमें भी प्रकट होता है। सूर्यका रूप लेकर वही चमकता हुआ सञ्चार करता है। सब भोग्य पदार्थ उसीके रूप हैं क्योंकि सब विश्वही उसका रूप है। यह जानकर जो स्वार्थवश हो अपने लियेही भोग नहीं भोगेगा, वह उत्तम सन्तानोंसे युक्त होगा और उत्कर्षके मार्गमें सीधा ऊपर चढेगा, इधर उधर भटकता नहीं रहेगा।

[४] अनड्वान्दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात्।
पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ८४१ ॥

(अनड्वान् सुकृतस्य लोके दुहे) यह बैल सत्कर्मका फल लोकमें देता है। (पवमानः पुरस्तात् एनं प्याययति) पुनीत करनेवाला यह देव पहिलेसे इस साधकको परिपूर्ण करता है। (पर्जन्य अस्य धारा) पर्जन्य इसकी धाराएं हैं, (मरुत ऊध) मरुत् इसका दुग्धाशय है, (यज्ञः पयः) यज्ञही इसका दूध है, और (अस्य दोह दक्षिणा) इसका दोहनही दक्षिणा है।

प्रभु इन्द्रही यह विश्वशकट चलानेवाला बैल है। वही सबको पवित्र करनेवाला है, वह इसकी पवित्रता करता हुआ इसकी वृद्धि करता है। यह एक विश्वव्यापक यज्ञ है, पर्जन्यही इसकी दुग्धधाराएं हैं, अन्तरिक्ष इसका दुग्धाशय है, जहां वायु रहते हैं वही अन्तरिक्ष-स्थान है, यज्ञही इस सबका दुग्ध है, इसका दोहन दक्षिणा है। इस तरह यह यज्ञ सब विश्वभर चल रहा है।

[५] यस्य नेशे यज्ञपतिर्न यज्ञो नास्य दातेशे न प्रतिग्रहीता।
यो विश्वजिद् विश्वभृद् विश्वकर्मा घर्मं नो ब्रूत यतमश्चतुष्पात् ॥ ८४२ ॥

(यज्ञपतिः यस्य न ईशे) यज्ञकर्ता जिसका अधिपति नहीं है और (न यज्ञः) यज्ञ भी नहीं है, (दाता अस्य न ईशे) दाता इसका स्वामी नहीं है और (न प्रतिग्रहीता) न दान लेनेवाला है। जो स्वयं (विश्वजित्) विश्व-विजयी (विश्वभृद्) विश्वका भरणपोषण करनेवाला और (विश्वकर्मा) विश्वका कर्म करनेवाला है उस (घर्मं) गर्म सूर्यके विषयमें (नः ब्रूत) हमें वर्णन करके कहो कि (यतमः चतुष्पात्) वह कौनसा चार पांववाला है ?

इस इन्द्ररूपी प्रभुका अधिपति कोई नहीं है। यज्ञकर्ता, यज्ञ, दाता अथवा दान लेनेवाला इनमेंसे किसीका स्वामीपन उसपर नहीं है। वह प्रभु विश्वविजय, विश्वपोषण और सब कर्मोंको करनेवाला है। उसीका रूप सूर्य है। इस सूर्यके किरण चारों दिशाओंमें फैलते हैं, इसलिये वह चतुष्पाद् है। गत तृतीय मन्त्रमें कहा है कि प्रभुका रूप सूर्य है। अतः इस सूर्यका सामर्थ्येन वर्णन करके कहो कि इसका माहात्म्य कितना बड़ा है। यही धर्म है और यही यज्ञ है। इन यज्ञके चार पांव कहे गये हैं।

[६] येन देवाः स्वराररुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम्।
तेन गेष्म सुकृतस्य लोकं घर्मस्य व्रतेन तपसा यशस्यवः ॥ ८४३ ॥

(येन देवाः) जिससे देव (शरीरं हित्वा) शरीर छोडकर (अमृतस्य नाभिं स्वः आरुरुहुः) अमृतके केन्द्ररूपी स्वर्गपर आरूढ हुए थे, (तेन घर्मस्य व्रतेन) उस सूर्यके व्रतके द्वारा और (तपसा) तपके द्वारा (यशस्यवः) यश प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाले हम सब (सुकृतस्य लोकं गेष्म) पुण्य कर्मसे प्राप्त होनेवाले लोकको प्राप्त करेंगे।

घर्मः = गर्म रहनेवाला, सूर्य, अग्नि, पकानेकी कढाई, जिसमें चावल पकाये जाते है वह बर्तन।

घर्मस्य व्रत = पकाये चावल अथवा पकाया हुआ अन्न दान करनेका व्रत। गौके दूधमें पकाया अन्न भी मानवों को दान करनेका उल्लेख शतौदना सूक्तमें (अथ० १०।९) है। वही यह व्रत है।

[७] इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट्।
विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत।
सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥ ८४४ ॥

(विराट् प्रजापतिः परमेष्ठी) विशेष तेजस्वी प्रजापालक परमेश्वर (रूपेण इन्द्रः) आकारसे इन्द्र और (वहेन अग्निः) वाहन खींचनेके सामर्थ्यसे अग्नि कहा जाता है। वह (विश्वानरे अक्रमत) सब मानवोंमें पहुंचा है (वैश्वा-नरे अक्रमत) सब मानवोंद्वारा बनाये हुओंमें पहुंचा है, (अन-डुहि अक्रमत) गाडी खींचनेवालेमें पहुंचा है, (सः अदृंहत) वह सबको सुदृढ करता है, (स अधारयत) वह सबका धारण करता है।

एकही ईश्वर है जो महा तेजस्वी है, प्रजाओंका पालन करता है और परम उच्च स्थानमें विराजता है, वही रूपवान् बननेसे इन्द्र कहलाता है और जब वह विश्वका संचालन करता है तब अग्नि कहलाता है। वही सब मानवोंमें व्यापता है और मानव निर्मित पदार्थोंमें भी व्यापता है। विश्व शकटको चलानेवालेमें भी वही व्याप रहा है। वही सबको स्थिर करता है और सबका धारण भी वही करता है।

एकही ईश्वर सब रूपोंमें प्रकट होकर सब कार्य करता है। ' अन-डुह् ' पदका अर्थ गाडी खींचनेवाला बैल है, परन्तु यहां विश्वरूपी रथको खींचनेवाला ईश्वर अर्थ है।

[८] मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः।
एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यङ् समाहितः ॥ ८४५ ॥

(अनडुहः एतत् मध्यं) बैलका यह मध्यभाग है, (यत्र एषः वहः आहितः) जहां यह धुरा रखी है। इतना इसका पूर्वकी ओरका भाग है और यह इतना पश्चिमकी ओरका भाग है।

गाडीकी धुरा बैलके गलेपर रखी जाती है। इस धुराका आधा भाग एक ओर और आधा दूसरी ओर रहता है। इस तरह दोनों ओर समान बोझ पडना चाहिये। गाडी, धुरा और उसके खींचनेवाले बैलके संबधमें ये निर्देश विशेष देखनेयोग्य हैं।

[९] यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः॥ ८४६॥

(यः अनुपदस्वत अनडुहः) जो न गिरनेवाले शकटवाहक इस बैलके (सप्त दोहान् वेद) सात दोहनोंको-सात अमृतोंको जो जानता है, वह (प्रजां च लोकं च आप्नोति) प्रजा और उच्च लोकको प्राप्त करता है (तथा) ऐसा सप्त ऋषि (विदुः) जानते हैं।

बैलसे सात प्रकारके अन्नरस प्राप्त होते हैं। इसका ज्ञान मनुष्यको प्राप्त करना योग्य है।

[१०] पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्।
श्रमेणानड्वान् कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः॥ ८४७॥

यह बैल (पद्भिः सेदिं अवक्रामन्) पांवोंसे अवनतिको दूर करता है, (जङ्घाभिः इरां उत्खिदन्) जांघोंसे अन्नको ऊपर खींचता है, (श्रमेण) और श्रम करके (अनड्वान् कीनाशः च) बैल और किसान ये दोनों (कीलालं अभिगच्छतः) अन्नको प्राप्त करते हैं।

बैल और किसान पावों, जांघोंद्वारा बडे परिश्रम करते हैं और अनेक प्रकारके अन्न उत्पन्न करते हैं।

[११] द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम्॥ ८४८॥

(प्रजापतेः) प्रजापालककी (एताः व्रत्याः द्वादश रात्रीः) व्रतकी ये बारह रात्रियां (वै आहुः) हैं ऐसा कहते हैं। (यः तत्र ब्रह्म उप वेद) जो वहां ब्रह्मकोही जानता है वह इस (तत् वा अनडुहः व्रतं) बैलके व्रतको जानता है।

बैलही प्रजापति है, मंत्र ७ में कहा है कि, वह परमेश्वरही प्रजापति, इन्द्र, अग्नि और बैल होता है। प्रजापति बैलके रूपसे अन्न उत्पन्न करता है और प्रजाका पालन करता है। इस बैलरूपी प्रजापतिका महोत्सव १२ रात्रियोंतक किया जाता है। इस बैलमें ब्रह्मको देखना चाहिये। इस तरह देखनेवालाही इस बैलका द्वादश रात्रीतक चलनेवाला व्रत कर सकता है।

[१२] दुहे सायं दुहे प्रातर्दुहे मध्यंदिनं परि।
दोहा ये अस्य संयन्ति तान्विद्मानुपदस्वतः॥ ८४९॥

(प्रातः दुहे) प्रातःकाल दोहन होता है, (मध्यं-दिनं परि दुहे) मध्य दिनमें दूसरा दोहन होता है, और (सायं दुहे) सायंकाल तीसरा दोहन होता है। (अनुपदस्वतः अस्य) अविनाशी इस बैलके (ये दोहाः संयन्ति) जो ये दोहन हैं (तान् विद्म) उनको हम जानते हैं।

यहां बैलके निर्देशसे गौके दोहनकी बात कही है। जिस तरह 'गौ' पद गाय और बैल दोनोंका वाचक है उसी तरह बैलवाचक 'अनड्वान्' आदि पद भी गायके वाचक हैं। यह इस मंत्रसे सिद्ध होता है।

'अनड्वान्' का अर्थ 'शकट खींचनेवाला' है। बैल यह इस पदका प्रसिद्ध अर्थ है। विश्वरूपी गाडीको चलानेवाला यह अर्थ यहां विशेषतया है और आगे गौणवृत्तिसे यही भाव बैलपर घटाया है। प्रथम मंत्रमें सब

विश्वका आधार परमात्माही विश्वचालक वर्णित हुआ है। यदि विश्वको शकट कहा जाय, तो उस विश्वको चलानेवाला परमात्मा बैलही है। यह अलंकार प्रथम मंत्रमें है। द्वितीय मन्त्रमें प्रभुही विश्वका सञ्चालक है ऐसा कहा है, और वही सब देवताओंके कार्य यथावत् करता है। यही इन्द्र प्रभु मानवोंमें मानवी रूपोंसे अवतीर्ण हुआ है। यह सूर्य भी वही है। जो इस तत्त्वको जानता है वह सुप्रजासे युक्त होता है और सीधा उन्नति-पथमें आगे बढता है।

परमेश्वर सबका अधिपति है। वही विश्वविजयी, विश्वपोषक और विश्वका कर्ता है। वही यज्ञरूप है। शरीर छूटनेपर अमृतके मध्यमें जाकर पुण्यकर्म करनेवाले निवास करते हैं। व्रत और तपके अनुष्ठानसे पुण्यकर्म करनेवाले पुण्यलोकमें जाते हैं।

जो प्रजापति है वही परमात्मा है, वही इन्द्र और अग्नि भी है। सब मानवोंमें वही पहुंचा है और बैल भी वही हुआ है। इस सातवें मन्त्रमें सबसे प्रथम कहा है कि बैलमें भी वही परमेश्वर अर्थात् है बैल उसकी विभूति है। आगेके मंत्र बैलका वर्णन कर रहे हैं। अर्थात् यह सातवाँ मन्त्र परमात्मा और बैलका संबंध जोडनेवाला मन्त्र है। परमात्मा ही बैलका रूप लिये यहां खडा है।

यह बैल शकट खींचता है। धुरा इसके गलेपर रखी रहती है। धुराके दो भाग करके ठीक बैलकी गर्दनपर रखी जाती है। यह बैल सात प्रकारके लाभ करा देता है। दुर्गतिको दूर करता, अन्नको उत्पन्न करता और बडे परिश्रमसे अन्नको प्राप्त करता है। अन्नकी उत्पत्ति जैसा बैल करता है वैसाही किसान भी करता है। (मं० १०)

ऐसे सर्वोपयोगी ईश्वररूपी बैलका महोत्सव बारह रात्रीतक मनाना चाहिये। यहां बैल यह ब्रह्मका ही रूप है ऐसा कहा है। अतः बैलका महोत्सव करनेका अर्थ ईश्वरकी उपासना ही है।

ऐसी ही गौ है। इसका दोहन तीन वार किया जाता है। यज्ञमें इसका उपयोग तीन वार हवनमें किया जाता है। सबको गिरनेसे बचानेवाला बैल ही है। गौ भी वैसी ही है। इसलिये इनकी सेवा करना सबको योग्य है।

(१२७) रायस्पोषकी प्राप्ति।

अथर्वा। अष्टका, (धेनुः)। अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।१०।१

[तै. सं. ५।३।११५, मै. सं. २।१३।१०, काठक ३९।१०, पा. गृ. सू. ३।३।५, सा. मं. १, २।८।१]

प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरभवद्यमे।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ८५० ॥

(प्रथमा ह वि उवास) पहिलेसे एक गौ थी (सा यमे धेनुः अभवत्) वह गौ दिन और रात्रिके संयोगके कालमें दूध देनेवाली हुई है। (उत्तरां उत्तरां समां) आगे आगेके वर्षोंमें वह (नः पयस्वती दुहां) हमारे लिये अधिकाधिक दूध देनेवाली होवे।

हमारे घरमें एक बछडी थी, वह अब प्रसूत होकर सुबह शाम दूध देने लगी है। वह प्रति प्रसूतिके समय आनेवाले वर्षोंमें अधिकाधिक दूध देती रहे। प्रति वार उसका दूध बढता जावे।

अथर्वा। अष्टका, (धेनुः) अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।१०।२)

यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमुपायतीम्।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमङ्गली ॥ ८५१ ॥

(यां रात्रिं धेनुं उपायतीं) आनेवाली जिस रात्रीरूपी धेनुको प्राप्त कर (देवाः प्रति नन्दन्ति) देव आनन्दित होते हैं, वह (संवत्सरस्य या पत्नी) संवत्सरकी पालन करनेवाली रात्रि (सा नः

सुमंगली अस्तु) हमारे लिये उत्तम कल्याण करनेवाली बने ।

धेनुपरक अर्थ— (या रात्री धेनु उपायती) जो आनन्द देनेवाली दुधारू गौ पास आती है, उसे देखकर देव प्रसन्न होते है । वह संवत्सरतक चलनेवाले यज्ञको परिपूर्ण करनेवाली है, वह हम सबका कल्याण करनेवाली होवे ।

यह मंत्र वार्षिक रात्रीपरक और धेनुपरक है । संवत्सरकी पत्नी रात्री है अर्थात् यह छः मास रात्री जो रहती है वह वार्षिक रात्री है । इसलिये संवत्सरकी पत्नी अर्थात् अर्धांगी है । आधे संवत्सरतक यह रात्री विस्तृत होती है । इसीलिये अर्धांगी होनेसे यह संवत्सरकी पत्नी है । धेनुपरक अर्थमें संवत्सर- वर्ष-भरतक दूध देनेवाली और संवत्सर यज्ञको यथासाग पूर्ण करनेवाली समझना चाहिये ।

अथर्वा । अष्टका, (देवा) । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।१०।११)

इडया जुह्वतो वयं देवान् घृतवता यजे ।
गृहानलुभ्यतो वयं सं विशेमोप गोमतः ॥ ८५२ ॥

(इडया जुह्वतः वयं) गौके घृतादिका हवन करनेवाले हम (घृतवता देवान् यजे) घीसे युक्त हविर्द्रव्यसे देवोंका यजन करते हैं । और (गोमतः वयं) गौओंसे युक्त होते हुए हम सब (अलुभ्यत) लोभमें न फंसते हुए (गृहान् समुपविशेम) घरोंमें प्रवेश करेंगे ।

यहां ' इडा ' का अर्थ ' गो और गौसे उत्पन्न दूध आदि पदार्थ ' है । इनका हवन करके देवताओंकी तृप्ति की जाती है । घरमें बहुत गौएं रहें और घरवालोंके साथ वे घरमें आती और घरसे बाहर जाती रहें । यह एक प्रकारका ऐश्वर्यही है ।

दीर्घतमा औचथ्य । विश्वे देवा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६४।२६-२७)
अथर्वा । घर्मः, अश्विनौ । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ७।७३।७-८, ९।१०।४-५)

उप ह्वये सुदुघां धेनुमेतां सुहस्तो गोधुगुत दोहदेनाम् ।
श्रेष्ठं सवं सविता साविषन्नोऽभीद्धो घर्मस्तदु षु प्र वोचत् ॥ ८५३ ॥

(एतां सुदुघां धेनु उप ह्वये) इस उत्तम दूध देनेवाली धेनुको मैं बुलाता हूं, (सुहस्तः गोधुक् एनां दोहत्) उत्तम कुशल दुहनेवाला इसका दोहन करे । (सविता श्रेष्ठं सवं नः साविषत्) प्रेरक देव श्रेष्ठ कर्मकी प्रेरणा हमें करे । (घर्मः अभीद्धः) दूध गर्म करनेका पात्र गर्म हो गया है, (तत् उ सु प्र वोचत्) इस विषयमें याजक घोषणा करे ।

यहां कहा है कि जिससे बहुत दूध मिलता है वह धेनु बुलायी जाती है और कुशल दोहनकर्तासे उसका दूध दुहा जाता है । वह दूध गर्म करनेके पात्रमें तपाया जाता है, इस तरह तपनेपर कहते हैं कि उसका पाक सिद्ध हुआ।

हिंकृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसाऽभ्यागात् ।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय ॥ ८५४ ॥

(हिङ्कृण्वती) हिंकार करती हुई (वसूनां वसुपत्नी) वसुदेवोंकी पालन करनेहारी (मनसा वत्सं इच्छन्ती) मनसे अपने बछडेकी इच्छा करती हुई (आगात्) आ गई है । (इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहां) यह अवध्य गौ अश्विदेवोंके लिये दूध देवे और (सा महते सौभगाय वर्धतां) वह बडे ऐश्वर्यके लिये बढे ।

उत्तम दूध देनेवाली गौ, बच्चोंको साथ लेकर अश्विदेवोंके लिये दूध देवे । और वह बडे यशको प्राप्त हो ।

अथर्वा । मधु, अश्विनौ । बृहतीगर्भा संस्तारपङ्क्तिः (अथर्व० ९।१०।६, ऋ० १।१६४।२८)

गौरमीमेदभि वत्सं मिषन्तं मूर्धानं हिङ्ङकृणोन्मातवा उ ।

सृक्वाणं घर्ममभि वावशाना मिमाति मायुं पयते पयोभिः ॥ ८५५ ॥

(गौः मिषन्तं वत्सं अभि अमीमेत्) गौ अपने पास आनेवाले बछेकी ओर देखकर हंभारती है, (मातवै उ मूर्धानं हिंकृणोत्) हंभारनेके पूर्व बछेका सिर सूंघकर उस गौने हिंकार किया । (सृक्वाणं घर्मं अभि वावशाना) अपने गर्म दुग्धाशयको अपना बछडा चाटे ऐसी इच्छा करनेवाली वह गौ (मायुं मिमाति) हंभारव करती है और (पयोभिः पयते) दूधकी धाराएं स्रवती है ।

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः । जगती । (अथर्व० ९।१०।७, ऋ० १।१६४।२९)

अयं स शिङ्क्ते येन गौरभीवृता मिमाति मायुं ध्वसनावधि श्रिता ।

सा चित्तिभिर्नि हि चकार मर्त्यान् विद्युद् भवन्ती प्रति वव्रिमौहत ॥ ८५६ ॥

(येन गौः अभीवृता) जिससे गौ घेरी गयी है (सः अयं शिङ्क्ते) वह यह बछडा भी शब्द कर रहा है और (ध्वसनौ अधि श्रिता मायुं मिमाति) दूध चूनेके समयपर पहुंची गौ हंभारव करती है । (सा चित्तिभिः) वह अपने विचारोंसे (मर्त्यान् नि चकार) मानवोंको भी नीचे कर दिखाती है वह (विद्युत् भवन्ती वव्रिं प्रति औहत्) बिजली जैसी चमकती हुई होकर अपने रूपको प्रकट करती है ।

गौ दूध देनेके पूर्व बछेके साथ कैसा बर्ताव करती है वह इस मंत्रमें बताया है । यह बर्ताव ऐसा प्रेमपूर्ण होता है कि इससे मनुष्य भी उससे तुच्छ है ऐसा सिद्ध हो जाता है ।

ब्रह्मा । गौः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।१०।११)

पतङ्गः प्राजापत्यः । मायाभेदः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१७७।३)

दीर्घतमा । सूर्यः । (वा० य० ३७।१७, मै० सं० ४।९।६, तै० आ० ४।७।१, ऐ० आ० २।१।६)

अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।

स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ८५७ ॥

(गो-पां अपश्यं) मैंने एक गोपालकको देखा, वह (अ- निपद्यमान) लेटा नहीं था, परन्तु (पथिभिः आ च परा च चरन्तं) मार्गोंसे इधर उधर घूम रहा था, (सः सध्रीची स विषूचीः वसानः) वह उनके साथ रहता था और वह चारों ओर घूमता भी था, इस तरह वह उनके साथ बसता भी था, (भुवनेषु अन्तः आ वरीवर्ति) वह सब स्थानोंमें वारवार घूमता रहता है।

गोपालक गौओंके साथ घूमता रहे यह इस मंत्रमें बताया है ।

ब्रह्मा । गौः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।१०।२०)

दीर्घतमा औचथ्यः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१६४।४०, वा० य० ३४।३८)

सूयवसाद्भगवती हि भूया अधा वयं भगवन्तः स्याम ।

अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥ ८५८ ॥

(सूयवसाद् भगवती हि भूयाः) गौ उत्तम घास खाती रहे, (अधा वयं भगवन्तः स्याम) और हम सब उससे भाग्यवान बनें । हे (अघ्न्ये ! विश्वदानीं तृणं अद्धि) अवध्य गौ ! तू सदा घास खा

और (आचरन्ती) घूमती हुई (शुद्ध उदकं पिब) शुद्ध जल पी।
गौ उत्तम घास खा और शुद्ध जल पी।

(१२८) बैलकी प्रशंसा।

ब्रह्मा । ऋषभ । अनुष्टुप्, १८ उपरिष्टाद्बृहती (अथर्व० ९।४।११-२०)

[११] य इन्द्र इव देवेषु गोष्वेति विवावदत्।
तस्य ऋषभस्याङ्गानि ब्रह्मा सं स्तौतु भद्रया ॥ ८५९ ॥

(देवेषु इन्द्रः इव) देवोंमें जैसा इन्द्र वैसा (य गोषु विवावदत् एति) जो बैल गौओंमें शब्द करता हुआ चलता है, (तस्य ऋषभस्य अंगानि) उस बैलके अंगोंकी (भद्रया ब्रह्मा सं स्तौतु) प्रशंसा शुभ वाणीसे ब्रह्मा करे।

[१२] पार्श्वे आस्तामनुमत्या भगस्यास्तामनूवृजौ।
अष्ठीवन्तावब्रवीन्मित्रो ममैतौ केवलाविति ॥ ८६० ॥

(पार्श्वे अनुमत्या आस्तां) दोनों बगलें अनुमति की हैं, (अनूवृजौ भगस्य आस्तां) पसलियोंके दोनों भाग भगके हैं, (मित्र अब्रवीत्) मित्रने कहा कि (अष्ठीवन्तौ एतौ केवलौ मम) दो घुटने सिर्फ मेरे हैं।

[१३] भसदासीदादित्यानां श्रोणी आस्तां बृहस्पतेः।
पुच्छं वातस्य देवस्य तेन धूनोत्योषधीः ॥ ८६१ ॥

(भसत् आदित्यानां आसीत्) पृष्ठवंशका अंतिम भाग आदित्योंका है, (श्रोणी बृहस्पतेः आस्तां) कुल्हे बृहस्पतिके हैं, (पुच्छं वातस्य देवस्य) पूँछ वायुदेवका है, (तेन ओषधीः धूनोति) उससे ओषधियोंको हिलाता है।

[१४] गुदा आसन्त्सिनीवाल्याः सूर्यायास्त्वचमब्रुवन्।
उत्थातुरब्रुवन् पद ऋषभं यदकल्पयन् ॥ ८६२ ॥

(गुदाः सिनीवाल्याः आसन्) गुदाभाग सिनीवालीके हैं, (त्वच सूर्यायाः अब्रुवन्) कहते हैं कि, चमडी सूर्याकी है, (पदः उत्थातुः अब्रुवन्) पैर उत्थाताके हैं, ऐसा कथन है (यत ऋषभं अकल्पयन्) इस भाँति इस बैलकी कल्पना की है।

[१५] क्रोड आसीज्जामिशंसस्य सोमस्य कलशो धृतः।
देवाः संगत्य यत्सर्व ऋषभं व्यकल्पयन् ॥ ८६३ ॥

(क्रोडः जामिशंसस्य आसीत्) गोद जामिशंसकी थी, (कलशः सोमस्य धृत) कलश सोमका धारण किया है, इस भाँति (सर्वे देवाः संगत्य) सब देव मिलकर (यत् ऋषभ व्यकल्पयन्) बैलकी कल्पना करते रहे।

[१६] ते कुष्ठिकाः सरमायै कूर्मेभ्यो अदधुः शफान्।
ऊबध्यमस्य कीटेभ्यः श्ववर्तेभ्यो अधारयन् ॥ ८६४ ॥

(कुष्ठिकाः सरमायै ते अदधु) कुष्ठिकोंको सरमाके लिए वे रख चुके हैं, (शफान् कूर्मेभ्यः)

और खुरोंको कछुओंके लिये धारण करते रहे, (अस्य ऊवध्यं) इसका अपक्व अंश (श्ववर्तेभ्य कीटेभ्य अधारयन्) कुत्तेके साथ रहनेवाले कीडोंके लिये रख दिया।

[१७] शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषत्यवर्तिं हन्ति चक्षुषा।
शृणोति भद्रं कर्णाभ्यां गवां यः पतिरघ्न्यः ॥ ८६५ ॥

(यः गवां पतिः अघ्न्य) जो गौओंका पति हननके अयोग्य है, वह (कर्णाभ्यां भद्रं शृणोति) कानोंसे कल्याणकी बातें सुनता है, (शृङ्गाभ्यां रक्ष ऋषति) सींगोंसे राक्षसोंको हटा देता है। (चक्षुषा अवर्तिं हन्ति) आँखसे अकालको नष्ट कर देता है।

[१८] शतयाजं स यजते नैनं दुन्वन्त्यग्नयः।
जिन्वन्ति विश्वे तं देवा यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति ॥ ८६६ ॥

(यः ब्राह्मणे ऋषभं आजुहोति) जो ब्राह्मणोंको बैल अर्पण करता है, (तं विश्वे देवा जिन्वन्ति) उसको सभी देव तृप्त करते हैं, (सः शतयाजं यजते) वह सैकडों याजकोंद्वारा यज्ञ करता है (एनं अग्नयः न दुन्वन्ति) इसको अग्नि कष्ट नहीं देते हैं।

[१९] ब्राह्मणेभ्य ऋषभं दत्त्वा वरीयः कृणुते मनः।
पुष्टिं सो अघ्न्यानां स्वे गोष्ठेऽव पश्यते ॥ ८६७ ॥

ब्राह्मणोंको (ऋषभं दत्त्वा) बैल देकर जो (मनः वरीयः कृणुते) मनको श्रेष्ठ करता है, (सः) वह (स्वे गोष्ठे) अपनी गौशालामें (अघ्न्यानां पुष्टिं अवपश्यते) गायोंकी पुष्टि देखता है।

[२०] गावः सन्तु प्रजाः सन्त्वथो अस्तु तनूबलम्।
तत्सर्वमनु मन्यन्तां देवा ऋषभदायिने ॥ ८६८ ॥

(ऋषभदायिने) बैलका दान करनेवालेको (गावः सन्तु) गौएँ मिलें, (प्रजाः सन्तु) सन्तान होवे, (अथ तनूबलं अस्तु) और शरीरका बल मिले, (देवाः तत् सर्वं अनुमन्यन्तां) देव उस सारी प्राप्तिको मान्यता दें।

ब्रह्मा। ऋषभः। जगती। (अथर्व० ९।४।६)

सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि त्वष्टा रूपाणां जनिता पशूनाम्।
शिवास्ते सन्तु प्रजन्व इह या इमा न्य१स्मभ्यं स्वधिते यच्छ या अमूः ॥ ८६९ ॥

यह बैल (पशूनां जनिता) पशुओंका उत्पादक तथा (रूपाणां त्वष्टा) रूपोंका बनानेवाला है, (सोमेन पूर्णं कलशं बिभर्षि) सोमरससे पूर्ण कलशका तू धारण करता है, (याः इमाः ते प्रजन्वः) जो ये तेरे बछडे हैं, वे (शिवाः सन्तु) हमारे लिये शुभ हों, (स्वधिते) हे शस्त्र ! (याः अमूः) जो ये हैं (अस्मभ्यं नि यच्छ) उन्हें हमारे लिए दे। अर्थात् इसे न काट।

इस मन्त्रसमूहमें कहा है कि बैलका दान ब्राह्मणको देना उचित है। जो ब्राह्मणको बैलका दान करता है उसके घरमें पशुओंकी समृद्धि होती है। बैलकी योग्यता ऐसी है कि उसके अंगोंका अनेक देवताओंके [illegible] बैलके अंगोंकी निगरानी ये देव करते हैं। किसीकीर भी बैलकी सुरक्षा करनेके लिये सिद्ध रहते हैं।

(१२९) गोशालामें बैल ।

ब्रह्मा । आयु बृहस्पति , अश्विनौ च । अनुष्टुप् । (अथर्व० ७।५३।५)

प्र विशतं प्राणापानावनड्वाहाविव व्रजम् ।
अयं जरिम्णः शेवधिररिष्ट इह वर्धताम् ॥ ८७० ॥

हे प्राण एवं अपान ! (अनड्वाहौ व्रज इव) दो बैल जिस प्रकार गोशालामें घुस जाते हैं, उसी प्रकार (प्र विशतं) तुम दोनों इस शरीरमें घुस जाओ, (जरिम्णः अयं शेवधि) बुढापेतककी पूर्ण आयुका यह खजाना है, (इह अरिष्टः वर्धतां) यह यहाँ न घटता हुआ बढ जाए ।

अनड्वाहौ व्रजं प्रविशतः= दो बैल गोशालामें घुसते हैं, वैसे प्राण और अपान नासिकोंद्वारा शरीरमें घुसें । शरीरमें जो महत्त्व प्राण और अपानका है वह बैलका महत्त्व राष्ट्रमें है ।

ब्रह्मा । ऋषभ । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ९।४।२)

अपां यो अग्रे प्रतिमा बभूव प्रभूः सर्वस्मै पृथिवीव देवी ।
पिता वत्सानां पतिरघ्न्यानां साहस्रे पोषे अपि नः कृणोतु ॥ ८७१ ॥

(यः अग्रे) जो पहले (अपां प्रतिमा बभूव) जलोंके मेघकी उपमा हुआ करती है, उस (देवी पृथ्वी इव) पृथ्वीदेवीके तुल्य (सर्वस्मै प्रभूः) सबपर प्रभाव चलानेवाला (वत्सानां पिता) बछडोंका पिता (अघ्न्यानां पतिः) अवध्य गायोंका स्वामी (नः साहस्रे पोषे अपि कृणोतु) हमें हजारों प्रकारकी पुष्टिमें करे, रखे ।

वत्सानां पिता, अघ्न्यानां पतिः नः पोषे कृणोतु = अनेक बछडोंका पिता और अनेक गौओंका पति जो बैल है, वह धान्य उत्पन्न करके हमारा पोषण करे । बैल धान्य उत्पन्न करके तथा दुधारू गौ उत्पन्न करके मानवोंका पोषण करता है।

(१३०) बैलके लिये गाय है ।

भार्गव । तृष्टिका । सैकुमती चतुष्पदा भुरिगुष्णिक् । (अथर्व० ७।११३।२)

तृष्टासि तृष्टिका विषा विषातक्यसि । परिवृक्ता यथासस्यृषभस्य वशेव ॥ ८७२ ॥

(तृष्टा तृष्टिका असि) तू तृष्णा और लोभमयी है, (विषा विषातकी असि) विषैली और विषमयी हो, (यथा) जिससे (ऋषभस्य वशा इव) बैलके लिए जैसे गाय होती है, वैसे (परिवृक्ता असासि) तू धरनेयोग्य है ।

ऋषभस्य वशा = बैलके लिये गाय है । उत्तम बैलके लिये गौ रखनी चाहिये ।

(१३१) पुष्पवती गायके पास गर्जता हुआ बैल आता है ।

ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५।२०।२)

सिंह इवास्तानीद् द्रुवयो विबद्धोऽभिक्रन्दन्नृषभो वासितामिव ।
वृषा त्वं वध्रयस्ते सपत्ना ऐन्द्रस्ते शुष्मो अभिमातिषाहः ॥ ८७३ ॥

तू (द्रुवयः विबद्धः) वृक्षके साथ विशेष प्रकार बांधा हुआ बैल (सिंह इव अस्तानीत्) सिंहके

समान गरजता है, (वासिता अभिक्रन्दन् वृषभ इव) गौकी प्राप्तिके लिए गरजते हुए बैलके समान तू (त्वं वृषा) बलिष्ठ है, (ते सपत्ना वध्रय) तेरे शत्रु निर्बल हुए हैं, और (ते एन्द्र शुष्म अभिमातिषाहः) तेरा प्रभावयुक्त बल शत्रुविनाशक है।

' वासिता ' किंवा ' वाशिता ' ये पद उस गौके वाचक हैं कि, जो गौ बैलकी इच्छासे शब्द करती रहती है, ' वासिता ' का अर्थ ' गन्धवाली, गन्धयुक्त ' है। जिसके योनिमार्गमें एक प्रकार वास, गंध, बू, खुश्बू, सुवास आता है। इस गन्धसे बैल आकर्षित होते हैं। पुष्पवती, ऋतुमती इस अर्थमें यह पद है। इस मन्त्रमें ऐसी ' पुष्पवती, गौके पास आकर्षित हुआ बैल सिंहके समान गरजता हुआ आता है ऐसा वर्णन है। पशुओंमें प्राय ऋतुमती स्त्री होनेपर ही परस्पर आकर्षण होता है। अन्य समय गायें और बैल साथ रहनेपर भी वे शान्त रहते हैं। ऋतुमती गौ होनेपर उसकी बूसे बैल दूर दूरसे आकर्षित होते है। ऋतुमती गौके लिये बैल उत्तम तैयार हुआ रहे।

(१३२) गौएँ बडे बैलके निकट चली जाती है।

विश्वामित्रो गाथिनः । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् (ऋ० ३।५७।३)

या जामयो वृष्ण इच्छन्ति शक्तिं नमस्यन्तीर्जानते गर्भमस्मिन् ।
अच्छा पुत्रं धेनवो वावशाना महश्चरन्ति बिभ्रतं वपूंषि ॥ ८७४ ॥

(याः जामयः) जो महिलाएँ (वृष्णे शक्तिं इच्छन्ति) बलवानसे उसकी शक्तिकी इच्छा करती हैं, वे (नमस्यन्ती) नम्र होकर (अस्मिन्) इसमें रखे हुए (गर्भं जानते) गर्भाधान करनेके सामर्थ्यको पहचानती हैं, (वावशानाः धेनव) कामुक बनी हुई गौएँ तो (महः वपूंषि बिभ्रतं) बडा शरीर धारण करनेवाले (पुत्रं अच्छ चरन्ति) पुत्रकी इच्छा करती हुई बैलके समीप संचार करती हैं।

वावशानाः धेनवः महः वपूंषि बिभ्रतं अच्छ चरन्ति= बैलकी इच्छा करनेवाली गौवें बडे शरीरवाले बैलके पास जाती हैं। कामुक धेनुएँ हृष्टपुष्ट बैलके पास जाती है।

वामदेवो गौतम । इन्द्रावरुणौ । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।४१।५)

इन्द्रा युवं वरुणा भूतमस्या धियः प्रेतारा वृषभेव धेनोः ।
सा नो दुहीयद्यवसेव गत्वी सहस्रधारा पयसा मही गौः ॥ ८७५ ॥

हे इन्द्र तथा वरुण ! (युवं) तुम दोनों, (धेनोः वृषभा इव) गौको जिस प्रकार बैल वैसेही (अस्या धिय) इस बुद्धिके (प्रेतारा भूत) समाधानकर्ता बन जाओ, (मही गौः) पूजनीय गाय (पयसा सहस्रधारा) दूध देनेमें अत्यन्त उदार होनेवाली (यवसा गत्वी इव) तृणके कारण अत्यन्त हलचल करनेवाली बनती है, उसी प्रकार (सा नः दुहीयत्) वह हमारे लिए दोहन करे।

१ धेनोः वृषभः = गायके पास बैल जाता है।

२ मही गौः पयसा सहस्रधारा यवसा गत्वी नः दुहीयत् = बडी गौ सहस्रों धाराओंसे दूध देनेवाली, सुंदर गौके खेतमें चरती हुई, हमें पर्याप्त दूध देवे।

वामदेवो गौतमः । अग्निः (लिङ्गोक्तदेवता इति एके) । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।१३।२)

ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् द्रप्सं दविध्वद् गविषो न सत्वा ।
अनु व्रतं वरुणो यन्ति मित्रो यत् सूर्यं दिव्यारोहयन्ति ॥ ८७६ ॥

(सविता देव.) सबके उत्पादनकर्ता देवने (ऊर्ध्वं भानुं) ऊँची किरणका (अश्रेत्) आश्रय लिया है, और (द्रप्सं दविध्वत्) जलको बिखेरा है (गविषः सत्वा न) गायकी कामना करनेहारा बैल जिस प्रकार ठहरता है, उस तरह (मित्रः वरुणः) मित्र तथा वरुण, (यत्) जब (सूर्यं) सूर्यको (दिवि आरोहयन्ति) द्युलोकपर चढाते हैं, तब वे अपने (व्रतं अनु यन्ति) व्रतकाही पालन करते हैं । क्योंकि वह उनकीही शक्ति है ।

गविषः सत्वा = गायकी इच्छा करनेवाला बलिष्ठ बैल । जैसी गौ बैलकी इच्छा करनेवाली हो वैसाही बैल भी गायकी इच्छा करनेवाला हो और ऐसे दोनोंका समागम हो जाय ।

(१३३) गौओंके समूहमें साँड ।

ब्रह्मा । वनस्पतिः, दुन्दुभिः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ५।२०।३)

वृषेव यूथे सहसा विदानो गव्यन्नभि रुव संधनाजित् ।
शुचा विध्य हृदयं परेषां हित्वा ग्रामान् प्रच्युता यन्तु शत्रवः ॥ ८७७ ॥

(यूथे गव्यन् वृषा इव) गौओंके समूहमें गौकी कामना करनेवाले सांडके समान तू (सहसा संधनाजित्) बलसे विजय प्राप्त करनेवाला और (विदानः) जानता हुआ (अभि रुव) गर्जना कर । (परेषां हृदयं शुचा विध्य) शत्रुओंका हृदय शोकसे युक्त कर, (शत्रवः ग्रामान् हित्वा) शत्रु गावोंको छोडकर (प्रच्युताः यन्तु) गिरते हुए भाग जायें ।

गौओंके समूहमें सांड गौओंकी इच्छा करता हुआ गर्जना करता है । सांडकी गर्जना गौकी इच्छासे होती है और वह सामर्थ्यकी द्योतक है ।

(१३४) गायोंमें बैल मिल गया ।

अष्ट्रादंष्ट्रो वैरूपः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१११।२)

ऋतस्य हि सदसो धीतिरद्यौत्सं गार्ष्टेयो वृषभो गोभिरानट् ।
उदतिष्ठत्तविषेणा रवेण महान्ति चित्सं विव्याचा रजांसि ॥ ८७८ ॥

(ऋतस्य सदसः) ऋतके स्थानके (धीतिः अद्यौत् हि) धारणकर्ता चमकने लगा, (गार्ष्टेयः वृषभः) गोपुत्र बैल (गोभिः सं आनट्) गायोंसे मिल गया (तविषेण रवेण उत् अतिष्ठत्) बडी भारी आवाज करके वह उठ खडा हुआ और (महान्ति रजांसि चित्) बडे धूलिप्रवाहोंको भी (सं विव्याच) फैला चुका है ।

वृषभः गोभिः सं आनट् = बैल गौओंके साथ मिलता है,

रवेण उत् अतिष्ठत् = शब्द करता हुआ खडा रहा है,

रजांसि सं विव्याच = धूलियां फैलाता है । बैल अपने पीछले या आगके पांवोंसे मिट्टी उखाडता है । यह उसके प्रभावी सामर्थ्यका चिन्ह है ।

(१३५) दुधारू गाय निर्माण करनेवाला वृषभ।

ब्रह्मा। ऋषभ। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ९।४।३)

पुमानन्तर्वान्त्स्थविरः पयस्वान् वसोः कबन्धमृषभो बिभर्ति।
तमिन्द्राय पथिभिर्देवयानैर्हुतमग्निर्वहतु जातवेदाः॥ ८७९॥

(अन्तर्वान् पुमान्) अपने अन्दर पौरुष शक्ति धारण करनेवाला पुरुष (स्थविरः पयस्वान्) बडा दूधवाला (ऋषभः) बैल (वसोः कबन्धं बिभर्ति) वसुके शरीरको धारण करता है, (तं देवयानैः पथिभिः हुतं) उस देवयान मार्गोंसे दिये हुएको (जातवेदाः अग्निः इन्द्राय वहतु) ज्ञानी अग्नि प्रभुके लिए ले जाय।

अन्तर्वान् पुमान् पयस्वान् = अपने अन्दर वीर्यकी धारणा करनेवाला पौरुष सामर्थ्ययुक्त बैल दुधारू (गायें उत्पन्न करनेवाला) होता है। यहां बैलको '**पयस्वान्**' अर्थात् दूधवाला कहा है क्योंकि इसके वीर्यसे उत्पन्न गौमें अधिक दूध होता है। अधिक दूध देनेवाली गायका निर्माण करना बैलके वीर्यपर निर्भर है। गोवंशको सुधार करनेके इच्छुक यह बात ध्यानमें रखें।

ब्रह्मा। ऋषभ। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ९।४।९)

दैवीर्विशः पयस्वाना तनोषि त्वामिन्द्रं त्वां सरस्वन्तमाहुः।
सहस्रं स एकमुखा ददाति यो ब्राह्मण ऋषभमाजुहोति॥ ८८०॥

(पयस्वान्) तू दूधवाला है और (दैवीः विशः आ तनोषि) दिव्य गुणी प्रजाको उत्पन्न करता है, (त्वां सरस्वन्तं इन्द्रं आहुः) तुझे रसवाला इन्द्र कहते हैं। (यः ब्राह्मणः ऋषभं आ जुहोति) जो ब्राह्मण बैलका दान करता है, (सः एकमुखा) वह एकही मुखसे (सहस्रं ददाति) हजारोंका दान करता है।

पयस्वान् वृषभः = (दुधारू गाय उत्पन्न करनेवाला) बैल। दूध उत्पन्न करनेवाला बैल है। अधिक दूध गायें उत्पन्न करना बैलपर है।

(१३६) बलवान् बैल गायके गुप्त पदचिह्नको पहचानता है।

वामदेवो गौतमः। वैश्वानरोऽग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।५।३)

साम द्विबर्हा महि तिग्मभृष्टिः सहस्ररेता वृषभस्तुविष्मान्।
पदं न गोरपगूळ्हं विविद्वानग्निर्मह्यं प्रेदु वोचन्मनीषाम्॥ ८८१॥

(सहस्ररेताः वृषभः) अत्यन्त बलयुक्त पौरुष शक्तिवाला बैल (द्विबर्हा अग्निः) दो शिखाओंसे युक्त अग्निके समान (अपगूळ्हं गोः पदं न) बहुत दूर छिपे हुए गौके पदचिन्हके तुल्य (महि साम) बडे भारी सामको जो कि (मनीषां) मनन करनेयोग्य है, (विविद्वान्) विशेष रूपसे जानता हुआ (मह्यं प्र वोचत् इत्) मुझसे उत्कृष्टतया कह चुका है।

सहस्ररेताः वृषभः अपगूळ्हं गोः पदं विविद्वान् — बडा पुष्ट सांड गायके गुप्त पदचिह्नको पहचानता है। ऋतुमती गाय इस रास्तेसे गयी है यह पदचिन्हसे ही बैल पहचानता है। पदचिह्नसे अथवा उसकी बूसे वह गौको पहचान लेता है और वह उस गौको जान लेता है।

(१३७) धेनु और बैल बल देते हैं।

यम । स्वर्ग, ओदन., अग्नि । त्रिष्टुप् । (अथर्व० १२।३।४९)

प्रियं प्रियाणां कृणवाम तमस्ते यन्तु यतमे द्विषन्ति ।
धेनुरनड्वान् वयोवय आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु ॥ ८८२ ॥

(प्रियाणां प्रिय कृणवाम) मित्रोंका प्रिय हम करें, (यतमे द्विषन्ति ते तम यन्तु) जो मेरा द्वेष करते हैं, वे अँधेरेमें चले जायँ, (धेनु अनड्वान् वयोवय आयत् एव) गो और बल बल लातेही हे, वे (पोरुषेय मृत्यु अप नुदन्तु) मानवकी मौत दूर करें।

धेनुः अनड्वान् वयोवय आयत् पोरुषेय मृत्युं अप नुदन्तु = गाय अपने दूधसे और बैल अन्न उत्पन्न करके मनुष्योंको दीर्घ आयु देते हैं और मनुष्योंके मृत्युको दूर हटा देते हैं।

(१३८) आयु और प्रजा देनेवाला बैल।

ब्रह्मा । ऋषभ. । त्रिष्टुप । (अथर्व० ९।४।२२)

पिशङ्गरूपो नभसो वयोधा ऐन्द्रः शुष्मो विश्वरूपो न आगन् ।
आयुरस्मभ्यं दधत्प्रजां च रायश्च पोषैरभि नः सचताम् ॥ ८८३ ॥

(पिशंगरूपः) लाल रंगवाला (नभस) आकाशसे (ऐन्द्र शुष्म) इन्द्रके संबंधी बल धारण करनेवाला (विश्वरूप वयोधाः नः आगन्) समस्त रूपोंसे युक्त, अन्नका धारणकर्ता हमारे समीप आ गया है, (आयुः प्रजां च रायः च) जीवन, संतान तथा धन (अस्मभ्य दधत्) हमें देता हुआ यह बैल (पोषै. न अभिसचन्तां) सब पुष्टियोंसे हमें प्राप्त हों।

बैल इन्द्रकी शक्ति अपने अन्दर धारण करता है। अन्न उत्पन्न करके और दुधारू गायें उत्पन्न करके सब लोगोंको पुष्ट करता है।

(१३९) बैल गतिशील है।

शुक्र । कृत्यादूषण, मन्त्रोक्तदेवताः । पथ्यापङ्क्ति । (अथर्व० ८।५।११)

उत्तमो अस्योषधीनामनड्वान् जगतामिव व्याघ्रः श्वपदामिव ।
यमैच्छामाविदाम तं प्रतिस्पाशनमन्तितम् ॥ ८८४ ॥

(जगतां अनड्वान् इव) गतिशीलोंमें बैल जैसे और (श्वपदां व्याघ्र. इव) पशुओंमें बाघके तुल्य (ओषधीनां उत्तम. असि) दवाइयोंमें तू श्रेष्ठ है, (य ऐच्छाम) जिस की हम इच्छा करें, (त प्रतिस्पाशनं) उस चढाऊपरी करनेवालेको (अन्तितं आविदाम) हम मरा हुआ पायें।

जगतां अनड्वान् = गतिमानोंमे बैल गतिमान है। गतिमानका अर्थ प्रगति करनेवाला। मनुष्यकी प्रगति, उन्नति और सुधार बैलसे तथा गायसे होता है। मनुष्यका जीवनही बैलपर अवलंबित है।

(१४०) बैलोंका प्रकाशको आश्रय ।

वासिष्ठो मैत्रावरुणि । उषस. । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।७९।१)

व्यु१षा आवः पथ्या३ जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसंदृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥ ८८५ ॥

(जनानां पथ्या) लोगोंका मार्गमें हित करनेवाली उषा (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मानवोंके पांच वर्गोंको जगाती हुई, (वि आवः) अंधेरा दूर हटा चुकी, (सुसदृग्भिः उक्षभिः) अच्छे तेजवाले बैलोंसे (भानु अश्रेत्) किरणका आश्रय ले चुकी है, (सूर्य. रोदसी) सूर्यने द्युलोक तथा भूलोकको (चक्षसा वि आवः) देखनेयोग्य तेजसे प्रकट किया ।

उक्षभिः भानु अश्रेत् = बैलोंके साथ प्रकाशका आश्रय उषाने किया । सबेरे गाये और बैल बाहर चरनेके लिये खोल दिये जाते हैं, उसी समय सूर्यका उदय होता है । इसलिये सूर्य और बैलोंका साथ होनेका अथवा परस्पर आश्रित होनेका वर्णन यहा किया है । जिस तरह बैल चरनेके लिये बाहर आते हैं वैसेही सूर्य-किरण सबेरे बाहर आते हैं । यहा बैल और सूर्यका साम्य है ।

(१४१) बैलको आवाजसे पहचानना ।

वासिष्ठो मैत्रावरुणि । उषस । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।७९।४)

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥ ८८६ ॥

(गृणाना स्तोतृभ्यः यावत् अरद) स्तुति करनेपर प्रशंसकोंको जितना धन तू दे चुकी, (तावत्) उतना (राध.) धन, हे उषे ! (अस्मभ्य रास्व) हमें दे डाल, (यां त्वा) जिस तुझको (वृषभस्य रवेण जज्ञुः) बैलकी आवाजसे पहचान पाये और दृळ्हस्य अद्रे· दुर) सुदृढ पहाडके दरवाजोंको (वि और्णोः) तू खोल चुकी है ।

वृषभस्य रवेण जज्ञु = बैलके आवाजसे, फलाना बैल है, ऐसा पहचानते हैं । मालिकको चाहिये कि वह अपने बैलोंको उनके आवाजसे पहचाने ।

(१४२) भयंकर बैल ।

श्यावाश्व आत्रेय. । मरुतः । सतो बृहती । (ऋ ५।५६।३)

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा ।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥८८७ ॥

(मीळ्हुष्मती इव) मानों अत्युदार, (पृथिवी) पृथ्वी जैसी (मदन्ती) हर्षयुक्त होती हुई (पर अ-हता) दूसरोंसे अपराभूत वीर मरुतोंकी सेना (अस्मत् आ एति) हमारे पास आती है । हे वीर मरुतो ! (वः अमः) तुम्हारा सघ (ऋक्षः न) अग्नितुल्य (शिमीवान्) कार्यवान् और (दुध्र. गौः इव) रोकनेमें अशक्य बैलके समान (भीमयु·) भयानक है ।

दुध्र. गौ. भीमयु· = पकडनेके लिये कठिन बैल भयंकर होता है । यहां ' गौ ' पद बैलका वाचक है । जिस बैलको काबूमें रखना कठिन है वह बैल भयंकर होता है ।

(१४३) तीखे सींगवाला बैल ।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ७।१९।१)

यस्तिग्मशृंगो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥ ८८८ ॥

(तिग्म-शृंगः भीमः वृषभः न) तीखे सींगवाले भयानक बैलके समान (यः एकः) जो अकेलाही (विश्वाः कृष्टीः प्र च्यावयति) सारी प्रजाओंको विशेष रीतिसे भगा देता है, और (यः) जो (अदाशुषः शश्वतः गयस्य) दान न देनेवालेके महान् घरको छीन लेता है, ऐसा तू (सुष्वितराय) खूब सोम रस निचोडनेवालेके लिये (वेदः प्रयन्ता असि) धनका दाता है।

तिग्मशृंगः वृषभः भीमः = तीखे सींगवाला बैल भयकर होता है । बारीक नोकदार सींगवाला बैल बडा भयकर होता है ।

इन्द्राणी । इन्द्रः । पंक्तिः । (ऋ० १०।८६।१५)

वृषभो न तिग्मशृङ्गोऽन्तर्यूथेषु रोरुवत् ।
मन्थस्त इन्द्र शं हृदे यं ते सुनोति भावयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ८८९ ॥

(यूथेषु अन्तः) झुण्डोंके भीतर (रोरुवत्) खूब गरजता हुआ (तिग्मशृंगः वृषभः न) तीखे सींगोंसे सज्ज बैलके समान तू है, हे इन्द्र ! (यं) जिस सोमरसको (ते) तेरे लिए (सुनोति) निचोडता है, वह (मन्थः) मथनेका डंडा (ते हृदे शं) तेरे मनको शान्तता दे, उसी प्रकार (भावयुः) भाव जाननेकी इच्छा करनेहारा भी हो, सबसे इन्द्र श्रेष्ठ है ।

यूथेषु अन्तः तिग्मशृंगः वृषभः रोरुवत् = गायोंकी झुण्डमें तीखे सींगवाला बैल गर्जना करता है । अर्थात् वह वहां दूसरे किसी बैलको आने नहीं देता ।

(१४४) बैलोंका रथ ।

सूर्या सावित्री । आत्मा । अनुष्टुप् । (अथर्व० १४।१।१०,११,१२)

मनो अस्या अन आसीद् द्यौरासीदुत च्छदिः ।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात् सूर्या पतिम् ॥ ८९० ॥

(अस्या मनः अनः आसीत्) इसका मन रथ बना था (उत द्यौः च्छदिः आसीत्) और द्युलोक छत हुआ (शुक्रौ अनड्वाहौ आस्तां) दो बलवान् बैल जोते थे, (यत् सूर्या पतिं अयात) जब सूर्या पतिके पास चली गयी ।

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावैताम् ।
श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः ॥ ८९१ ॥

(ते गावौ ऋक्-सामाभ्यां अभिहितौ) वे दोनों बैल ऋग्वेद और सामवेदके मन्त्रोंद्वारा प्रेरित हुए, (सामनौ एतां) शांतिसे चलते हैं । (श्रोत्रे ते चक्रे आस्तां) दोनों कान तेरे रथके दो चक्र थे, (दिवि पन्थाः चराऽचरः) द्युलोकमें तेरा मार्ग चर अचर रूप समस्त संसार है ।

सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत् ।
मघासु हन्यन्ते गावः फल्गुनीषु व्युह्यते ॥ ८९२ ॥

(य सविता अवासृजत) जिसे सविताने भेजा था, वह (सूर्याया वहतु प्रागात्) सूर्याका दहेज आगे गया है, (गावः मघासु हन्यन्ते) गौएं मघानक्षत्रोंमे भेजी जाती हैं और (फल्गुनीषु व्युह्यते) फल्गुनी नक्षत्रोंमें विवाह होता है।

यह वर्णन आलंकारिक है, परंतु इससे यह सिद्ध होता है कि बरातकी गाडीको बैल जोते जाते थे।

यहां 'मघासु गावः हन्यन्ते' ऐसा लिखा है, मघा नक्षत्रमें दहेजमें दी हुई गौवें पतिके घर पहुंचाई जाती हैं। 'हन्यन्ते' का अर्थ 'चलाना' है, मराठी भाषामें 'हाणणे' प्रयोग इस अर्थका है, ताडन करके योग्य मार्गसे ले चलना। अन्यथा 'हन्यन्ते' का अर्थ 'वध किया जाता है' ऐसा भी है, पर यह वधका अर्थ यहां नहीं है। सावधानी न रही तो अर्थका अनर्थ होनेकी संभावना रहती है।

यह प्रकरण विवाहका है। दहेज भेजनेका प्रसंग है। दहेजमें गौवें भेजी जाती हैं। उनको प्रथम भेजा जाता है। मघा नक्षत्रमें दहेज भेजा जाता है और फल्गुनी, (पूर्वा फल्गुनी, अथवा उत्तरा फल्गुनी) में विवाह किया जाता है।

विवाहसे गौका ऐसा संबंध है।

त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्यः, अश्वमेधश्च भारत राजानः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।२७।१)

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।
त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥ ८९३ ॥

हे (वैश्वानर अग्ने !) सब लोगोंके नेता अग्ने ! (सत्पतिः) सज्जनोंके पालनकर्ता, (असुरः मघोनः) बलवान और ऐश्वर्यसंपन्न, (चेतिष्ठः) अत्यन्त चेतनाशील (त्रैवृष्णः त्र्यरुणः) त्रिवृष्णका पुत्र त्र्यरुण (मे) मुझे (अनस्वन्ता गावा) गाडीसे युक्त बैलोंके युगलको (ममहे) दे चुका, (दशभिः सहस्रैः चिकेत) दस हजारका दान देनेके कारण वह सब जगह विख्यात हो गया।

अनस्वन्ता गावा मे ममहे = गाडीको जोते दो बैलोंका दान दिया अर्थात् गाडीके साथ दो बैलोंका दान दिया है।

(१४५) बैलको गाडीमें ढोना।

बन्धुःश्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुर्गौपायनाः। द्यावापृथिवी। पङ्क्त्युत्तरा (ऋ० १०।५९।१०)

समिन्द्रेरय गामनड्वाहं य आवहदुशीनराण्या अनः ।
भरतामप यद्रपो द्यौः पृथिवि क्षमा रपो मो षु ते किं चनाममत् ॥ ८९४ ॥

हे इन्द्र ! (गां अनड्वाहं) गमनशील बैलको (यः) जो उशीनराणी औषधिकी (अनः आवहत्) गाडीको ढो चुका हो उसे (सं ईरय) भलीभाँति प्रेरित कर और (यत् रपः) जो दोष हैं उसे (द्यौः पृथिवि क्षमा) द्युलोक, क्षमाशील भूलोक (अप भरतां) दूर हटा दें, (ते) तेरे लिए (किं चन रपः) कौनसा भी दोष (मो सु आममत्) न कभी दबा दे।

गां अनड्वाहं अनः आवहत = वेगवान् बैलको गाडीमें ढो चुका है। यहां 'गौ' पदका अर्थ 'गतिशील' है, क्योंकि यह 'गम्' धातुसे बना पद है।

(१४६) बैलका वीर्य।

ब्रह्मा। ऋषभः। अनुष्टुप्। (अथर्व० ९।४।२३)

उपेहोपपर्चनास्मिन्गोष्ठ उप पृञ्च नः।
उप ऋषभस्य यद्रेत उपेन्द्र तव वीर्यम् ॥ ८९५ ॥

(इह अस्मिन् गोष्ठे) यहाँ इस गौशालामें (उप उपपर्चन) समीप रह और (नः उप पृञ्च) हमें प्राप्त हो। (ऋषभस्य यत् रेतः) वृषभका जो वीर्य है, हे इन्द्र ! (तव वीर्यं उप) वह तेराही वीर्य है।

वृषभस्य रेतः (इन्द्रस्य) वीर्यम् = बैलका जो वीर्य है वही इन्द्रका वीर्य है। इन्द्रका वीर्य बैलमें रहता है। यह बैलका महत्त्व है।

(१४७) बैलमें बल।

विश्वामित्रो गाथिनः। रथाङ्गानि। बृहती। (ऋ० ३।५३।१८)

बलं धेहि तनूषु नो बलमिन्द्रानळुत्सु नः।
बलं तोकाय तनयाय जीवसे त्वं हि बलदा असि ॥ ८९६ ॥

हे इन्द्र ! (नः तनूषु) हमारे शरीरोंमें (बलं धेहि) बल रख दे, (नः अनडुत्सु बलं) हमारे बैलोंमें बल रहे, (तोकाय तनयाय) बालबच्चोंको (जीवसे बलं) जीवित रहनेके लिए बल देदो, क्योंकि (त्वं बलदाः असि) तू बल देनेवाला है।

अनडुत्सु बलं = बैलोंमें बल रहे।

(१४८) बैलको बधिया करना।

वामदेवः। द्यावापृथिवी, देवाः। अनुष्टुप्। (अथर्व० ३।९।२)

अश्रेष्माणो अधारयन् तथा तन्मनुना कृतम्।
कृणोमि वध्रि विष्कन्धं मुष्काबर्हो गवामिव ॥ ८९७ ॥

(अश्रेष्माणः अधारयन् न) थकनेवालेही किसीका धारण करते रहते हैं, (तथा तत् मनुना कृत) उसी प्रकार यह कार्य मनुने, मननशीलने, किया (मुष्काबर्हः गवां इव) बैलको बधिया करनेवाला जैसे बैलोंको निर्बल कर देता है, वैसेही मैं (वि स्कन्ध वध्रि कृणोमि) रोगादि विघ्नको निर्बल कर देता हूँ। दूर करता हूँ।

मुष्का - बर्हः गवां विष्कन्ध वध्रि = बधिया करनेवाला बैलोंको वधिया - नपूसक - बना देता है। इससे पता चलता है कि बैलको बधिया करनेकी पद्धति वैदिक कालमें थी। कई बैलोंको बधिया करते थे और कई बैल गायोंके लिये साँड गर्भधारणाके लिये रखे जाते थे।

(१४९) बैलोंपर लदकर धन लाना।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। उषाः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।६४।५)

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥ ८९८ ॥

हे उषः ! (या) जो तू (अवाता) अप्रतिहत रूपसे (जोषं अनु) प्रीतिके पश्चात् (वरं वहसि)

श्रेष्ठ धन ला देती है, (सा) वह तू (उक्षभिः आ वह) बैलोंके साथ इधर आ, (त्वं दिवः दुहिता) तू द्युलोककी कन्या है (या देवी ह) जो चमकनेवाली बनकर (पूर्व-हूतौ) पहिली पुकारके पश्चात् (मंहना) महनीय तेजसे (दर्शता भू.) देखनेयोग्य बन गयी।

उक्षभिः वर आ वह = बैलोंपर लदकर धन इधर ले आ।

(१५०) बैलके समान क्रोध।

शयुर्बार्हस्पत्य । इन्द्रः । सतो बृहती । (ऋ० ६।४६।४)

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ८९९ ॥

हे (ऋचीषम) ऋचाके अनुकूल स्वरूप रखनेवाले इन्द्र ! (घृषौ मीळ्हे) शत्रुको कुच युद्धमें (वृषभेव) बैलके तुल्य प्रबल (मन्युना) क्रोधसे (जनान् बाधसे) लोगोंको बाधा है, इसलिए (महाधने) बडे भारी धनको पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें (तनूषु अप्सु सूर्ये) शरीरोंकी रक्षा, जलोंकी प्राप्ति तथा सूर्यदर्शनके लिए (अस्माकं अविता बोधि) हमारा संरक्षक तू है, ऐसा जान ले।

वृषभेव मन्युना जनान् बाधसे= क्रोधी बैल लोगोंको कष्ट पहुंचाता है वैसा इन्द्र शत्रुओंको कष्ट देता है। यहां इन्द्रके वर्णन करनेके लिये बैलके क्रोधकी उपमा दी है।

(१५१) धान गौका रूप है।

अथर्वा। यमः, मन्त्रोक्ताः। अनुष्टुप्। (अथर्व० १८।४।३२)

धाना धेनुरभवद्वत्सो अस्यास्तिलोऽभवत् ।
तां वै यमस्य राज्ये अक्षितामुप जीवति ॥ ९०० ॥

(धाना धेनुः अभवत्) धान गो बनी है, (अस्याः वत्सः) इस धानरूपी गौका बछडा (तिलः अभवत्) तिल बनता है, (यमस्य राज्ये) यमके राज्यमें (तां वै अक्षितां) उसी न घटनेवाली गायपर (उप जीवति) आश्रित हुआ हुआ जीता है।

१ धेनुः धाना अभवत् = गौ ही धान्य बनी है। यहां ' गौ ' पद बैलका उपलक्षण है। बैल अपने श्रमसे धान्य उत्पन्न करता है।

२ अस्या वत्सः तिलः अभवत् = इसका बछडा तिल हुआ है।

३ तां उप जीवाति = उस गोपर उपजीविका करते हैं। बैलसे उत्पन्न धान्य खाते, और गायसे उत्पन्न दूध पीते हैं। इस तरह मनुष्योंकी उपजीविका करनेवाली गौ है।

(१५२) बैलपर सबका भार है।

भृग्वङ्गिरा । अनड्वान्, इन्द्रः । अनुष्टुप्। (अथर्व ४।११।८-९)

मध्यमेतदनडुहो यत्रैष वह आहितः ।
एतावदस्य प्राचीनं यावान्प्रत्यङ्‌ समाहितः ॥ ९०१ ॥

(अनडुहः एतत् मध्यं) इस वृषभका यह मध्य है, (यत्र एष वह आहितः) जहां यह विश्वका

भार रखा है (एतावद् अस्य प्राचीन) इतना इसका पूर्वभाग है, और (यावान् प्रत्यङ् समाहित) जितना पिछला भाग रखा है।

संचालक बलवान् इन्द्रदेवता यह मध्यभाग है, जिसपर इस संसाररूपी शकटका भार रखा है, इस मध्य भागके पूर्वभागमें और पश्चिमभागमें यह संसार रहा है।

यो वेदानडुहो दोहान्त्सप्तानुपदस्वतः।
प्रजां च लोकं चाप्नोति तथा सप्तऋषयो विदुः ॥ ९०२ ॥

(यः अनुपदस्वतः अनडुहः सप्त दोहान् वेद) जो विनाशको न प्राप्त होनेवाले इस संचालकके सात प्रवाहोंको जानता है, (प्रजां च लोकं च आप्नोति) वह प्रजा और लोकको प्राप्त होता है, (तथा सप्त-ऋषयः विदुः) ऐसा सात ऋषि जानते हैं।

जो इस संसाररूपी शकटके संचालक देवके सात दोहन-प्रवाहोंको जानता है, वह सुप्रजाको और पुण्य लोकोंको प्राप्त करता है, इसी प्रकार सप्त ऋषि जानते हैं। यहां प्रजापति परमेश्वरका रूप ही यह बैल है ऐसा वर्णन किया है जो बैलके महत्त्वको प्रस्थापित करता है।

(१५३) बैल अन्न उत्पन्न करता है।

भृग्वङ्गिराः। अनड्वान्, इन्द्रः। अनुष्टुप्। (अथर्व० ४।११।१०-११)

पद्भिः सेदिमवक्रामन्निरां जङ्घाभिरुत्खिदन्।
श्रमेणानड्वान्कीलालं कीनाशश्चाभि गच्छतः ॥ ९०३ ॥

यह बैल (पद्भिः सेदिं अवक्रामन्) पावोंसे भूमिका आक्रमण करता है, (जङ्घाभिः इरां उत्खिदन्) जंघाओंसे अन्नको उत्पन्न करता हुआ (श्रमेण कीलालं) परिश्रमसे रसको उत्पन्न करके (अनड्वान् कीनाशश्च) बैल तथा किसान (अभि गच्छतः) आगे चलते हैं।

बैल और किसान अन्न उत्पन्न करते हैं और इस संसारको अन्न तथा रस देते हैं।

द्वादश वा एता रात्रीर्व्रत्या आहुः प्रजापतेः।
तत्रोप ब्रह्म यो वेद तद्वा अनडुहो व्रतम् ॥ ९०४ ॥

(द्वादश वै एताः रात्रीः) निश्चयसे ये बारह रात्रियां (प्रजापतेः व्रत्याः आहुः) जो प्रजापतिके व्रतके लिये योग्य हैं, ऐसा कहा जाता है। (तत्र यः ब्रह्म उप वेद) वहां जो ब्रह्मको जानता है, (तत् वै अनडुहः व्रतं) वही उस बैलका व्रत है।

ये बारह रात्रियाँ हैं, जो प्रजापतिका व्रत करनेके लिये योग्य हैं। यहां प्रजापति बैल है क्योंकि यह अन्न उत्पन्न करके प्रजाओंका पालन करता है। वर्षमें बारह दिन और बारह रात्रितक बैल और गायोंका महोत्सव करना चाहिये। गोपा द्वादशीके दिन यह महोत्सव समाप्त होगा। इस दिन इनका जलूस निकाला जाता है।

(१५४) बैलोंसे हल खींचवाना खेत जोतना।

मेधातिथिः काण्वः। पूषा। गायत्री। (ऋ० १।२३।१५)

उतो स मह्यमिन्दुभिः षड्युक्ताँ अनुसेषिधत्। गोभिर्यवं न चर्कृषत् ॥ ९०५ ॥

(यव) जौका खेत (गोभिः चर्कृषत् न) जिस प्रकार बैलोंसे बारबार जोता जाता है उसी प्रकार

(सः मह्य) वह मेरे लिए (इन्दुभिः युक्ताम्) सोमोंसे युक्त (षट्) छः ऋतुओंको (अनुसेषिधत्) बारबार क्रमशः लाता रहे।

यहां ' गो ' पदका अर्थ बैल है। खेत जोतनेके लिए तीन या तीनोंसे भी अधिक बैलोंको जोतते हैं। (गोभिः= बलीवर्दैः) पदसे सूचित होता है कि तीन या अधिक बैल लगाये जाते थे।

(१५५) दूधसे नालीका सिञ्चन।

विश्वामित्र । सीता । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।१७।४)

इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु तां पूषाऽभि रक्षतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम् ॥ ९०६ ॥

(इन्द्र सीतां नि गृह्णातु) इन्द्र हलकी खींची हुई रेखाका पकडे, (पूषा तां अभि रक्षतु) पूषा उसकी रक्षा करे, (सा पयस्वती) वह दुग्धयुक्त होकर (नः उत्तरां उत्तरां समां दुहां) हमें आगे आनेवाले वर्षोंमें रसोंका प्रदान करे।

हलसे बनी हुई नालीमें दूधका खाद दिया जाय और पश्चात् धान्य बोया जाय। इससे रसदार धान उत्पन्न होता है। इस विषयमें आगेका मंत्र भी देखो—

(१५६) घी, शहद और दूधसे नालीका सिञ्चन।

विश्वामित्र । सीता । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ३।१७।९)

घृतेन सीता मधुना समक्ता विश्वैर्देवैरनुमता मरुद्भिः।
सा नः सीते पयसाऽभ्याववृत्स्वोर्जस्वती घृतवत् पिन्वमाना ॥ ९०७ ॥

(घृतेन मधुना) घीसे और शहदसे (स अक्ता सीता) भली भाँति सींची हुई यह नाली जिसपर कि हल चलाया जा चुका है, (विश्वे देवैः मरुद्भिः अनुमता) सभी देवों तथा मरुतोंद्वारा अनुमोदित होकर (सा सीते) ऐसी वह जुती हुई भूमि ! (घृतवत पिन्वमाना) घीसे सींची हुई बनकर (नः पयसा अभ्याववृत्स्व) हमें दूधसे पूर्णतया युक्त कर।

हलसे बनी नालीका दूध, घी और शहदसे सिंचन करके पश्चात् बीज बोया जाय, तो मीठा रसदार धान उत्पन्न होता है। *

(१५७) बीस बैलोंका पकना।

इन्द्रः, वृषाकपिरिन्द्राणी च । इन्द्र । पङ्क्तिः । (अथर्व० २०।१२६।१४, ऋ० १०।८६।१४)

उक्षणो हि मे पञ्चदश साकं पचन्ति विंशतिम्।
उताहमद्मि पीव इदुभा कुक्षी पृणन्ति मे विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ॥ ९०८ ॥

(मे) मेरेलिए (उक्षणः विंशतिं) बीस बैलोंको (पंचदश) पंद्रह ऋत्विज (साकं पचन्ति)

---

* वाईमें स्वर्गीय प. काशिनाथ वामन लेलेजीने एक वर्ष इस तरह खेती की थी, उस समय उससे बहुत अच्छा रसदार स्वादु धान्य आया था। तथा पूनाके पेशवाओंके प्रधान स्व० नाना फडणवीसजीने अपने मेणवाडी ग्राममें अपने घरके पासके मंदिरके पास एक आमका वृक्ष लगाया था। उस वृक्षके मूलमें मंदिरकी देवताकी पूजासे पंचामृतस्नानसे शहद, शकर, दूध, दही, घी आदि पदार्थ प्रतिदिन जाते थे। जिससे उस आमका फल अत्यंतही स्वादु बना था। अतः इसका अनुभव अधिक लेना योग्य है।

साथ ही साथ पक्व करते हैं (उत अहं) और मैं (पीव इत्) मोटे शरीरवाला होता हुआ ही उनको (अद्मि) खा जाता हूँ, तथा (मे उभा कुक्षी) मेरे उदरके दोनों भागोंको (पृणन्ति) सोमसे भर देते हैं, इसलिए (विश्वस्मात् इन्द्रः उत्तरः) सबसे इन्द्र श्रेष्ठतर है।

पञ्चदश उक्षणः विंशति साक पचन्ति = पदरह आदमी बीस बैलोंको पकाते हैं।

अद्मि = उनको मैं खाता हूं और

पीव = मैं मोटे शरीरवाला होता हू।

उभा कुक्षी पृणन्ति = दोनों कोखें सोमपानसे भर दी जाती हैं।

यहा बीस बैलोंको पकाना, खाना और सोम पीना, यह वर्णन मास-भक्षण करने और मदिरा पीनेके समान दीखता है। परंतु वेदमें गायों और बैलोंको 'अघ्न्य' अर्थात् अवध्य कहा है। इसलिये अवध्यता मान करही इसका अर्थ करना चाहिये। वेदकी परिभाषा यह है कि 'पय पशूनां' पशुवाचक पद दुग्धबोधक रहता है। इसलिये यहा गोदुग्ध लिया जाना चाहिये। दूधमें चावल पकानेका यहा विधान दीखता है। धेनु ही धान बनी हे ऐसा भी कहा है। इसलिये धान्य-चावल और गोदुग्धका पाक यहा लेना चाहिये। 'ऋषभ कन्द' भी अर्थ ले सकते हैं। यह पुष्टि और आयुवर्धक है। 'बीस गौओंके दूधका पाक होता था' यह इसका अर्थ है।

यहा कईयोंने 'पञ्चदश विंशतिं' अर्थात् तीनसोकी सख्या मानी है और इन्द्रके लिये ३०० उक्षाओंका पाक होता था ऐसा माना हे। जिस समय किसी राजाके लिये भोजन बनता है उस समय उसके साथ खानेवाले जितने होते हैं, उन सबका यह भोजन होता है। और राजाके साथ सैकडोंकी सख्यामें भोजन करनेवाले होते है।

यहा 'ऋषभक कद' है या बैलही है इसका अधिक विचार होना चाहिये। बैलको 'अ-वध्य' माननेके पश्चात् उसका वध नहीं हो सकता। इसलिये वेदके ऐसे सपूर्ण स्थलोंका इकट्ठाही विचार होना चाहिये।

(१५८) गाइयोंके लिये युद्ध।

वामदेवो गौतमः। दधिक्रा। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।३८।४)

यः स्मारुन्धानो गध्या समत्सु सनुतरश्चरति गोषु गच्छन्।
आविर्ऋजीको विदथा निचिक्यत्तिरो अरतिं पर्याप आयोः॥ ३०९॥

(यः स्म) जो सचमुच (समत्सु गध्या आरुन्धानः) लडाइयोंमें मिलानेयोग्य धनोंको प्राप्त करता हुआ (गोषु गच्छन्) गायोंमें संचार करता है अर्थात् युद्धमें शत्रुके साथ लडता है। (सनुतर चरति) और धनोंका अपने वीरोंमें विभजन करता हुआ संचार करता है और (आविर्ऋजीक) विजयके साधनोंको स्पष्ट करके (विदथा विचिक्यत्) युद्धविषयका जाननेयोग्य बातोंको निश्चित करता है, वही (आयोः) मानवके (अरातिं) शत्रुको (परि तिरः) पूर्ण रूपसे परास्त करता है।

गोषु गच्छन् = गाइयोंके लिये युद्ध करनेवाला। गाइयोमें जाना इसका अर्थही 'युद्ध करना' है। यह एक वैदिक महावरा है। गाइयोंमें जानेका अर्थ युद्ध करके शत्रुसे गाइयोंको छुडाना।

(१५९) घीसे लिपटा बैल जैसा अग्नि।

चित्रमहा वासिष्ठ। अग्नि। जगती। (ऋ० १०।१२२।४)

यज्ञस्य केतुं प्रथमं पुरोहितं हविष्मन्त ईळते सप्त वाजिनम्।
शृण्वन्तमग्निं घृतपृष्ठमुक्षणं पृणन्तं देवं पृणते सुवीर्यम्॥ ३१०॥

(यज्ञस्य केतुं) यज्ञके ज्ञापक, (प्रथम वाजिनं पुरोहित) पहले विद्यमान, बलवान एवं आगे रखे

हुए (घृतपृष्ठं) घीसे लिप्त, (शृण्वन्त) प्रार्थनाको सुनते हुए, (देवं) दानी (पृणते पृणन्त) दानी पुरुषको दान देनेवाले, (उक्षण अग्नि) बैल जैसे सामर्थ्यवान अग्निको (सप्त हविष्मन्तः ईळते) हवि साथ रखनेवाले सात लोग प्रशंसित करते हैं।

यहां अग्निको बैलकी उपमा दी है। जैसा अग्निपर घीका हवन होता है, वैसा बैल घी लगे जैसी चमकीले पीठवाला दीखता है। घी लगाकर जैसी पीठ चमकती है वैसी पीठवाला बैल। घोडेका भी ऐसा वर्णन है।

(१६०) बैलकी गर्जना।

त्रिशिरास्त्वाष्ट्र। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।८।१)

प्र केतुना बृहता यात्यग्निरा रोदसी वृषभो रोरवीति।
दिवश्चिदन्ताँ उपमाँ उदानळपामुपस्थे महिषो ववर्ध ॥ ९११ ॥

अग्नि (वृषभ रोरवीति) बैलके समान खूब गरजता है और (बृहता केतुना) बडे भारी झण्डेसे (रोदसी आ प्र याति) द्यावापृथिवीमें चारों ओर यथेष्ट सचार करता है। (दिवः अन्तान् चित् उपमान्) द्युलोकके अंतिम छोरोंतक और समीपस्थ भागोंमें भी (उदा-नट्) व्याप्त होता है, तथा (महिषः) बडे रूपवाला भैंसा जैसा मेघ (अपां उपस्थे ववर्ध) जलोंके समीप बढ चुका है।

वृषभ रोरुवत् = बैल गर्जना करता है। बैलकी गर्जना उसकी शक्तिकी द्योतक है। यहां भी अग्निके वर्णनके लिये ' वृषभ ' पदका उपयोग किया है।

(१६१) बैलके समान गर्जती नदी।

सिन्धुक्षित्प्रैयमेध.। नद्य.। जगती। (ऋ०१०।७५।३)

दिवि स्वनो यतते भूम्योपर्यनन्तं शुष्ममुदियर्ति भानुना।
अभ्रादिव प्र स्तनयन्ति वृष्टयः सिन्धुर्यदेति वृषभो न रोरुवत् ॥ ९१२ ॥

(यत् सिन्धु) जब नदी (वृषभ न) बैलके समान (रोरुवत् एति) गरजती हुई आती है, तब (भूम्या उपरि) भूमण्डलके ऊपर (दिवि स्वनः यतते) द्युलोकमें शब्द ऊपर उठनेका प्रयत्न करता है, (भानुना) दीप्तिके साथ (अनन्त शुष्म उत् इयर्ति) असीम बल ऊपर उठता है और (अभ्रादिवः) मानों मेघमण्डलसे ही (वृष्टयः प्र स्तनयन्ति) वर्षाएँ खूब गरजती हैं।

वृषभ. रोरुवत एति = बैल गर्जना करता हुआ आता है। यहां नदीकी गर्जनाके साथ बैलकी गर्जनाकी तुलना की है। हिमालय की उतराईपरसे नदी नीचे आते समय बडी गर्जना करती हुई आती है। उसकी तुलना बैलके साथ हो सकती है। सम भूमीपर की नदियां नहीं गर्जना करतीं। अतः यह वर्णन हिमालयपरसे आनेवाली नदियोंका होना संभवनीय है।

(१६२) बैल और गाय।

त्रित आप्त्यः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।५।७)

असच्च सच्च परमे व्योमन् दक्षस्य जन्मन्नदितेरुपस्थे।
अग्निर्ह नः प्रथमजा ऋतस्य पूर्व आयुनि वृषभश्च धेनुः ॥ ९१३ ॥

(अदितेः उपस्थे) अदितिके समीप (दक्षस्य जन्मन्) दक्षके जन्मके मौकेपर (परमे व्योमन्)

उच्च आकाशमें (सत् च असत् च) सत् एव असत दोनों विद्यमान थे। (नः प्रथम-जाः ह अग्निः) हमारा प्रथम उत्पन्न जो अग्नि है और वही (ऋतस्य पूर्वे आयुनि) ऋतके प्राथमिक कालमें (वृषभ धेनुः च) बैल एव गायके रूपमें विद्यमान था।

वृषभः धेनुः = बैल और गाय ये अग्निके रूप हैं।

(१६३) बैल जलके पास जाता है।

त्रित आप्त्य । अग्नि । त्रिष्टुप्। (ऋ० १०।४।५)

कूचिज्जायते सनयासु नव्यो वने तस्थौ पलितो धूमकेतुः।
अस्नातापो वृषभो न प्र वेति सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ताः ॥ ९१४ ॥

(पलित धूमकेतु) पालनकर्ता या श्वेतवर्णवाला वह जिसका झण्डा धुआँ है वह अग्नि (वने तस्थौ) जंगलमें खडा रह चुका है, प्रदीप्त हुआ है और (कूचित्) कहीं एकाधवार (सनयासु नव्य जायते) पुरानी वनस्पतियोंमें नया रूप धारण कर प्रकट होता है, वह (अस्नाता) स्नान न करनेवाला होकर भी (वृषभ न) बैलके तुल्य (अप प्र वेति) जलोंके समीप चला जाता है, (य सचेतस मर्ताः प्र नयन्त) जिसे विद्वान् मानव विशेष ढंगसे ले चलते हैं।

वृषभः अपः प्र वेति = बैल जलके पास जाता है। पानी पीनेके लिये बैल जलप्रवाहके पास जाता है, वैसा अग्नि-विद्युत् अग्नि- मेघोंमें चमकता है।

(१६४) वृषभ अग्नि।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । अग्नि । जगती । (ऋ० १।३१।५)

त्वमग्ने वृषभः पुष्टिवर्धन उद्यतस्रुचे भवसि श्रवाय्यः।
य आहुतिं परि वेदा वषट्कृतिमेकायुरग्रे विश आविवाससि ॥ ९१५ ॥

हे (अग्ने) अग्ने ! (पुष्टि-वर्धनः वृषभः) पोषण करनेहारा और बलवान तू (उद्यतस्रुचे श्रवाय्यः भवसि) हाथमें स्रुचा धारण करनेवाले यजमानके लिए प्रशंसनीय बनता है, (य वषट्कृतिं आहुतिं परि वेद) जो ' वषट् ' उच्चारपूर्वक आहुति दान की विधि जानता है (एकायु अग्रे विश आविवाससि) वह अकेला दीर्घजीवनसे युक्त हो प्रथमतः समूची प्रजाको विशेष ढगसे बसाता है अर्थात् सबको रहनेके लिए जगह दे देता है।

यहाँपर, अग्निको (वृषभ) बैल कहा है। ' वृषभ ' शब्द बलवाचक है और इधर सम्मान दर्शानेके लिए प्रयुक्त हुआ है। पूजनीय देवताके लिए भी बैलवाचक वृषभ शब्दका प्रयोग होता है, जिससे प्रतीत होता है कि ' वृषभ ' शब्दमें कितनी पवित्रता थी। आजकल किसीको ' तू बैल है ' ऐसा कहा जाय तो उसको क्रोध आवेगा। पर वैदिक समयमें सब इन्द्रादि देवोंको और वीरोंको ' वृषभ ' अर्थात् बैल कहा जाता था। भरी सभामें भी इन्द्रको बैल कहा तो वह उस इन्द्रके लिये अच्छा प्रतीत होता था, इतना आदर बैलके विषयमें वैदिक समयमें था।

' वृषा, वृषभ' शब्दोंका धात्वर्थ ' वृष्टि करनेवाला, वीर्यका सिंचन करनेवाला, वीर्यवान् ' है।

नोधा गौतम । अग्निर्वैश्वानरः। त्रिष्टुप्। (ऋ० १।५९।६)

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत्काष्ठा अव शम्बरं भेत् ॥ ९१६ ॥

(पूरवः) सभी मनुष्य (यं वृत्र-हणं) जिस वृत्रके वधकर्ताकी (सचन्ते) सेवा करते हैं, (य)

जो (अग्नि दस्यु जघन्वान्) अग्नि शत्रुका वध करता है, (काष्ठाः अधूनोत्) सभी दिशाओंको विकम्पित कर डालता है और (शम्बरं अव भेत्) शंबरको पददलित कर देता है, (तस्य नु) सचमुच उस (वृषभस्य) बलवान अग्निका (महित्व) बडापन (प्र वोचे) मैं कह रहा हूँ।

वृषभस्य माहित्व प्र वोचे = बैलका महत्त्व कहता हूं। यहां बैल अग्नि ही है॥ प्रचण्ड सामर्थ्यवान् इस अर्थमें यह शब्द यहां है।

सुतम्भर आत्रेय। अग्नि। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।१२।१)

प्राग्नये बृहते यज्ञियाय ऋतस्य वृष्णे असुराय मन्म।
घृतं न यज्ञ आस्येऽ सुपूतं गिरं भरे वृषभाय प्रतीचीम्॥ ९१७॥

(बृहते) बडे भारी (यज्ञियाय) पूजनीय (असुराय) बलिष्ठ (वृषभाय) बलवान (ऋतस्य वृष्णे) जलकी वर्षा करनेवाले (अग्नये) अग्निके लिए (प्र मन्म) प्रकृष्ट मननसाधक स्तोत्र तथा (प्रतीचीं गिरं) सम्मुख खडे रहकर किया हुआ भाषण, (यज्ञे) यज्ञमें (सुपूत घृत) अत्यन्त विशुद्ध घी (आस्ये न) जैसे मुँहमें सहर्ष डाला जाता है, उसी प्रकार सहर्ष (भरे) मैं प्रेरित करता हूँ।

वृषभाय अग्नये प्र मन्म = बैल जैसे बलिष्ठ अग्निके लिये यह स्तोत्र है।

भर्ग प्रागाथ। अग्नि। बृहती। (ऋ० ८।६०।१३)

शिशानो वृषभो यथाऽग्निः शृङ्गे दविध्वत्।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः॥ ९१८॥

अग्नि (वृषभः यथा) बैल जैसे (शृंगे शिशान दविध्वत्) सींग तेज करता हुआ हिलाता है, यह (सुजम्भः सहसः यहुः) तीक्ष्ण जबडेवाला एवं बलका पुत्र है, (अस्य हनवः) इसके हनु (प्रतिधृषे तिग्माः) शत्रुके लिए तीव्र हैं।

अग्निः वृषभः शृंगे शिशानः = अग्नि बैल जैसा सामर्थ्यवान है जो अपनी सींगें तेज करता है।

(१६५) वृषभ अग्नि गोपालक है।

गृत्समद (आंगिरस. शौनहोत्रः पश्चात्) भार्गव शौनक। अग्नि। त्रिष्टुप्। (ऋ० २।९।२)

त्वं दूतस्त्वमु नः परस्पास्त्वं वस्य आ वृषभ प्रणेता।
अग्ने तोकस्य नस्तने तनूनामप्रयुच्छन्दीद्यद्बोधि गोपाः॥ ९१९॥

हे (वृषभः अग्ने) बलिष्ठ अग्ने! (त्वं दूतः) तू हमारा दूत बन, (त्वं ऊँ नः) तूही हमारा (परः पाः) शत्रुओंसे रक्षा करनेवाला है, (त्वं वस्यः) तूही धन (आ प्रनेता) प्राप्त कर देनेवाला है, (अ-प्रयुच्छन्) भूल न करते हुए (दीद्यत्) सुहानेवाला तूही है, (त्वं नः) तू हमारे (तोकस्य तने) बालबच्चोंका तथा (तनूनां) शरीरोंका (गोपाः) संरक्षक है। (बोधि) तू इसे जान ले।

वृषभ अग्ने! त्वं न गोपाः = हे बैल जैसे सामर्थ्यवान अग्नि! तू हम सबका रक्षक है।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । अग्निः । जगती । (ऋ० १।३१।१२)

त्वं नो अग्ने तव देव पायुभिर्मघोनो रक्ष तन्वश्च वन्द्य ।
त्राता तोकस्य तनये गवामस्यनिमेषं रक्षमाणस्तव व्रते ॥ ९२० ॥

हे (वन्द्य ! अग्ने देव !) वन्दनीय अग्नि-देव ! (त्वं तव पायुभिः) तू अपने रक्षणोंके कारण (मघोनः नः) धनवान बने हुए हम मानवोंके और (तन्वः च रक्ष) हमारे शरीरोंका संरक्षण कर, (तोकस्य तनये) उसी प्रकार हमारे पुत्रपौत्रोंके लिए (तव व्रते) तेरे व्रतमें स्थित लोगोंका सदैव (रक्षमाणः) संरक्षक तथा (गवां त्राता) गौओंका रक्षणकर्ता बन ।

अग्नि (गवां त्राता) गौओंका पालनकर्ता है । यज्ञसे गौओंकी रक्षा होती है और गोरक्षणसे पुत्रपौत्रोंकी रक्षा होती है । इसलिये अग्नि सबकी रक्षा करता है । अग्निसे यज्ञ होता है, यज्ञके लिये गौ चाहिये, इसलिये यज्ञके कारण गोरक्षा होती है । गोरक्षा होनेसे सब मानवोंकी सुरक्षा होती है । इस तरह अग्नि गोरक्षण करता है ।

(१६६) गौओंसे संपृक्त अग्नि ।

कुत्स आंगिरसः । अग्निः, ओषधोऽग्निर्वा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९५।८)

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः ।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ९२१ ॥

(कविः धीः) ज्ञानी और बुद्धिमान अग्नि (सदने) अपने घरमें रहकरही (गोभिः अद्भिः) गौओंके झुण्ड एवं जलप्रवाहसे (सं-पृञ्चानः) संलग्न होकर (यत्) जब (त्वेषं उत्-तरं) तेजस्वी और सर्वोपरि (रूपं कृणुते) स्वरूप धारण करता है, प्रदीप्त होता है, तथा (बुध्नं) अपने आधार स्थानको (परि मर्मृज्यते) तेजसे ढक देता है, (सा देवताता) तब देवोंकी फैलाई हुई वह यज्ञकी (समितिः बभूव) सभा होती है, उस समय मानों यज्ञका ज्ञानसत्र हुआ करता है ।

गोभिः संपृञ्चानः = गौओंसे जुडा हुआ अग्नि, घृतसे नहलाया हुआ अग्नि, जिस अग्निमें घीकी आहुति डाली गयी हो वैसा अग्नि ।

वसिष्ठ । अग्निः । भुरिक् । (अथर्व० ३।२१।२)

यः सोमे अन्तर्यो गोष्वन्तर्य आविष्टो वयःसु यो मृगेषु ।
य आविवेश द्विपदो यश्चतुष्पदस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ॥ ९२२ ॥

(यः सोमे गोषु अन्तः) जो सोममें तथा गायोंके भीतर है, (यः वयःसु मृगेषु आविष्टः) जो पक्षियोंमें और मृगोंमें घुस चुका है, (यः द्विपदः चतुष्पदः आविवेश) जो मानवों एवं जानवरोंमें प्रविष्ट हुआ है (तेभ्यः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु) उन अग्नियोंके लिए यह हवन रहे ।

गोषु अन्तः अग्निभ्यः एतत् हुतं अस्तु = गौओंके अन्दर विद्यमान अग्नियोंके लिये यह हवन है । अग्नि सबमें है वैसा वह गौओंमें भी है । इस अग्निके लिये योग्य अन्न अर्पण करना चाहिये ।

अथर्वा । भूमिः । पुरोबृहती । (अथर्व० १२।१।१९)

अग्निर्भूम्यामोषधीष्वग्निमापो बिभ्रत्यग्निरश्मसु ।
अग्निरन्तः पुरुषेषु गोष्वश्वेष्वग्नयः ॥ ९२३ ॥

(भूम्यां ओषधीषु) भूमि तथा ओषधियोंमें अग्नि है, (आपः अग्निं बिभ्रति) जलसमूह अग्निका

धारण करते हैं, (अश्मसु अग्निः) पत्थरोंमें अग्नि है, (पुरुषेषु अन्तः) मानवोंके मध्य अग्नि है, (अश्वेषु गोषु अग्नयः) घोडों ओर गायोंमें अग्निके प्रकार विद्यमान हैं।

गोषु अग्नयः = गौओंमें अग्नि है।

(१६७) गोस्थानमें क्रव्याद् अग्नि।

भृगुः। अग्निः, मन्त्रोक्ता। त्रिष्टुप्। (अथर्व० १२।२।४)

यद्यग्निः क्रव्याद् यदि वा व्याघ्र इमं गोष्ठं प्रविवेशान्योकाः।

तं माषाज्यं कृत्वा प्रहिणोमि दूरं स गच्छत्वप्सुषदोऽप्यग्नीन् ॥ ९२४ ॥

(यदि क्रव्यात् अग्निः) अगर मांस खानेवाला अग्नि (यदि वा अ-नि-ओकः अग्निः) या बिना घरका अग्नि (इमं गोष्ठं प्रविवेश) इस गोशालामें घुस गया, तो (माषाज्यं कृत्वा) माष-घीसे युक्त अन्न तैयार करके (दूरं प्रहिणोमि) दूर भगा देता हूँ, (सः अप्सुसदः अग्नीन् गच्छतु) वह जलोंमें रहनेवाले अग्नियोंके समीप चला जाए।

अनुष्टुप् (अथर्व० १२।२।१५)

यो नो अश्वेषु वीरेषु यो नो गोष्वजाविषु।

क्रव्यादं निर्णुदामसि यो अग्निर्जनयोपनः ॥ ९२५ ॥

(यः नः अश्वेषु वीरेषु) जो हमारे घोडोंमें तथा वीर पुरुषोंमें (यः नः अजाविषु गोषु) जो हमारी भेड बकरियोंमें तथा गौओंमें, (यः जनयोपनः अग्निः) जो लोगोंको कष्ट देनेवाला अग्नि है, उस (क्रव्यादं निः नुदामसि) मांसाहारी अग्निको हम दूर करते हैं।

(अथर्व० १२।२।१६)

अन्येभ्यस्त्वा पुरुषेभ्यो गोभ्यो अश्वेभ्यस्त्वा।

निः क्रव्यादं नुदामसि यो अग्निर्जीवितयोपनः ॥ ९२६ ॥

(यः जीवितयोपनः अग्निः तं क्रव्यादं) जो जीवनाशक अग्नि है, उस मांसभक्षकको (अन्येभ्यः पुरुषेभ्यः) दूसरे मानवोंसे (गोभ्यः अश्वेभ्यः त्वा) गौओंसे तथा घोडोंसे तुझे (निः नुदामसि) पूर्णतया दूर हटाते हैं।

(अथर्व० १२।२।१७)

यस्मिन् देवा अमृजत यस्मिन् मनुष्या उत।

तस्मिन् घृतस्तावो मृष्ट्वा त्वमग्ने दिवं रुह ॥ ९२७ ॥

(यस्मिन् मनुष्याः उत देवाः अमृजत) जिसमें मानव तथा देव शुद्ध हुए (तस्मिन् घृतस्तावः मृष्ट्वा) उसमें घृतकी आहुतियाँ देकर, शुद्ध होकर, हे अग्ने! (त्वं दिवं रुह) तू स्वर्गपर चढ।

पुरस्ताद्बृहती। (अथर्व० १२।२।३७)

अयज्ञियो हतवर्चा भवति नैनेन हविरत्तवे।

छिनत्ति कृष्या गोर्धनाद् यं क्रव्यादनुवर्तते ॥ ९२८ ॥

वह मनुष्य (अयज्ञियः हतवर्चाः भवति) अपवित्र और निस्तेज होता है, (एनेन हविः अत्तवे न) इसका दिया हुआ अन्न खानेयोग्य नहीं होता, (कृष्याः गोः धनात् छिनत्ति) कृषि, गाय और धनसे वह बिछुड जाता है, (यं क्रव्याद् अनुवर्तते) जिसके साथ प्रेतमांसभक्षक अग्नि चलता है।

मेव जलानेवाला अग्नि गौओंको कष्ट न देवें ।

(१९८) गौओंका अधिपति इन्द्र ।

कुत्स आंगिरस । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १ । १०१ । ४)

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः ।
वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ९२९ ॥

(यः अश्वानां गवां) जो घोडों तथा गौओंका (गोपतिः) स्वामी है, (यः वशी) जो स्वतन्त्र है, (यः कर्मणि कर्मणि स्थिरः) हरएक कर्ममें स्थिर तथा अटलरूपसे रहता है जो (आरितः) प्राप्त करनेके लिए योग्य है, (यः इन्द्रः) और जो इन्द्र (असुन्वतः वीळोः चित् वधः) सोमयाग न करनेहारे बलवान् शत्रुका भी वध करनेवाला है, उस (मरुत्वन्तं) मरुतोंके साथ रहनेवाले इन्द्रको (सख्याय) मित्रताके लिये हम (हवामहे) बुलाते हैं ।

इन्द्र गौओंका अधिपति है । यज्ञसे इन्द्रकी प्रसन्नता होती है और गौओंसे यज्ञ होते हैं । इसलिये गौओंका पालन इन्द्र करता है ।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० १।९।४)

असृग्रमिन्द्र ते गिरः प्रति त्वामुदहासत । अजोषा वृषभं पतिम् ॥ ९३० ॥

हे इन्द्र इन्द्र ! (ते गिरः असृग्रम्) मैंने तेरी सराहना की है और उसे तू (अजोषाः) प्रीतिपूर्वक सेवन कर चुका है [तूने वह प्रशंसा सुन ली है.] (वृषभं पतिं त्वां प्रति) बैल जैसे बलवान पालनकर्ता तुझे वह सराहना (उत् अहासत) भलीभाँति पहुँचती है ।

इस मंत्रमें (वृषभं पतिं) पदोंसे इन्द्रका वर्णन किया गया है । ध्यानमें रहे कि इन्द्रको बैलकी उपमा दी गयी है और इस शब्दसे बडप्पन व्यक्त होता है । इससे ज्ञात होता है कि उस युगमें बैलका महत्व कितना माना जाता था । देवोंके प्रमुख अधिपति इन्द्रको ' बैल ' विशेषण लगानेसे उसे भूषणसा प्रतीत होता था । इतना गौरव तथा आदर वैदिक युगमें बैलोंको प्राप्त था ।

' वृष ' वृष्टि करना इस अर्थके धातुसे ' वृष-भ ' पद वृष्टिसे भर देनेवाला इस अर्थमें बनता है । इससे आगे ' कामनाओंको पूर्ण करनेवाला ' इस पदका अर्थ होता है । पर ये सभी अर्थ बैलमें भी घटते हैं; क्योंकि यहां बैलही सब सुखोंको देनेवाला है । धान्य, धन और पुष्टि देनेवाला बैल है ।

प्रियमेध आङ्गिरसः । इन्द्रः । उष्णिक् । (ऋ० ८।६९।२)

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ ९३१ ॥

(वः) तुम्हारे (ओदतीनां योयुवतीनां नदं) उषाओंके तथा हिलामिलनेवाली नदियोंके उत्पादक (वः अघ्न्यानां धेनूनां पतिं) तुम्हारी अवध्य गायोंके अधिपति इन्द्रको बुलाता हूँ, क्योंकि (इषुध्यसि) तू अन्नकी कामना करता है ।

अघ्न्यानां धेनूनां पतिं = अवध्य गौओंका स्वामी । ' धेनूनां पतिं ' का अर्थ ' बैल ' है, यह इन्द्रका गुणबोधक विशेषण है ।

प्रियमेध आंगिरसः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६९।४)

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ९३२ ॥

(सत्यस्य सूनुं) सत्यके पुत्र (सत्पतिं) सज्जनोंके पालनकर्ता (गोपतिं इन्द्रं) गौओंके मालिक इन्द्रको (यथा विदे) जैसे वह समझ सके, उस ढंगसे (गिरा प्र अभि अर्च) भाषणसे सामने खडे रहकर यथेष्ट पूजित कर ।

गोपतिं (इन्द्रं) अभ्यर्च = गौओंके स्वामी (इन्द्रकी) पूजा कर ।

(१६९) वृषभ इन्द्र ।

सव्य आंगिरस । इन्द्र । जगती । (ऋ० १।५४।२)

अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभि ष्टुहि ।

यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते ॥ ९३३ ॥

(यः वृषा) जो बलिष्ठ वीर (वृषत्वा) अपने बलसे (वृषभः) सबल बन चुका है, वह (धृष्णुना शवसा) शत्रु दलपर हमला करनेके लिये पर्याप्त सामर्थ्यसे (रोदसी) द्युलोक एवं पृथिवीलोकको (नि- ऋञ्जते) सुशोभित करता है, (तस्मै) उस (शचीवते) बुद्धिवान (शाकिने) शक्ति सपन्न (शक्राय) इन्द्रकी (अर्च) उपासना कर और उनका (महयन्) वर्णन करते हुए उसे (शृण्वन्तं इन्द्रं) सुननेहारे इन्द्रकी (अभि स्तुहि) सराहना कर ।

इस मंत्रमें इन्द्रको ' वृषभ ' पदसे संबोधित किया है । इन्द्रका अप्रतिम बल दर्शानेके लिये इस विशेषणका उपयोग किया है ।

(१७०) मानव जातिके हितके लिए लडनेवाला वृषभ ऋषि ।

हिरण्यस्तूप आंगिरसः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १ । ३३ । १४)

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।

शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ ९३४ ॥

[इन्द्र !] हे इन्द्र ! [यस्मिन् चाकन्] जिसे तुम प्यार करते हो, उस [कुत्सं] कुत्स नामक ऋषिको [आवः] तुम सुरक्षित रख चुके हो और [युध्यन्तं वृषभं] अपने शत्रुसे लडनेवाले बलिष्ठ बैल जैसे [दशद्युं] दसों दिशाओंमें तेजसे चमकनेवाले वीर ऋषिका तू [प्र आवः] भलीभाँति संरक्षण कर चुका है, उस समय [शफच्युतः रेणुः] घोडोंके पैरोंसे ऊपर उडायी हुई धूल [द्यां नक्षत] आकाशतक पहुँच गयी, और [श्वैत्रेयः] अग्निकी उपासना करनेहारा वीर [नृ-सह्याय] लोगोंको सह्य प्रतीत हो ऐसा विजय पानेके लिये [उत् तस्थौ] ऊपर उठ खडा हुआ ।

जिस भाँति इन्द्र सभी लोगोंकी रक्षा करके सहायता पहुँचाता है, ठीक वैसेही सभी वीर अपनी शक्तिका विनियोग [नृ-सह्याय] मानव जातिके हितके लिएही, विजयी बननेके हेतु, करें । यहां ' वृषभ दशद्यु ' सामर्थ्यवान् दशद्यु ऋषिको इन्द्रने सहायता की है । यह ऋषि [युध्यन्तं] युद्ध कर रहा था, शत्रुसे लड रहा था । वह [वृषभ] बडा बलवान् अर्थात् पराक्रमी था । यहां एक ऋषिका वर्णन वृषभ पदसे किया है ।

(१७१) बैल जैसा बलिष्ठ इन्द्र ।

प्रगाथः काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।६३।९)

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥ ९३५ ॥

[वृष्णः अस्य] बैल जैसे बलशाली इस इन्द्रके [वि ओदने] विविध अन्नमें [जीवसे उरु

क्रमिष्ट] जीवनार्थ विशाल रूपसे सचार करता है । और [पश्वः यवं न] मवेशी जौको जिस तरह लेते हैं, वैसेही [आ ददे] उस अश्वको ग्रहण करते हैं ।

वृषा इन्द्र = बलवान् इन्द्र ।

(१७२) बैलके समान पराक्रमी ।

प्रगाथो (घौरः) काण्व । इन्द्रः । सतोबृहती । (ऋ० ८।१।२)

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाऽजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयंकरं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ ९३६ ॥

[वृषभ यथा] बैलके तुल्य [अवक्रक्षिण] शत्रुओंको नीचे गिरानेवाले, [गां न चर्षणीसहं] बैलके समान शत्रुसेनाका पराभव करनेवाले [अजुर] जीर्ण न होनेवाले, [मंहिष्ठ] अत्यन्त दान देनेवाले [विद्वेषण] दुष्टोंका द्वेष करनेवाले, [उभयाविन] द्विविध धनसे युक्त, [उभयंकरं] अनु-ग्रह और प्रतिकार दोनोंके कर्ता, [सवनना] भक्तोंने ठीक तरह भजनीय इन्द्रकी स्तुति की ।

वृषभ गां चर्षणीसह सवनना=सामर्थ्यवान् बैल जैसे शत्रुका पराभव करनेवाले (इन्द्र) की प्रशंसा भक्त करते है । यहां ' वृषभ यथा ' ' बैल जैसे सामर्थ्यवान् ' ऐसे पदोंसे इन्द्रका वर्णन किया है ।

(१७३) गायोंकी वृद्धि करनेवाला इन्द्र ।

भर्गः प्रागाथः । इन्द्र । सतोबृहती । (ऋ० ८।६१।६)

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ९३७ ॥

हे देवतारूपी इन्द्र ! तू (गवां पुरुकृत्) गायोंकी वृद्धि करनेहारा (अश्वस्य पौर) अश्वकी पूर्ति करनेवाला और (हिरण्ययः उत्सः) मानों सौवर्णमय झरना है, (त्वे दानं) तुझमें जो दान देनेका सामर्थ्य है, उसे (नकि हि परि मर्धिषत्) न कोई दबा सकता है, इसलिये (यत् यत्) जो जो (यामि तत् आ भर) मैं मॉंगूँ वह दे डाल ।

गवां पुरुकृत् = गायोंकी वृद्धि करनेवाला इन्द्र है । गायोंकी पूर्तता करनेवाला इन्द्र है ।

(१७४) बहुत गायें अपने पास रखनेवाला इन्द्र ।

प्रगाथो (घौर) काण्व । इन्द्रः । पङ्क्तिः । (ऋ०८।६२।१०)

उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ९३८ ॥

हे (भूरि-गो मघवन् इन्द्र) बहुतसी गायें रखनेवाले ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र ! (तव शर्मणि) तेरे कारण जो सुखमें रहते हैं, वे (त्वां) तुझको, (तव क्रतुं) तेरे कार्यको, (ते जातं शव) तेरे उत्पन्न सामर्थ्यको (भूरि उत् वावृधुः) यथेष्ट वृद्धिंगत कर चुके हैं, क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) इन्द्रके दान अति कल्याणकारक हैं ।

भूरिगो इन्द्रः = इन्द्र बहुत गौएँ अपने पास रखता है ।

(१७५) गायोंके साथ इन्द्रके पास जाना।

मेधातिथिः काण्वः, प्रियमेधश्चाङ्गिरसः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।२।६)

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ९३९ ॥

(यत् अस्मत् अन्ये) जो हमसे भिन्न दूसरे लोग (व्राः मृगं न) व्याध हिरनको जैसे ढूंढते हैं, वैसेही (ईं) इस इन्द्रको (गोभिः मृगयन्ते) गायोंके साथ लेकर खोजते हैं और (धेनुभिः अभित्सरन्ति) गायोंसे समीप जा पहुँचते हैं।

ईं गोभिः मृगयन्ते धेनुभिः अभित्सरन्ति = इन्द्रको गौओंके द्वारा ढूंढते हैं और गायोंके साथ उसके समीप जाते हैं। अर्थात् इन्द्रका संबंध गायोंसे अटूट है।

(१७६) विश्वशकटका चलानेवाला बैल।

भृग्वङ्गिराः। अनड्वान्, इन्द्रः। जगती। (अथर्व० ४।११।१)

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्व१न्तरिक्षम्।
अनड्वान् दाधार प्रदिशः षळुर्वीरनड्वान्विश्वं भुवनमा विवेश ॥ ९४० ॥

(अनड्वान् पृथिवीं दाधार) विश्वरूपी शकटको चलानेवाले वृषभ जैसे सामर्थ्यशाली इन्द्रने पृथ्वीका धारण किया है। (अनड्वान् द्यां उत उरु अन्तरिक्षं दाधार) इसी ईश्वरने द्युलोक और यह बडा अन्तरिक्ष धारण किया है। (अनड्वान् षट् उर्वीः प्रदिशः दाधार) इसी ईश्वरने छः बडी दिशाओंको धारण किया है, (अनड्वान् विश्वं भुवनं आ विवेश) यही ईश्वर सब भुवनमें प्रविष्ट हुआ है ॥

इन्द्रने पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्युलोक और छः दिशाओंका धारण किया है और वह सब भुवनोंमें प्रविष्ट हुआ है। यहां इन्द्रकी शक्ति बतानेके लिये इन्द्रको ' वृषभ ' कहा है।

(१७७) वृषभ इन्द्र सब भूतोंका निर्माता है।

भृग्वङ्गिराः। अनड्वान्, इन्द्रः। भुरिक्। (अथर्व० ४।११।२)

अनड्वानिन्द्रः स पशुभ्यो वि चष्टे त्रयांछक्रो वि मिमीते अध्वनः।
भूतं भविष्यद् भुवना दुहानः सर्वा देवानां चरति व्रतानि ॥ ९४१ ॥

(सः अनड्वान् इन्द्रः) यह अनड्वान् इन्द्र है, वह (पशुभ्यः वि चष्टे) पशुओंका निरीक्षण करता है, (शक्रः त्रयान् अध्वनः वि मिमीते) यह समर्थ प्रभु तीनों मार्गोंको नापता है। (भूतं भविष्यत् भुवना दुहानः) भूत, भविष्य और वर्तमान कालके पदार्थोंको निर्माण करता हुआ, (देवानां सर्वा व्रतानि चरति) देवोंके सब व्रतोंको चलाता है।

इसी इन्द्रको 'अनड्वान्' कहते हैं, वह सबका निरीक्षक है, इसी समर्थ इन्द्रने तीनों लोकोंके मार्गोंको निर्माण किया है। भूत, भविष्य और वर्तमानकालके सब पदार्थोंका निर्माण करता हुआ, व सब अन्यान्य देवताओंके व्रतोंको चलाता है। यहां विश्वाधार प्रभुको अनड्वान् (बैल) कहा है।

(१७८) बैल इन्द्रको जानना ।

भृग्वङ्गिराः । अनड्वान्, इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (अथर्व० ४।११।३)

इन्द्रो जातो मनुष्येऽष्वन्तर्घर्मस्तप्तश्चरति शोशुचानः ।

सुप्रजाः सन्त्स उदारे न सर्षद्यो नाश्नीयादनडुहो विजानन् ॥ ९४२ ॥

(इन्द्रः मनुष्येषु अन्तः जातः) इन्द्र मनुष्योंके अंदर जन्मता है, वह (तप्तः घर्मः शोशुचानः चरति) तपनेवाले सूर्यको अधिक तपाता हुआ चलता है । इस (अनडुहः विजानन्) गाडीके चलानेवाले इन्द्रको जानता हुआ (यः न अश्नीयात्) जो अपने लिये भोग न करेगा (सः) वह (सुप्रजाः सन्) सुप्रजावान् होकर (उत् आरे न सर्षत्) देहपातके पश्चात् नहीं भटकता है ।

यह प्रभु मनुष्योंके बीचमें जन्मता है, वह प्रकाशमान सूर्यको भी अधिक तपाता है, इस सामर्थ्यवान् ईश्वरको जानना चाहिये । जो स्वार्थी भोगतृष्णाको छोडता हुआ इसको जानता है, वह सुप्रजावान् होकर, देहपातके पश्चात् इधर उधर न भटकता हुआ, अपने मूलस्थानको प्राप्त करता है ।

अनडुहः विजानन् = विश्वरूप गाडीको चलानेवाले प्रभुरूपी बैलको जानना चाहिये ।

(१७९) वृषभ इन्द्र सबकी तृप्ति करता है ।

भृग्वङ्गिराः । अनड्वान्, इन्द्रः । जगती । (अथर्व० ४।११।४)

अनड्वान् दुहे सुकृतस्य लोक ऐनं प्याययति पवमानः पुरस्तात् ।

पर्जन्यो धारा मरुत ऊधो अस्य यज्ञः पयो दक्षिणा दोहो अस्य ॥ ९४३ ॥

(सुकृतस्य लोके अनड्वान् दुहे) पुण्यलोकमें यह वृषभ बलवान् प्रभु तृप्ति करता है और (पुरस्तात् पवमानः एनं आप्याययति) पहिलेसे पवित्र करता हुआ इसको बढाता है । (पर्जन्यः अस्य धाराः) पर्जन्य इसकी धाराएं हैं, (मरुतः ऊधः) मरुत् अर्थात् वायु स्तन हैं, (अस्य यज्ञः पयः) इसका यज्ञही दूध है और (अस्य दक्षिणा दोहः) इसकी दक्षिणा दूधके दोहनपात्र हैं ।

यह ईश्वर पुण्यलोकमें सबकी तृप्ति करता है, और प्रारंभसे सबको पवित्र करता हुआ, इस जीवकी शक्तिको बढाता है, पर्जन्य इसकी पुष्टिकी धाराएं हैं, वायु या प्राण इसके स्तन हैं, जिनसे उक्त धाराएं निकलती हैं। यज्ञही पुष्टिकारक दूध है, जिससे सबकी वृद्धि होती है और दक्षिणा दोहनपात्रके समान सबको आधार देती है ।

(१८०) वृषभमें व्याप्त इन्द्र ।

भृग्वङ्गिराः । अनड्वान्, इन्द्रः । अवसाना षट्पदाऽनुष्टुब्गर्भोपरिष्टाज्जागतानिचृच्छक्वरी (अथर्व० ४।११।७)

इन्द्रो रूपेणाग्निर्वहेन प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् ।

विश्वानरे अक्रमत वैश्वानरे अक्रमतानडुह्यक्रमत । सोऽदृंहयत सोऽधारयत ॥ ९४४ ॥

(इन्द्रः रूपेण अग्निः) इन्द्रही अपने रूपसे अग्नि है, वही (परमेष्ठी प्रजापतिः) परमात्मा, प्रजापालनकर्ता ईश्वर है और (वहेन विराट्) सब विश्वको उठानेके कारण विराट् हुआ है । वही (विश्वानरे अक्रमत) सब नरोंमें व्यापता है, वही (वैश्वानरे अक्रमत) अग्नि आदिमें फैला है, वही (अनडुहि अक्रमत) रथ खींचनेवाले बैल आदि प्राणियोंमें फैला है । (सः अदृंहयत) वही दृढ करता है, और (सः अधारयत) वही धारण करता है ।

इन्द्रही अग्नि, परमेष्ठी, प्रजापति और विराट् है, वही सब मनुष्यों और प्राणियोंमें व्याप्त है, वही सर्वत्र है और वही सबको बल देता है । बैल इस प्रभुका रूप है ।

(१८१) गायोंका दान।

'गायका का दान करूंगा' ऐसी वाणी बोलो।

वसिष्ठ । वायुस्त्वष्टा । अनुष्टुप् । (अथर्व० ३।२०।१०)

गोसनिं वाचमुदेयं वर्चसा माऽभ्युदिहि ।
आ रुन्धां सर्वतो वायुस्त्वष्टा पोषं दधातु मे ॥ ९४५ ॥

(गोसनिं वाचं उदेय) गोदान करनेवाली वाणीका उच्चार करूँ, (मा वर्चसा अभ्युदिहि) मुझे तेजके साथ प्रकाशित कर, (वायु सर्वतः आ रुन्धां) प्राण मुझे सब ओरसे घेरे रहे, (त्वष्टा मे पोषं दधातु) त्वष्टा मेरी पुष्टिको देता रहे।

गो. सनिं वाच उदेय = गायका दान करनेकाही वचन मैं बोलूंगा। बोलना हो, तो 'गायका दान करूंगा' ऐसा ही वचन बोलना योग्य है।

लव ऐन्द्र । (आत्मा) इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० १०।११९।१)

इति वा इति मे मनो गामश्वं सनुयामिति । कुवित्सोमस्यापामिति ॥ ९४६ ॥

(इति वै इति) इस ढंगसे या उस ढंगसे (गां अश्वं सनुया) गाय और घोडेको देदूँ (इति मे मनः) ऐसा मेरे मनका आशय है, क्योंकि मैं (सोमस्य) सोमके रसको (कुवित् अपां इति) बहुत बार पी चुका हूँ।

किसी ढगसे गायका दान करना योग्य है।

(१८२) गायका दान देनेसे कोई रोके नहीं।

कुसीदी काण्वः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।८१।३)

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम् । भीमं न गां वारयन्ते ॥ ९४७ ॥

हे वीर ! (दित्सन्तं त्वा) दान देनेकी इच्छा करनेवाले तुझको (न मर्तासः) न मानव और (नहि देवाः) न देव भी (भीमं गां न) भीषण रूपवाले गायको जैसे कोई नहीं रोकता वैसेही कोई तुझे (न वारयन्ते) हटाते नहीं हैं।

अर्थात् दान करनेकी इच्छा करनेवाला दान करता ही है, उसे कोई नहीं रोकता। रोकनेपर भी दान करनेकी इच्छा करनेवाला अवश्यही दान करे। गायका दान करनेसे कोई किसीको न रोके।

(१८३) गायका दान करनेवाली वाणी।

गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।१४।३)

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते । गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ९४८ ॥

हे इन्द्र ! (ते सूनृता धेनुः) तेरी सत्यपूर्ण गौके समान आनन्ददायक वाणी (सुन्वते यजमानाय) सोमरस निचोडनेवाले यजमानके लिए (पिप्युषी) पुष्टिकारक होती हुई (गां अश्वं दुहे) गाय एवं घोडेका दे देती है।

इन्द्रकी वाणी गौको देती है अर्थात् इन्द्र जब बोलता है, तब गायका दान करनेवाला भाषण ही करता है। भाषण करनेपर गौका दान करता है।

उशना काव्य । अग्निः । गायत्री । (ऋ० ८।८४।७)

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दंपते । गोषाता यस्य ते गिरः ॥ ९४९ ॥

हे (दम्पते) गृहके स्वामिन् ! (यस्य ते गिरः) जिस तेरे भाषण (गो-षाता) गायें देनेवाले होते हैं, ऐसा तू (नून) सचमुच (कस्य परीणसः) भला किसके बहुतसे (धियः जिन्वसि) कर्मोंको प्रेरित करता है ?

'ते गिरः गो साता' = तेरी वाणियाँ गौओंका दान देनेवाली है। इन्द्रके समान अग्नि भी गौओंका दान करनेवाला है।

शुनहोत्रो भारद्वाज । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।३३।५)

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन् दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ९५० ॥

हे इन्द्र ! (नून) सचमुच आजके दिन और (अपराय च) दूसरे दिन भी (नः स्याः) हमारा बनकर रह, (उत नः अभिष्टौ) और हमारी इच्छित वस्तुकी प्राप्तिमें (मृळीक भव) सुख देनेवाला बन। (इत्था) इस ढगसे (गोषतमा गृणन्तः) गायोंका उत्तम वितरण करनेवाले हम प्रशंसा करते हुए (पार्ये दिवि) दुःखोंके पार ले चलनेवाले द्युलोकमें (महिनस्य शर्मन्) बडे भारी सुखमें (स्याम) हम रहें ।

'गो-ष-तमाः' = गौओंका अतिशय दान करनेवाले बननेकी इच्छा यहां प्रकट हुई है ।

मेधातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरस । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।२।३९)

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान् । ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥ ९५१ ॥

(य) जो (पदेभ्यः ऋते चित्) पैरोंके चिन्हके विना भी (शचीवान्) शक्तिमान होनेके कारण (नृभ्य सखा) मानवोंको मित्र बनकर (गाः दात्) गौएँ देता है, इसलिए (ये) जो लोग (अस्मिन्) इस इन्द्रमें (काम अश्रियन्) अपनी इच्छाको आश्रयार्थ रख चुके हैं ।

इन्द्र गौओंको प्रदान करता है, इसलिये उसके आश्रयमें लोग रहते हैं । 'इन्द्र गाः नृभ्यः दात्'—इन्द्र गाय मानवोंको देता है, इसी तरह मनुष्य भी गायोंका दान करे ।

वामदेवो गौतमः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ४।२२।१०)

अस्माकमित्सु शृणुहि त्वमिन्द्रास्मभ्यं चित्राँ उप माहि वाजान् ।
अस्मभ्यं विश्वा इषणः पुरंधीरस्माकं सु मघवन् बोधि गोदाः ॥ ९५२ ॥

हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र ! (अस्माकं इत्) हमारी ही स्तुतियाँ (त्व सु शृणुहि) तू भलीभाँति सुन लेना, (अस्मभ्य चित्रान् वाजान्) हमें विलक्षण अन्नका (उप माहि) प्रदान कर, (विश्वा पुरन्धीः) सभी बुद्धियोंको (अस्मभ्य इषणः) हमें प्रेरित कर (अस्माकं सु गोदाः बोधि) हमारे लिए सुन्दर ढगसे गोधन देनेवाला तू बन ।

गायोंका दान करनेवाला इन्द्र है । 'गोदाः' गायें देनेवाला इन्द्र है । 'गो-द' पदका ही अंग्रेजीमें God शब्द बना है ऐसा कईयोंका विचार है ।

(१८४) अतिथिको गौ देनेवाला ।

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।५३।८)

त्वं करञ्जमुत पर्णयं वधीस्तेजिष्ठयाऽतिथिग्वस्य वर्तनी ।
त्वं शता वङ्गृदस्याभिनत् पुरोऽनानुदः परिषूता ऋजिश्वना ॥ १५३ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं) तू (करञ्ज उत पर्णयं) करंज तथा पर्णय नामधारी राक्षसोंको (अतिथिग्वस्य) अतिथिग्वकी (तेजिष्ठया वर्तनी) तेजस्वी शक्तिसे (वधीः) मार चुका और (अनानुदः त्वं) अनुचरोंके बिना भी तूने (ऋजिश्वना परिषूता) ऋजिश्व नामक नरेशकी घेरी हुई (वङ्गृदस्य) वंगृद नामक असुरकी (शता पुरः) सैकडों नगरियोंका (अभिनत्) नाश किया है।

' करंज, पर्णय, वंगृद ' नामवाले राक्षस या असुर थे । अतिथिको गाय देनेवाला, या अतिथिकी सेवाके लिए गाय रखनेवाला ऋषि ' अतिथिग्व ' कहा जाता है । ध्यानमें रहे कि वंगृदके सैकडों नगर दुर्गतुल्य ही मजबूत थे, परंतु वे सब कीले इन्द्रने तोड दिये और अतिथिको गायोंका दान करनेवालोंकी सुरक्षाके लिये उन असुरोंका नाश किया गया । इससे गौओंका दान करना बडा उपयोगी है यह सिद्ध होता है । अतिथिको गौका दान करनेवाला प्रभुको प्रिय होता है ।

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती (ऋ० १।५१।६)

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥ १५४ ॥

हे इन्द्र ! (त्वं शुष्णहत्येषु) तू शुष्ण नामक राक्षसोंसे लडते समय (कुत्सं आविथ) कुत्सको बचा चुका, (अतिथिग्वाय शम्बरं) अतिथिको गौका दान करनेवालेके लिए शंबरको (अरंधयः) मार चुका, (महान्तं चित् अर्बुदं) अतिशय पराक्रमशील अर्बुदको भी अपने (पदा निक्रमीः) पैरोंसे ही ठुकरा चुका (सनात् दस्युहत्याय) चिरकालसे शत्रुओंका वध करनेमें तू (जज्ञिषे) जय पाता रहा है ।

' अतिथि-ग्व ' अर्थात् अतिथिको गौ देनेवाला जो है, उसकी सुरक्षाके लिये प्रभु उसके सब शत्रुओंको परास्त करता है । गौके दानका इतना महत्त्व है ।

(१८५) दक्षिणामें गौका दान ।

दिव्य आङ्गिरसः, दक्षिणा । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।१०७।७)

दक्षिणाश्वं दक्षिणा गां ददाति दक्षिणा चन्द्रमुत यद्धिरण्यम् ।
दक्षिणान्नं वनुते यो न आत्मा दक्षिणां वर्म कृणुते विजानन् ॥ १५५ ॥

दक्षिणा (अश्वं गां ददाति) घोडे तथा गायका दान करती है । वही दक्षिणा (चन्द्रं उत यत् हिरण्यं) सुवर्ण एवं रमणीय चाँदी वगैरह बहुमूल्य धातु देती है और (अन्नं वनुते) अन्न भी दे डालती है, (नः यः आत्मा) हमारा जो आत्मा है, वह (विजानन्) विशेष रीतिसे इस दानके तत्त्वको जानता हुआ (दक्षिणां वर्म कृणुते) दक्षिणाको मानो अपना कवच बनाता है ।

दक्षिणामें गौवें, घोडे, चाँदी, सोना तथा अन्न देना हितकारक है । यह दान कवचरूप होकर दाताको सुरक्षित रखता है । अर्थात् गौके दानसे सुरक्षितता प्राप्त होती है ।

(१८६) रोगचिकित्साके लिये गायका अर्पण।

भिषक् आथर्वणः। ओषधयः। अनुष्टुप्। (ऋ० १०।९७।४)

ओषधीरिति मातरस्तद्वो देवीरुप ब्रुवे। सनेयमश्वं गां वास आत्मानं तव पूरुष ॥९५६॥

हे ओषधियां ! (मातरः इति) माताओंके समान तुम्हें हितकारक मानकर (देवीः वः तत् उप ब्रुवे) दिव्य गुणयुक्त तुमसे मैं यह बात कह देता हूँ, हे पुरुष ! उस उत्तम गुणको पानेके लिये (गां अश्वं) गाय, घोडे तथा (वासः आत्मानं) कपडा और अपने आपको भी (तव सनेयं) तुझ को अर्पण कर दूँ।

गौका दान करनेसे बहुत लाभ होते हैं। यहां भिषक् (वैद्य) और औषधियोंका संबंध है, इससे स्पष्ट है कि, वैद्यके द्वारा परीक्षापूर्वक ओषधियोंके सेवनके पथ्य रूपमें गोदुग्धके सेवन करनेका संबंध स्पष्ट है।

अथर्वा। वरुणः (प्रश्नोत्तरम्)। भुरिक्। (अथर्व० ५।११।१)

कथं महे असुरायाब्रवीरिह कथं पित्रे हरये त्वेषनृम्णः।

पृश्निं वरुण दक्षिणां ददावान् पुनर्मघ त्वं मनसाचिकित्सीः ॥ ९५७ ॥

(महे असुराय कथं अब्रवीः) बडे शक्तिमानके लिये तुमने क्या कहा ? और (त्वेषनृम्णः इह हरये पित्रे कथं) स्वयं तेजस्वी होता हुआ तू यहां दुःख हरण करनेवाले पिताके लिये भी क्या कहा है ? (वरुण !) हे श्रेष्ठ प्रभो ! (पुनर्मघ) वारवार धन देनेवाले देव ! (पृश्निं दक्षिणां ददावान्) गौकी दक्षिणा देता हुआ (त्वं मनसा अचिकित्सीः) तूने मनसे हमारी चिकित्सा की है।

पूर्व मन्त्रमें जो अथर्वा ऋषि है वही यहांका ऋषि है। तथा (त्वं मनसा चिकित्सीः) मानस-चिकित्सा करनेका भी यहां स्पष्ट उल्लेख है। मनसे चिकित्सा करनेका तात्पर्य मनमें शुभविचार स्थापन करनेसे रोगनिवृत्ति करना है। जिसपर मानस-चिकित्साका प्रयोग करना है, उसको गोरसका सेवन करनेका पथ्य पालन करना अत्यावश्यक है, इसलिये यहां उसको गायका दान देनेका उल्लेख है।

मानसचिकित्सा की पद्धति इसी मन्त्रसे सूचित होती है वह इस तरह है-- (महे असु-राय) बडा प्राणशक्तिका खजाना परमेश्वरही है, उसको अपना उपास्य जानकर उसके शुभगुणोंका वर्णन करना और उन शुभगुणोंका धारण अपने अन्दर करना। (हरये पित्रे) दुःखोंका हरण करनेवाला परम पिता है, उससे बल प्राप्त करना। यह तो मानसिक और बौद्धिक विधि है और साथ साथ गौके दूध दही घी आदिका सेवन करना यह पथ्य है। इस तरह यह चिकित्सा हो सकती है और इसके लिये ही यह गौका दान है।

अथर्वा। वरुण (प्रश्नोत्तरम्)। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ५।११।८)

मा मा वोचन्नराधसं जनासः पुनस्ते पृश्निं जरितर्ददामि।

स्तोत्रं मे विश्वं आ याहि शचीभिरन्तर्विश्वासु मानुषीषु दिक्षु ॥ ९५८ ॥

(जनासः मा अराधसं मा वोचन्) लोग मुझे धनहीन न कहें इसलिये (हे जरितर्) हे स्तुति करनेवाले ! (पृश्निं ते पुनः ददामि) इस गौको मैं पुनः तुझे दान देता हूँ। (विश्वासु मानुषीषु दिक्षु अन्तः) सब मनुष्योंसे युक्त दिशाओंके बीचमें-प्रदेशोंमें- (शचीभिः मे विश्वं स्तोत्रं आ याहि) शक्ति बढानेवाले विचारोंसे बनाये हुए मेरे इस संपूर्ण स्तोत्रको प्राप्त हो, अर्थात् आकर सुन लो।

सब मानवोंमें शक्तियोंका प्रकर्ष करनेवाला यह सूक्त है। इस सूक्तका पाठ करनेसे शक्तिकी वृद्धि होगी। मानस-

चिकित्सामें ऐसे शक्तिके उत्कर्ष करनेवाले मन्त्रोंके पाठको अत्यंत आवश्यकता रहती है। इस सूक्तका यही अथर्वा ऋषि है जो पूर्व मंत्रोंमें चिकित्सा करनेवाला ऋषि कहा है। यहां गौका दान पुन कहा है।

(१८७) इन्द्रका वर गौएँ प्रदान करता है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० १।८।८)

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही। पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ९५९ ॥

(अस्य) इस इन्द्रकी (विरप्शी मही सूनृता) विशेष प्रशंसनीय एवं बडी प्रभावशालिनी वाणी (गो-मती) गौओंसे युक्त होनेके कारण वह (पक्वा शाखा न) पके फलोंसे लदी हुई टहनीके तुल्य (दाशुषे एव हि) दानीकोही [फल देनेवाली होती है]

इन्द्रके आशीर्वाद या वरसे गौएँ पाना सुगम होता है। इन्द्रकी कृपा हो तो गौ लाभ होना कुछ कठिन कार्य नहीं है।

(१८८) दानसे प्राप्त गौएँ।

प्रस्कण्वः काण्वः। इन्द्र। बृहती (ऋ० ८।४९।५)

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥ ९६० ॥

हे (स्वधावन् इन्द्र) अन्नवाले इन्द्र ! (सोतृभिः हियानः) निचोडनेवालों द्वारा प्रेरित हुआ सोमरस (अश्वः न) घोडेके समान दौडता हुआ (नः स्तोमं उप आ द्रवत्) हमारे अग्निष्टोम यज्ञके प्रति चला आए, (यं) जिसे (ते कण्वेषु रातयः) तेरे भक्त कण्वोंमें दानके स्वरूप प्राप्त हुई (धेनवः स्वदयन्ति) गौएँ अपने दूधसे उक्त सोमरसको स्वादु बनाती हैं।

ऋषि कण्वोंको दानमें अनेक गौवें प्राप्त हुई, जो गौवें यज्ञके स्थानमें रहती हुई, उसी यज्ञमें तैयार किये गये सोमरसको अपने दूधसे अत्यंत स्वादु बना रही है।

(१८९) ब्राह्मणोंको गौएँ देनेवाला इन्द्र।

कुत्स आंगिरसः। इन्द्रः। जगती। (ऋ० १।१०१।५)

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ९६१ ॥

(यः) जो (प्राणतः विश्वस्य जगतः) प्राणधारी समूचे जगत्का (पतिः) स्वामी है, (यः) जो (ब्रह्मणे) ब्राह्मणोंके लिए (प्रथमः) पहले, अन्य काम छोडकर (गाः अविन्दत्) गौएँ प्राप्त करता है और (यः इन्द्रः) जो इन्द्र (दस्यून्) शत्रुओंको (अधरान्) नीच अवस्थामें ले जाकर (अव-अतिरत्) मार डालता है, उस (मरुत्वन्तं) मरुतोंकी सहायतासे युक्त इन्द्रको (सख्याय हवामहे) हम मित्रता प्रस्थापित करनेके लिए बुलाते हैं।

यह इन्द्र दूसरे सभी कार्य छोडकर, पहले ब्राह्मणोंको गौएँ दिलानेका काम निभाता है। यदि कोई चोर ब्राह्मणोंकी गौएँ चुरा ले जाय, तो उन्हें ढूंढकर यह इन्द्र गो स्वामीके पास गौओंके झुंड पहुँचा देता है। ब्राह्मण उन गौओंसे यज्ञ करते रहें इसलिये इन्द्र इस तरहकी सहायता उनको देता है।

नभ प्रभेदनो वैरूप । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० १०।११२।८)

प्र ते इन्द्र पूर्व्याणि प्र नूनं वीर्या वोचं प्रथमा कृतानि ।

सतीनमन्युरश्रथायो अद्रिं सुवेदनामकृणोर्ब्रह्मणे गाम् ॥ ९६२ ॥

हे इन्द्र ! (ते पूर्व्याणि प्रथमा कृतानि) तेरे पूर्वकालीन प्रारंभिक या दूसरोंके पहिले किये हुए कार्य (नूनं प्र वोचं) सचमुच मैं लोगोंके सामने वर्णन कर चुका हूं, (सतीनमन्युः) जिसका क्रोध निरर्थक नहीं है ऐसा तू (अद्रिं अश्रथायः) शत्रुके किलोंको तोडकर (ब्रह्मणे गां सुवेदनां अकृणोः) ब्राह्मणके लिए गौको सहजहीसे प्राप्त करने योग्य बना दिया ।

अर्थात् शत्रुके किलोंको तोड दिया, और शत्रुने चुराई गौओंको सहजहीसे ब्राह्मणोंको वापस मिलने योग्य बना दिया। जिसकी जो गावें थीं, वह उसको दे डालीं। राजाका यह कर्तव्य है कि, चुराई गौवें चोरसे प्राप्त करके वह ब्राह्मणोंको वापस दे देवे।

मेध्य काण्वः । इन्द्रः । बृहती । (ऋ० ८।५३।१)

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणां ।

पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदं ईशानं राय ईमहे ॥ ९६३ ॥

हे (मघवन् इन्द्र) ऐश्वर्यसंपन्न प्रभो ! (मघोनां उपमं) ऐश्वर्यके उपमानभूत (वृषभाणां ज्येष्ठं च) और बलवानोंमें श्रेष्ठ (त्वा पूर्भित्तमं) तुझको शत्रुनगरियोंके अत्यन्त सफलतापूर्वक भेदन करनेवाले, (गोविदं) गायोंको पानेहारे तथा (रायः ईशानं ईमहे) धनसंपदाके प्रभुके स्वरूपमें चाहते हैं ।

इन्द्र गायोंको प्राप्त करता है अर्थात् शत्रुकी नगरियोंको तोडकर, वहां की सब गौओंको प्राप्त करके, उन गौओंका दान करता है।

बभ्रुरात्रेयः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।३०।११)

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।

पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥ ९६४ ॥

(यत् बभ्रुधूताः) जब बभ्रुद्वारा निचोडे हुए (सोमाः ईं अमन्दन्) सोमरस इसे आनन्द दे चुके, तब (वृषभः सदनेषु अरोरवीत्) यह बलिष्ठ वीर युद्धोंमें अथवा यज्ञस्थानोंमें गर्जना करने लगा, (पुरन्दरः इन्द्रः) शत्रुनगरियोंको तोडनेवाला इन्द्र (अस्य पपिवान्) इस रसका सेवन कर चुकनेपर (उस्रियाणां गवां) दुधारु गौओंका दान (पुनः अददात्) फिरसे देने लगा ।

इन्द्रः उस्रियाणां गवां पुनः अददात् = इन्द्र दुधारु गौओंका दान पुनः पुनः करता है ।

विश्वामित्रो गाथिनः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३४।९)

ससानात्याँ उत सूर्यं ससानेन्द्रः ससान पुरुभोजसं गाम् ।

हिरण्ययमुत भोगं ससान हत्वी दस्यून्प्रार्यं वर्णमावत् ॥ ९६५ ॥

इन्द्रने (अत्यान् ससान) घोडोंको दे दिया (उत) और (सूर्यं ससान) सूर्यका दान भी किया, (पुरुभोजसं गां) पुष्टिकारक अन्न देनेवाली गौ (ससान) दे डाली, (उत) उसी प्रकार (हिरण्ययं भोगं) सुवर्णमय उपभोगके साधन (ससान) दे दिये, (दस्यून् हत्वी) दस्युओंका वध करके (आर्यं वर्णं प्र आवत्) श्रेष्ठ वर्णवाले लोगोंका भलीभाँति रक्षण किया ।

इन्द्र पुरुभोजसं गां सस्मान = इन्द्र बहुतोंको भोजन देनेवाली गौको देता है। गौ अपने दूधसे बहुतोंको भोजन देती है, इसलिये उसका दान करना योग्य है।

गौरिवीतिः शाक्त्य । इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।२९।३)

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।

तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ९६६ ॥

(उत) और (अस्य मे) इस मेरे (सुषुतस्य सोमस्य) भलीभाँति निचोडे हुए सोमरसका (ब्रह्माण मरुत इन्द्रः) बडे भारी मरुत तथा इन्द्र (पेयाः) पी लेवें, (हव्यं तत् हि) हवनीय वह रस सचमुच ही (मनुषे) मानवको (गाः अविन्दत्) गायें दिलाता है, (अस्य पपिवान्) इसको पीनेवाला इन्द्र (अहिं अहन्) अहिको मार सका।

इन्द्रः मनुषे गाः अविन्दत = इन्द्र मानवको गौएँ प्राप्त कराता है।

गृत्समद आंगिरसः शौनहोत्रः पश्चात् भार्गवः शौनकः । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० २।३०।७)

न मा तमन्न श्रमन्नोत तन्द्रन्न वोचाम मा सुनोतेति सोमम् ।

यो मे पृणाद्यो ददद्यो निबोधाद्यो मा सुन्वन्तमुप गोभिरायत् ॥ ९६७ ॥

(यः मे पृणात्) जो मेरी इच्छा पूर्ण करता है, (यः ददत्) जो दान देता है, (यः नि बोधात्) जो सब कुछ जानता है, (यः सुन्वन्तं मा) जो सोमरस निचोडनेवाले मुझको (गोभिः उप आयत्) कई गायें साथ लेकर प्राप्त होता है, वह (मा न तमत्) मुझे कष्ट न दे, (न श्रमत्) दुःख न पहुँचाये, (उत न तन्द्रत्) और न आलसी बना दे। उसके लिए (सोमं मा सुनुत) सोमरस न निचोडो (इति) ऐसा (न वोचाम) हम किसीसे न कहेंगे। अर्थात् उस इन्द्रको सोमरस अवश्य देंगे।

यः गोभिः उपायत् = वह इन्द्र हमारे लिये गौएँ देनेके लिये अपने साथ बहुतसी गाएँ लेकर आता है। (उसको हम सोमरस देते हैं और वह हमें गौएँ देता है।)

कुशिक ऐषीरथिः, विश्वामित्रो गाथिनो वा। इन्द्र । त्रिष्टुप् । (ऋ० ३।३१।८)

सतःसतः प्रतिमानं पुरोभूर्विश्वा वेद जनिमा हन्ति शुष्णम् ।

प्र णो दिवः पदवीर्गव्युरर्चन्त्सखा सखीँरमुञ्चन्निरवद्यात् ॥ ९६८ ॥

जो (सतः-सतः प्रतिमानं) हरएक वस्तुकी प्रतिमा बन गया है, और जो (पुरः-भूः) अग्रगन्ता नेता है, वह (विश्वा जनिम) सभी जन्मे हुए पदार्थोंको (वेद) जान लेता है, वही (शुष्णं हन्ति) शोषक शत्रुको विनष्ट कर डालता है। (दिवः प्र अर्चन्) द्युलोकको प्रकाशित करनेवाला और (पदवीः) हमारा मार्गदर्शक है एवं (गव्युः) गो-दान करनेहारा (नः सखा) हमारा मित्र (सखीन्) हम सभी मित्रोंको (अवद्यात्) पापसे (निः अमुञ्चत्) मुक्त कर दे।

इन्द्र गोदान करनेवाला है।

सव्य आङ्गिरसः । इन्द्रः । जगती । (ऋ० १।५३।२)

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।

शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि ॥ ९६९ ॥

हे इन्द्र ! तू (अश्वस्य दुरः) घोडे देनेहारा है, तथा (गोः दुरः) गौएँ देनेवाला है, (यवस्य दुरः)

धान्य देनेवाला है, उसी प्रकार (वसुपः इनः) सम्पत्तिका अधिपति होते हुए सबका (पतिः) पालनकर्ता है, (शिक्षा-नरः) शिक्षाका नेतृत्व करनेहारा (प्र दिवः) देदीप्यमान (अकाम-कर्शनः) सभी मनोरथोंकी पूर्ति करनेहारा (सखिभ्यः सखा) मित्रोंसे मित्रतापूर्वक बर्ताव रखनेहारा (त्वं) तू है, इसलिए तेरे लिये (इदं गृणीमसि) यह स्तोत्र हम पढ रहे हैं। अर्थात् तेरी प्रशंसा करते हैं।

गो-दुरः असि = इन्द्र गायोंका दान करनेवाला है।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ४।३२।२२)

प्र ते बभ्रू विचक्षण शंसामि गोषणो नपात्। माऽऽभ्यां गा अनु शिश्रथः॥ १७० ॥

(गोसन) गायें देनेवाला तथा (न-पात) किसीको न गिरानेवाला तू है, इसलिए हे (विचक्षण) बुद्धिमान प्रभो! (ते बभ्रू) तेरे भूरे रंगवाले दोनों घोडोंको (प्रशंसामि) मैं सराहना करता हूं, (आभ्यां) इन दोनोंसे (गाः मा अनुशिश्रथः) गौओंको न इधरउधर भगाओ।

गौओंका दान करनेवाला इन्द्र है।

आयु काण्वः। इन्द्रः। बृहती। (ऋ० ८।५२।५)

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत्।

अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः॥ १७१ ॥

(यः) जो (महान् उग्रः ईशानकृत्) बडा भीषण स्वरूपवाला एवं शासकको प्रस्थापित करनेवाला है, वह (नः दाता) हमें दान देनेवाला है, वही (नः पिता) हमारा पिता है, (मघवा पुरूवसु) ऐश्वर्यसंपन्न तथा विविध धनवाला (उग्रः अयामन्) भयानक, न हटनेवाला (नः गोः अश्वस्य प्र दातु) हमें गाय तथा घोडेका खूब दान करे।

इन्द्र गौएँ तथा घोडे पर्याप्त तादादमें देता है।

नभोऽश्व्यः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।४६।१०)

गव्यो षु णो यथा पुराऽश्वयोत रथया। वरिवस्य महामह॥ १७२ ॥

हे (महामह) बडे धनवाले! (यथा पुरा) जैसे पहले तू करता था, वैसेही (नः) हमें (गव्यो अश्वया उत रथया) गाय, घोडे और रथ देनेकी इच्छासे (वरिवस्य) आकर कार्य करता रह।

इन्द्र गौवें, घोडे और रथ देता है।

गृत्समद आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्भार्गवः शौनकः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० २।१५।४)

स प्रवोळ्हॄन् परिगत्या दभीतेर्विश्वमधागायुधमिद्धे अग्नौ।

सं गोभिरश्वैरसृजद् रथेभिः सोमस्य ता मद इन्द्रश्चकार॥ १७३ ॥

(सः) वह इन्द्र (दभीतेः) दभीतिको (प्रवोळ्हॄन्) जबर्दस्ती खींचकर ले चलनेवाले राक्षसोंको (परिगत्य) बीचमें ही पाकर (विश्वं आयुधं) उनके सभी हथियार (इद्धे अग्नौ) धधकते हुए अग्निमें (अधाक्) फेंक चुका, और उसे (गोभिः अश्वैः रथेभिः) गायों, घोडों एवं रथोंसे (सं असृजत्) युक्त कर चुका (ता) वे सभी कार्य (इन्द्रः सोमस्य मदे चकार) इन्द्रने सोम पीनेकी वजहसे उत्पन्न आनन्दके कारण कर डाले।

दभीति नामक कोई इन्द्रका भक्त था। उसको पकडकर एक शत्रु भगा जा रहा था। इन्द्रने उस शत्रुको पकडा, दभीतिको छुडवा दिया, और बहुतसी गौवें, घोडे और रथ उसे देकर उसे धनसंपन्न किया।

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।५०।३)

गोभिर्मिमिक्षुं दधिरे सुपारमिन्द्रं ज्यैष्ठ्याय धायसे गृणानाः।

मन्दानः सोमं पपिवाँ ऋजीषिन्त्समस्मभ्यं पुरुधा गा इषण्य ॥ ९७४ ॥

(मिमिक्षु) अभीष्ट फल देनेकी इच्छा करनेवाले (सु पार) पर तीर पहुंचानेवाले इन्द्रको [ज्यैष्ठ्याय] श्रेष्ठत्वकी प्राप्तिके लिए और (धायसे) धारणशक्ति बढानेके लिए (गृणाना गोभि दधिरे) स्तोता कवि गोरससे युक्त करते हैं, हे (ऋजीषिन्) सोमवाले इन्द्र ! (सोम पपिवान्) सोम पी लेनेपर (मन्दानः) हृष्ट होकर तू (अस्मभ्यं) हमें (पुरुधा गाः) बहुत दूध देनेवाली गौएँ (स इषण्य) प्रदान कर।

गृणानाः गोभिः दधिरे = स्तुति करनेवाले कवि गोरससे युक्त सोमको तैयार करते हैं। उस सोमका पान इन्द्र करता है। और—

अस्मभ्य पुरुधाः गाः समिषण्य = हमें अनेक प्रकारकी गौएं देता है।

वामदेवो गौतमः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ४।२५।२)

को नानाम वचसा सोम्याय मनायुर्वा भवति वस्त उस्राः।

क इन्द्रस्य युज्यं कः सखित्वं को भ्रात्रं वष्टि कवये क ऊती ॥ ९७५ ॥

(सोम्याय) सोम पीनेके योग्य इन्द्रके लिए (कः) भला कौन (वचसा नानाम) भाषण करके विनम्र हो गया है ? (मनायुः वा भवति) या स्तुति करनेकी इच्छा करनेवाला होता है, (उस्राः वस्ते) या इन्द्रकी दी हुई गायें रख लेता है ? (इन्द्रस्य युज्य) इन्द्रकी सहायताको (सखित्वं) मित्रताको और (भ्रात्र) भाई चारेको (कः वष्टि) भला कौन चाहता है (कवये) क्रान्तदर्शी इन्द्रके लिए (क ऊती) भला कौन संरक्षणके लिए याचना करता है ?

सोम्याय क उस्राः वस्ते ? = सोम पीनेवाले इन्द्रके लिये कौन भला गौवें अपने पास रखता है ? अर्थात् अपनी गौवोंका दूध निकालकर उसमें सोमरस मिलाकर कौन इन्द्रको पीनेके लिये देता है ? ऐसे यज्ञकर्ताको इन्द्र गावें देता है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ६।३९।५)

नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।

अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ९७६ ॥

हे (प्रत्न राजन्) पुराने विराजमान इन्द्र ! (गृणान) प्रशंसित होनेपर तू (गृणते वसुदेयाय) धन देनेयोग्य पुरुषको (पूर्वीः इषः पिन्व नु) बहुतसी अन्नसामग्रियाँ अधिक मात्रामें दे डाल, (अप) जलोंको, (ओषधीः) वनस्पतियोंको (अविषा वनानि) विषरहित जंगलोंको (गाः अर्वतः) गायों और घोडोंको (नॄन्) नेताओंको (ऋचसे रिरीहि) सराहना करनेवालेके लिये दानरूपमें दे दो।

जल, घास, गोचर वन, गौवें और घोडे मिलनेपर अनुचर मनुष्योंकी प्राप्ति की इच्छा यहां की है।

परुच्छेपो दैवोदासिः। अग्निः। अत्यष्टिः। (ऋ० १।१३९।७)

ओ षू णो अग्ने शृणुहि त्वमीळितो देवेभ्यो ब्रवसि यज्ञियेभ्यो राजभ्यो यज्ञियेभ्यः।

यद्ध त्यामङ्गिरोभ्यो धेनुं देवा अदत्तन।

वि तां दुह्रे अर्यमा कर्तरी सचाँ एष तां वेद मे सचा ॥ ९७७ ॥

हे अग्ने ! (त्वं नः ईळितः) हम तेरा गुणवर्णन कर रहे हैं, उसे (ओ सु शृणुहि) तू ठीक

सुन ले (राजभ्यः यज्ञियेभ्यः) अत्यन्त तेजस्वी पूज्य तथा (यज्ञियेभ्य) पवित्र (देवेभ्य वदासि) देवोंसे तू कहेगा कि, (यत् त्वां धेनु) जो इस गाय (देवा अंगिरोभ्य अदत्तन ह) देव अंगिरसोंको दे चुके, (कर्तरि) यज्ञ करते समय (तां अर्यमा सचा वि दुहे) उस गायका अर्यमाने साथ खडे रहकर दोहन किया, (मम) यह (मे सचा) मेरे साथ (तां) उसे (वेद) जानता है।

देवा धेनु अदत्तन = देवोंने गौका दान दिया है,

अर्यमा सचा विदुहे = अर्यमाने उसका दोहन किया, मानवोंको गौ देवोंने दी है और दोहनके समय अर्यमा सामने खडा रहता है। गायकी यह योग्यता है।

गोतमो राहूगण. । सोमः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।९१।२०)

सोमो धेनुं सोमो अर्वन्तमाशुं सोमो वीरं कर्मण्यं ददाति ।

सादन्यं विदथ्यं सभेयं पितृश्रवणं यो ददाशदस्मै ॥ ९७८ ॥

(यः अस्मै) जो इसे (ददाशत्) दानका अर्पण करता है उसे सोम (धेनु आशु अर्वन्त) गौ, शीघ्र चलनेवाला घोडा, (कर्मण्य सदन्य) कर्मोंमें कुशल, घरकी देखभाल करनेहारा (विदथ्य) युद्धभूमिमें या यज्ञोंमें जानेयोग्य (सभेय) सभामें सुहानेवाले (पितृश्रवणं) पिताकी कीर्तिको बढानेवाला (वीर ददाति) वीर पुत्र दे देता है।

सोमके अनेक दानोंमें गो-दान प्रमुख स्थान रखता है।

(१९०) मातृभूमि गौवें देवे।

अथर्वा । भूमिः । त्र्यवसाना षट्पदा जगती । (अथर्व० १२।१।४)

यस्याश्चतस्रः प्रदिशः पृथिव्या यस्यामन्नं कृष्टयः संबभूवुः ।

या बिभर्ति बहुधा प्राणदेजत् सा नो भूमिर्गोष्वप्यन्ने दधातु ॥ ९७९ ॥

(यस्यां) जिस मातृभूमिमें (कृष्टयः सं बभूवुः) उद्यमशील तथा परिश्रमसे खेती करनेवाले हुए हैं, (यस्याः पृथिव्याः) जिस भूमिके (चतस्रः प्रदिशः) चार दिशा उपदिशाएँ (अन्न) चावल, गेहूं आदि उपजाति हैं (या बहुधा) जो भांति भांतिके उपायोंसे (प्राणत् एजत् बिभर्ति) प्राणी तथा संचलनशील पक्षियोंका धारण पोषण करती है (सा भूमि) वह हमारी मातृभूमि (गोषु अन्ने अपि नः दधातु) गायों तथा अन्नादिमें हमें रखकर धारणपोषण करे।

हमारी मातृभूमि हमे बहुत गौवोंमे रखें अर्थात् हमें बहुतसी गायें देवे।

(१९१) गौएँ देना धनिकोंके लिये आनन्दकारक है।

मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० १।४।२)

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब । गोदा इद्रेवतो मदः ॥ ९८० ॥

हे सोमपान करनेहारे इन्द्र ! हमारे यज्ञमें आओ, सोमरसका सेवन करो (रेवतः मदः) धनाढ्य पुरुषका आनन्द (गो-दाः) गौएँ देनेहारा बनता है।

यदि धनाढ्यको किसीसे आनन्द हो, तो वह उसे गौएँ प्रदान करता है। गौका दान करना शिष्टाचारकाही एक प्रकार है। जैसे आजकल मुद्राओंका दान दिया जाता है, वैसेही वैदिक युगमें गौओंका दान किया जाता था।

बरार प्रान्तमें 'धन' शब्द गायके लिए प्रयुक्त होता है वास्तवमें गौही सच्चा धन है। वह दिया जाता है।

(१९२) गौओंका भाग राजाको अर्पण करो।

वसिष्ठ, अथर्वा वा। क्षत्रियो राजा, इन्द्रश्च। त्रिष्टुप्। (अथर्व० ४।२२।२)

एमं भज ग्रामे अश्वेषु गोषु निष्टं भज यो अमित्रो अस्य।
वर्ष्म क्षत्राणामयमस्तु राजेन्द्र शत्रुं रन्धय सर्वमस्मै॥ ९८१॥

(इमं ग्रामे अश्वेषु गोषु आ भज) इस क्षत्रियको ग्राममें तथा घोडों और गौवोंमें योग्य भाग दे। (यः अस्य अमित्रः तं निः भज) जो इसका शत्रु है उसको कोई भाग न दे। अयं राजा क्षत्राणां वर्ष्म अस्तु) यह राजा क्षात्रगुणोंकी मूर्ति होवे। हे इन्द्र! (अस्मै सर्वं शत्रुं रन्धय) इसके लिये सब शत्रु नष्ट कर।

प्रत्येक ग्राममें, घोडों और गौओंमेंसे इस राजाको योग्य करभार प्राप्त हो। इसके शत्रु निर्बल बन जांय। यही राजा सब प्रकार क्षात्र-शक्तियोंकी मूर्ति बने और इसके सब शत्रु दूर हो जावें। गौओंपर कर राजाको दिया जाता था, ऐसा इससे प्रतीत होता है। यह कर गौओंके रूपमें हो अथवा अन्य किसी रूपमें हो। 'इमं गोषु आ भज' = गौओंमेंसे इस राजाको भाग दो (Give him a share in Kine)। इसका स्पष्ट भाव राजाका करही है।

(१९३) जीवन-निर्वाहके प्रबंधके लिये गौका दान।

अथर्वा। यम, मन्त्रोक्ता। अनुष्टुप्। (अथर्व० १८।२।३०)

यां ते धेनुं निपृणामि यमु ते क्षीर ओदनम्।
तेना जनस्यासो भर्ता योऽत्रासदजीवनः॥ ९८२॥

(ते) तेरे लिए (यां धेनुं निपृणामि) जिस गायको देता हूँ, तथा (क्षीरे यं ओदनं) दूधमें पकाये जिस भातको देता हूं (तेन) उससे (जनस्य भर्ता असः) तू उन मानवका पोषक हो (यः अत्र) जोकि मनुष्य इस संसारमें (अ-जीवनः असत्) आजीविकाके साधनसे विरहित हो।

राष्ट्रमें आजीविकाके साधनसे विरहित कोई मनुष्य न रहे, इस तरहका प्रबंध राजाको करना योग्य है। इस कार्यके लियेही राजाको गौओंका भाग, दूधका अथवा चावल आदि धान्यका भाग कररूपसे दिया जाता है।

(१९४) कीकटदेशकी गौवें क्या काम की हैं?

विश्वामित्रो गाथिनः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ३।५३।१४)

किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम्।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन् रन्धया नः॥ ९८३॥

(कीकटेषु गावः) कीकट देशमें पायी जानेवाली गौएं (ते किं कृण्वन्ति) तेरे लिए भला क्या करेंगी? (आशिरं न दुह्रे) सोममें मिलानेयोग्य दूध नहीं देतीं, या (घर्मं न तपन्ति) पायस गर्म नहीं करती हैं (प्रमगन्दस्य वेदः) प्रमगन्दका गोधन (नः आ भर) हमें दे डाल और (मघवन्) हे ऐश्वर्यसंपन्न इन्द्र! (नैचाशाखं नः रन्धय) नीचाशाखवालोंका हमारे लिये नाश कर।

प्रमगन्दः— ब्याज, सूद बट्टा लेनेवाला।

नैचाशाख — नीच योनियोंमें संतान पैदा करनेवाला।

इनको दण्ड देनेका प्रभुत्व यहां है। इससे सूद लेकर उपजीविका करना और नीच योनिमें संतान उत्पन्न करना, दण्डनीय समझा जाता था, ऐसा प्रतीत होता है।

कीकट नाम अत्यंत दरिद्री देशका है। भारतवर्षके बिहार देशको संस्कृतमें कीकट कहते हैं। इस देशमें गौवें अत्यंत कम दूध देती हैं, अतः सोमरसमें मिलानेके लिये उनका दोहन कोई नहीं करता ऐसी गायें क्या कामकी हैं? अर्थात् जो गायें अधिक दूध देती हैं, उनको पालना यज्ञके लिये करना योग्य है। इनसे यज्ञ सिद्ध होगा।

(१९५) गायोंका दाता इन्द्र।

त्रिशोक. काण्व । इन्द्रः । गायत्री । (ऋ० ८।४५।१९)

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि ।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ ९८४ ॥

(अपि चित् यत्) और जब (व्यथिः) दुःखी होकर (ते जगन्वांसः) हम तेरे समीप आते हुए (अमन्महि) सोच विचारते हैं, (नः बोधि) उस हमारी प्रार्थनाको तू ठीक तरह समझ ले, क्योंकि (गोदा इत्) तू अवश्यही गायोंका दान करनेवाला है।

गोदः (गो + दः) गौओंका दाता इन्द्र है गोद = God, (go-da) 'गोद' वैदिक पदसे गोड God यह अंग्रेजी पद समान अर्थवाला दीखता है।

भरद्वाजो बार्हस्पत्य । इन्द्रः । त्रिष्टुप् । (ऋ० ६।२३।४)

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ९८५ ॥

(हरिभ्यां इयन्ति सवना गन्ता) दो घोड़ोंके रथसे इतने अधिक यज्ञोंमें चले जानेवाला, (वज्रं बभ्रिः) वज्र धारण करनेवाला, (सोमं पपिः) सोम पानेवाला, (गाः ददिः) गायें देनेवाला (गृणतः हवं श्रोता) स्तुति करनेवालेकी पुकार सुननेवाला (वीरं) प्रत्येक वीरको (सर्ववीरं नर्यं कर्ता) सपूर्णतया उत्तम वीर एवं मानवोंके लिये हितकारक बनानेवाला वह देव (स्तोमवाहाः) स्तोत्रोंके ढोनेवाला है, अर्थात् वही सबकी स्तुतियोंका पानेवाला है।

इन्द्र ही इस विश्वका एक मात्र प्रभु है, वही सबकी स्तुति स्वीकारनेवाला है, अर्थात् सबके द्वारा प्रशंसित होने योग्य है। यही प्रभु (गाः ददिः) गौओंका प्रदान करता है। अतः इसी प्रभुको 'गो द' (God) गौओंका दाता कहते हैं।

अत्रिभौम. । विश्वे देवा । त्रिष्टुप् । (ऋ० ५।४२।८)

तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ९८६ ॥

हे बृहस्पते ! (तव ऊतिभिः सचमानाः) तेरी रक्षाओंसे संयुक्त होनेपर सब लोग (अरिष्टाः) अहिंसित, (मघवानः सुवीराः) ऐश्वर्यसंपन्न और अच्छे वीर होते हैं, (ये अश्वदाः) जो घोडोंको देते हैं। (उत ये वस्त्रदाः गोदाः सन्ति) और जो कपडे तथा गायोंका प्रदान करते हैं, वे (सुभगाः) अच्छे ऐश्वर्यसे युक्त होते हैं (रायः तेषु) धन उनमें भरपूर रहे।

गौओंका दान करनेसे उत्तम भाग्यकी प्राप्ति होती है ऐसा यहां कहा है। (ये गोदाः सन्ति ते सुभगाः) जो गौओंका दान करते हैं वे उत्तम भाग्यवान् होते हैं, (तेषु रायः) उनमें अनेक प्रकारके धन स्थायी रूपसे रहते हैं।

(१९६) गायोंका दान करनेवालोंकी सुरक्षा ।

सोभरिः काण्वः । इन्द्रः । सतः बृहती । (ऋ. ८।२१।१६)

मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥ १८७ ॥

हे (गो-द-त्र इन्द्र) गायोंको देनेवालोंके संरक्षणकर्ता इन्द्र ! (ते) हम तेरेही भक्त हैं, इसलिए (ते राधसः) तेरे धनसे (मा निः राम) अलग न होने पायें, और (मा गृहामहि) दूसरोंके धनका ग्रहण करनेका अवसर हमें न प्राप्त हो। (अर्यः) तू प्रभु है अतः (दृळ्हा चित् प्रमृश) सुदृढ वस्तुओंको भी पकड कर (आ भर) हमें दे दो, क्योंकि (ते दामानं) तेरे दानोंको (न आदभे) कोई नहीं दबा सकता है।

'गो-द-त्र' गायोंका दान करनेवालोंका संरक्षण प्रभु करता है। अतः इस प्रभुके भक्तोंपर ऐसा कठिण समय कभी नहीं आपडता कि, जिस समय उनके लिये दूसरोंके धनसेही जीवन निर्वाह करनेकी आवश्यकता होती हो। कठिनतासे प्राप्त होनेवाले पदार्थ भी इनको प्रभुकी कृपासे सहजहीसे प्राप्त होते हैं, क्योंकि प्रभुके दातृत्वका कोई प्रतिबंध कर नहीं सकता।

(१९७) बछडोंका दान ।

पुरुहन्मा आंगिरसः । इन्द्रः । अनुष्टुप् । (ऋ. ८।७०।१४)

भूरिभिः समह ऋषिभिर्बर्हिष्मद्भिः स्तविष्यसे ।
यदित्थमेकमेकमिच्छर वत्सान्पराददः ॥ १८८ ॥

हे (समह शूर) पूजनीय एवं शत्रुहिंसक इन्द्र ! (यत् इत्थं) जो तू इस तरह (एकं एकं इत्) हरएकको भी एक एक ऐसे अनेक (वत्सान् पराददः) बछडोंको देता है, इसलिए (बर्हिष्मद्भिः भूरिभिः ऋषिभिः) बर्हियुक्त अर्थात् यज्ञमें आसनोंपर बैठनेवाले बहुतसे ऋषियों द्वारा (स्तविष्यसे) तू प्रशंसित होगा।

इन्द्र प्रत्येक ऋषिको एक एक गौका बछडा देते हैं। इस तरह वह सबको गौवें देता है अतः वह प्रशंसायोग्य है

(१९८) बीस गायोंका दान ।

भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । चायमानो राजा । त्रिष्टुप् । (ऋ. ६।२७।८)

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमतो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ १८९ ॥

हे अग्ने ! (मघवा सम्राट्) ऐश्वर्यसंपन्न सम्राट् चायमानका पुत्र अभ्यावर्ती है, वह मह्यं मुझको (वधूमतः रथिनः) स्त्रियोंसे युक्त, रथवाली (द्वयान्) युगलवाली (विंशतिं गाः) बीस गायोंको (ददाति) दे डालता है (पार्थवानां इयं दक्षिणा) पृथुवंशवालोंकी यह देन (दूणाशा) कभी नष्ट न होनेवाली अर्थात् निःसंदेह स्थायी यश देनेवाली है।

जिसमें स्त्रियाँ बैठी हैं ऐसे रथ तथा उनके साथ बीस गावें इतना दान भरद्वाज ऋषिको अभ्यावर्ती चायमान सम्राट्ने दिया था।

(१९९) सौ गौओंका दान ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । विश्वे देवाः । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२२।७)

स्तुषे सा वां वरुण मित्र रातिर्गवां शता पृक्षयामेषु पज्रे ।
श्रुतरथे प्रियरथे दधानाः सद्यः पुष्टिं निरुन्धानासो अग्मन् ॥ ९९० ॥

(मित्र ! वरुण !) हे मित्र और वरुण (वां स्तुषे) मैं आपकी स्तुति करता हूँ क्योंकि आपने (सा शता गवां राति) वह सौ गायोंका दान (पृक्ष-यामेषु) मेरे अन्न दानोंके पश्चात् ही मुझे दिया है, तथा (श्रुतरथे प्रियरथे पज्रे) श्रुतरथ प्रियरथ, और पज्र ऐसे बलिष्ठ वीरोंके लिए (सद्यः) तुरन्तही (पुष्टिं दधानाः निरुन्धानासः) पुष्टिकारक अन्न देनेहारे और उस पुष्टिको स्थिर करनेवाले तुम हमारे समीप (अग्मन्) आओ ।

यहां लिखा है कि मित्र और वरुणने सौ गौओंका दान दिया है । यह दान कक्षीवान् ऋषिको यज्ञ करते समयही मिला है । अर्थात् यज्ञका धर्म अधिक फैलानेके लिये यह दान मित्रावरुणोंने दिया ऐसा प्रतीत होता है ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिज । स्वनयो भावयव्य । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२६।२)

शतं राज्ञो नाधमानस्य निष्काञ्छतमश्वान्प्रयतान्त्सद्य आदम् ।
शतं कक्षीवाँ असुरस्य गोनां दिवि श्रवोऽजरमा ततान ॥ ९९१ ॥

मैं (कक्षीवान्) कक्षीवान् नामक ऋषि (नाधमानस्य) प्रार्थना करनेहारे (असुरस्य राज्ञः) क्षत्रिय राजाके पाससे (शतं निष्कान्) सैकडों मुद्राओंको, (शतं प्रयतान् अश्वान्) सैकडों सिखाये हुए घोडोंको, (शतं गोनां) सैकडों गायोंका दानके रूपमें (सद्यः आदम्) तुरन्त ग्रहण कर चुका हूँ, इसीलिये उसकी (दिवि अजरं श्रवः) स्वर्गपर अमर कीर्ति (आततान) फैलायी ।

असुर = (असु र) लोक रक्षाके लिये अपने प्राणोंका बलिदान देनेवाला क्षत्रिय ।

नाधमान = प्रार्थना करनेहारा, 'दानका अंगीकार करो' ऐसा कहनेवाला । प्रयत = सिखाया हुआ ।

सैकडो सुवर्णमुद्राओंके समेत गायोंका दान यहां कक्षीवान् ऋषिको प्राप्त हुआ है ।

श्यावाश्व आत्रेयः । मरुतः । पङ्क्तिः । (ऋ० ५।५२।१७)

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ ९९२ ॥

(सप्त सप्त शाकिनः) सात सात अर्थात् उनचास प्रबल मरुतोंने (मे) मुझे (एकमेका) हरएककी ओरसे (शता ददुः) सौ सौ दान दिये, (श्रुतं गव्यं राधः) उस दानमें मिले विख्यात गोधनको (यमुनायां अधि) यमुना नदी के तीरपर (उत् मृजे) मैं धो रहा हूँ, तथा (अश्व्यं राधः नि मृजे) घोडोंके रूपमें मिला हुआ धन धोकर शुद्ध रखता हूँ ।

मरुतोंने सौ सौ गौयें दानमें दी थीं । प्रत्येक मरुत्‌ने अथवा प्रत्येक मरुत्संघने ऐसे सैकडों दान दिये थे । इससे पता लग सकता है कि, कितनी गौओंका दान किया गया होगा । उनचास मरुत् हैं, यदि (एक एका) एकेकने सौ गौओंका दान दिया, ऐसा माना जाय, तो ४९०० गौओंका दान यमुनाके तीरपर हुआ, ऐसा मानना पडेगा । यदि सात सातके एक एक संघने सौ सौ गौओंका दान दिया होगा, तो सातसौ गौओंका दान हुआ होगा । निःसंदेह इस मन्त्रमें सैकडों गौओंके दानका उल्लेख है ।

श्यावाश्व आत्रेयः। तरन्तो वैददश्विः। गायत्री। (ऋ. ५।६१।१०)

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत्। तरन्त इव मंहना॥ १९३॥

(य वैददश्विः) जो वैददश्वि नामवाला पुरुष है उसने (महना तरन्त इव) पूज्य धनोंको तरन्त जैसे दिया है, वैसेही (मे) मुझको (यथा धेनूनां शत ददत्) जैसे सौ गायोंका दान करे ऐसा दान भी दिया है।

तरन्त राजाने जैसा दान दिया था, वैसा ही वैददश्विने भी बहुत धनके साथ सौ गौओंका दान दिया है। अर्थात् इन दोनोंने सौ सौ गौओंका दान दिया था और साथ धन भी बहुत दिया था यह सिद्ध हुआ।

गर्गो भारद्वाज। प्रस्तोक। गायत्री। (ऋ. ६।४७।२४)

दश रथान् प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः। अश्वथः पायवे अदात्॥ १९४॥

(प्रष्टिमत दश रथान्) घोडोंवाले दस रथों और (शत गा.) सौ गायोंका दान अश्वथने (अथर्वभ्यः पायवे अदात्) अथर्ववंशवाले लोगों एव पायुको दे दिया।

जिनमें घोडे जाते हैं ऐसे दस रथ, और सौ गौवें इतना दान अश्वथ राजाने अथर्ववेदी पायु नामक ऋषिको दिया है।

वासिष्ठो मैत्रावरुणि.। मण्डूका (पर्जन्यः)। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१०३।१०)

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि।

गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः॥ १९५॥

(गोमायुः अजमायु.) गौके समान और बकरेके समान आवाज करनेवाले, (पृश्निः हरितः) चितकबरे एवं हरे रंगवालेने (न वसूनि अदात्) हमें बहुत धन दिया है, (सहस्रसावे) हजारों औषधियोंके उत्पादनकालमें (मडूका गवां शतानि ददत) मेंढक सैकडों की संख्यामें गायोंको देते हुए (आयु प्रतिरन्त) हमारे जीवनको सुदीर्घ कर दें।

वर्षाकालमें नाना प्रकारके शब्द करनेवाले तथा नाना रंगोंके मेंडक जैसे औषधियोंको उत्पन्न करते हैं, वैसे ही सैकडों गौओंको भी देते हैं और हमारी आयुकी वृद्धि करते हैं। यहां मेंडक पद उपलक्षणके लिये है। मेंडक वर्षा ऋतुमें उत्पन्न होते हैं। अत 'मेंडक' पदसे वर्षाऋतुका ग्रहण करना चाहिये। वर्षाऋतुमें जल बरसता है, नाना औषधियाँ उत्पन्न होतीं हैं, ये औषधिया खाकर गौवें हृष्टपुष्ट होती हैं, और पर्याप्त दूध देती हैं। वह दूध पीकर मनुष्य भी दीर्घायु होते हैं।

इस मंत्रमें (गवां शतानि ददत) सैकडों गायोंके दानका उल्लेख है।

(२००) सौ बैलोंका दान।

त्र्यरुणस्त्रैवृष्णः, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्यः, अश्वमेधश्च भारत राजानः। अग्निः। अनुष्टुप्। (ऋ. ५।२७।५)

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः।

अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः॥ १९६॥

(यस्य अश्वमेधस्य दानाः) जिसके अश्वमेधके दान (शतं परुषा. उक्षणः) सौ इच्छापूर्ति करनेवाले बैल (त्र्याशिर. सोमाः इव) तीन चीजोंमें मिलाये जानेवाले सोमरसोंके समान (मा उद्धर्षयन्ति) मुझे हर्षित करते हैं।

यहां अश्वमेधमें सौ बैलोंका दान होनेका उल्लेख है। ये बैल वीर्यक्षेपणद्वारा उत्तम गोवंश उत्पन्न करनेवाले होंगे अथवा उपलक्षणसे गौओंका भी दान यहां होगा।

(२०१) एकसौबीस गौओंका दान।

त्र्यरुणस्त्रैवृष्ण, त्रसदस्यु पौरुकुत्स्य, अश्वमेधश्च भारत राजानः। अग्निः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।२७।२)

यो मे शता च विंशतिं च गोनां हरी च युक्ता सुधुरा ददाति।
वैश्वानर सुष्टुतो वावृधानोऽग्ने यच्छ त्र्यरुणाय शर्म ॥ ९९७ ॥

हे (वैश्वानर अग्ने) सार्वजनिक हितकारी अग्ने! (सुष्टुत वावृधान) भली भाँति प्रशंसित तथा बढनेवाला तू (त्र्यरुणाय य मे) त्र्यरुणको, जो मुझे (गोनां शता च विंशतिं च) १२० गौएं तथा (युक्ता सुधुरा हरी च) जोते हुए, भली भाँति धुराको ढोनेवाले दो घोडे (ददाति) देता है, (शर्म यच्छ) सुख देदो।

यहाँ त्र्यरुणको १२० गौओंका दान मिलनेका उल्लेख है। रथको जोते घोडे भी दानमें मिले हैं, अर्थात् साथ रथ भी दानसे मिला है।

(२०२) दो सौ गायोंका दान।

वसिष्ठो मैत्रावरुणिः। सुदासः पैजवनः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ७।१८।२२)

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥ ९९८ ॥

हे अग्ने! (देववतः नप्तुः पैजवनस्य) देववान् नरेशके पौत्र तथा पिजवनपुत्रके (सुदासः गोः द्वे शते) सुदास नामवाले राजाकी दो सौ गाएं और (वधूमन्ता द्वा रथा) वधूयुक्त दो रथसे युक्त (दानं अर्हन्) दान पानेकी योग्यता रखता हुआ मैं (होता इव रेभन्) हवनकर्ताके समान प्रशंसा करता हुआ (सद्म परि एमि) घर चला आता हूँ।

वसिष्ठ ऋषिको राजा सुदासने २०० गौवें जिनमें स्त्रियां बैठी हैं ऐसे दो रथ अर्थात् जिनमें घोडे जोते हैं और स्त्रियां भी बैठी हैं ऐसे ये दो रथ, इतना दान दिया था। दान मिलनेपर वसिष्ठ ऋषि राजाकी प्रशंसा करता हुआ अपने आश्रममें आया।

(२०३) सैकडों और हजारों गायोंका दान।

कुरुसुति काण्वः। इन्द्रः। गायत्री। (ऋ० ८।७८।१-२)

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर। शता च शूर गोनाम् ॥ ९९९ ॥
आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम्। सचा मना हिरण्यया ॥ १००० ॥

हे इन्द्र! (नः अन्धसः पुरोळाशं) हमारे अन्नका और पुरोडाशका सेवन करके, हे वीर प्रभो! (गोनां शता सहस्रा च) गायोंको सैकडों और हजारोंकी संख्यामें (आ भर) हमें लाकर दो।

(नः) हमें (गां अश्वं) गाय तथा घोडा (वि अञ्जनं अभ्यञ्जनं) सुंदर आभूषण (मना हिरण्यया सचा) मननीय सुवर्णके साथ (आ भर) दे दो।

यहां सैकडों और हजारों गायोंकी प्राप्तिकी इच्छा की है। साथ साथ घोडे और सुवर्ण भी मांगा है।

बभ्रुरात्रेयः। इन्द्रः। त्रिष्टुप्। (ऋ ५।३०।१३)

सुपेशसं माऽव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने।

तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः॥ १००१॥

हे (अग्ने) अग्रणी अग्निदेव ! (रुशमासः) रुशमदेशके लोग (गवां सहस्रैः) हजारों गौएँ साथ देकर (सुपेशसं मा) सुन्दर वेषभूषासे अलंकृत मुझको (अस्तं अवसृजन्ति) अपने घर चले जानेके लिए अनुमति दे छोडते हैं, (परितक्म्यायाः अक्तोः) अँधेरीसे पूर्ण रात्रीके बीत जानेपर (व्युष्टौ) उष:कालकी वेलामें (सुतासः तीव्राः) निचोडे हुए अत्यन्त प्रभावोत्पादक सोमरस (इन्द्रं अममन्दुः) इन्द्रको प्रसन्न कर चुके।

अग्निकुलमें उत्पन्न बभ्रु ऋषि कहता है कि, रुशम देशके लोगोंने अर्थात् वहांके धनी लोगोंने हजारों गौवें मुझे प्रदान कीं और सुन्दर अलंकार तथा वस्त्र भी दिये और पश्चात् मुझे अपने घर जानेकी आज्ञा दी ऐसा प्रतीत होता है कि, यह ऋषि उस रुशम देशमें धर्मके प्रचारके लिये गया होगा।

इस मंत्रके पूर्व मंत्रमें 'ऋणंचय' राजाका उल्लेख आया है और उसने बहुत दान करनेका भी उल्लेख है। रुशम देशका यह राजा होगा, जिसने इस मंत्रमें वर्णन किया दान प्रायः दिया होगा।

नीपातिथि काण्वः। इन्द्रः। अनुष्टुप्। (८।३४।१४)

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।

दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो॥ १००२॥

हे (शूर) वीर इन्द्र ! (नः) हमें (सहस्रा गव्यानि अश्व्या) हजारों गायोंको तथा घोडोंको (आ दर्दृहि) दो और हे (दिवावसो) द्योतमान धनवाले इन्द्र ! (अमुष्य दिवः शासतः) इस द्युलोकका शासन चलानेके लिये (दिवं यय) द्युलोकको चले जाओ।

यहां हजारों गौओंकी प्राप्ति करनेकी इच्छा की है। इन्द्र ही यह दान भक्तको देगा और देकर पश्चात् द्युलोकको चला जायगा।

पुष्टिगु काण्वः। इन्द्रः। सतोबृहती। (ऋ० ८।५१।२)

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम्।

सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः॥ १००३॥

(शयानं जिव्रिं उद्धितं प्रस्कण्वं) सोते हुए अत्यंत वृद्ध और लेटे रहनेवाले प्रस्कण्व ऋषिपर (पार्षद्वाणः समसादयत्) पृषद्वाणके पुत्रने हमला किया, तब (त्वा ऊतः) तेरे द्वारा रक्षित हुआ (ऋषिः) वह ऋषि (दस्यवे वृकः) शत्रुपर भेडिया छोडनेके समान शत्रुपर जा गिरा और उसकी (गवां सहस्राणि असिषासत्) हजारों गायें उसने प्राप्त कीं।

यह चमत्कार इन्द्रकी शक्तिके कारण हुआ। मानो इन्द्रकी शक्तिसे प्रस्कण्व ऋषि सामर्थ्यवान् हुआ, उसने शत्रुका नाश किया और इन्द्रकी कृपासे गौवें भी प्राप्त कीं। यहां प्रस्कण्व ऋषिको सहस्र गौवें प्राप्त हुईं ऐसा कहा है।

(२०४) चारसहस्र गायोंका दान।

बभ्रुरात्रेयः। ऋणंचयेन्द्रौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।३०।१२)

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा।

ऋणंचयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम्॥ १००४॥

हे अग्ने ! (गवां चत्वारि सहस्रा) गायोंको चार हजारकी संख्यामें (ददतः) देते हुए (रुशमाः)

रुशम देशके निवासी (इदं भद्रं अक्रन्) यह अच्छा कार्य कर चुके हैं, (नृणां नृतमस्य) मानवोंमें उत्कृष्ट मानव तथा नेता (ऋणंचयस्य प्रयता मघानि) ऋणंचयके दिए हुए ऐश्वर्यके हम (प्रति अग्रभीष्म) स्वीकार कर चुके।

इस मंत्रमें रुशम देशके लोग बडा अच्छा कार्य करते हैं, अर्थात् गौओंके बडे दान देते हैं, ऐसा कहा है। इस देशके रुशम लोगोंका मुखिया, प्रधान या राजा ऋणंचय है, ऐसा भी यहां लिखा है जिसने बडे बडे धनोंके दान दिये हैं।

बभ्रुरात्रेयः। ऋणंचयेन्द्रौ। त्रिष्टुप्। (ऋ० ५।३०।१५)

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने।

घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१००५॥

हे अग्ने! (रुशमेषु) रुशम लोगोंके मध्य (गव्यस्य पश्वः) गौ जातिके पशुओंको चतुःसहस्रं चार हजारकी संख्यामें (प्रति अग्रभीष्म) दानके रूपमें हम स्वीकार कर चुके हैं।

यहां भी रुशम देशके लोगोंसे चार हजार गायोंका दान मिलनेका उल्लेख है। (पूर्व स्थानमें ऋ० ५।३०।१२ वां) मंत्र है जिसमें एक हजार गायों दान होनेका उल्लेख है।) ऐसा प्रतीत होता है कि रुशम देशमें गौएं बहुत होती और बहुत अच्छी भी होती थी। क्योंकि वेदमन्त्रोंमें इनके बडे बडे दानोंका उल्लेख है।

रुशम नाम देशवाचक और जनवाचक है, पर यह देश कौनसा है इसका पता लगता नहीं।

(२०५) दस हजार गायोंका दान।

आसङ्गः प्लायोगिः। आसङ्गः। त्रिष्टुप्। (ऋ० ८।१।३३)

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः।

अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥ १००६ ॥

(अध प्लायोगिः आसंगः) अब प्लायोग पुत्र आसंग नरेशने (अन्यान् अति) दूसरोंसे भी बढकर (दशभिः सहस्रैः) दस हजार गायोंसे (दासत्) दान दिया था, हे अग्ने! (अध रुशन्तः दश उक्षणः) पश्चात् तेजस्वी सेचनसमर्थ दस बैल (सरसः नळाः इव) तालाबसे नडनामक घासके समान (मह्यं निः अतिष्ठन्) मेरे लिए उठ खडे हुए, अर्थात् मुझे दिये गये हैं।

प्लायोगि पुत्र आसंगने दश हजार गायोंका दान दिया, साथ साथ उत्तम तेजस्वी दस बैल भी दिये। ये बैल गोवंश का सुधार करनेवाले प्रतीत होते हैं॥

मेधातिथिः काण्वः। अश्विनौ। बृहती। (ऋ० ८।५।३७)

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम्।

यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥ १००७ ॥

हे अश्विनौ! (ता) वे तुम दोनों (नवानां सनीनां) नयी बाँटनेयोग्य धनसंपदाओंको (मे विद्यातं) मेरे लिए जान लो, (यथा चित्) ताकि जिस तरह (चैद्यः कशुः) चेदिपुत्र कशुनामक नरेश (गोनां दश सहस्रा) गायोंको दस हजारकी संख्यामें और (उष्ट्रानां शतं) सौ ऊँटोंको (ददत्) दे सके, ऐसा प्रबंध हो जाए।

चेदिपुत्र कशुसे दस हजार गायें और सौ ऊँट कण्व पुत्र मेधातिथिको मिलनेका प्रबंध हुआ था ऐसा इस मंत्रसे दीखता है।

वत्सः काण्वः । तिरिन्दिरः पार्शव्यः । गायत्री । (ऋ० ८।६।४७)

त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम् । ददुष्पज्राय साम्ने ॥ १००८ ॥

(साम्ने पज्राय) सामग पज्रके लिए (अर्वतां त्रीणि शतानि) घोडोंको तीन सौकी संख्यामें (गोनां दश सहस्रा) गायोंको दस हजारकी संख्यामें (ददुः) दे चुके ।

इस मन्त्रमें पज्रके लिये ३०० घोडे और १०००० दस हजार गौवें मिलनेका उल्लेख है । पज्रका उल्लेख ऋ० १।१२२।७ में आया है । यहांका पज्र दस सहस्र गौओंका दान लेनेवाला है । यह पज्र सामवेदी है ।

वशोऽश्व्यः । पृथुश्रवा कानीतः । सतःपंक्तिः । (ऋ० ८।४६।२२)

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।

दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥ १००९ ॥

(उष्ट्राणां विंशतिं शता) दो हजार ऊँट, (अश्व्यस्य अयुता षष्टिं सहस्रा) घोडोंके झुण्ड दस हजार और साठ सहस्रके अनुपातमें, (श्यावीनां दश दश शता) काली घोडियोंको दस सहस्रकी संख्यामें तथा (त्र्यरुषीणां गवां) तीन स्थानोंमें लाल रंग रखनेवाली गायोंको (दश सहस्रा असनम्) दस हजारकी संख्यामें मैं प्राप्त कर सका ।

यहां बडे भारी दानका उल्लेख है, ऊंट २०००, घोडे १०,००० तथा ६०,०००, घोडियां १०,००० और गायें १०,००० इतना दान दिया गया था । यह दान वश नामक ऋषिको जो अश्व्यका पुत्र था मिला था । देनेवाला कानीत पुत्र पृथुश्रवा नामक राजा था । राजाके पास इतनी संपत्ति होगी, पर जो ऋषि इतने बडे दानका स्वीकार करता है, और इनकी पालना आश्रममें करता है, उनका आश्रम कितना बडा होगा, इसकी कल्पना पाठक कर सकते हैं। वैदिक समयमें ऋषियोंके आश्रम ऐसे बडे होते थे, जिनमें सहस्रों छात्रोंकी पालना होती थी। इसी लिये उनको इतने बडे दान दिये जाते थे।

(२०६) साठ सहस्र गायोंका दान ।

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः । स्वनयो भावयव्य । त्रिष्टुप् । (ऋ० १।१२६।३)

उप मा श्यावाः स्वनयेन दत्ता वधूमन्तो दश रथासो अस्थुः ।

षष्टिः सहस्रमनु गव्यमागात्सनत् कक्षीवाँ अभिपित्वे अह्नाम् ॥ १०१० ॥

(स्वनयेन दत्ताः श्यावाः) स्वनयके दिये हुए कपिल वर्णवाले घोडे जोते हुए और (वधूमन्तः दश रथासः) जिनमें स्त्रियां बैठी हों, ऐसे दस रथ, (मा उप अस्थुः) मेरे समीप आकर खडे हुए और (षष्टिः सहस्रं गव्य) साठ हजार गायें भी (अनु आगात्) आगयीं, यह दान (कक्षीवान्) कक्षीवान्ने (अह्नां अभिपित्वे) दिन समाप्त होते समय (सनत्) स्वीकार किया ।

स्वनय नामक राजाने कक्षीवान् ऋषिको जो दान दिया था, वह यह है—कपिल वर्णके घोडे जोते हुए दस रथ, जिनमें स्त्रियाँ बैठी थी तथा ६०, ००० गौवें । दस रथोंमें मिलकर कमसे कम तीस तीस स्त्रियाँ होंगी क्योंकि एक एक रथमें कमसे कम तीन तो होंगी ऐसा ' वधूमन्त ' पदसे प्रतीत होता है ।

(२०७) गौओंके झुंडोंका दान ।

गोतमो राहूगणः । इन्द्रः । पंक्तिः । (ऋ. १।८१।७

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।

सं गृभाय पुरू शतोभयाहस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥ १०११ ॥

(मदे-मदे ऋजुक्रतु) हरएक आनन्दके समय सरल कार्य करनेहारा इन्द्र (नः) हमें (गवां

यूथा) गौओंके झुंड (ददि हि) देता रहता है। हे इन्द्र ! (पुरुशाता वसु) बहुतसे सैकडों द्रव्य (उभया हस्त्या) दोनों हाथोंसे हमें देनेके लिए (सं गृभाय) भलीभाँति लेलो। (शिशीहि) हमे उत्साहपूर्ण बनाओ और हमें (राय आ भर) धन पर्याप्त मात्रामें देदो।

दानके रूपमें गौओंके झुंडके झुंड दिये जाते थे ऐसा इस मन्त्रसे मालूम होता है। गौओंकी झुंड कमसे कम पच्चीस गौओंकी होगी और 'गवां यूथा' पदसे ये झुंड दस झुंडोंसे अधिक होंगे। यद्यपि 'यूथानि' पदसे कमसे कम तीन झुण्ड तो होते ही है, तथापि साधारणतया तीन, पाँच या नौ झुंड होंगे, तो उस संख्याने ही कहनेकी परिपाटी है। दससे अधिक झुण्ड हुए तोही झुण्डके झुण्ड, अथवा 'गौओंके झुंड' ऐसे वचन सार्थ होंगे। इस तरह विचार करनेसे यहांका दान भी कई सौ गौओंका प्रतीत होता है।

वसिष्ठो मैत्रावरुणि । अग्निः । बृहती । (ऋ० ७।१६।७)

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥ १०१२ ॥

हे (सु-आहुत अग्ने) भलीभाँति आहुति दिये हुए अग्ने ! (सूरयः) विद्वान लोग (त्वे प्रियासः सन्तु) तेरे प्यारे हों, उसी प्रकार (ये मघवानः यन्तारः) जो धनवान्, दानी (जनानां गोनां ऊर्वान् दयन्त) जनताको गायोंके विशाल झुंड देते हैं, वे भी तेरे प्रिय बनें।

यहां गायोंके विशाल झुण्डोंका दान होनेका उल्लेख है। यह दान भी सौसे अधिक गौओंका दान होगा।

गायोंके दानकी प्रथा।

गायोंके दानकी प्रथा वैदिक समयसे चली आ रही है। यह प्रथा आजतक भी है। वैदिक समयमें गायका दान करनेवालेको कोई रोक नहीं सकता था। दानका समय आ जाय, तो धनिकोंको आनन्द होता था। 'मैं गायका दान करूंगा' ऐसाही बोलना चाहिये, ऐसी शिष्ट पुरुषोंकी परिपाटी थी। मैं गायका दान नहीं करूंगा, ऐसा कोई बोलता नहीं था। गायका दान करनेवालेको उस दानके कार्यसे रोकना बडा पाप समझा जाता था।

प्रभु गायका दान करता है, इन्द्र अग्नि सोम विश्वे देव भूमि आदि देवताएं गौओंका दान करती हैं। इसलिये मनुष्यको उचित है कि वह गौका दान देता रहे। अतिथि घरपर आनेपर उसे गौका दान करना चाहिये। अतिथिको गौका दूध तो अवश्य ही देना चाहिये। दक्षिणामें गायको देना उचित है।

रोगीकी चिकित्सा करनेके समय उसके उपयोगके लिये गौका दान करना उचित है जिससे वह गौका दूध पीये और रोगमुक्त हो जाय। किसीको आशीर्वाद देना हो तो 'तुझे उत्तम गाय प्राप्त हो' ऐसा आशीर्वाद देना योग्य है। गाय दानमें देनी हो तो उत्तम दुधारू तरुण गायही देनी चाहिये। गोचर भूमिका भी प्रबंध करना चाहिये। गौओंपर कर राजाको इसलिये दिया जावे कि उससे वह राजा अपने राष्ट्रमें गोधनकी अभिवृद्धि करनेमें समर्थ हो जाय, और वह जनताके जीवननिर्वाहका भी प्रबंध कर सके अर्थात् राज्यमें कोई मनुष्य भूखसे न मरे।

कीकट देशकी गौवें निर्बल होती हैं। उनका उपयोग यज्ञमें दूध देनेके काममें भी नहीं होता।

'देव' को 'गो-द' अर्थात् गाये देनेवाला कहा है। गायके उत्तम बछडोंका दान किया जाय। १००, १२० २००, १०००, ४०००, १००००, ६०००० तक गायोंका दान होनेका उल्लेख वेदमंत्रोंमें आया है। गाइ-घोंके झुण्डोंके दानका भी उल्लेख है।

इस तरह गौओंके दानका उल्लेख वेदमंत्रोंमें है जो गोदानको उत्तेजना देता है।

गो ज्ञा न को श।

(वैदिक विभाग-प्रथम खण्ड)

[गौके सम्बन्धके सम्पूर्ण वैदिक ज्ञानका संग्रह।]

विषयानुक्रमणिका।

